मक्सिम गोर्की

जीवन की राहों पर

मक्सिम गोर्की लिखित आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी का दूसरा उपन्यास

जीवन की राहों पर

यह उपन्यास परिकल्पना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया है व प्रगतिशील साहित्य के वितरक जनचेतना द्वारा कम से कम दामों में जनता तक पहुँचाया जा रहा है। अगर आप पीडीएफ की बजाय प्रिण्ट कॉपी से पढ़ना चाहते हैं तो जनचेतना से सम्पर्क कर सकते हैं।

जनचेतना सम्पर्क : D-68, Niralanagar, Lucknow-226020
0522-4108495; 09721481546
janchetna.books@gmail.com
Website - http://janchetnabooks.org

इस पीडीएफ फाइल के अंत में जनचेतना द्वारा वितरित किये जा रहे प्रगतिशील, मानवतावादी व क्रान्तिकारी साहित्य की सूची भी दी गयी है।

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- प्रगतिशील कविताएं, कहानियां, उपन्यास, गीत–संगीत
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल सांकृत्यायन, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य
- देश–दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- हर रविवार किसी महत्वपूर्ण पुस्तक की पीडीएफ

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए इस लिंक का इस्तेमाल करें

www.mazdoorbigul.net/whatsapp

जुड़ने में समस्या आने पर अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें – 8828320322

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

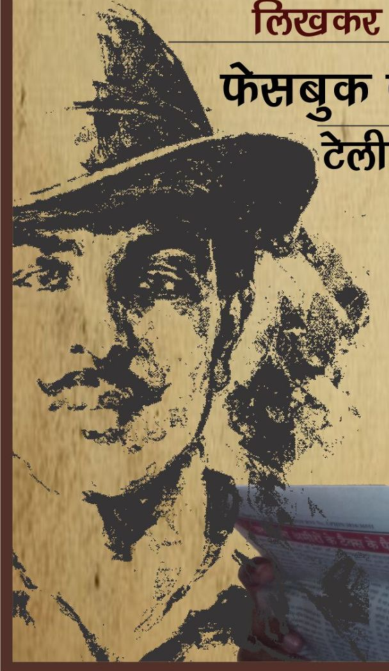

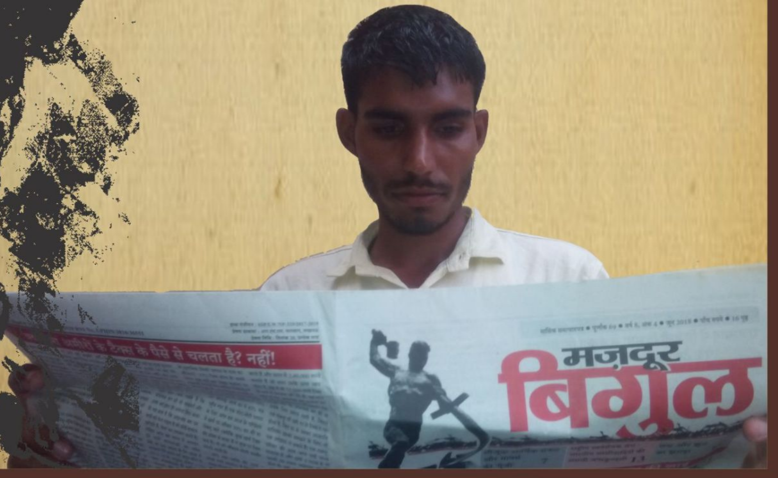

जीवन की राहों पर

(उपन्यास)

जीवन की राहों पर

(उपन्यास)

मक्सिम गोर्की

परिकल्पना प्रकाशन

लखनऊ

अनुवादक : नरोत्तम नागर

ISBN: 81-87425-88-1

मूल्य : रु. 80.00

पहला संस्करण : **जनवरी, 2006**

परिकल्पना प्रकाशन
द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 द्वारा प्रकाशित

क्रिएटिव प्रिन्टर्स, 628/S-28, शक्तिनगर, लखनऊ द्वारा मुद्रित

आवरण : **रामबाबू**

JEEVAN KI RAHON PAR *by* ***Maxim Gorky***

मक्सिम गोर्की

1

यह लीजिए, मैं अब नगर के सबसे बड़े बाज़ार की "फ़ैन्सी जूता" दुकान पर नौकरी करने आ गया हूँ।

मेरा मालिक है नाटा और गोल-मटोल, जिसके बादामी रंग के चेहरे के आदि-अन्त का कुछ पता नहीं चलता, जिसके दाँत हरे और आँखें गन्दी-पनीली हैं। मुझे वह अन्धा-सा लगता है और इस बात की जाँच करने के लिए मैंने मुँह बनाया।

धीमे, परन्तु दृढ़ लहज़े में उसने कहा :

"तोबड़ा मत बना!"

मुझे यह अच्छा नहीं लगा कि ये धूमिल आँखें मुझे देखती हैं और यह विश्वास नहीं हुआ कि वे सचमुच देख सकती हैं। शायद मालिक ने केवल यह अटकल लगायी है कि मैं मुँह बनाता हूँ?

"मैंने कहा न कि अपनी थूथनी को क़ाबू में रख!" अपने मोटे होंठों को लगभग हिलाये बिना उसने पहले से भी अधिक धीमी आवाज़ में कहा।

"हाथों को नहीं खुजला," उसकी रूखी फुसफुसाहट मेरी ओर रेंगती हुई आयी। "याद रख कि तू नगर के बड़े बाज़ार की बड़ी दुकान में है। दरवाज़े पर बुत बने सीधे-सतर खड़े रहना तेरा काम है!.."

मुझे मालूम नहीं था कि बुत क्या होता है और अपने हाथों को न खुजलाना भी मेरे वश की बात नहीं थी : कोहनियों तक मेरे दोनों हाथ लाल चकत्तों और रिसते घावों से भरे हुए थे।

मेरे हाथों को देखते हुए मालिक ने पूछा :

"घर पर तू क्या काम करता था?"

मैंने बताया। उसकी मटकी-सी खोपड़ी, जिस पर उसके मटमैले बाल मानो लेई से चिपके हुए थे, हिल उठी। उसने डंक-सा मारा :

"चिथड़े बटोरना तो भीख माँगने से भी बुरा है, चोरी करने से भी बदतर है।"

"मैंने चोरी भी की थी," कुछ गर्व के साथ मैंने ऐलान किया।

यह सुनकर उसने बिलाव के पंजों की तरह काउण्टर पर अपने हाथ रखे और सहमकर अपनी सूनी-सूनी आँखों से मेरी ओर ताकते हुए फुँकार उठा :

"क्या-आ-आ? क्या कहा तूने—चोरी भी करता रहा है?"

मैंने स्पष्ट किया कि किस चीज़ की और कैसे मैंने चोरी की थी।

"ख़ैर, इस घटना को तो हम बहुत महत्व नहीं देंगे। लेकिन अगर तूने मेरे जूतों या मेरे पैसों पर हाथ साफ़ किया तो बालिग होने से पहले ही मैं तुझे जेल भिजवा दूँगा..."

उसने यह शान्त भाव से कहा, मैं डर गया तथा उससे और भी अधिक घृणा करने लगा।

मालिक के अलावा दुकान पर दो आदमी और काम करते थे—याकोव मामा का बेटा, मेरा ममेरा भाई साशा और एक कारिंदा, बहुत ही चलता पुर्ज़ा और चिकना-चुपड़ा, लाल चेहरेवाला व्यक्ति। साशा खूब ठाठदार मालूम होता था—लाल-से रंग का कोट, कलफ़ लगी कमीज़, पतलून और टायी डाटे हुए। घमण्ड के मारे वह मेरी ओर देखता तक नहीं था।

नाना मुझे अपने साथ लेकर जब पहली बार मालिक के पास आये और साशा से उन्होंने मुझे काम सीखने में मदद देने के लिए कहा तो साशा अकड़ दिखाते हुए भौंहें चढ़ाकर बोला :

"इससे कह दीजिये कि मेरी बात माने।"

मेरे सिर पर अपना हाथ रखकर उसे नीचे झुकाते हुए नाना बोले :

"इसकी बात मानना। यह तुम से बड़ा है—उम्र में और काम के लिहाज़ से भी..."

साशा ने आँखों को टेरा और बोला :

"नाना की सीख याद रखना, समझा!"

और उसने पहले दिन से ही अपने बड़प्पन का ख़ूब रोब जताना शुरू कर दिया।

लेकिन मालिक उसे भी डाँटता था। एक दिन बोला :

"काशीरिन, यह आँखें टेरना बन्द कर।"

"जी नहीं... मैं... मैं कहाँ?..." साशा ने सिर झुकाते हुए जवाब दिया।

पर मालिक आसानी से पीछा छोड़नेवाला नहीं था। बोला :

"देख, यह सिर क्यों लटका लिया? कहीं ग्राहक तुझे बकरा न समझ बैठें..."

ऐसे मौक़ों पर कारिंदा खुशामदभरी हँसी हँसता, मालिक के मोटे होंठ बेढंगेपन से फैल जाते और साशा शर्म से बुरी तरह लाल होकर काउण्टर की ओट में छिप जाता।

मुझे इस तरह की जुमलेबाज़ी अच्छी नहीं लगती थी। बहुत-से शब्द मेरी समझ में न आते और कभी-कभी ऐसा लगता मानो ये लोग किसी अजनबी भाषा में बात कर रहे हों।

जब कोई महिला दुकान में आती तो मालिक जेब से हाथ बाहर निकालकर मूँछों पर फेरता और अपने चेहरे पर मानो एक मीठी मुस्कान चस्पां कर लेता। उसके कपोलों

पर झुर्रियों की बन्दनवार सज जाती, लेकिन उसकी खोहनुमा आँखें ज्यों की त्यों ही रहतीं। कारिंदा तनकर सीधा हो जाता, उसकी कोहनियाँ दोनों बाजू शरीर से सट जातीं और उसके हाथ सम्मान का प्रदर्शन करते हुए फड़फड़ा उठते। नज़र का टेरना छिपाने के लिए साशा डरे-डरे अपनी आँखों को मिचमिचाने लगता और मैं दरवाज़े से चिपका हुआ लुक-छिप कर अपने हाथों को खुजलाता और ग्राहक का हृदय जीतने के उसके कौशल को देखता रहता।

पाँव में जूता पहनाते समय किसी महिला के सामने घुटनों के बल खड़ा कारिंदा हाथों की उँगलियों को आश्चर्यजनक ढंग से फैला लेता। उसके हाथ सिहरते होते और वह कुछ इस अन्दाज़ से महिला के पाँव का स्पर्श करता मानो डरता हो कि वह कहीं टूट न जाये, हालाँकि पाँव बहुधा मोटा और बेडौल होता था—झुके कन्धोंवाली उस बोतल के समान जो उलटाकर गरदन के बल खड़ी कर दी गयी हो।

एक बार ऐसी ही एक महिला ने सिमटते और अपना पाँव छुड़ाते हुए कहा :

“हाय, तुम तो बहुत गुदगुदी करते हो।”

“जी, शिष्टतावश,” कारिंदे ने झटपट जवाब दिया।

महिला के चारों ओर वह कुछ इस तरह मँडराता कि हँसी रोकने के लिए मैं अपना मुँह दरवाज़े के काँच की ओर कर लेता। लेकिन कारिंदे के तौर-तरीके कुछ इतने मज़ेदार होते थे कि मुझसे रहा न जाता और मैं मुड़-मुड़कर देखता। साथ ही मुझे लगता था कि लाख कोशिश करने पर भी मैं अपनी उँगलियों को इतनी नज़ाकत के साथ कभी नहीं फैला सकूँगा, न ही दूसरे लोगों के पाँव में जूते पहनाने की कला में कभी इतनी दक्षता प्राप्त कर सकूँगा।

अक्सर मालिक काउण्टर के पीछे एक छोटे-से कमरे में चला जाता और साशा को भी वहीं बुला लेता। अब जूता ख़रीदने के लिए दुकान में आयी महिला के सामने कारिंदा ही रह जाता। एक बार लाल बालोंवाली किसी स्त्री के पाँव छूकर उसने अपनी उँगलियों की चिकोटी बनायी और उसे चूम लिया।

“ओह, बड़े शैतान हो तुम!” स्त्री ने निश्वास छोड़कर कहा।

कारिंदे ने गाल फुलाये और आह-ऊह के सिवा उसके मुँह से और कुछ न निकला।

कारिंदे की मुद्रा देखते ही बनती थी। मुझे इतने ज़ोरों से हँसी छूटी कि मेरे पाँव डगमगा गये। सम्भलने के लिए मैंने दरवाज़े का हत्था पकड़ा, वह मेरा बोझ न सम्भाल पाया, झटके से दरवाज़ा खुला और मेरा सिर दरवाज़े के काँच से जा टकराया। काँच टूटकर ज़मीन पर आ गिरा। कारिंदे ने यह देखा तो गुस्से में खूब हाथ-पाँव पटके, मालिक ने सोने की भारी अँगूठी मेरे सिर पर कई बार मारी, साशा ने भी मेरे कान ऐंठने की कोशिश की और शाम को घर लौटते समय मुझे डाँटते हुए वह कड़े स्वर

में बोला :

"अगर इसी तरह की हरकतें करेगा तो निकाल देंगे! आख़िर इतना हँसने की क्या बात थी?"

और उसने समझाया कि जब दुकान का कारिंदा महिलाओं को अच्छा लगता है, तो माल खूब बिकता है।

"ज़रूरत न होने पर भी महिला फालतू जोड़ा ख़रीदने चली आयेगी ताकि मन को अच्छा लगनेवाले कारिंदे को देख सके। क्या तू इतनी-सी बात भी नहीं समझता? तेरे साथ माथापच्ची करना भी..."

साशा के ये शब्द मुझे बुरे लगे। कोई भी तो मेरे साथ माथापच्ची नहीं करता था, साशा तो ख़ास तौर पर।

हर रोज सबेरा होते ही बावर्चिन मुझे साशा से एक घण्टा पहले ही जगा देती। वह एक बीमार और चिड़चिड़े स्वभाव की स्त्री थी। उठते ही मैं समोवार गर्म करता, जितने भी अलावघर* थे सब के लिए लकड़ी लाता, जूठे बरतन माँजता, कपड़ों को ब्रुश से झाड़ता और अपने मालिक, कारिंदे तथा साशा के जूतों पर पालिश करता। दुकान में झाड़ू देता, गर्द साफ़ करता, चाय बनाता, जूतों के बण्डल लोगों के घरों पर पहुँचाता और उसके बाद भोजन लाने घर जाता। जब तक मैं ये सभी काम निपटाता द्वार पर साशा मेरी जगह सम्भालता और इस काम को अपनी शान के खिलाफ़ समझ मुझ पर बरस पड़ता :

"कद्दू की दुम, तेरे बदले मुझे यहाँ की चाकरी बजानी पड़ती है!..."

मैं आज़ाद जीवन बिताने का आदी था,—खेतों और जंगलों में, मटमैली ओका नदी के तट या कुनाविनो की रेतीली सड़कों पर। अपना वर्तमान जीवन मुझे उबा देनेवाला और कष्टप्रद मालूम होता। मुझे अपनी नानी की याद आती, अपने मित्रों का अभाव अखरता। यहाँ कोई ऐसा न था जिससे दो घड़ी बातें कर मैं अपना जी बहलाता। जीवन का जो कुत्सित तथा बनावटी रूप यहाँ मुझे घेरे था, उससे मेरा दम घुटने लगता।

बहुधा ऐसा होता कि कोई महिला आती और बिना कुछ ख़रीदे ही दुकान से विदा हो जाती। तब वे तीनों अपने को आहत अनुभव करते। मालिक चाशनी में पगी अपनी मीठी मुस्कान को तहाकर जेब में रख लेता और आदेश देता :

"काशीरिन, जूतों को उठाकर एक ओर रख दो!"

---

* बेकरी की भट्ठी जैसे अलावघर रूस में सभी घरों में होते थे और अब भी गाँवों में होते हैं। अलावघर में खाना पकाया जाता था और वह घर को गरम भी रखता था। इसके अलावा अलावघर के ऊपर और उसकी बगल में लोग सोते थे। —सं.

"उसे भी यहीं आकर अपनी थूथनी दिखानी थी, सूअरनी कहीं की! घर बैठे-बैठे जब मन नहीं लगा तो कमीनी बाज़ार की धूल छानने चली आयी। अगर वह मेरी जोरू होती तो मैं..."

उसकी पत्नी एक दुबली-पतली, काली आँखों और लम्बी नाकवाली स्त्री थी। वह उस पर चीख़ती-चिल्लाती थी, और ऐसे कसकर ख़बर लेती थी मानो पति न होकर वह उसका चाकर हो।

बहुधा, सभ्य ढंग से गरदन झुका-झुकाकर और चिकने-चुपड़े वचनों की बौछार करते हुए वे परिचित महिला को विदा करते और जब वह चली जाती तो उसके बारे में गन्दी और लज्जाहीन बातें करते। तब मेरे मन में होता कि मैं भागकर उस महिला के पास जाऊँ और उसे वह सब बताऊँ जो उन्होंने उसके बारे में अपने मुँह से उगला था।

ज़ाहिर है, यह तो मैं जानता था कि पीठ पीछे लोग एक-दूसरे के बारे में बुरी बातें कहने के आदी होते हैं, लेकिन ये तीनों तो सभी लोगों के बारे में विशेष रूप से ऐसी भली-बुरी बातें करते मानो इस धरती पर वे ही सबसे अच्छे हों और अन्य सब पर फब्तियाँ कसने के लिए ही उन्हें इस दुनिया में भेजा गया हो। वे अधिकांश लोगों से ईर्ष्या करते थे, उनके मुँह से किसी की प्रशंसा न निकलती और हरेक के बारे में अपने ज़ख़ीरे में कुछ न कुछ कुत्सित बातें जमा रखते थे।

एक दिन दुकान में एक युवती आयी : चमकदार आँखें, गुलाबी कपोल, बदन पर मखमल का चोंगा जिस पर काले फ़र का कालर लगा था। काले फ़र से घिरा उसका चेहरा किसी अद्भुत फूल की भाँति खिला हुआ था। जब उसने अपना चोंगा उतारकर साशा की बाँह पर डाला, तो उसका सौन्दर्य और भी लौ देने लगा। उसके कानों में हीरों के बुंदे चमक रहे थे, और नीले-भूरे रंग की खूब चुस्त पोशाक में उसके शरीर की कमनीय रेखाएँ और भी उभर आयी थीं। उसे देखकर मुझे परी कथाओं की सुन्दरी वसिलीसा की याद हो आयी। मुझे लगा कि और कुछ नहीं तो यह गवर्नर की पत्नी अवश्य होगी। उसके स्वागत-अभिवादन में वे फ़र्श चूमने लगे, अग्नि-पूजकों की भाँति उसके सामने दोहरे हो गये, मधु में डूबे शब्दों की उन्होंने झड़ी लगा दी। तीनों के तीनों उतावले होकर पागलों की भाँति दुकान में इधर से उधर मँडराने लगे। शो-केसों के काँच में उनके अक्स झलकते और ऐसा मालूम होता मानो प्रत्येक चीज़ लपटों से घिरी है, पिघलकर एकाकार हो रही है और जैसे अभी, देखते-देखते, वह एक नया रूप और नया आकार-प्रकार ग्रहण कर लेगी।

जल्दी से जूतों का एक कीमती जोड़ा ख़रीदने के बाद जब वह चली गयी तो मालिक ने चटकारा भरा और फुँकारते हुए बोला :

"कुतिया है, कुतिया!.."

"सीधी बात है—ऐक्ट्रेस!" कारिंदे ने भी तिरस्कारपूर्वक कहा।

और वे एक-दूसरे को उस महिला के यारों तथा रंगीन जीवन के क़िस्से सुनाने लगे।

दोपहर का भोजन करने के बाद मालिक झपकी लेने के लिए दुकान के पीछेवाले छोटे कमरे में चला गया। मौक़ा देख मैंने उसकी सोने की घड़ी उठायी, उसका ढक्कन खोला और उसके पुर्ज़ों में कुछ सिरका चुआ दिया। मालिक की जब आँखें खुलीं और घड़ी हाथ में लिये जब वह बड़बड़ाता हुआ दुकान में आया, तो मेरे आनन्द की सीमा न रही।

"यह एक नयी मुसीबत देखो—घड़ी में पानी आ गया! ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ। घड़ी में पानी! कहीं कोई मुसीबत तो नहीं?..."

दुकान की इस दौड़-धूप और घर के सारे काम-काज के बावजूद ऊब मुझे हर वक़्त घेरे रहती, और मैं बार-बार यही सोचता : ऐसा क्या करूं कि ये लोग परेशान होकर मुझे दुकान से निकाल दें?

हिमकणों से आच्छादित लोग दुकान के दरवाज़े के सामने से तेजी से गुज़रते। ऐसा मालूम होता मानो उन्हें किसी को दफ़नाने के लिए क़ब्रगाह में जाना था, लेकिन देर हो गयी और अब जनाजे तक पहुँचने के लिए वे तेज़ी से लपके जा रहे हैं। गाड़ियों में जुते घोड़े बर्फ़ के ढेरों को पार करने के लिए ज़ोर लगाते। ईसाई चालीसे के दिन थे। दुकान के पीछेवाले गिरजे के घण्टे की उदास ध्वनि प्रतिदिन कानों से आकर टकराती। घण्टा बजता ही रहता और ऐसा मालूम होता मानो कोई तकिये से सिर पर प्रहार कर रहा हो जिससे चोट तो नहीं लगती, मगर इंसान बुद्धू और बहरा-सा होता जाता है।

एक दिन जब मैं आँगन में दुकान के दरवाज़े के नजदीक माल की एक नयी पेटी खोल रहा था, गिरजे का चौकीदार मेरे पास आया। टेढ़ी कमरवाला यह बूढ़ा कपड़े की गुड़िया की भाँति लिजबिज और ऐसा खस्ताहाल था मानो कुत्तों ने उसे घेरकर खूब नोचा-खरोंचा हो।

"ख़ुदा के बन्दे, तुम मेरे लिए गलोशों* का एक जोड़ा ही दुकान से चुरा लो, ऐं?" उसने कहा।

मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। वह एक खाली पेटी पर बैठ गया, उसने जम्हाई ली, मुँह के सामने सलीब का चिह्न बनाया और फिर बोला :

"चुरा लो, ऐं?"

"चोरी करना अच्छा नहीं है!" मैंने उसे बताया।

---

* चमड़े के जूतों के ऊपर पहने जानेवाले रबड़ के जूते।—सं.

"फिर भी करते हैं। मेरे बुढ़ापे का ख़्याल करो।"

वह उन लोगों से भिन्न और रुचिकर था जिनके बीच मैं रह रहा था। मैंने महसूस किया कि उसे इस बात का पक्का विश्वास है कि मैं चोरी करने के लिए तैयार हूँ और एक जोड़ा गलोश उठाकर खिड़की से चुपचाप उसे पकड़ा देने को राजी हो गया।

"अच्छी बात है," खुशी का कोई ख़ास भाव प्रकट किये बिना वह शान्त भाव से बोला। "कहीं मुझे चकमा तो नहीं दे रहे? ठीक है, ठीक है, तुम उनमें से नहीं हो जो चकमा देते हैं।"

क्षण भर चुपचाप बैठा वह अपने बूट के तले से नम और गन्दी बर्फ़ को कुरेदता रहा, फिर मिट्टी का पाइप सुलगाया और एकाएक मुझे डराते हुए बोला :

"और अगर मैं तुम्हें चकमा दे दूँ, तो? उन्हीं गलोशों को लेकर तुम्हारे मालिक के पास जाऊँ और कहूँ कि तुमने आधे रूबल में उन्हें मेरे हाथ बेच दिया है, एँ? उनका दाम है दो रूबल से भी ज़्यादा, और तुमने बेच दिया उन्हें आधे रूबल में! मिठाई के लिए, एँ?"

गूँगे की भाँति मैंने उसकी ओर देखा, मानो उसने जो धमकी दी थी, उसे पूरा कर भी चुका हो। और वह आँखें अपने जूते पर टिकाए और पाइप से नीला धुआँ छोड़ते हुए नकियाते स्वर में धीरे-धीरे कहता गया :

"और अगर ऐसा हो कि ख़ुद तुम्हारे मालिक ने ही मुझे सिखाया हो कि 'जाओ, जाकर मेरे इस छोकरे की जाँच करो कि वह चोरी तो नहीं करता', तब क्या कहोगे तुम?"

"मैं तुम्हें गलोश नहीं दूँगा," झुँझलाकर मैंने कहा।

"नहीं, एक बार वचन देने के बाद तुम अब पीछे कैसे हट सकते हो?"

उसने मेरा हाथ थाम लिया और मुझे अपनी ओर खींचा। फिर अपनी ठण्डी उँगली मेरे माथे पर मारते हुए बोला :

"तुमने न सोचा, न समझा और झट तैयार हो गये जूते भेंट करने को—लो, ले लो?!"

"तुम्हीं ने तो इसके लिए कहा था।"

"कहने को तो मैं दुनिया भर की चीज़ों के लिए कह सकता हूँ। मैं कहूँ कि गिरजे को लूटो, तो क्या तुम लूटोगे? आदमी पर भी क्या भरोसा किया जा सकता है? अरे, मेरे भोंदू भट्ट!.."

उसने मुझे धकेलकर अलग कर दिया और खड़ा हो गया।

"मुझे चोरी के गलोश नहीं चाहिए। फिर मैं कोई रईस भी नहीं हूँ जो गलोशों के बिना रह नहीं सकता। मैं तो मज़ाक कर रहा था... तुम्हारी सादगी के लिए मैं तुम्हें गिरजे के घण्टेघर पर चढ़ने दूँगा, ईस्टर के दिन आना। तुम घण्टा बजाओगे, और

वहाँ से तुम्हें नगर का नज़ारा दिखाई देगा।"

"नगर तो मेरा देखा-भाला है।"

"घण्टेघर से वह और भी सुन्दर दिखाई देता है।"

धीमे डगों से, जूतों की नोक को बर्फ़ में गड़ाते हुए वह गिरजे के कोने के पास से मुड़कर आँखों से ओझल हो गया। मैं उसे जाते हुए देख रहा था और एक दुःखद बेचैनी से डरते-डरते सोच रहा था—बूढ़ा क्या सचमुच मुझसे मज़ाक कर रहा था या मालिक ने मेरी जाँच करने के लिए ही उसे भेजा था? दुकान में लौटने का मुझे साहस नहीं हुआ।

साशा आँगन में निकल आया और चिल्लाकर बोला :

"इतनी देर से कमबख़्त यहाँ क्या कर रहा है!"

एकाएक गुस्से की लहर मेरे शरीर में दौड़ गयी और मैंने सँड़सी दिखाकर उसे धमकाया।

मैं जानता था कि वह और कारिंदा मालिक के यहाँ चोरी करते हैं। बूट या जूतों का एक जोड़ा उठाकर वे अलावघर की चिमनी में छिपा देते और दुकान बन्द करते समय चोरी के जूतों को कोट की आस्तीनों में छिपाकर घर ले जाते। मुझे यह अच्छा नहीं लगता था और इससे मुझे डर भी महसूस होता था। मालिक की चेतावनी को मैं भूला नहीं था।

"तुम चोरी करते हो न?" मैंने साशा से पूछा।

"नहीं, मैं नहीं," उसने कठोरता से स्पष्ट किया। "कारिंदा करता है। मैं तो केवल उसकी मदद करता हूँ। वह कहता है—मैं जैसा कहूँ, वैसा करो। अगर मैं वैसा न करूँ तो वह किसी समय भी मुझे अपनी गन्दी चाल से फाँस सकता है। और मालिक तो खुद भी दुकान में कारिंदे का काम कर चुका है, सभी कुछ जानता है। हाँ, तू अपना मुँह बन्द रखियो।"

बोलते समय वह बराबर आयीने में अपना चेहरा देखता और अपनी टायी को ठीक करता रहता। उसकी उँगलियाँ कारिंदे के अन्दाज़ में फैली होतीं। वह लगातार मुझ पर अपना रोब जमाता, भारी आवाज़ में मुझ पर चिल्लाता और आदेश देते समय ऐसे हाथ आगे बढ़ाता मानो मुझे धकेल रहा हो। क़द में मैं उससे लम्बा और मज़बूत था, लेकिन हड़ीला और बेडौल। इसके उलट वह मांसल था, नरम-नरम और चिकना-चुपड़ा। फ्राक कोट और पतलून पहने हुए वह मुझे बड़ा रोबीला लगता था, किन्तु उसमें कुछ हास्यास्पद तथा अप्रिय चीज़ भी थी। वह बावर्चिन से घृणा करता था, जो अजीब-सी स्त्री थी—यह समझना असम्भव था कि वह अच्छी है या बुरी।

"मुझे तो लड़ाई-भिड़ाई सबसे ज़्यादा पसन्द है," अपनी दमकती हुई काली आँखों को बरबट्टा-सी खोलकर वह कहती। "मुर्ग़े लड़ें, या कुत्ते, या दहकान—मेरे लिए सब

बराबर है!"

अगर आँगन में कभी मुर्ग़ों या कबूतरों की लड़ाई शुरू हो जाती तो वह सारा काम छोड़कर खिड़की पर जम जाती और दीन-दुनिया से बेख़बर, लड़ाई खत्म होने तक वहीं खड़ी रहती। जब साँझ होती तो वह साशा और मुझसे कहती :

"यहाँ बैठे-बैठे क्या मक्खियाँ मार रहे हो, लड़को! बाहर निकलो, खूब लड़ो-भिड़ो, ज़ोर आज़माई करो!"

साशा झुँझला उठता :

"मैं लड़का नहीं हूँ, मूर्ख़ों की नानी! मैं छोटा कारिंदा हूँ!"

"मैं यह नहीं मानती। जब तक तुम्हारी शादी नहीं हो जाती, मेरे लिए तो तुम लड़के ही रहोगे!"

"मूर्खों की नानी, बोले मूर्खों की बानी!"

"शैतान अक्लमन्द है पर ख़ुदा उससे प्यार नहीं करता।"

उसकी उक्तियाँ साशा को ख़ास तौर से बहुत खिजाती थीं। साशा उसे चिढ़ाता तो वह अपनी दृष्टि से उसे ध्वस्त करते हुए कहती :

"अरे तिलचट्टे, तू भगवान की ग़लती है!"

साशा ने कई बार मुझे इस बात के लिए उकसाने की कोशिश की कि मैं उसके तकिये में पिनें खोंस दूँ, या जब वह सोती हो उसके मुँह पर काली पालिश या काजल पोत दूँ, या इसी तरह की कोई अन्य हरकत करूँ। लेकिन मैं बावर्चिन से डरता था और वह बहुत ही उचटी हुई सी नींद सोती थी। बहुधा ऐसा होता कि वह सोते-सोते जग जाती, लैम्प जलाती और कहीं कोने में नज़र गड़ाये ताकती रहती। कभी-कभी वह उठकर अलावघर के पीछे मेरे बिस्तरे के पास चली आती, मुझे झँझोड़ती और बैठी हुई आवाज़ में फुसफुसाती :

"न जाने क्यों मुझे नींद नहीं आती, आल्योशा। डर-सा लगता है। कुछ बात ही कर।"

और मैं जागता-ऊँघता-सा उसे कोई कहानी सुनाता और वह अपने बदन को आगे-पीछे झुलाती हुई चुपचाप बैठी सुनती रहती। मुझे ऐसा प्रतीत होता मानो उसके गर्म बदन से मोम और लोबान की गन्ध आ रही हो, और यह कि वह जल्दी ही मर जायेगी, शायद इसी क्षण मुँह के बल फ़र्श पर गिरेगी और दम तोड़ देगी। डर के मारे मैं ज़ोर से बोलने लगता, लेकिन वह हमेशा टोक देती :

"शी, तू उन हरामज़ादों को भी जगा देगा और वे समझेंगे कि तू मेरा आशिक़ है..."

वह हमेशा एक ही मुद्रा में और एक ही जगह पर बैठती—बदन को एकदम झुकाकर दोहरा किये, हाथों को घुटनों के बीच खोंसे और हड्डियाँ भर रह गयी अपनी

टाँगों से उन्हें कसकर दबाये हुए। वह गाढ़े का लबादा पहनती थी। लेकिन चपटी छातियोंवाले उसके शरीर की पसलियाँ, पिचके हुए पीपे की सलवटों की भाँति, उस मोटे लबादे में भी साफ़ उभरी हुई दिखाई देतीं। बड़ी देर तक वह इसी तरह चुपचाप बैठी रहती और फिर सहसा फुसफुसा उठती :

"मर जाऊँ तो इन सब दुःखों से जान छूट जाये..."

या किसी अदृश्य से पूछ लेती :

"लो, जीवन के दिन पूरे कर लिये—तो क्या हुआ?"

"अब सो जा!" मुझे बीच में ही टोककर वह कहती, सीधी हो जाती और उसका धूमिल शरीर रसोई के अँधेरे में चुपचाप विलीन हो जाता।

साशा उसकी पीठ पीछे उसे डायन कहता।

एक दिन मैंने उसे उकसाया :

"उसके मुँह पर कहो तो जानें!"

"मैं क्या उससे डरता हूँ?" उसने जवाब दिया।

फिर तुरन्त ही उसने अपने माथे को सिकोड़ा और बोला :

"नहीं, मैं उसके मुँह पर नहीं कहूँगा। कौन जाने, वह सचमुच ही डायन हो..."

सभी के प्रति वह चिड़चिड़ेपन और तिरस्कार का भाव अपनाये रहती और मेरे साथ भी कोई रू-रियायत न बरतती। सुबह के छः बजे ही वह मेरी टाँग पकड़कर खींचती और चिल्लाती :

"बहुत खर्राटे ले चुका! अब उठकर लकड़ी ला, समोवार गर्म कर, आलू छील!.."

उसका चिल्लाना सुनकर साशा की भी आँख खुल जाती।

"क्या आसमान सिर पर उठा रखा है?" वह बड़बड़ाता। "मैं मालिक से जाकर शिकायत करूँगा कि मुझे सोने नहीं देती..."

नींद न आने के कारण सूजकर लाल हुई उसकी आँखें साशा की दिशा में कौंध जातीं और अपने हड्डियों के ढाँचे से वह रसोई में द्रुत गति से उठा-धरी करने लगती।

"मुआ कहीं का! भगवान की ग़लती! मेरे पाले पड़ता तो चमड़ी उधेड़कर रख देती!"

"नासपीटी!" साशा उसे कोसता और फिर बाद में, दुकान जाते समय, मुझसे कहता : "मैं इसका पत्ता कटाकर छोड़ूँगा। इसकी आँख बचाकर मैं खाने में नमक झोंक दूँगा। जब हर चीज़ ज़हर मालूम होगी तो मालिक इसे निकाल बाहर करेंगे। या फिर मिट्टी का तेल। तू यह क्यों नहीं करता?"

"और तू?"

"डरपोक!" वह भुनभुनाकर कहता।

और बावर्चिन हमारे देखते-देखते मर गयी। एक दिन समोवार उठाने के लिए

झुकते ही वह सहसा ढेर हो गयी, मानो किसी ने उसकी छाती पर आघात किया हो। वह बाजू के बल लुढ़क गयी, उसकी बाँहों में ऐंठन हुई और मुँह से खून टपकने लगा।

हम दोनों तुरन्त ही भाँप गये कि वह मर चुकी है, लेकिन भय से ग्रस्त हम वहीं खड़े-खड़े केवल उसे देखते रहे, मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला। आख़िर साशा भागकर रसोई से बाहर गया और मैं, खिड़की के पास, रोशनी में किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। मालिक आया, चिन्ताग्रस्त भाव से झुका, उसके चेहरे का स्पर्श किया और बोला :

"अरे, यह सचमुच मर गयी... यह कैसे हुआ?"

कोने में रखी हुई चमत्कारी सन्त निकोला की छोटी-सी प्रतिमा के सामने झुकते हुए मालिक ने तुरन्त सलीब का चिह्न बनाया और प्रार्थना पूरी करने के बाद दरवाज़े की ओर मुँह करके चिल्लाया :

"काशीरिन, भागकर जाओ और पुलिस को खबर करो!"

पुलिसवाला आया, इधर-उधर कुछ खटर-पटर करने के बाद उसने बख़्शीश अपनी जेब में डाली और चला गया। इसके शीघ्र बाद ही मुर्दा ढोनेवाले एक ठेले को अपने साथ लिये वह लौटा। सिर और पाँव पकड़कर उन्होंने बावर्चिन को उठाया और उसे बाहर ले गये। मालिक की पत्नी ने दरवाज़े से झाँककर मुझसे कहा :

"फ़र्श साफ़ कर डाल!"

और मालिक ने कहा :

"यह भी अच्छा हुआ कि वह साँझ के समय ही मरी..."

मेरी समझ में नहीं आया कि इसमें क्या अच्छाई थी। जब हम सोने के लिए बिस्तर पर गये, तो साशा बहुत ही नम्रता से बोला :

"लैम्प न बुझाना!"

"क्यों, डर लगता है?"

उसने अपना सिर कम्बल से ढक लिया और बहुत देर तक चुपचाप पड़ा रहा। रात भी एकदम चुप और निस्तब्ध थी मानो वह भी कान लगाकर कुछ सुनना चाहती हो, किसी चीज़ की प्रतीक्षा में हो। और मुझे ऐसा लग रहा था मानो अगले ही क्षण घण्टा बजने लगेगा और नगर में सब लोग भय से आक्रान्त होकर इधर-उधर भागना और चिल्लाना शुरू कर देंगे।

साशा ने कम्बल से अपना सिर बाहर निकालकर अपनी थूथनी की एक झलक दिखाते हुए धीमे स्वर में कहा :

"चल, अलावघर पर चलकर दोनों एक साथ सोयें?"

"वहाँ तो बहुत गर्म होगा।"

कुछ देर तक चुप रहकर उसने कहा :

"कैसे वह मर गयी—एकदम न? और मैं उसे डायन समझ रहा था। नींद नहीं आती..."

"मेरा भी यही हाल है।"

उसने बताना शुरू किया कि किस प्रकार मुर्दे अपनी क़ब्रों में से उठकर आधी रात तक नगर का चक्कर लगाते हैं और अपने सगे-सम्बन्धियों तथा घरों की खोज करते हैं।

"मुर्दों को केवल अपने नगर की याद रहती है," वह धीरे-धीरे बता रहा था, "गली-मोहल्लों और घरों की नहीं..."

निस्तब्धता अब और भी गहरी हो गयी और मानो अँधेरा भी अधिकाधिक घना होता जा रहा था। साशा ने अपना सिर उठाया और पूछा :

"मेरे सन्दूक़ की चीज़ें देखें?"

मैं बहुत दिनों से यह जानना चाहता था कि उसने अपने सन्दूक़ में क्या-क्या छिपा रखा है। वह हमेशा उसको ताला लगाये रखता था। और उसे खोलते समय अज़ीब सावधानी बरतता था। अगर मैं कभी झाँककर देखने की कोशिश करता तो वह डाँटकर पूछता :

"क्या चाहिए तुझे? हैं?"

जब मैं देखने को राज़ी हो गया तो वह उठकर बिस्तर पर बैठ गया और सदा की भाँति मालिकाना अन्दाज़ में उसने आदेश दिया कि मैं सन्दूक़ को उठाकर उसके पाँव के पास रखूँ। कुंजी को एक जंजीर में डालकर उसने सलीब के साथ गले में पहन रखा था। रसोईघर के अँधेरे कोनों की ओर नज़र डालकर रोब के साथ उसने अपनी भौंहों को सिकोड़ा, ताला खोला और अन्त में ढक्कन पर इस तरह फूँक मारकर मानो वह गर्म हो, सन्दूक़ खोला। सन्दूक़ में अण्डरवेयर के कई जोड़े रखे थे। उसने उन्हें बाहर निकाल लिया।

सन्दूक़ का आधे से भी ज़्यादा हिस्सा गोलियों के बक्सों, चाय के पैकेटों के रंग-बिरंगे कागजों, सार्डीन मछली और काली पालिश की खाली डिब्बियों से भरा था।

"यह सब क्या है?"

"अभी दिखाता हूँ..."

सन्दूक़ को अपनी टाँगों के बीच रखकर उसने उस पर झुकते हुए धीमी आवाज़ से गाया :

"हे परम पिता, स्वर्ग में वास करनेवाले..."

मुझे उम्मीद थी कि सन्दूक़ में खिलौने देखने को मिलेंगे। मैं खिलौनों से सदा वंचित रहा था और खिलौनों के प्रति बनावटी उपेक्षा का भाव दिखाता था, किन्तु मन ही मन उन लोगों से ईर्ष्या करता था जिनके पास खिलौने होते थे। यह सोचकर मैं

मन ही मन प्रसन्न होता कि साशा के पास, उसकी गम्भीरता और रूखेपन के बावजूद खिलौने हैं जिन्हें शर्म के मारे उसने छिपा रखा है। उसकी यह लज्जा मेरी समझ में आती थी।

उसने पहले डिब्बे को खोला और उसमें से चश्मे का फ़्रेम निकाला। उसने उसे अपनी नाक पर लगाया, मेरी ओर कड़ी नज़र से देखा और फिर बोला :

"इसमें शीशे नहीं हैं तो क्या हुआ। बिना शीशों के भी इसका वैसा ही रोब पड़ता है।"

"जरा मुझे दो। मैं भी लगाकर देखूँ!"

"यह तेरी आँखों से मेल नहीं खाता। यह काली आँखों के लिए है और तेरी आँखें कुछ भूरी हैं।" उसने मुझे मालिक के अन्दाज़ में समझाया। किन्तु फ़ौरन ही उसने भयभीत-सा होकर सारी रसोई में नज़र दौड़ाई।

पालिश के एक डिब्बे में तरह-तरह के बटनों का ज़ख़ीरा मौजूद था।

"ये सब मुझे सड़क पर पड़े हुए मिले!" उसने शेख़ी बघारते हुए कहा। "ख़ुद मैंने ही जमा किये हैं। पूरे सैंतीस हैं..."

तीसरे डिब्बे में पीतल की बड़ी-बड़ी पिनें थीं। ये भी सड़क पर पड़ी मिली थीं। फिर आय   े जूतों के बक्सुवे—घिसे-पिटे, तुड़े-मुड़े और सालिम, बूटों तथा जूतों के बकल, छड़ी की हाथीदाँत की मूठ, दरवाज़े का पीतल का हत्था, एक जनानी कंघी और सपनों तथा भाग्य का भेद बतानेवाली एक पुस्तक। इसके अलावा इसी तरह की अन्य बहुत-सी चीज़ें थीं।

चिथड़ों और हड्डियों की खोज करते समय अगर मैं चाहता तो एक महीने के भीतर इससे दस गुना कबाड़ जमा कर सकता था। साशा के इस ज़ख़ीरे को देखकर मुझे बड़ी निराशा और झुँझलाहट हुई और उसके प्रति दया से मेरा मन भर आया। वह प्रत्येक चीज़ को बड़े ध्यान से देखता हुआ बड़े चाव से अपनी उँगलियों से उसे सहला रहा था, उसके मोटे होंठ बड़े रोब के साथ आगे को फैले हुए थे, उभरी हुई आँखें बड़े प्यार और ध्यान से चीज़ों को देख रही थीं, लेकिन चश्मे के फ्रेम ने, उसके बचकाने चेहरे को हास्यास्पद बना दिया था।

"इस सब का क्या करोगे?"

चश्मे के भीतर से उसने मुझ पर एक उड़ती हुई नज़र डाली और अपनी आयु के अनुरूप फटी हुई-सी भारी आवाज़ में बोला :

"बोल, तुझे कुछ भेंट कर दूँ?"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए..."

एक क्षण तक वह कुछ नहीं बोला। मेरे इंकार करने और उसके ज़ख़ीरे में दिलचस्पी न दिखाने से स्पष्टतः उसके हृदय को ठेस लगी थी।

"एक तौलिया ले आ," आख़िर उसने धीरे से कहा, "इन सब चीज़ों को चमकाएँगे। देख न, इन पर कितनी धूल जमा हो गयी..."

सब चीज़ों को चमकाने और उन्हें सन्दूक़ में रखने के बाद वह करवट लेकर दीवार की ओर मुँह करके लेट गया। बाहर बारिश शुरू हो गयी थी, छत से पानी टपक रहा था और हवा खिड़कियों पर थपेड़े मार रही थी।

"ज़0रा ज़मीन सूख जाने दे, बगीचे में तुझे एक ऐसी चीज़ दिखाऊँगा कि दंग रह जायेगा," मेरी ओर मुँह किये बिना ही उसने कहा।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप बिस्तर में घुस गया।

कुछ क्षण बाद वह सहसा उछला, दीवार को अपनी उँगलियों से नोचने लगा और आश्चर्यचकित करनेवाली दृढ़ आवाज़ में बोला :

"मुझे डर लग रहा है... हे भगवान, मुझे डर लग रहा है! मुझ पर दया करो, भगवान! यह क्या है?"

तब भय से मेरा भी पसीना छूटने लगा, शरीर ठण्डा पड़ गया। मुझे लगा मानो बावर्चिन मेरी ओर पीठ किये खिड़की के पास खड़ी है, शीशे से माथा सटाये, ठीक उसी मुद्रा में जिसमें वह मुर्ग़ों को लड़ना देखा करती थी।

दीवार को नोचता और पाँव पटकता हुआ साशा रो रहा था। मैं उठा और लपककर मैंने रसोई के फ़र्श को ऐसे पार किया मानो उस पर दहकते अंगारे बिछे हों। उसके बिस्तर में घुसकर मैं उसकी बगल में लेट गया।

बहुत देर तक हम दोनों की आँखों से आँसू बहते रहे और अन्त में हम थककर सो गये।

कुछ दिन बाद कोई त्यौहार था। केवल दोपहर तक हमने काम किया। दोपहर का भोजन घर जाकर करना था। जब मालिक और उसकी पत्नी विश्राम करने के लिए चले गये तो साशा ने भेद भरे ढंग से मुझसे कहा :

"आ मेरे साथ!"

मैंने अन्दाज़ लगाया कि वह कोई ऐसी चीज़ दिखाना चाहता है जिसे देखकर मैं दंग रह जाऊँगा।

हम बगीचे में गये। दो घरों के बीच भूमि की एक सँकरी पट्टी पर लिण्डन के दस-पन्द्रह पेड़ थे जिनके सबल तनों पर काई जमी हुई थी और जिनकी नंगी-बूची, जीवन शून्य टहनियाँ आकाश का मुँह ताक रही थीं। उनमें कौवों का एक घोंसला तक नहीं था। वृक्ष क़ब्रिस्तान के स्मारकों की भाँति खड़े थे। लिण्डन के इन पेड़ों के सिवा यहाँ और कुछ नहीं उग रहा था, न कहीं कोई झाड़ी थी, न घास ही। पगडण्डियों की ज़मीन तपे लोहे की भाँति कड़ी और काली पड़ गयी थी और आस-पास की वे जगहें भी, जो पिछले वर्ष के सड़े-गले पत्तों से आच्छादित नहीं थीं, खड़े पानी की तरह काई

की पतली-पतली परत से ढँकी हुई थीं।

साशा घर के कोने के पास से मुड़ा और सड़क की ओरवाले बाड़े की दिशा में बढ़कर लिंडन के एक पेड़ के नीचे रुक गया। वहाँ एक मिनट तक खड़े रहकर उसने पड़ोस के एक घर की धुँधली खिड़कियों को ताका, घुटनों के बल बैठ गया, पत्तों के ढेर को अपने हाथों से खोदकर उसने अलग कर दिया और तब पेड़ की गाँठ-गँठीली जड़ दिखाई दी। जड़ के पास ही दो ईंटें ज़मीन में धँसी हुई थीं। उसने ईंटों के उठाया। उनके नीचे छत के टीन का एक टुकड़ा रखा था। टीन के नीचे लकड़ी का चौकोर तख़्ता था। अन्त में मुझे एक बड़ी-सी खोह दिखाई दी जो जड़ के नीचे तक चली गयी थी।

साशा ने एक दियासलाई जलाई और मोमबत्ती के टुकड़े को रोशन किया। फिर मोमबत्ती के टुकड़े को छेद के भीतर ले जाते हुए बोला : "इधर देख। बस, डरना नहीं..." लेकिन डरा वह ख़ुद था, यह बात प्रत्यक्ष थी। मोमबत्ती उसके हाथ में काँप रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, होंठ बेहूदा ढंग से लटक गये थे, आँखें नम थीं और उसका दूसरा खाली हाथ, बार-बार फिसलकर, पीठ पीछे पहुँच जाता था। मुझे भी उसके डर ने ग्रस लिया। अत्यन्त सावधानी के साथ मैंने जड़ के नीचे देखा जो खोह की मेहराब का काम देती थी। साशा ने अब तीन मोमबत्तियाँ जला ली थीं जिनकी नीली रोशनी से खोह आलोकित थी। वह एक साधारण बालटी जितनी गहरी और उससे अधिक चौड़ी थी। उसकी दीवारों पर रंगीन काँच और चीनी मिट्टी के टुकड़े जड़े हुए थे। बीच में एक चबूतरा-सा था, जिस पर एक छोटा-सा ताबूत रखा था। ताबूत पर टीन की कतरन लिपटी हुई थी और उसका आधा भाग गोटे जैसी किसी चीज़ से ढका हुआ था। इस आच्छादन के भीतर से गौरैयें के भूरे पंजे और चोंच दिखाई पड़ रही थी। ताबूत के पीछे एक छोटी-सी टिक-टिकी थी जिस पर पीतल की एक छोटी-सी सलीब रखी थी और टिक-टिकी के चारों ओर मिठाई की रूपहली और सुनहरी पन्नियों से बने चमचमाते होल्डरों में मोमबत्तियाँ जल रही थीं।

मोमबत्तियों की नुकीली लौ खोह के मुँह की ओर लपलपा रही थी। खोह के भीतरी भाग में बहुरंगी रोशनी की चमचमाहट फैली हुई थी। मिट्टी तथा पिघलते हुए मोम की गन्ध और सड़ाँध के भभके मेरे चेहरे से आकर टकरा रहे थे और खोह के भीतर की खण्डित इन्द्रधनुषी आभा मेरी आँखों में नाच तथा थिरक रही थी। इन सब की वजह से मेरा डर तो विलीन हो गया, लेकिन अचरज की एक बोझिल भावना ने उसका स्थान ले लिया।

"सुन्दर है न?" साशा ने पूछा।

"यह सब किसलिये है?"

साशा ने बताया :

“यह एक समाधि है। लगती है न?”

“पता नहीं।”

“ताबूत में गौरैये का शव है। कौन जाने कभी कोई ऐसा चमत्कार हो कि यह शव एक पवित्र स्मारक का रूप धारण कर ले, क्योंकि उसे किसी क़सूर के बिना अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था...”

“क्या तुझे यह मरा हुआ ही मिला था?”

“नहीं। यह उड़कर सायबान में आ गया था। अपनी टोपी फेंककर मैंने इसे पकड़ लिया और दबोचकर मार डाला।”

“क्यों?”

“यों ही...”

उसने मेरी आँखों में देखा और फिर पूछा :

“बढ़िया है न?”

“नहीं!”

वह खोह के ऊपर झुका, जल्दी से उसने उस पर लकड़ी का तख़्ता ढक दिया, फिर टीन रखा और ईंटों को पहले की तरह ही जमा दिया। इसके बाद वह खड़ा हो गया और घुटनों पर से धूल झाड़ते हुए कड़े स्वर में बोला :

“तुझे पसन्द क्यों नहीं आया?”

“मुझे गौरैये पर दया आ रही है।”

उसने मुझे एकटक देखा और फिर मेरी छाती पर हाथ मारते हुए चिल्ला उठा :

“काठ का उल्लू! तू मुझसे जलता है, बस और कुछ नहीं! इसीलिये कहता है कि तुझे यह पसन्द नहीं आया! शायद तुझे इस बात का भी घमण्ड है कि कनात्नाया सड़क के अपने बग़ीचे में तेरा करतब इससे कहीं अधिक सुन्दर था?”

“और नहीं तो क्या,” मैंने बेहिचक जवाब दिया और मुझे उस कोने की याद हो आयी जो कि मैंने अपने लिए सजाया था।

साशा ने अपना कोट उतारकर ज़मीन पर फेंक दिया। उसने अपनी आस्तीनें चढ़ा लीं, थूककर अपनी हथेलियों को मला और बोला :

“अगर ऐसी बात है तो आ जा मैदान में!”

लड़ने की मेरी इच्छा नहीं थी। मुझ पर तो पहले से ही शक्ति क्षीण करनेवाली उदासी हावी थी और अपने ममेरे भाई के क्रुद्ध चेहरे की ओर देखना भी मुझे भारी मालूम हो रहा था।

वह लपककर मेरी ओर झपटा, छाती पर सिर मारकर उसने मुझे गिरा दिया और मेरे ऊपर चढ़ बैठा।

“जीना चाहता है या मरना?” वह चिल्लाया।

परन्तु मैं उससे ज़्यादा ताकतवर था और मेरा खून पूरी तरह खौल उठा था। अगले ही क्षण वह हाथों को सिर से आगे फैलाए हुए मुँह के बल धरती पर जा गिरा और खरखरी आवाज़ में साँस लेने लगा। भयभीत होकर मैंने उठने की कोशिश की, लेकिन दुलत्तियाँ झाड़कर उसने मुझे अलग कर दिया। इससे मैं और भी आशंकित हो उठा। मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूँ। इसी असमंजस में मैं एक तरफ को हट गया और तब उसने अपना सिर उठाकर कहा :

"अब तू बचकर नहीं जा सकता। जब तक मालिक यहाँ नहीं आता, मैं ऐसे ही पड़ा रहूँगा, मालिक खोजता हुआ जब यहाँ आयेगा मैं तेरी शिकायत करूँगा और वह तुझे निकाल बाहर करेगा!"

उसने कोसा और धमकियाँ दीं। उसकी बातों से मुझे बहुत क्रोध आया और मैं खोह की ओर लपका। ईंटों को मैंने उखाड़ डाला, ताबूत और गौरैये को उठाकर दूर, बाड़े के उस पार, फेंक दिया और भीतर का सारा ताम-झाम खोद-खोदकर उसे पाँव से रौंद डाला।

"ले, यह ले! और देख, यह गयी तेरी समाधि!"

मेरे इस क्रोध का उस पर अजीब प्रभाव पड़ा : वह उठकर बैठ गया, अपना मुँह कुछ खोले और भौंहें सिकोड़े, मेरी ओर निर्वाक ताकता रहा। जब मैं तोड़-फोड़ कर चुका तो वह इतमीनान से उठा, अपने कपड़े झाड़कर कोट पहना और शान्त स्वर में द्वेषपूर्वक बोला :

"अब देखियो क्या होता है। ज़रा ठहर तो! मैंने यह ख़ास तौर से तेरे लिए ही बनाया था। यह एक टोना था—समझा!"

मेरी तो जैसे जान ही निकल गयी। उसके शब्दों के आघात ने मेरे घुटने ढीले कर दिए। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरे शरीर का हर अंश ठण्डा पड़ गया हो। मुड़कर एक बार भी देखे बिना वह वहाँ से चल दिया। उसकी शान्ति ने मुझे पूर्णतया पस्त कर दिया था।

मैंने निश्चय किया कि अगले ही दिन इस नगर, मालिक, साशा और उसके जादू-टोने, इस समूचे बेमानी और भयावह जीवन को छोड़कर यहाँ से चल दूँगा।

अगली सुबह को नयी बावर्चिन मुझे जगाते समय चिल्ला उठी :

"हे भगवान, तेरे तोबड़े को यह क्या हुआ है?..."

मुझे ऐसा लगा कि मेरा हृदय जवाब दे रहा है। हो न हो, टोने ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है।

लेकिन बावर्चिन पर हँसी का कुछ ऐसा दौरा सवार हुआ और वह इस तरह खिलखिलाकर हँसी कि मैं ख़ुद भी हँसे बिना न रह सका। मैंने उसके आयीने में झाँककर देखा। मेरे चेहरे पर काजल की एक मोटी परत चढ़ी थी।

"यह साशा की करतूत है न?" मैंने पूछा।

"और नहीं तो क्या मैंने किया है?" बावर्चिन ने हँसते हुए कहा।

मैंने जूतों पर पालिश करना शुरू किया। जैसे ही मैंने एक जूते में अपना हाथ डाला कि मेरे हाथ में एक पिन गड़ गयी।

"यही है साशा के जादू-टोने का असर!" मैंने मन ही मन कहा।

पिनें और सुइयाँ सभी जूतों में छिपी थीं और इस चतुराई से कि मेरे हाथों में गड़े बिना न रहें। तब मैंने ठण्डे पानी से भरी डोलची उठायी और उसे ओझे के सिर पर उड़ेल दिया जो अभी तक सो रहा था, या नींद का बहाना किये पड़ा था।

लेकिन मेरा मन अभी भी भारी था। ताबूत, गौरैया, उसके भूरे और सिकुड़े हुए पंजे, उसकी छोटी-सी मोमियाई चोंच और उसके चारों ओर की चमचमाहट जो इन्द्रधनुषी आभा की समानता का निष्फल प्रयास कर रही थी... वह सब मेरे दिमाग में इतना छा गया था कि उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल था। ताबूत ने मेरी कल्पना में भीमाकार रूप धारण कर लिया, पक्षी के पंजे बढ़ने और आकाश की ओर अधिकाधिक ऊँचे उठने लगे, एकदम सजीव और स्पन्दनशील!

मैंने उसी साँझ सब कुछ छोड़-छाड़कर भागने की योजना बनायी। लेकिन दोपहर के भोजन से ठीक पहले जब मैं स्टोव पर शोरबा गर्म कर रहा था, मैं सपने देखने में रम गया और शोरबा उबलने लगा। स्टोव बुझाने की उतावली में मैंने उस पर रखा बरतन अपने हाथों पर गिरा लिया। नतीजा यह हुआ कि मुझे अस्पताल भेज दिया गया।

अस्पताल का वह दुःस्वप्न मुझे याद है : थरथराते, पीले शून्य में सिर पर कफन-से लपेटे भूरी और सफ़ेद आकृतियों के दल प्रकट होते, कराहते और भनभनाते, एक लम्बा आदमी, जिसकी भौंहें मूँछों के समान थीं, बैसाखी लिये, अपनी काली लम्बी दाढ़ी को बराबर नचाता और चिल्लाता रहता :

"महापूजनीय धर्मपिता को खबर करूँगा!"

अस्पताल के पलंग मुझे ताबूतों की याद दिलाते थे। छत की ओर नाक ताने उन पर लेटे हुए मरीज़ मुझे मृत गौरैयों की भाँति मालूम होते। पीली दीवारें डोलने लगतीं, छत में बादवान की भाँति लहरें उठतीं, फ़र्श उभारा लेता और पलंग आगे-पीछे झूमने लगते। प्रत्येक चीज़ भयानक और बिना भरोसे की थी। खिड़कियों से बाहर पेड़ों की नंगी-बूची टहनियाँ संटियों जैसी नज़र आती थीं और कोई उन्हें फटकारता रहता था।

दरवाज़े के पास एक दुबली-पतली, लाल सिरवाली, लाश-सी नाचती। छोटे-छोटे हाथों से कफ़न को खींचकर वह अपने चारों ओर समेटती और चीखती :

"मुझे पागलों की ज़रूरत नहीं!"

और बैसाखीवाला आदमी चिल्लाता :

"महापूजनीय धर्मपिता को..."

नानी-नाना और दूसरे सभी लोगों से मैंने हमेशा यही सुना था कि अस्पताल में लोगों को मारा जाता है। मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि मैं भी अब दो-चार दिन का ही मेहमान हूँ। चश्मा लगाये एक स्त्री जो कफ़न-सा लपेटे थी, मेरे निकट आयी और बिस्तर के सिरहाने लटकी स्लेट पर उसने खड़िया से कुछ लिखा। खड़िया के कुछ कण चुरमुराकर मेरे बालों में आ गिरे।

"तुम्हारा क्या नाम है?" उसने पूछा।

"कोई नाम नहीं।"

"तुम्हारा नाम तो है न?"

"नहीं।"

"बकवास न करो, नहीं तो मार पड़ेगी।"

मार पड़ेगी, इस बात का तो मुझे पहले से ही विश्वास था। और इसीलिये तो मैंने उसे कोई जवाब नहीं दिया था। बिल्ली की भाँति फूँ-फूँकर बिल्ली की ही भाँति वह चोर पाँवों से विलीन हो गयी।

दो लैम्प जला दिये गये, उनकी पीली बत्तियाँ किसी की खोई हुई दो आँखों की भाँति छत से लटक रही थीं—झूलती और टिमटिमाती मानो दोनों एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न कर रही हों।

"आओ, ताश की एक बाज़ी खेलें," किसी ने कोने में से कहा।

"एक हाथ से कैसे खेलूँ?" दूसरे ने जवाब दिया।

"अच्छा, तो काट दिया एक हाथ!"

मेरे मन में यह बात बैठते देर नहीं लगी कि ताश खेलने के कारण ही उसका हाथ काटा गया है और मैं सोचने लगा कि मारने से पहले न जाने मेरी क्या दुर्गति की जायेगी।

मेरे हाथों में जलन हो रही थी और वे बुरी तरह दुख रहे थे जैसे कोई मेरी हड्डियों को नोच रहा हो। भय और दर्द से मैं मन ही मन कराहा और अपनी आँखें बन्द कर लीं जिससे मेरे आँसू किसी को न दिखाई दें, लेकिन वे उमड़ आये और मेरी कनपटियों पर से बहकर कानों तक पहुँचने लगे।

रात घिर आयी। मरीज़ अपने-अपने बिस्तरों पर पहुँच गये, भूरे कम्बलों के नीचे उन्होंने अपने आप को छिपा लिया और निस्तब्धता प्रति क्षण गहरी होती गयी। केवल एक आवाज़ थी जो कोने में से आकर इस निस्तब्धता को भंग करती थी :

"कोई नतीज़ा नहीं निकलेगा। दोनों ही पशु हैं—पुरुष भी और स्त्री भी..."

मैं नानी को पत्र लिखना चाहता था कि अभी, जब तक मैं जिन्दा हूँ, मुझे

चोरी-छिपे यहाँ से ले जाये। लेकिन मैं लिखता कैसे : न तो मेरे हाथ काम करते थे और न ही लिखने के लिए कोई चीज़ थी। मैंने तय किया कि यहाँ से भाग चलना चाहिए।

रात अधिकाधिक बेजान होती जा रही थी मानो उसने कभी विदा न होने का निश्चय कर लिया हो। दबे पाँव फ़र्श पर उतरकर मैं दरवाज़े की ओर चला। दरवाज़े का एक भाग खुला था और वहाँ, गलियारे में, लैम्प के नीचे रखी टेकवाली बेंच पर, तम्बाकू के धुएँ से घिरे साही जैसे एक सिर पर मेरी नज़र पड़ी। बाल उसके सफ़ेद थे और उसकी धँसी हुई आँखें एकटक मुझ पर जमी थीं। मैं छिप नहीं पाया।

"यह कौन मटरगश्ती कर रहा है? यहाँ आ!"

आवाज़ धीमी थी, धमकी का उसमें ज़रा भी पुट नहीं था। मैं उसके पास गया और छोटे-छोटे बालों से भरे गोल चेहरे पर नज़र डाली। सिर के सफ़ेद बाल लम्बे थे और रुपहले आलोक की भाँति चारों ओर फैले हुए थे। उसकी पेटी में तालियों का एक गुच्छा लटक रहा था। उसके बाल और दाढ़ी कुछ और बड़े होते तो वह सन्त पीटर के समान दिखाई देता।

"अच्छा, तुम वह जले हाथोंवाले हो? रात के समय यहाँ क्यों घूम रहे हो? यह बात यहाँ के उसूल-क़ायदों के खिलाफ़ है।"

उसने धुएँ का एक बादल मेरे मुँह की ओर छोड़ा, अपनी गर्म बाँह मेरे गले में डाली और अपनी ओर खींचते हुए बोला :

"डर लगता है?"

"हाँ।"

"शुरू-शुरू में यहाँ सभी को डर लगता है। लेकिन डरने की कोई बात नहीं है, मैं जो पास में हूँ। मैं किसी का बुरा नहीं होने दूँगा... तम्बाकू पिओगे? अच्छा, ऐसा नहीं करो। अभी तुम छोटे हो, दो बरस और ठहर जाओ... तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं? नहीं हैं माँ-बाप! उनकी तुम्हें ज़रूरत भी क्या है? उनके बिना भी जिया जा सकता है। बस डरना नहीं चाहिए! समझे?"

उसके शब्द मुझे अच्छे लगे। इतने अच्छे कि कह नहीं सकता। बहुत दिनों से किसी ऐसे आदमी से मेरी भेंट नहीं हुई थी जो सीधे-सादे, मित्रतापूर्ण और समझ में आनेवाले शब्दों में बात करता हो।

वह मुझे वापस मेरे पलंग पर ले गया।

"कुछ देर मेरे पास बैठो!" मैंने अनुरोध किया।

"ज़रूर बैठूँगा," उसने उत्तर दिया।

"तुम कौन हो?"

"मैं? सिपाही हूँ, असली सिपाही, काकेशियावाला। मोर्चे पर भी जा चुका

हूँ—इसके बिना तो काम ही कैसे चल सकता था? सिपाही तो लड़ाइयों के लिए ही जीता है। मैं हंगेरियाइयों से लड़ा हूँ। चेर्केसों और पोलों से लड़ा हूँ। युद्ध, मेरे भाई, एक बहुत ही बड़ी शैतानी चीज़ है!"

एक क्षण के लिए मैंने अपनी आँखें बन्द कर ली और जब मैंने उन्हें खोला तो उसी जगह पर, जहाँ वह सिपाही बैठा था, मुझे काली पोशाक में अपनी नानी दिखाई दी। सिपाही अब मेरी नानी के बग़ल में खड़ा था। वह कह रहा था :

"सो कोई जीवित नहीं बचा, सब मर गये। क्यों, यही न?"

वार्ड में सूरज खिलवाड़ कर रहा था—हर चीज़ को सुनहरे रंग में रंगकर छिप जाता और फिर सभी को चकाचौंध कर देता मानो कोई बालक शरारत कर रहा हो।

नानी ने झुककर पूछा :

"यह क्या हुआ, मेरे लोटन कबूतर? तुम्हें लुंज बना दिया? मैंने उस लाल सिरवाले शैतान से कहा था कि..."

"एक मिनट ठहरो। क़ानून-क़ायदे के अनुसार मैं अभी सब ठीक किये देता हूँ," सिपाही ने जाते हुए कहा।

"सिपाही तो हमारे बलाखना का रहनेवाला निकला है..." अपने कपोलों से आँसू पोंछते हुए नानी ने कहा।

मुझे अभी भी ऐसा मालूम हो रहा था मानो मैं सपना देख रहा हूँ और इसलिये चुप रहा। डाक्टर आया, उसने मेरे हाथों की मरहमपट्टी की और इसके बाद नानी और मैं एक बग्घी में शहर की सड़कों पर जा रहे थे।

"तुम्हारे नाना का दिमाग़ तो एकदम सफ़ाचट हो गया है," नानी ने बताया, "इतने कंजूस हो गये हैं कि तुम्हारी आँतों में से भी अपनी चीज़ निकाल लें। हाल में उनके नये दोस्त समूर कमानेवाले ख़्लीस्त ने तुम्हारे नाना की भजन संहिता में से सौ रूबल का एक नोट तिड़ी कर लिया। इसके बाद वह कुहराम मचा कि कुछ न पूछो, अरे बाप रे!"

सूरज खूब चमक रहा था और बादल आकाश में सफ़ेद पक्षियों की भाँति तैर रहे थे। हम जमी हुई वोल्गा पर बिछे तख़्तों का रास्ता पार कर रहे थे, तख़्तों के नीचे बर्फ़ भनभनाकर उभरती थी, पानी छपछपाता था, लाल गिरजे के गुम्बदों की सुनहरी सलीबें चमचमा रही थीं। रास्ते में हमें बड़े मुँह की स्त्री मिली जो हाथों में मुलायम विलो की टहनियों का गट्ठा लिये आ रही थी, वसन्त आ रहा था, शीघ्र ही ईस्टर का उत्सवकाल शुरू हो जायेगा!

मेरा हृदय लवा पक्षी की भाँति फड़क उठा।

"नानी, बहुत प्यार करता हूँ मैं तुम्हें!"

नानी को इससे ज़रा भी अचरज नहीं हुआ।

"तुम मेरे नाती जो हो," नानी ने शान्त भाव से कहा। "बड़बोली बने बिना ही कह सकती हूँ कि माता मरियम की मेहरबानी से पराये भी मुझे प्यार करते हैं।"

फिर मुस्कराते हुए बोली :

"शीघ्र ही वह उत्सव मनायेगी—बेटे का पुनर्जन्म होगा! लेकिन मेरी बेटी वार्या..."

और वह चुप हो गयी...

2

नाना से आँगन में ही मेरी मुलाक़ात हो गयी। घुटनों के बल बैठे वह कुल्हाड़ी से एक लकड़ी को नोकीला बना रहे थे। उन्होंने कुल्हाड़ी ऐसे ऊपर उठाई, मानो मेरे सिर पर फेंक मारना चाहते हों। फिर अपनी टोपी उतारते हुए व्यंग्यपूर्वक बोले :

"आ गये नवाब साहब, हमारे अत्यन्त माननीय महामहिम! आइये, स्वागत है आपका! नौकरी को भी धता बता आये? अच्छा है, अब करना जो मन में आये। बस, मेरे सिर न पड़ना! अरे तुम लोग..."

"हमें मालूम है, मालूम है," नानी ने हाथ झटककर नाना का मुँह बन्द कर दिया। कमरे में जाकर समोवार गर्म करते हुए नानी बोली :

"तुम्हारे नाना इस बार सब कुछ गँवा बैठे। उन्होंने अपनी सारी जमा पूँजी अपने धर्मपुत्र निकोलाई को सूद पर दी और शायद रसीद तक न ली। पता नहीं कैसे क्या हुआ, लेकिन नाना एकदम सफ़ाचट रह गये। सारी पूँजी ग़ायब हो गयी। और यह सब इसलिये हुआ कि हमने कभी ग़रीबों की मदद नहीं की, दीन-दुखियों के प्रति कभी दया भाव नहीं दिखाया। सो भगवान ने सोचा : काशीरिन परिवार के साथ मैं ही क्यों भलमनसाहत बरतूँ? बस, यही सोचकर सभी कुछ ले लिया..."

उसने मुड़कर देखा और कहा :

"भगवान का हृदय कुछ पसीजे, बूढ़े को वह इतना कष्ट न दे, इसका मैं थोड़ा-बहुत उपाय कर रही हूँ। रात को मैं जाती हूँ और अपनी मेहनत की कमाई में से चुपचाप कुछ पैसे बाँट देती हूँ। चाहो तो आज तुम भी मेरे साथ चलो। मेरे पास कुछ पैसे हैं..."

नाना ने भुनभुनाते हुए भीतर पाँव रखा।

"क्या भकोसने की फ़िक्र में हो?"

"तुम्हारी कोई चीज़ नहीं हड़प रहे हैं," नानी ने कहा, "चाहो तो तुम भी हमारे साथ खा सकते हो। सबको पूरा पड़ जायेगा।"

वह मेज़ पर बैठ गये और धीमी आवाज़ में बोले :

"एक प्याला भर दो..."

कमरे में प्रत्येक चीज़ जैसी की तैसी थी, सिवा इसके कि माँ वाले कोने में उदास सूनापन छाया था और नाना के बिस्तर के पासवाली दीवार पर काग़ज़ का एक टुकड़ा लटक रहा था जिस पर छापे के बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिखा हुआ था :

"यीसू, मेरी आत्मा का उद्धार करना और जीवन की हर घड़ी हर पल में तुम्हारा पावन नाम मुझे याद रहे।"

"यह किसने लिखा है?"

नाना ने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ रुककर नानी ने मुस्कराते हुए कहा :

"इस काग़ज़ का मूल्य सौ रूबल है।"

"तुम्हें मतलब!" नाना ने चिल्लाकर कहा, "मेरा धन है, मैं चाहे गैरों में लुटाऊँ!"

"लुटाने को अब रहा ही क्या है, और जब था तब एक-एक पाई दाँत से पकड़ते थे," नानी ने शान्त भाव से कहा।

"चुप रहो!" नाना चीख़ उठे।

यहाँ हर चीज़ वैसी ही थी, ठीक पहले जैसी।

कोने में एक ट्रंक पर कपड़े रखने की टोकरी रखी थी। उसमें कोल्या सो रहा था। वह जाग उठा। पलकों में छिपी उसकी आँखों की नीली चमक मुश्किल से ही दिखाई देती थी। वह अब और भी उदास, मुरझाया-मुरझाया, एक छाया मात्र रह गया था। उसने मुझे पहचाना नहीं और चुपचाप मुँह मोड़कर आँखें बन्द कर लीं।

बाहर गली में दुःखद समाचार सुनने को मिले। व्याख़िर मर चुका था—पावन सप्ताह के दौरान उसे चेचक माता उठा ले गयी। हाबी नगर चला गया था, जबकि याज़ की टाँगों को लक़वा मार गया था और वह घर से बाहर तक नहीं निकल पाता था। यह सब बताते हुए काली आँखों वाले कोस्त्रोमा ने झुँझलाकर कहा :

"देखते-देखते सब उठ गये!"

"सब कहाँ, एक व्याख़िर ही तो मरा है?"

"एक ही बात है। हमारी गली में जो नहीं रहा, उसे एक तरह से मरा हुआ ही समझो। किसी से दोस्ती करो, जान-पहचान बढ़ाओ और तभी उसे कहीं काम पर भेज देते हैं या वह मर जाता है। तुम्हारे अहाते में, चेस्नोकोव के मकान में कुछ नये लोग आये हैं—येव्सेयेन्को परिवार। उसमें एक लड़का है। न्यूश्का नाम है उसका। लड़का बिल्कुल ठीक और खूब चुस्त है। उसके अलावा दो लड़कियाँ हैं। एक छोटी है और दूसरी लँगड़ी, बैसाखी लेकर चलती है। देखने में बड़ी सुन्दर है।"

एक मिनट तक कुछ सोचने के बाद उसने इतना और जोड़ दिया :

"मैं और चूर्का उससे प्रेम करते हैं और हम हर घड़ी लड़ते-झगड़ते हैं।"

"लड़की से?"

"लड़की से नहीं, एक-दूसरे से। लड़की से तो बहुत कम ही झगड़ते हैं।"

यह तो मैं जानता था कि बड़े लड़के और यहाँ तक कि बड़े लोग भी प्रेम में फँस जाते हैं और इसका भद्दा मतलब भी जानता था। मुझे परेशानी और कोस्त्रोमा के लिए दुःख हुआ, उसके गोल-मटोल शरीर और गुस्से से भरी काली आँखों की ओर देखते हुए झेंप महसूस हुई।

उसी शाम को मैंने उस लँगड़ी को देखा। सीढ़ियों से आँगन में उतरते समय उसकी बैशाखी नीचे गिर पड़ी और वह, मोम जैसी उँगलियों से जंगले को थामे वहीं खड़ी रह गयी—असहाय और क्षीणकाय। मैंने बैसाखी को उठाना चाहा, लेकिन मेरे हाथों में बँधी पट्टी के कारण यह मुश्किल था। हताश और झुँझलाहट से भरा मैं काफ़ी देर तक बैसाखी को उठाने की कोशिश करता रहा और मुझसे कुछ ऊँचाई पर खड़ी हुई वह धीरे-धीरे हँसती रही।

"तेरे हाथों को क्या हुआ?" उसने पूछा।

"जल गये।"

"और मैं लँगड़ी हूँ। तू हमारे इसी अहाते में रहता है? तुझे अस्पताल में बहुत दिनों तक रहना पड़ा? मुझे तो बहुत दिन लगे थे!"

उसने उसाँस भरकर इतना और जोड़ दिया :

"बहुत ही दिन लगे!"

वह पुराना, मगर सफ़ेद साफ़ धुला फ्राक पहने थी, जिस पर घोड़े के नीले नाल छपे हुए थे। ढंग से सँवारे गये बालों की एक मोटी और छोटी-सी चोटी उसके वक्ष पर पड़ी हुई थी। उसकी आँखें बड़ी और गम्भीर थीं जिनकी शान्त गहराइयों में नीली अग्नि दमकती थी और उसके क्षीण तीखी नाकवाले चेहरे को आलोकित करती थी। उसकी मुस्कराहट भी प्यारी थी। लेकिन मुझे वह अच्छी नहीं लगी। रोगग्रस्त-सा समूचा शरीर यह कहता प्रतीत होता था :

"कृपया मुझे न छूना!"

यह कैसे हुआ कि मेरे साथी इसके प्रेम में पड़ गये?

"मैं बहुत दिनों से बीमार हूँ," खुशी से, यहाँ तक कि आवाज़ में कुछ गर्व का पुट लाते हुए उसने मुझे बताया। "हमारी पड़ोसिन ने मुझ पर टोना कर दिया था। लड़ाई तो उसकी हुई मेरी माँ से और इसका बदला लेने के लिए उसने टोना कर दिया मुझ पर... अस्पताल में डर लगा?"

"हाँ..."

उसकी उपस्थिति में मुझे बड़ा अटपटा लग रहा था और इसलिये मैं कमरे में चला आया।

आधी रात के क़रीब नानी ने धीरे से मुझे जगाया।

"चलोगे नहीं। दूसरों का भला करोगे तो तुम्हारे हाथ जल्दी ठीक हो जायेंगे..."

उसने मेरी बाँह पकड़ी और मुझे पकड़े हुए अँधेरे में इस तरह से ले चली मानो मैं अन्धा हूँ। रात काली और नम थी, हवा तेज गति से बहनेवाली नदी की भाँति थमने का नाम नहीं लेती थी और रेत इतनी ठण्डी थी कि पाँव सुन्न हुए जाते थे। नगरवासियों के घरों की अँधेरी खिड़कियों के पास नानी सावधानी से जाती, तीन बार सलीब का चिह्न बनाती, खिड़की की ओटक पर पाँच कोपेक और तीन बिस्कुट रखकर एक बार फिर सलीब का चिह्न बनाती और तारकहीन आकाश की ओर आँखें उठाये फुसफुसाकर कहती :

"स्वर्ग की पवित्र रानी, सब पर दया करना—हम सभी तो पापी हैं तुम्हारी नज़रों में, देवी माँ!"

अपने घर से हम जितनी ही दूर होते जा रहे थे, अँधेरा उतना ही घना होता जा रहा था, सन्नाटा भी बढ़ रहा था। ऐसा मालूम होता था मानो रात के आकाश की अतल गहराइयों ने चाँद और तारों को सदा के लिए निगल लिया हो। एक कुत्ता भागकर कहीं से आया और मुँह बाये हमारे सामने खड़ा हो गया। अँधेरे में उसकी आँखें चमक रही थीं। भय के मारे मैं नानी से चिपक गया।

"डरो नहीं," नानी ने कहा, "कुत्ता ही तो है। भूत-प्रेत इस समय बाहर नहीं निकलते, मुर्ग़े बोल चुके हैं।"

नानी ने कुत्ते को पुचकारा और उसका सिर थपथपाते हुए कहा :

"देख कुत्ते, मेरे नाती को डरा नहीं, समझा?"

कुत्ते ने मेरी टाँगों से अपना बदन रगड़ा और हम तीनों आगे बढ़े। नानी बाहर खिड़कियों के पास गयी और उनकी ओटक पर अपना "गुप्त दान" रख लौट आयी। आकाश उजला हो चला। सलेटी घर अंधकार से उभर आये, नापोल्नाया गिरजे की बुर्जी शक्कर की भाँति सफ़ेद चमकने लगी, क़ब्रिस्तान की ईंटोंवाली चारदीवारी में अधिक दरारें दिखाई देने लगीं।

"तुम्हारी यह बूढ़ी नानी तो थक गयी," वह बोली, "अब घर चलना चाहिए। औरतें जब सबेरे उठेंगी तो देखेंगी कि माता मरियम ने उनके बच्चों के लिए कुछ भेज दिया है। जब घर में पूरा नहीं पड़ता तो थोड़ा सहारा भी बहुत मालूम होता है। तुमसे क्या कहूँ, आल्योशा, कि लोग कितनी ग़रीबी में जीवन बिताते हैं और कोई ऐसा नहीं है जिसे उनका कुछ ध्यान हो!

"अमीर आदमी नहीं करता चिन्ता
भगवान की,
क़यामत के दिन की और भगवान के
न्याय की।

सोने की माया में वह है कुछ ऐसा फँसा,
गरीबों के प्रति दिल में न उपजे दया।
मरने पर जायेगा सीधा नरक,
सोने की माया में होगा ग़रक़!

"दुःख की बात तो यही है! हम एक-दूसरे का ध्यान रखते हुए जीवन बितायें तो भगवान भी हम सबका ध्यान रखें। मुझे इस बात की खुशी है कि तुम अब फिर मेरे पास आ गये..."

मैं अस्पष्ट-सा यह अनुभव करते हुए मानो मैंने किसी ऐसी चीज़ का सम्पर्क प्राप्त किया हो जिसे कभी नहीं भूला जा सकता, शान्त भाव से खुश था। मेरे बराबर में लाल रंग की लोमड़ी जैसी थूथनी और सदय तथा क्षमा-याचना-सी करती आँखोंवाला कुत्ता चल रहा था।

"क्या यह अब हमारे साथ ही रहेगा?"

"क्यों नहीं, अगर इस का मन करता है तो हमारे साथ ही रहे। यह देखो, मैं इसे बिस्कुट दूँगी, मेरे पास दो बच रहे हैं। आओ, कुछ देर बेंच पर बैठकर सुस्ता लें। मुझे थकान मालूम हो रही है..."

हम एक फाटक के पास रखी हुई बेंच पर बैठ गये। कुत्ता हमारे पाँव के पास पसरकर सूखे बिस्कुट को चिचोड़ने लगा। नानी बताने लगी :

"पास ही में एक यहूदिन रहती है। उसके नौ बच्चे हैं, ऊपर-तले के। 'कहो, कैसे चल रहा है', एक दिन मैंने उससे पूछा। उसने कहा, 'चलना क्या है, बस भगवान का ही भरोसा है।'"

नानी के गरम बदन से चिपककर मेरी आँख लग गयी थी।

जीवन एक बार फिर तेज गति से बह चला—छलछलाता और हिलोरें लेता हुआ। प्रत्येक नये दिन की प्रशस्त धारा अनगिनत घटनाओं की छाप मेरे हृदय पर छोड़ती, जो कभी मुझे विस्मय-विमुग्ध या चिन्तित करती, ठेस पहुँचाती या सोचने को विवश करती।

लँगड़ी लड़की से यथासम्भव बार-बार मिलने, उससे बातें करने, या बेंच पर उसके साथ केवल चुपचाप बैठे रहने की इच्छा मेरे हृदय में भी शीघ्र ही प्रबल हो उठी। उसके संग चुपचाप बैठने में भी सुख मिलता। वह नन्हे पक्षी की भाँति साफ़-सुथरी रहती और दोन प्रदेश के कज़्ज़ाकों के जीवन का सुन्दर वर्णन करती। अपने चाचा के साथ, जो घी-मक्खन बनाने के किसी कारख़ाने में मिस्तरी थे, एक लम्बे अर्से तक वह दोन प्रदेश में रह चुकी थी। इसके बाद उसके पिता, जो फ़िटर का काम करते थे, नीज्नी नोवूगोरोद चले आये।

"मेरे एक चाचा और हैं जो ज़ार के यहाँ नौकरी करते हैं।"

छुट्टी की शाम को गली के सब लोग अपने घरों से बाहर आ जाते। लड़के-लड़कियाँ क़ब्रिस्तान की ओर निकल जाते जहाँ वे घेरे बनाकर गाते-नाचते, मर्द लोग शराबखानों में पहुँचते और गली में केवल स्त्रियाँ तथा बच्चे ही रह जाते। स्त्रियाँ बेंचों या घरों के पास रेत पर ही बैठ जातीं और लड़ाई-झगड़ों तथा इधर-उधर की अपनी बातों से आकाश सिर पर उठा लेतीं। बच्चे गेंद और गोरोद्की* के खेल खेलते और उनकी माताएँ खेल में दक्षता दिखानेवालों की प्रशंसा करतीं या औघड़पन का परिचय देनेवालों का मज़ाक उड़ातीं। इतना शोर होता और वह मज़ा आता कि भुलाये न भूलता। बड़ों की उपस्थिति और उनकी दिलचस्पी से हम बच्चे और भी जोश में आ जाते और अपनी पूरी चुस्ती-फुर्ती दिखाते हुए डटकर होड़ करते। लेकिन, खेल में हम चाहे कितना भी क्यों न डूबे हों, कोस्त्रोमा, चूर्का और मैं लँगड़ी लड़की के पास जाने और अपनी हिम्मत का बख़ान करने का समय निकाल ही लेते।

"तुमने देखा, ल्युद्मीला, कैसे एक ही चोट में मैंने सभी निशानों को गिरा दिया?"

वह कई बार अपना सिर हिलाकर मधुर ढंग से मुस्करा देती।

पहले हमारा समूचा दल हमेशा खेल में एक ही ओर रहने की कोशिश करता था, लेकिन अब मैंने देखा कि चूर्का और कोस्त्रोमा विरोधी पक्षों में रहना पसन्द करते हैं, और एक-दूसरे के ख़िलाफ़ अपनी समूची शक्ति तथा चतुराई लगा देते हैं, यहाँ तक कि मार-पीट और रोने-धोने की नौबत आ जाती है। एक दिन दोनों को अलग करने के लिए बड़ों को हस्तक्षेप करना पड़ा और उन पर पानी उंड़ेला गया मानो आदमी न होकर वे कुत्ते हों!

ल्युद्मीला उस समय बेंच पर बैठी हुई थी। अपना सही-सलामत पाँव वह धरती पर पटक रही थी। जब लड़नेवाले गुत्थम-गुत्था होकर लुढ़कते हुए उसके निकट आते तो वह उन्हें अपनी बैसाखी से दूर धकेल देती और भय से चीख़कर कहती :

"बन्द करो यह लड़ाई!"

उसका चेहरा पीला पड़ जाता, मानो बेजान हो। आँखें धुँधली और फटी-फटी-सी हो जातीं। ऐसा मालूम होता जैसे उसे दौरा आनेवाला है।

एक अन्य बार गोरोद्की के खेल में चूर्का से बुरी तरह हार खाने के बाद कोस्त्रोमा परचूनी की एक दुकान में जई की पेटी के पीछे मुँह छिपाकर बैठ गया और सुबक-सुबककर मूक ढंग से रोने लगा। भयानक दृश्य था। उसने अपनी बत्तीसी इतने

---

* रूस में खेला जाने वाला एक खेल जिसमें एक चौकोर घेरे में खड़े रखे लकड़ी के बेलनदार टुकड़ों को दूर से डण्डा मारकर घेरे में से बाहर निकाला जाता है।—सं.

ज़ोरों से भींच ली थी कि उसके जबड़े खूब उभर आये और उसका क्षीण चेहरा मानो पथरा गया। उसकी उदासी भरी काली आँखों से बड़े-बड़े आँसू गिर रहे थे। मेरे दम-दिलासा देने पर उसने आँसुओं के कारण रुँधे कण्ठ से फुसफुसाकर कहा :

"देख लेना... मैं उसके सिर पर ईंट दे मारूँगा... तब उसे पता चलेगा!"

चूर्का बहुत उद्धत हो गया। गली के बीचों-बीच इस तरह चलता मानो स्वयंवर में जा रहा हो—सिर पर तिरछी टोपी रखे, जेबों में हाथ डाले। वह दाँतों के बीच से थूक की पिचकारी छोड़ना सीख गया और यक़ीन दिलाता :

"मैं जल्दी ही सिगरेट पीना सीख लूँगा। दो बार तो पी भी चुका हूँ, लेकिन मतली आती है।"

मुझे यह सब अच्छा न लगता। मैं देख रहा था कि मेरा साथी मुझसे दूर होता जा रहा है और मुझे प्रतीत होता कि इसके लिए ल्युद्‌मीला ही ज़िम्मेदार है।

एक शाम को, जब मैं अपने बटोरे हुए चिथड़ों, हड्डियों और दूसरे कबाड़ की छानबीन कर रहा था ल्युद्‌मीला अपनी बैसाखी पर झूलते तथा अपना दाहिना हाथ हिलाते हुए मेरे पास आयी।

"नमस्ते!" तीन बार उसने अपने सिर को हल्का-सा झटका देते हुए उसने कहा। "कोस्त्रोमा तेरे साथ गया था?"

"हाँ।"

"और चूर्का?"

"चूर्का अब हमारे साथ नहीं खेलता। और यह सब तेरा ही दोष है। वे दोनों तुझसे प्रेम करते हैं और इसलिये आपस में लड़ते हैं..."

उसका चेहरा लाल हो उठा, किन्तु व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोली :

"करो बात! मेरा भला क्या दोष?"

"तुमने उन्हें अपने से प्रेम क्यों करने दिया?"

"मैं क्या उनसे कहने गयी थी कि तुम मुझसे प्रेम करो?" उसने गुस्से में जवाब दिया और यह कहते हुए चली गयी। "यह सब बकवास है! मैं उनसे बड़ी हूँ। मैं चौदह साल की हूँ। अपने से बड़ी लड़कियों से भी क्या कोई प्रेम करता है?"

"तुझे बड़ा पता है!" उसके हृदय को आहत करने के लक्ष्य से मैंने चिल्लाकर कहा। "दुकानदार ख़्लीस्त की बहन इतनी बूढ़ी हो गयी फिर भी ढेर सारे लड़के उससे छेड़खानी करते रहते हैं!"

बैसाखी को रेत में गहरी गड़ाते हुए ल्युद्‌मीला मेरे पास लौटी।

"तू खुद कुछ नहीं जानता," उसने आँसुओं से भीगी आवाज़ में ज़ल्दी-ज़ल्दी कहा। उसकी सुन्दर आँखों में बिजली कौंध रही थी। "दुकानदार की बहन तो एक आवारा औरत है, लेकिन मैं—तू क्या मुझे भी वैसी ही समझता है? मैं अभी छोटी हूँ।

किसी को भी अभी मुझे छूना या चिकोटी नहीं काटना चाहिए। अगर तूने 'कामचदाल्का' उपन्यास का दूसरा भाग पढ़ा होता तो तू इस तरह की बातें न करता!"

वह सुबकियाँ लेती हुई चली गयी। मुझे उसपर तरस आया। उसके शब्दों में सचमुच कुछ सच्चाई थी जिससे मैं परिचित नहीं था। मेरे साथी क्यों उसे चिकोटी काटते हैं? तिसपर यह भी कहते हैं कि उससे प्रेम करते हैं...

अगले दिन ल्युद्मीला से अपनी ग़लती माफ़ कराने के लिए मैंने दो कोपेक की उसकी मनपसन्द मीठी गोलियाँ ख़रीदीं।

"लोगी?"

"जा यहाँ से! मैं तुझसे दोस्ती नहीं रखना चाहती," उसने जबर्दस्ती गुस्से में भरकर कहा।

लेकिन उसी क्षण उसने यह कहते हुए गोलियाँ ले लीं :

"इन्हें कागज में तो लपेट लिया होता। ज़रा अपने हाथ तो देख, कितने गन्दे हैं।"

"मैंने इन्हें बहुत धोया, लेकिन ये साफ़ नहीं हुए।"

उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसका हाथ सूखा और गर्म था। उसने मेरा हाथ उलट-पलटकर देखा।

"कितना ख़राब कर लिया तूने हाथ..."

"तेरी उँगलियाँ भी तो छिंदी हुई हैं..."

"यह सुई की मेहरबानी है। मैं बहुत सीती हूँ..."

कुछ मिनट रुककर, इधर-उधर नज़र दौड़ाकर उसने सुझाव दिया :

"चल, कहीं छिपकर बैठें और 'कामचदाल्का' पढ़ें। क्या ख़याल है?"

छिपकर बैठने की जगह खोजने में काफ़ी समय लग गया। अन्त में हमने निश्चय किया कि हमाम घर की ड्योढ़ी ठीक रहेगी। वहाँ अँधेरा ज़रूर था, लेकिन हम खिड़की के पास बैठ सकते थे जो सायबान और कसाईख़ाने के बीचवाले गन्दे नुक्कड़ की ओर खुलती थी। लोग विरले ही उधर आते थे।

सो वह वहाँ, खिड़की के पास बैठ गयी। उसकी लँगड़ी टाँग बेंच पर फैली थी और अच्छी सलामत टाँग फ़र्श पर। एक खस्ताहाल पुस्तक उसकी आँखों के सामने थी और उसके मुँह से नीरस तथा समझ में न आनेवाले शब्दों की धारा प्रवाहित हो रही थी। लेकिन मुझे उसने अभिभूत कर लिया। फ़र्श पर बैठा हुआ मैं उसकी गम्भीर आँखों से निकलती दो नीली लपटों को पुस्तक के पन्नों पर तिरते हुए देख सकता था—कभी वे आँसुओं के कारण धुँधली हो जातीं और वह थरथरायी आवाज़ में समझ में न आनेवाली अनजाने शब्द-समूहों का उच्चारण करती। मैं उन शब्दों को पकड़ता और विभिन्न प्रकार से जोड़-तोड़ बैठाकर उन्हें एक छन्द में बाँधने की कोशिश करता।

इसका नतीजा यह होता कि क़िताब में क्या कहा गया है वह बिल्कुल मेरे पल्ले न पड़ता।

मेरे घुटनों पर कुत्ता सोया हुआ था। मैंने उसका नाम पवन रख छोड़ा था। कारण यह कि वह लम्बा और झबरीला था, बहुत ही तेज़ दौड़ता था और चिमनी में पतझड़ की हवा की तरह आवाज़ निकालता था।

“सुन रहा है?” लड़की ने पूछा।

मैंने चुपचाप सिर हिलाकर हामी भर दी। शब्दों का आल-जाल मुझे अधिकाधिक विचलित कर रहा था और मैं अधिकाधिक बेचैनी और व्यग्रता के साथ, शब्दों को एक नये क्रम में गूँथकर उन्हें किसी गीत के शब्दों का रूप देना चाहता था, जिसमें प्रत्येक शब्द मानो सजीव होता है तथा आसमान के तारे की तरह उज्ज्वल जगमगाता है।

जब अँधेरा हो गया तो ल्युद्मीला ने अपना थका हाथ जिसमें वह पुस्तक थामे थी, नीचे कर दिया।

“बढ़िया है न? देखा न...”

इस शाम के बाद से हमाम घर की ड्योढ़ी में बहुधा हमारी बैठक जमती। और सबसे बड़े संतोष की बात तो यह थी कि ल्युद्मीला ने शीघ्र ही ‘कामचदाल्का’ का पीछा छोड़ दिया। मैं उसे यह नहीं बता सका कि यह अन्तहीन पुस्तक किस बारे में है। अन्तहीन इसलिये कि दूसरे भाग के बाद (जिससे हमने इसे पढ़ना शुरू किया था) तीसरा भाग सामने आया और ल्युद्मीला ने बताया कि चौथा भाग भी है।

बादल-बरखा के दिनों में तो वहाँ बैठने में विशेष आनन्द आता, केवल शनिवारों को छोड़कर क्योंक शनिवार के दिन हम्मामघर गर्म किया जाता था।

बर्षा झमाझम बरसती और किसी को घर से बाहर न निकलने देती। फलतः हमारे अँधेरे कोने के पास किसी के भी फटकने का कोई खटका न रहता। ल्युद्मीला की जान इस बात से बेहद दुःखती थी कि कहीं हम पकड़े न जायें।

“तुझे पता है कि हमें इस तरह बैठा देखकर लोग क्या सोचेंगे?” वह धीरे से पूछती थी।

यह मैं जानता था और इसलिये पकड़े जाने से मैं भी डरता था। वहाँ हम घण्टों बैठे बातें करते। कभी मैं उसे नानी की कहानियाँ सुनाता और कभी ल्युद्मीला मेद्वेदित्सा नदी के तटवर्ती कज़्ज़ाकों के जीवन का वर्णन करती।

“वहाँ के क्या कहने!” उसाँस भरकर वह कहती। “यहाँ जैसा नहीं है। यहाँ तो बस भिखारी ही रह सकते हैं...”

मैंने निश्चय किया कि बड़ा होने पर मैं ज़रूर मेद्वेदित्सा नदी की सैर करूँगा।

शीघ्र ही हमाम घर की ड्योढ़ी में हमारी बैठकों का सिलसिला खत्म हो गया। ल्युद्मीला की माँ को एक समूर कमानेवाले के यहाँ काम मिल गया और वह सवेरे

ही घर से चली जाती, उसकी बहन स्कूल में पढ़ती थी और भाई एक टाइल फ़ैक्टरी में काम करता था। जब मौसम ख़राब होता तो खाना बनाने, कमरे और रसोई को ठीक-ठाक करने में मैं उसका हाथ बँटाता।

"हम-तुम पति-पत्नी की तरह ही रहते हैं," वह हँसकर कहती। "केवल एकसाथ नहीं सोते। सच पूछो तो हमारा जीवन उनसे अच्छा है–पति तो कभी अपनी पत्नियों की मदद नहीं करते।"

जब भी मेरे पास कुछ पैसे होते मैं कोई मिठाई ख़रीद लाता और हम दोनों चाय बनाते, पीते और बाद में ठण्डा पानी डालकर समोवार को ठण्डा कर देते जिससे ल्युद्मीला की चिड़चिड़ी माँ यह न ताड़ सके कि हमने समोवार को गर्म किया था। कभी-कभी नानी भी आकर हमारे साथ बैठ जाती, लैस बुनती या कसीदा काढ़ती और हमें बहुत बढ़िया कहानियाँ सुनाती और जब नाना बाहर चले जाते तो ल्युद्मीला हमारे यहाँ आती और दीन-दुनिया की चिन्ता से मुक्त हम खूब मौज मनाते।

नानी कहती :

"कितना ठाठदार जीवन है हमारा। अपने पैसे से जो जी में आये, वही करो।"

वह हमारे मिलने-जुलने को बढ़ावा देती।

"लड़के-लड़की की दोस्ती अच्छी चीज़ है केवल उन्हें कोई अटपटी हरकत नहीं करनी चाहिए..."

और अत्यन्त सीधे-सादे ढंग से नानी हमें बताती कि "अटपटी हरकत" से उसका क्या मतलब है। वह बहुत सुन्दर प्रेमपूर्ण ढंग से अपनी बात कहती और मैं सहज ही समझ जाता कि फूलों को उस समय तक नहीं छेड़ना चाहिए जब तक कि वे पूरी तरह से खिल न जायें, अन्यथा न तो वे सुगन्ध देंगे और न ही उनमें फल आयेंगे।

"अटपटी हरकत" करने की मेरी कोई इच्छा नहीं थी, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि ल्युद्मीला और मैं उन चीज़ों के बारे में बातें नहीं करते थे जिनका ज़िक्र आने पर साधारणतया चुप्पी साध ली जाती है। हाँ, कभी-कभी ऐसे विषयों पर बातें चल ही पड़ती थीं, क्योंकि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के भोंडे चित्र बहुत अक्सर और बेहद परेशान करनेवाले रूप में हमारी आँखों के सामने आते थे और हमें हद से ज़्यादा विक्षुब्ध करते थे।

ल्युद्मीला के पिता येव्सेयेन्को की उम्र चालीस से कम न होगी। था वह छैल-छबीला : घुँघराले बाल, घनी मूँछें और भारी भौंहें जो एक अजीब गर्वीले अन्दाज़ में नाचती रहती थीं। स्वभाव का इतना चुप्पा कि देखकर अचरज होता। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उसे कभी बोलते सुना हो। जब वह अपने बच्चों को प्यार करता तो गूँगे-बहरों की भाँति आवाज़ करके रह जाता और अपनी पत्नी को पीटते समय भी

उसके मुँह से एक शब्द न निकलता।

पर्व-समारोहों की शामों को नीले रंग की कमीज, चौड़ी मोरियों का मख़मली पतलून और पालिश किये चमकदार जूते पहने, कंधे पर बड़ा-सा एकार्डियन लटकाये वह घर से निकलकर फाटक पर आ खड़ा होता—चुस्त और दुरुस्त, परेड के लिए तैयार सैनिक की भाँति। शीघ्र ही फाटक के सामने चहल-पहल शुरू हो जाती। लड़कियों और स्त्रियों के दल बत्तखों के झुण्ड की भाँति सामने से गुजरते। कभी वे कनखियों से देखतीं—कुछ छिपकर पलकों की ओट में से। कभी वे खुलकर नज़रें लड़ातीं—मानो भूखी आँखों से उसे चट कर जाना चाहती हों। उधर वह अपना अधर फैलाये काली आँखों से उनका अंग-अंग टटोलता। आँखों की इस मूक बातचीत का और पुरुष के सामने स्त्रियों की इस मनहूस तथा धीमी गतिविधि में कुत्ते-कुतियों की हरक़त जैसी कोई अप्रिय चीज़ होती थी। ऐसा लगता था कि जिसको भी वह चाहेगा, जिस किसी की ओर भी वह अपनी पुरुष दृष्टि से इशारा करेगा, वही उसके सामने आकर बिछ जायेगी, सड़क की धूल चाटने लगेगी।

ल्युद्मीला की माँ बड़बड़ाती :

“क्या बकरे की भाँति आँखें नचा रहा है—निर्लज्ज तोबड़ा!” लम्बी, दुबली-पतली, लम्बोतरा और धब्बोंवाला चेहरा, मियादी बुख़ार के बाद छोटे-छोटे छँटे हुए बाल—वह घिसी हुई झाड़ू जैसी लगती थी।

ल्युद्मीला बगल में ही बैठी होती और इधर-उधर की बातें करके सड़क से अपनी माँ का ध्यान हटाने का निष्फल प्रयत्न करती।

“मेरी जान न खा, लँगड़ी चुड़ैल!” बेचैनी से अपनी आँखें मिचमिचाते हुए उसकी माँ बुदबुदाकर कहती। उसकी छोटी-छोटी मँगोली आँखों में एक अजीब सूनापन और स्थिरता दिखाई देती—मानो उन्होंने किसी चीज़ को छुआ हो और फिर उसीसे चिपककर, वहीं की वहीं रह गयी हों।

“गुस्सा न करो, माँ, इससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा,” ल्युद्मीला कहती। “जरा उस चटायी बनानेवाले की विधवा को तो देखो, उसने क्या सिंगार किया है!”

माँ उस लम्बी-तड़ँगी विधवा की ओर देखती। फिर आँसुओं में भीगे स्वर में निर्ममतापूर्वक कहती : “मैं इससे बढ़कर सिंगार करती अगर तुम तीनों न होते। भीतर और बाहर, तुम लोगों ने कुछ भी बाकी नहीं छोड़ा, मुझे पूरी तरह से नोच खाया!”

चटायी बनानेवाले की विधवा छोटे-से मकान जैसी लगती थी। उसका वक्ष छज्जे की भाँति आगे को निकला हुआ था। कसकर बाँधे हुए हरे रुमाल से घिरा उसका लाल चेहरा ऐसा मालूम होता था मानो वह एक झरोखा है जिसे साँझ के सूरज की लाली ने रंग दिया है।

येव्सेयेन्को अपना एकार्डियन सम्भालता और वक्ष से सटाकर बजाने लगता। बड़े

रंग थे वाद्य-यन्त्र में, उससे निकलती ध्वनियाँ कहीं खींच ले जातीं, गली के तमाम बच्चे खिंचे चले आते, वादक के पैरों में गिरते और मुग्ध होकर रेत पर बुत बने बैठे रहते।

येव्सेयेन्को की पत्नी फुँकार छोड़ती, "ज़रा ठहर तो, वो दिन दूर नहीं जब तेरी खोपड़ी तोड़ दी जायेगी।"

वह चुप्पी साधे तिरछी नज़र से उसकी ओर देखता।

चटायी बनानेवाले की विधवा ख़्लीस्त की दुकान के सामनेवाली बेंच पर तन्मय-सी बैठी रहती। उसका सिर एक ओर से झुका होता और भाव-विभोर होकर वह संगीत सुनाती रहती।

क़ब्रिस्तान के उस पार का मैदान छिपते हुए सूरज की लाली से सिन्दूरी हो उठता और गली एक तेज़ नदी का रूप धारण कर लेती जिसमें रंग-बिरंगे शोख़ कपड़ों में लिपटे मांस के लोथड़े तैरते और बच्चे बगुलों की भाँति चक्कर लगाते। गर्म हवा मादक हो उठती। धूप में तपी रेत से पंचमेली गन्ध उठती जिसमें बूचड़ख़ाने से आनेवाले रक्त की बोझिल गन्ध सबसे तेज होती। समूर कमानेवालों के आहातों से खालों की नमकीन तेज़ाबी गन्ध आती। स्त्रियों की खच-खच और चुचुआहट, नशे में धुत्त पुरुषों का शोर, बच्चों की तेज चिल्लाहट और एकार्डियन के मन्द सप्तक के स्वर मिलकर एक ऐसे संगीत का रूप धारण कर लेते जिसकी धड़कन दूर-दूर तक सुनाई देती—मानो प्रसवमान धरती अथक रूप से गहरी उसाँसे ले रही हो। सभी कुछ फूहड़, नग्न और भोंडा होता, और इस कुत्सित जीवन के प्रति जो इस हद तक निर्लज्ज पाशविकता में डूबा था, व्यापक तथा सबल विश्वास का संचार करता। अपनी शक्ति की डींग मारते हुए धरती उदासी और व्यग्रता के साथ उसकी निकासी के लिए मार्ग खोजती।

और इस शोर-शराबे में से कभी-कभी कुछ ऐसे जानदार शब्द उड़कर आते जो हृदय को खुब जाते और स्मृति में जमकर बैठ जाते :

"सभी एक साथ मत टूट पड़ो, यह ठीक नहीं है—बारी-बारी से पीटना चाहिए..."

"जब हम खुद अपने पर रहम नहीं करते तो दूसरे ही हम पर क्यों रहम करें?.."

"क्या ख़ुदा ने मज़ाक के लिए ही लुगाई को बनाया था?.."

रात घिरने लगती। वायु में ताज़गी आ जाती। शोर-शराबा शान्त हो चलता। लकड़ी के घर मानों बढ़ और फैलकर छायाओं का बाना धारण कर लेते। सोने का समय हो जाता। बच्चों को घरों में खदेड़ दिया जाता, कुछ वहीं बाड़ों के नीचे, अपनी माताओं के पाँवों पर या गोद में सो जाते। रात आने पर बड़े बच्चे भी अधिक शान्त अधिक नम्र हो जाते। येव्सेयेन्को, न जाने कब, विलीन हो जाता—मानो वह छाया बनकर उड़ गया हो। चटायी बनानेवाले की विधवा भी ग़ायब हो जाती और एकार्डियन की गहरी ध्वनि अब क़ब्रिस्तान के उसपार कहीं बहुत दूर से आती मालूम होती।

ल्युद्मीला की माँ शरीर को दोहरा किये, वहीं बेंच पर बैठी रहती। उसकी पीठ बिल्ली की भाँति कमान-सी झुकी होती। मेरी नानी पड़ोसिन के पास जनाई और शादी-ब्याह का जोड़ा बैठाने का काम करती थी, चाय पीने चली जाती। यह पड़ोसिन एक भारी-भरकम और मज़बूत पुट्ठों वाली स्त्री थी। उसके चेहरे पर बत्तख की चोंच जैसी नाक चिपकी हुई थी, उसके मर्दाने वक्ष पर 'मौत के मुँह में जाते हुओं की रक्षा के लिए' मिला सोने का एक तमग़ा लटका रहता था। हमारी गली में सभी उससे डरते थे, जो उसे डायन, जादू-टोने करनेवाली समझते थे। लोगों का कहना था कि एक बार वह लपटों की परवाह न कर, जलते हुए घर में घुस गयी थी और किसी कर्नल के तीन बच्चों तथा बीमार पत्नी को अकेली ही बाहर निकाल लायी थी।

नानी और उसमें मित्रता थी। गली में आते-जाते जब वे एक-दूसरी को देखती तो उनके चेहरे पर, दूर से ही एक ख़ास हार्दिकतापूर्ण मुस्कराहट खेल जाती।

एक दिन कोस्त्रोमा, ल्युद्मीला और मैं फाटक के पास बेंच पर बैठे थे। चूर्का ने ल्युद्मीला के भाई को लड़ने के लिए ललकारा था, वे एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हुए, धूल में हाथ-पाँव पटक रहे थे। ल्युद्मीला सहमते हुए अनुरोध कर रही थी, "बन्द करो यह लड़ाई!"

कोस्त्रोमा की काली आँखें ल्युद्मीला पर जमी थीं। कनखियों से उसे देखते हुए वह शिकारी कालीनिन का किस्सा सुना रहा था। कालीनिन एक बूढ़ा खुर्राट था। उसकी आँखों से मक्कारी टपकती थी और समूची बस्ती में वह बदनाम था। हाल ही में वह मरा था लेकिन उसका ताबूत क़ब्रिस्तान में दफ़नाया नहीं गया, बल्कि अन्य क़ब्रों से अलग ऊपर ही छोड़ दिया गया। उसके ताबूत का रंग काला था और पाए ऊँचे थे। ढक्कन पर सफ़ेद रंग में सलीब, बर्छी, एक डण्डा और दो हड्डियों के चित्र बने थे।

बूढ़ा हर रात अपने ताबूत से उठता है और किसी चीज़ की खोज में, पहले मुर्ग़े की बाँग देने तक, क़ब्रिस्तान में इधर-उधर भटकता रहता है।

"ऐसी डरावनी बातें क्यों करते हो!" ल्युद्मीला ने अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा।

"मुझे जाने दो!" ल्युद्मीला के भाई के चंगुल से अपने को छुड़ाते हुए चूर्का चिल्लाया और खिल्ली उड़ाने के अन्दाज़ में कोस्त्रोमा से बोला, "क्यों झूठ बोल रहा है? मैंने खुद अपनी आँखों से उन्हें ताबूत को दफ़नाते और क़ब्र के पत्थर के लिए एक ख़ाली ताबूत रखते हुए देखा है... और जहाँ तक उसके भूत बनकर रात को क़ब्रिस्तान में भटकने की बात है, तो इसे नशे में धुत्त लोहारों ने खुद अपने मन से ही गढ़ लिया है!..."

"हम तो तब जानें जब तुम एक रात क़ब्रिस्तान में जाकर बिताओ!" उड़ती हुई नज़र से भी उसकी ओर देखने का कष्ट न कर कोस्त्रोमा ने बिगड़कर जवाब दिया।

दोनों में बहस छिड़ गयी। उदासी से अपना सिर झटकाते हुए ल्युद्‌मीला ने अपनी माँ से पूछा :

"क्यों माँ, क्या रात को मृत आत्माएँ चक्कर लगाती हैं?"

दूर से आयी हुई प्रतिध्वनि की तरह माँ ने जवाब दिया, "हाँ, लगाती हैं।"

दुकानदारिन का बीस वर्षीय मोटा, थलथल और लाल बालों वाला बेटा वालेक हमारे पास आया और हमारा विवाद सुनकर बोला :

"तीनों में से अगर कोई भी सुबह तक ताबूत पर लेटा रहे, तो मैं उसे बीस कोपेक और दस सिगरेट देने के लिए तैयार हूँ, अगर डरकर भागे तो मुझे जी भरकर उसके कान खींचने का अधिकार होगा। बोलो, क्या कहते हो?"

सभी झेंपकर चुप हो गये। ल्युद्‌मीला की माँ ने इस खामोशी को तोड़ते हुए कहा :

"मूर्खता की बातें न कर! बच्चों को इस तरह के काम करने के लिए उकसाना क्या अच्छा है?.."

"मुझे एक रूबल दे तो मैं जाने को तैयार हूँ," चूर्का बुदबुदाया।

"बीस कोपेक में जाते नानी मरती है, क्यों?" कोस्त्रोमा ने डंक-सा मारते हुए कहा। फिर वालेक से बोला, "तुम इसे एक रूबल भी दोगे तब भी नहीं जायेगा। बेकार की डींग मार रहा है..."

"अच्छी बात है। ले रूबल!"

चूर्का ज़मीन से उठा और बाड़ के साथ-साथ चलता हुआ चुपचाप तथा धीरे-धीरे वहाँ से खिसक गया। कोस्त्रोमा ने मुँह में अपनी उँगलियाँ डालकर उसके पीछे ज़ोर-से सीटी बजायी और ल्युद्‌मीला व्यग्र स्वर में कह उठी :

"हाय राम... आख़िर इतना बढ़-चढ़कर बोलने की ज़रूरत ही क्या थी?"

"कायर हो तुम सब!" वालेक ने कोसते हुए कहा। "और गली के सबसे बढ़िया लड़ैत समझे जाते हो। पिल्ले कहीं के..."

उसका इस तरह कोसना मुझे अखरा। वह मोटा वालेक हमें कभी अच्छा नहीं लगता था। वह हमेशा बच्चों को कोई न कोई शैतानी करने के लिए उकसाता, लड़कियों और स्त्रियों के बारे में गन्दे किस्से सुनाता और बच्चों को उनकी खिल्ली उड़ाना सिखाता। बच्चे उसके कहने में आ जाते और बाद में इसका बुरी तरह फल भुगतते। न जाने क्यों, मेरे कुत्ते से उसे ख़ास चिढ़ थी। वह हमेशा उसपर पत्थर फेंकता और एक दिन तो उसने रोटी के टुकड़े में सुई रखकर उसे खिला दी।

लेकिन चूर्का का इस तरह से मुँह की खाकर खिसक जाना मुझे और भी ज़्यादा अखरा।

मैंने वालेक से कहा :

"ला, दे रूबल मैं जाता हूँ!.."

मेरी खिल्ली उड़ाते और मुझे डराते हुए उसने ल्युद्मीला की माँ के हाथ में रूबल दे दिया।

"नहीं, मैं नहीं चाहती, मैं नहीं रखूँगी तुम्हारा रूबल!" ल्युद्मीला की माँ ने कड़ाई से कहा और गुस्से में भरकर चली गयी।

ल्युद्मीला ने भी रूबल लेने से इंकार कर दिया। वालेक हमारा अब और भी अधिक मज़ाक उड़ाने लगा। मैं बिना रूबल लिये ही जाने को तैयार था कि तभी नानी आ गयी। उसने सारा हाल सुना, रूबल अपने हाथ में ले लिया और शान्त स्वर में मुझसे कहा :

"अपना कोट पहन लेना और एक कम्बल भी साथ ले लेना, सुबह होते ही ठण्ड हो जाती है..."

नानी के शब्दों ने मुझे यह उम्मीद बँधाई कि मेरे साथ कोई बुरी बात नहीं होगी।

वालेक ने शर्त रखी कि सुबह होने तक सारी रात मैं ताबूत पर बैठा या लेटा रहूँ, किसी भी हालत में वहाँ से न हटूँ, चाहे ताबूत हिले-डुले या उस समय डगमगाए जब बूढ़ा कालीनिन उससे बाहर निकलना शुरू करे। अगर मैं उसपर से कूदकर ज़मीन पर खड़ा हो गया तो बाज़ी हाथ से जाती रहेगी।

"ध्यान रहे," वालेक ने चेतावनी दी, "मैं सारी रात तेरी निगरानी करूँगा।"

जब मैं क़ब्रिस्तान के लिए रवाना हुआ तो नानी ने मुझपर सलीब का चिह्न बनाया और मुझे सलाह दी :

"अगर तुम्हें कुछ दिखाई भी दे तो अपनी जगह से हिलना नहीं। बस, माता मरियम का नाम लेना, सब ठीक हो जायेगा..."

मैं तेज़ डगों से चल दिया। एक ही चिन्ता मुझे थी। वह यह कि जिस किस्से को मैंने उठाया है वह जल्दी से जल्दी पूरा हो जाये। वालेक, कोस्त्रोमा तथा अन्य कुछ लड़के भी मेरे साथ हो लिए। ईंटों की दीवार को पार करते समय मेरी टाँग कम्बल में धँस गयी और मैं गिर पड़ा। लेकिन मैं फुर्ती से उछलकर खड़ा हो गया मानो खुद धरती ने पीछे से लात मारकर मुझे फिर से खड़ा कर दिया हो। दीवार के दूसरी ओर से हँसने की आवाज़ सुनाई दी। मेरे हृदय में जैसे एक झटका-सा लगा और सारे बदन में फुरफुरी-सी दौड़ गयी।

ठोकरें खाता हुआ मैं काले ताबूत के पास पहुँचा। एक ओर से वह रेत में धंसा हुआ था, दूसरी ओर उसके छोटे-छोटे, मोटे पाये दिखाई दे रहे थे। लगता था मानो किसी ने उसे उठाने की कोशिश की हो और उसे जगह से हिलाया हो। मैं ताबूत के सिरे पर, उसके पायों के ऊपर बैठ गया और इधर-उधर नज़र डाली... छोटे-छोटे टीलों की भाँति उभरी कब्रों का क़ब्रिस्तान भूरे सलेटी रंग की सलीब का घना जंगल-सा

मालूम होता था। सलीबों की लपलपाती हुई छायाएँ हाथ फैलाकर कब्रों के ढूहों की सख्त घास का आलिंगन करती प्रतीत होती थी। क़ब्रों के बीच कहीं-कहीं, दुबले-पतले, क्षीण भोज वृक्ष उगे हुए थे, जिनकी डालें एक-दूसरे से पृथक क़ब्रों के बीच सम्पर्क स्थापित कर रही थी। उनकी परछाइयों की लैस को बेधती हुई सूखी पत्तियाँ नज़र आती थी। भूरे रंग की ये सूखी पत्तियाँ सबसे भयानक थीं। क़ब्रिस्तान का गिरजा बर्फ़ के एक टीले की भाँति खड़ा था और गतिहीन बादलों में क्षीणकाय चाँद चमक रहा था।

याज़ के पिता—'निकम्मे आदमी'—ने बड़ी अलसाहट के साथ गश्त का घण्टा बजाया। हर बार, जब वह घण्टे की रस्सी खींचता तो वह छत की चादर से रगड़ खाकर पहले तो दर्दीली चरमराहट पैदा करती और उसके बाद छोटे घण्टे की शोक में डूबी आवाज़ सुनाई देती।

मुझे चौकीदार की बात याद हो आयी। वह अक्सर कहा करता था, "भगवान उनींदी रातों से बचाये"।

सभी कुछ भयानक ओर दमघोटू था। रात ठण्डी थी, फिर भी मैं पसीने से तर हो गया। अगर बूढ़े कालीनिन ने अपने ताबूत से निकलना शुरू किया तो क्या मैं भागकर चौकीदार की कोठरी तक भी पहुँच सकूँगा या नहीं?

मैं क़ब्रिस्तान के कोने-कोने से परिचित था। याज और अपने अन्य साथियों के साथ यहाँ आकर बीसियों बार हम धमाचौकड़ी मचा चुके थे। और वहाँ, गिरजे के पास, मेरी माँ की क़ब्र थी...

अभी सब कुछ नींद की गोद में नहीं गया था। बस्ती की ओर से कहकहे और गीतों के टुकड़े अभी भी सुनाई दे रहे थे। पहाड़ियों पर से, रेलवे के उन खड्डों से जहाँ मज़दूर रेत खोदकर निकालते थे, या पड़ोस के कातीजोव्का गाँव से, एकार्डियन के चीखने और सुबकियाँ-सी लेने की आवाज़ आ रही थी। सदा नशे में धुत्त रहनेवाला लोहार मियाचोव क़ब्रिस्तान की दीवार के उस पार लड़खड़ाता तथा गीत गाता हुआ जा रहा था। सुनकर मैं उसे पहचान गया :

ओ हमारी अम्मा
के पापवा हैं कम्मा
और न किसी को चाहवे
बपुआ ही उसे भावे...

जीवन और चहल-पहल की इन आख़िरी साँसों को सुनकर कुछ हिम्मत बँधी, लेकिन घण्टे की प्रत्येक टनटन के साथ सन्नाटा गहरा होता गया और चरागाहों को डुबोने और उन्हें छिपा लेनेवाली नदी की भाँति निस्तब्धता ने हर चीज़ का अस्तित्व मिटा दिया, अपने में उसे समा लिया। आत्मा सीमाहीन, अथाह शून्य में तैर रही थी

और अँधेरे में दियासलाई की तरह बुझ जाती थी—शून्य के एक ऐसे महासागर में वह पूर्णतया विलीन हो गयी जिसमें केवल हमारी पहुँच से दूर रहनेवाले तारे जीवित रहते और जगमगाते हैं और ज़मीन पर हर मुर्दा और अवांछनीय चीज़ गायब हो गयी।

कम्बल को अपने चारों ओर लपेटकर और पाँव सिकोड़कर मैं बैठा था। मेरा मुँह गिरजे की ओर था और हर बार जब भी मैं हिलता-डुलता, ताबूत चरमर करता और रेत किरकिरा उठती।

मेरे पीछे ज़मीन से किसी चीज़ के टकराने की ठक से आवाज़ हुई—पहले एक बार, फिर दूसरी बार, और इसके बाद ईंट का एक ढेला ताबूत के पास आ गिरा। यह भयावह था, लेकिन मैंने तुरन्त भाँप लिया कि वालेक और उसके साथी मुझे डराने के लिए दीवार के उस पार से ये सब फेंक रहे हैं। यह सोचकर कि दीवार के उस पार लोग मौजूद हैं, मेरी दिलजमई हुई।

अपने आप ही माँ के बारे में विचार आने लगे... एक बार उसने मुझे तभी आ पकड़ा था जब मैं सिगरेट पीने की कोशिश कर रहा था और वह मुझे मारने लगी। तब मैंने उससे कहा था :

"नहीं मारो। मेरा तो यों ही बुरा हाल है। मतली आती है..."

मार के बाद मैं अलावघर के पीछे जा छिपा। माँ की आवाज़ कानों में आयी, वह नानी से कह रही थी :

"कितना हृदयहीन लड़का है। इसके मन में किसी के लिए ममता नहीं है।..."

माँ की यह बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ था। वह जब भी मुझे मारती-पीटती थी तो मुझे उस पर तरस आता था, उसके लिए झेंप अनुभव होती थी : विरले ही वह मुझे उचित और ऐसी सजा देती थी जो मेरी करनी के अनुरूप होती।

दुःख पहुँचानेवाली चीज़ों की जीवन में कोई कमी नहीं थी। अब इन लोगों को ही लो जो दीवार के उस पार मौजूद थे। उन्हें अच्छी तरह से मालूम था कि यहाँ, इस क़ब्रिस्तान में, अकेले बैठे रहना ही कुछ कम भयानक नहीं था। लेकिन वे थे कि मेरी रूह को और अधिक कब्ज़ करने पर तुले थे। आख़िर क्यों?

मेरा मन हुआ कि चिल्लाकर उनसे कहूँ :

"शैतान तुम्हें जहन्नुम रसीद करे!"

लेकिन क़ब्रिस्तान में शैतान का नाम लेना खतरनाक था। कौन जाने उसे वह कैसा लगे? वह ज़रूर कहीं पास में ही होगा।

रेत में अबरक़ के कणों की बहुतायत थी और वे चाँद की रोशनी में हल्की चमक दिखा रहे थे। उन्हें देखकर मुझे याद आया कि एक दिन जब बेड़े पर लेटा हुआ मैं ओका नदी के पानी को देख रहा था, ठीक मेरी आँखों के सामने सहसा एक नन्हीं-सी मछली प्रकट हुई थी, लोट-पोटकर उसने मानवीय गाल का रूप धारण कर लिया था,

पक्षियों जैसी छोटी गोल आँखों से उसने मेरी ओर ताका था और फिर पेड़ से गिरे पत्ते की भाँति गहराइयों में गायब हो गयी थी।

मेरी स्मृति अत्यन्त क्रियाशील हो उठी और जीवन की विभिन्न घटनाओं को उभारकर मानो इनके जरिये उन तमाम डरावनी चीज़ों से अपनी रक्षा करने लगी जिनकी इस समय मेरी कल्पना ज़ोर-शोर से रचना कर रही थी।

यह लो मजबूत पाँवों से खड़बड़ करती एक साही मेरी ओर आयी। उसे देखकर मुझे घर के ओने-कोने में छिपे भूत का ध्यान हो आया जो ऐसा ही छोटा और इतना ही झबरीला होता होगा।

इसके साथ ही मुझे यह भी ध्यान आया कि कैसे नानी अलावघर के सामने उकड़ूँ बैठकर यह मन्त्र पढ़ा करती थी :

"मेरे नन्हें भूत, मुवे तिलचट्टों को ले जा!.."

दूर, नगर के ऊपर जो मेरे दृष्टि-क्षेत्र से परे था, आकाश में उजाला फैलने लगा। प्रातःकाल की ठण्डी हवा से मेरे गाले सिहरने-सिकुड़ने लगे। नींद के मारे मेरी पलकें भारी हो गईं। मैं कम्बल ओढ़कर गुड़ी-मुड़ी हो गया—जो भी होना हो, सो हो!

नानी ने आकर मुझे जगाया। वह मेरे बगल में खड़ी कम्बल को खींच रही थी और कह रही थी :

"उठो अब! ठिठुर तो नहीं गये? कहो, डर लगा?"

"डर तो लगा, लेकिन किसी से कहना नहीं। लड़कों को नहीं बताना!"

"इसमें छिपाने की क्या बात है?" नानी ने कुछ अचरज से पूछा। "अगर डर नहीं लगता, तो बड़ाई की बात ही क्या..."

हम दोनों घर की ओर चले। रास्ते में नानी ने प्यार से कहा :

"मेरे लोटन कबूतर, दुनिया में हर चीज़ का खुद तजुर्बा करके देखना होता है। जो खुद सीखने से कन्नी काटता है, उसे दूसरे भी नहीं सिखाते..."

साँझ तक मैं अपनी गली का "हीरो" बन गया। जो भी मिलता, मुझसे पूछता :

"डर नहीं लगा?"

और मैं जवाब देता : "डर तो लगा!"

सिर हिलाकर वे जवाब देते :

"देखा!"

दुकानदारिन ने बड़े विश्वास के साथ ज़ोरों से घोषणा की :

"इसका मतलब यह है कि कालीनिन का क़ब्र से निकलकर चक्कर लगाना एकदम झूठी बात है। अगर यह बात सच होती तो क्या वह इस लड़के से डरकर क़ब्र में ही दुबका रहता? नहीं, टाँग पकड़कर वह इतने ज़ोरों से इसे क़ब्रिस्तान के बाहर फेंकता कि जाने कहाँ जाकर गिरता!"

ल्युद्मीला ने मुझे चाव भरे अचरज से देखा और मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो नाना भी मुझसे खुश हैं—उनकी बत्तीसी खिली हुई थी। केवल चूर्का ऐसा था जो जलकर बोलाः

"इसे कौन खटका? इसकी नानी तो जादूगरनी ठहरी!"

3

मेरा भाई कोल्या सुबह के छोटे सितारे की भाँति यों ही चुपचाप ओझल हो गया। वह, नानी और मैं बाहर सायबान में जमा लकड़ियों के ढेर पर सोते थे जिन पर पुराने चिथड़े और गूदड़ फैले थे। पास ही छेदों भरी लकड़ियों की बनी दीवार के पीछे मकान-मालिक का मुर्गीघर था। अलसाई और पेट में दाना पड़ी मुर्ग़ियों की कुटकुट और उनके परों की फड़फड़ाहट हम हर साँझ सुनते और हर सुबह स्वर्णिम मुर्ग़े की ज़ोरदार बांग से हमारी आँख खुल जाती।

"ओ, तेरा बेड़ा ही ग़रक़ हो!" नानी बुदबुदाती।

मैं पहले ही जग गया होता और दीवार की दराज़ों में से आनेवाली सूरज की किरणों और उनमें तैरते धूल के रुपहले कणों को देख रहा होता जो परियों की कहानी के शब्दों की भाँति चमचमा रहे होते। लकड़ियों के ढेर में चूहे खड़बड़ कर रहे थे और छोटे-छोटे लाल कीड़े जिनके परों पर काली चित्तियाँ थीं, घूम-फिर रहे थे।

मुर्ग़ियों की बीट और कूड़े-कचरे की गन्ध से घबराकर कभी-कभी मैं सायबान से बाहर निकल आता और छत पर चढ़कर वहाँ से पड़ोसियों को जागते हुए देखता—डीलडौल में लम्बे-चौड़े, नींद से बोझिल और मुँदी हुई-सी आँखें।

एक खिड़की में से खेवैये फेरमानोव का, जो एक गुमसुम शराबी था, झबरा सिर प्रकट होता। अपनी गुम्मा-सी आँखों को मिचमिचाकर वह सूरज की ओर देखता और मुँह से सुअर की भाँति आवाज़ निकालता। फिर नाना की शक्ल दिखाई देती—वे तेज़ी से अहाते में आते, अपने सिर के गिने-चुने लाल बालों को दोनों हाथों से ठीक करते हुए। ठण्डे पानी से नहाने की जल्दी में वह गुसलखाने की ओर लपके जाते। मकान-मालिक की बातूनी बावर्चिन नज़र आती, जिसका चेहरा झाँइयोंवाला और नाक नुकीली थी। वह कुकू पक्षी जैसी थी। खुद मालिक भी किसी बूढ़े और मोटे कबूतर जैसा था और अहाते के अन्य सब लोग भी मुझे किसी न किसी पशु या जंगली जन्तु की याद दिलाते थे।

सुहावनी और उजली सुबह होती, लेकिन मेरा मन भारी होता और कहीं दूर खेतों की ओर जाने को जी चाहता, जहाँ मेरे सिवा और कोई न हो। मैं जानता था कि लोग हमेशा की भाँति उजले दिन पर अवश्य कालिख पोत देंगे।

एक दिन जब मैं छत पर लेटा हुआ था, नानी ने मुझे बुलाया और सिर हिलाकर बिस्तरे की ओर इशारा करते हुए धीमे-से बोली : “कोल्या तो मर गया...”

लड़के का नन्हा शरीर मलमल के लाल तकिये से लुढ़ककर नमदे पर आ गया था। उसका नीला-सा बदन उघड़ा हुआ था। कमीज सिकुड़-सिमटकर गरदन से लिपट गयी थी और उसका फूला हुआ पेट तथा फोड़ों से भरी बदनुमा टाँगें दिखाई दे रही थीं। उसके हाथ अजीब ढंग से कमर के नीचे धँसे हुए थे मानो उसने उठने का प्रयत्न किया हो। उसका सिर एक ओर को कुछ झुक गया था।

कन्धे से अपने बालों को सुलझाते हुए नानी बोली, “भगवान ने अच्छा किया जो इसे अपने पास बुला लिया। भला, इस मरियल शरीर को लेकर यह जीता भी किस तरह?”

पैरों को धपधपाते, मानो नाचते हुए नाना भी आ गये और बहुत ही सावधानी से उन्होंने बच्चे की मुँदी हुई आँखों को छुआ। नानी ने झल्लाकर कहा :

“बिना धुले हाथों से इसे क्यों छू रहे हो?”

नाना बुदबुदाए :

“दुनिया में पैदा हुआ... दो-चार दिन साँस ली, दाना-पानी चुगा और बस फुर्र...”

नानी ने बीच में टोका, “यह कैसी बेकार की बातें कर रहे हो?”

नाना ने बहकी-बहकी नज़र से नानी की ओर देखा और अहाते की तरफ जाते हुए बोले :

“इसे दफनाने के लिए मेरे पास एक दमड़ी भी नहीं है। तुम से जो बने, करना...”

“धिक्कार है तुझ बदकिस्मत को!”

मैं बाहर खिसक गया और साँझ होने पर ही घर लौटा।

कोल्या को अगले दिन सवेरे दफ़ना दिया गया। मैं गिरजे में नहीं गया और जब तक सारा कार्य समाप्त नहीं हो गया, अपनी माँ की क़ब्र के पास बैठा रहा। माँ की क़ब्र खोदकर खोल दी गयी थी, ताकि मेरा छोटा भाई उसी में दफ़नाया जा सके। मेरा कुत्ता और याज़ का बाप भी मेरे साथ बैठे थे। याज के बाप ने क़रीब-क़रीब मुफ़्त में ही क़ब्र खोद दी थी और मेरे पास बैठा अपनी इस उदारता की शेख़ी बघार रहा था।

“जान-पहचान की बात है, नहीं तो एक रूबल से कभी कम न लेता...”

मिट्टी के पीले गढ़े से बदबू आ रही थी। मैंने उसमें झाँककर देखा और काले नम तख़्तों पर मेरी नज़र पड़ी। मेरे जरा-सा भी हिलने पर रेत की पतली-पतली धाराएँ सरसराकर गढ़े के तल में गिरने लगतीं जिससे अगल-बगल झुर्रियाँ-सी बन जातीं। इसीलिये मैं जान-बूझकर हिलता ताकि रेत उन तख़्तों को ढक दे।

याज़ के बाप ने धुएँ का कश खींचते हुए कहा, “शैतानी नहीं कर।”

नानी अपने हाथों में एक छोटा-सा सफ़ेद ताबूत लिये आयी। 'निकम्मा आदमी' यानी याज़ का बाप, गढ़े में कूद गया, नानी के हाथों से उसने ताबूत लिया और उसे वहीं काले तख़्तों के पास जाम दिया। फिर वह उछलकर गढ़े से बाहर आ गया और अपनी टाँगों तथा फावड़े से रेत को गढ़े में भरने लगा। उसका पाइप धूपदान की भाँति धुआँ छोड़ रहा था। नानी और नाना ने भी चुपचाप उसका हाथ बँटाया। न कोई पादरी था, न भिखारियों का जमघट। सलीबों के इस जंगल में बस, हम चारों ही थे।

चौकीदार को मजदूरी देते समय नानी ने उसकी भर्त्सना करते हुए कहा :

"लेकिन तुमने मेरी बेटी का ताबूत भी झँझोड़ डाला, क्यों?"

"मैं क्या करता? मैंने तो पास की क़ब्र तक की ज़मीन भी खोद डाली। इसमें परेशानी की कोई बात नहीं।"

नानी ने ज़मीन तक माथा झुकाकर क़ब्र को प्रणाम किया, नाक बिसूरी, रो पड़ी और क़ब्र से चल दी। अपने घिसे हुए कोट को ठीक करते तथा टोपी के छज्जे के नीचे अपनी आँखों को छिपाते हुए नाना भी पीछे-पीछे हो लिये।

सहसा नाना ने कहा, "ऊसर भूमि में हमने अपना बीज डाला था।" और मेड़ पर से उड़नेवाले कौवे की भाँति लपककर नाना हम सबसे आगे निकल गये।

मैंने नानी से पूछा :

"नाना ने यह क्या कहा?"

नानी ने जवाब दिया, "वही जानें उनके अपने विचार हैं।"

बड़ी उमस थी। नानी धीमे डगों से चल रही थी। गर्म रेत में उसके पाँव धंस जाते थे। रह-रहकर वह रुक जाती और रुमाल से अपने माथे का पसीना पोंछती।

आख़िर साहस बटोरकर मैंने नानी से पूछा, "क़ब्र के भीतर जो वह काला-काला दिखाई देता था, क्या वह माँ का ताबूत था?"

"हाँ," नानी ने झुँझलाकर जवाब दिया। "वह बूढ़ा खूसट न जाने कैसी क़ब्र खोदता है!.. एक साल भी नहीं हुआ और वार्या सड़ गयी। यह सब रेत की वजह से हुआ है। पानी रिस-रिसकर भीतर पहुँच जाता है। अगर चिकनी मिट्टी होती, तो अच्छा रहता..."

"क़ब्र में क्या सभी सड़ने लगते हैं?"

"हाँ, सभी। केवल सन्तों को छोड़कर..."

"लेकिन तुम कभी नहीं सड़ोगी!"

नानी रुक गयी, मेरी टोपी ठीक की और फिर गम्भीर स्वर में बोली :

"ऐसी बातों के बारे में नहीं सोचना, ऐसा करना ठीक नहीं। सुना तुमने?"

लेकिन मैंने मन ही मन सोचा :

"कितनी दुखद और कितनी कुत्सित होती है मृत्यु! कितनी घिनौनी!"

मेरी हालत बहुत बुरी थी।

जब हम घर पहुँचे तो देखा कि नाना ने समोवार गर्म कर रखा है और मेज़ सजी है। नाना ने कहा :

"चाय तैयार है। आज मैं सबके लिए अपनी ही पत्ती डालूँगा। ओह, कितनी उमस है!"

फिर वह नानी के पास गये और उसके कन्धे को थपथपाते हुए बोले :

"चुप क्यों है, वार्या की माँ?"

नानी ने हाथ हिलाया और बोली :

"तुम्हीं बताओ, मैं क्या कहूँ?"

"यही तो! भगवान की मार इसी को कहते हैं। धीरे-धीरे सभी कुछ तीन-तेरह हो जाता है... अगर परिवार के लोग मिलकर रहते, हाथ में हाथ की उँगलियों की भाँति..."

नाना ने एक मुद्दत से इतने कोमल और इतने शान्तिपूर्ण अन्दाज़ में बातें नहीं की थीं। मैं नाना की बातें सुनता हुआ यह आशा कर रहा था कि उनकी बातें मुझे अपने हृदय के दुःख और उस पीले गड्ढे को भूल जाने में मदद देगी जिसकी बगल में वे काले-काले नम धब्बे दिखाई दिये थे। परन्तु नानी तीखी आवाज़ में बोल उठी :

"चुप भी रहो। इन शब्दों को रटते तुम्हारा जीवन बीत गया, लेकिन क्या कभी उनसे किसी का भला हुआ? होता भी कैसे, सारी उम्र तुम लोगों को नोचते-खाते ही रहे, जैसे जंग़ लोहे को खाता है..."

नाना ने भिनभिनाकर नानी की ओर देखा और फिर चुप हो गये।

साँझ के समय फाटक पर ल्युद्‌मीला को मैंने सुबह का सारा हाल बताया। लेकिन मेरी बातों का उसपर कोई ख़ास असर नहीं पड़ा।

"अनाथ होना अच्छा है। अगर मेरे माँ-बाप मर जायें तो अपनी बहन को अपने भाई के पास छोड़ मैं जीवन भर के लिए मठ चली जाऊँ। इसके सिवा मैं और कर भी क्या सकती हूँ? लँगड़ी होने की वजह से मेरा विवाह कभी होगा नहीं—मैं काम कर नहीं सकती। और अगर विवाह हो भी गया तो मैं लँगड़े बच्चों को ही जन्म दूँगी।"

मुहल्ले की अन्य सभी सयानी स्त्रियों की भाँति बड़ी समझदारी से उसने बातें की, लेकिन उस साँझ के बाद न जाने क्यों उसमें मेरी दिलचस्पी खत्म हो गयी। सच तो यह है कि मेरा जीवन भी कुछ ऐसे ढर्रे पर चल पड़ा कि उससे मिलने का मौका तक न मिलता।

भाई की मृत्यु के कुछ दिन बाद नाना ने मुझसे कहा :

"आज जल्दी सो जाना। कल सूरज निकलते ही मैं तुझे जगा दूँगा और दोनों लकड़ियाँ बटोरने जंगल चलेंगे..."

नानी ने कहा, "और मैं जड़ी-बूटियाँ बटोरकर लाऊँगी।"

हमारी बस्ती से डेढ़-दो कोस दूर दलदली भूमि में, भोज और चीड़ वृक्षों का जंगल था। सूखे वृक्षों और टूटी टहनियों की वहाँ भरमार थी। एक बाजू वह ओका नदी तक और दूसरे बाजू मास्को जानेवाली सड़क से भी परे तक फैला हुआ था। उसकी फुनगियों के ऊपर देवदार वृक्षों का घना झुण्ड एक ऊँचे, काले तम्बू के रूप में दिखाई देता था जो 'सावेलोव का अयाल' कहलाता था।

काउण्ट सुवालोव इस सारी दौलत के मालिक थे और इसकी कोई ख़ास देखभाल नहीं की जाती थी। कुनाविनो के निवासी इसे अपनी सम्पत्ति समझते थे और इसमें से सूखी झाड़ियाँ बटोर ले जाते थे और कभी-कभी तो जानदार वृक्षों तक को काट डालते थे। पतझड़ शुरू होते ही हाथों में कुल्हाड़ियों और कमर में रस्सी बाँधे दसियों लोग यहाँ से जाड़े भर के लिए ईंधन ले जाते थे।

पौ फटते ही हम तीनों ओस में भीगे रुपहले-हरे खेत में चले जा रहे थे। हमारे बाँयी ओर ओका नदी के पार द्यात्लोवी पहाड़ियों की लाल-पीली बग़लों के ऊपर, श्वेत नीज़्नी नोव्गोरोद के हरे बाग़-बग़ीचों और गिरज़ों के सुनहरे गुम्बजों के ऊपर आलसी रूसी सूरज धीरे-धीरे उदय हो रहा था। शान्त और गन्दली ओका नदी की ओर से हवा के हल्के-हल्के और नींद में मदमाते झोंके आ रहे थे। सुनहरे वाटरकप झूल रहे थे, ओस के बोझ से झुके बैंगनी ब्लूबेल फूल मूक दृष्टि से धरती को निहार रहे थे, रंग-बिरंगे सदाबहार फूल कम उपजाऊ धरती पर मुरझाए-से हिल-डुल रहे थे और गुलाबी रंग की वे कलियाँ—रात की सुन्दरी शोभा—लाल सितारों की भाँति चटक रही थी।

काली फ़ौज जैसा जंगल हमारी ओर बढ़ता आ रहा था। पंखों वाले चीड़ वृक्ष भीमाकार पक्षियों की भाँति मालूम होते थे और भोज वृक्ष सुघड़ युवतियों जैसे लगते थे। दलदली भूमि की तेजाबी गन्ध मैदान में फैल रही थी। मेरा कुत्ता अभी लाल जीभ निकाले मेरे साथ-साथ चल रहा था, वह एकाएक रुक जाता, नाक सिकोड़कर कुछ सूँघता और असमंजस में पड़कर लोमड़ी जैसा अपना सिर हिलाता।

नाना नानी की ऊनी जाकेट और बिना छज्जे की पुरानी तथा पिचकी हुई सी टोपी पहने थे। वह आँख सिकोड़ते, मन ही मन मुस्कराते, अपनी पतली टाँगों को बड़ी सावधानी से उठाते हुए दबे पाँव चल रहे थे। नानी नीला ब्लाउज और काला घाघरा पहने थी तथा सिर पर सफ़ेद रुमाल बाँधे थी। वह इतनी तेज़ी से लुढ़कती-पुढ़कती चल रही थी कि साथ देना मुश्किल था।

जंगल के हम जितने ही नज़दीक पहुँचते जा रहे थे, नाना की जीवन्तता भी उतनी ही अधिक बढ़ती जा रही थी। वह कखारने लगे, गहरी साँस खींचकर उन्होंने फेफड़ों में खूब वायु भरी और बोलना शुरू किया—पहले कुछ अटक-अटककर और

अटपटे अन्दाज़ में, फिर मानो उन पर नशा-सा छा गया, और वह चहकते हुए सुन्दर रूप में कहते गये :

"जंगल भगवान के लगाए हुए बाग-बगीचे हैं। अन्य किसी ने नहीं बल्कि हवा ने—भगवान के मुँह से निकली दैवी साँस ने—इन्हें लगाया है... जिगुली की बात है, बहुत पहले की जब मैं जवान था और बजरा खींचने का काम करता था... आह, अलेक्सेई, तुझे वह सब देखना भला कहाँ नसीब होगा जो मैं देख चुका हूँ! ओका के किनारे-किनारे, कासीमोव से लेकर मूरोम तक, बस जंगल ही जंगल। या फिर वोल्गा के उस पार—ठेठ उराल तक—जंगलों के सिवा और कुछ नहीं! अन्तहीन और अद्भुत सौन्दर्य हिलोरें लेता था!.."

नानी ने कनखियों से उन्हें देखा और मुझे आँख मारकर नाना की ओर इशारा किया, पर नाना थे कि अपनी धुन में चले जा रहे थे—टीलों और ठूँठों से ठोकर खाते, लड़खड़ाते और सम्भलते और मानो अँजुलि भर-भरकर हलके-फुलके शब्दों को बिखेरते, जो मेरी स्मृति में जमकर बैठते जाते थे।

"बजरा तेल के पीपों से लदा था और हम उसे खींच रहे थे। सन्त मकारी के दिन मेला होता है न, उसी में हमें पहुँचना था। हमारे साथ मालिक का कारिंदा था। नाम किरील्लो, पुरेख़ का निवासी। और एक पुराना, अनुभवी मज़दूर था, तातार, कासीमोव का रहनेवाला—अगर मैं भूलता नहीं तो आसफ़ उसका नाम था... हाँ तो, जब हम जिगुली पहुँचे, बहाव के प्रतिकूल ऐसी आँधी आयी कि उसके थपेड़ों ने हमारी जान ही निकाल ली, पाँव वहीं रुक गये, दम फूल गया और हम बस हाँफते ही रह गये। सो हम तट पर आ गये और सोचा कि कुछ दलिया ही पका लें। मई का महीना था और धरती पर वसन्त छाया था। वोल्गा अच्छा-ख़ासा सागर बनी हुई थी और हँसों के झुण्ड की भाँति, हजारों की संख्या में झागदार लहरें कास्पियन सागर की ओर तैरती चली जा रही थीं। वसन्त का हरियाला बाना धारण किये जिगुली की पहाड़ियाँ आसमान छूती थीं, आसमान में सफ़ेद बादल विचर रहे थे और सूरज धरती पर सोना बरसा रहा था। सो हम सुस्ताने बैठ गये, जी भरकर प्रकृति के इस समूचे सौन्दर्य का हमने पान किया और हमारे हृदय में तरलता छा गयी, हम एक-दूसरे के प्रति अधिक दयालु हो गये। उत्तरी हवा चल रही थी, लेकिन वहाँ तट पर बड़ा सुहावना मालूम होता था और भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही थी। साँझ ढलते ही हमारा किरील्लो जो बड़ी उम्र और गम्भीर स्वभाव का मर्द था, उठकर खड़ा हो गया और अपने सिर से टोपी उतारकर बोला, 'हाँ तो, जवानो, अब न मैं तुम्हारा मुखिया हूँ और न नौकर। तुम अब अकेले ही अपना काम सम्भालना। मुझे जंगल बुला रहे हैं, सो मैं चला!' हम सब घबरा गये। जहाँ के तहाँ मुँह बाए बैठे रहे। भला ऐसा भी कभी हुआ है? मालिक के सामने जवाबदेह व्यक्ति के बिना कैसे काम चल सकता है—मुखिया के बिना लोग कैसे आगे

बढ़ सकते हैं! माना कि यह हमारी जानी-पहचानी वोल्गा ही थी, लेकिन इससे क्या, सीधे रास्ते पर भी भटका जा सकता है। लोग तो मूर्ख जानवर ठहरे, एकदम दयाहीन। सो हम डर गये। लेकिन वह था कि अपनी जिद्द पर अड़ा रहा, 'मैं बाज आया इस जीवन से। गड़रिए की भाँति तुम्हें हाँकते रहना मुझे पसन्द नहीं। मैं तो जंगल में जाऊँगा!' हम में से कुछ थे जो उसकी मरम्मत करने और उसे रस्सियों से बाँधकर जकड़ने के लिए उतावले हो उठे। लेकिन कुछ ऐसे भी थे जो उसके पक्ष में थे। वे चिल्लाए, 'ठहरो!' और पुराना तातार मजदूर बोला, 'मैं भी चल दिया!' अब तो मामला बिल्कुल ही चौपट था। मालिक पर तातार की दो फेरों की मजदूरी चढ़ी थी, और यह तीसरा फेरा भी आधा पूरा हो चुका था। उन दिनों को देखते हुए ख़ासी बड़ी रकम उसे मिलती। रात होने तक हम चीखते-चिल्लाते रहे। अँधेरा घना होने पर एकदम सात जने चले गये—अब हम चौदह या सोलह ही रह गये। ऐसा होता है जंगल का जादू।"

"क्या वे डाकू बन गये?"

"कौन जाने, डाकू बन गये या सन्यासी। उन दिनों यह सब एक जैसा ही मामला समझा जाता था।"

सलीब का चिह्न बनाते हुए नानी ने कहा :

"आह, माता मरियम, क्या हाल हो गया है तेरी सन्तानों का! देखकर हृदय कराह उठता है।"

"शैतान के चंगुल में न फँसें, इसीलिये तो भगवान ने हम सब को बुद्धि प्रदान की थी..."

हमने दलदल के टीलों और चीड़ वृक्षों के मरियल झुरमुटों के बीच से जानेवाली एक नम पगडण्डी पर बढ़ते हुए जंगल में प्रवेश किया। मुझे लगा कि पुरेख़ निवासी किरील्लो की भाँति अगर हमेशा जंगल में ही रहा जाये तो कितना बढ़िया हो। जंगल में न लड़ाई-झगड़ा था, न नशे में धुत्त लोगों की चीख-पुकार थी, न कोई छीना-झपटी थी। वहाँ न तो नाना की घृणित कंजूसी की याद बनी रहेगी, न माँ की रेतीली क़ब्र की। हृदय को दुखाने और जी को भारी बनानेवाली प्रत्येक चीज़ भूल जायेगी।

जब हम एक सूखे स्थल पर पहुँचे तो नानी ने कहा :

"यह जगह ठीक है। बैठकर अब कुछ पेट में भी डाल लें।"

अपनी टोकरी में से नानी ने रई की रोटी, हरा प्याज, खीरे, नमक और कपड़े में लिपटा घर का पनीर निकाला। नाना ने उलझन में पड़ते हुए आँखें मिचमिचाकर इन सब चीज़ों की ओर देखा।

"हे भगवान, मैं तो अपने साथ खाने को कुछ लाया ही नहीं!..."

"हम सब इसी में निपट जायेंगे..."

देवदार के एक ऊँचे वृक्ष के ताँबे जैसे तने से पीठ लगाकर हम बैठ गये। वायु में राल की गन्ध फैली हुई थी, खेतों की ओर से हल्की बयार बह रही थी, घास की पत्तियाँ झूम रही थीं, अपने साँवले हाथों से नानी तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ तोड़ती और मुझे बताती जाती कि सन्त जॉन घास कौन-कौन से रोग दूर करती है, कँटीली झाड़ी में क्या जादुई असर भरा पड़ा है, कि चिपचिपा दलदली गुलाब भी गुणों में किसी से कम नहीं है।

नाना हवा से गिरे पुराने वृक्ष काट रहे थे और मेरा काम था कि कटी लकड़ियों को बटोरकर एक जगह पर जमा करते जाना। लेकिन मैं खिसककर नानी के पीछे-पीछे जंगल की गहराइयों में चला गया। वृक्षों के सबल और सशक्त तनों के बीच नानी मानो तैर रही थी और रह-रहकर जब वह नम, चीड़ की काँटेनुमा पत्तियों से ढँकी धरती की ओर झुकती तो ऐसा मालूम होता जैसे पानी में डुबकी लगा रही हो। नानी चलती हुई बराबर अपने आप से बातें करती जाती थी :

"अब इन खुमियों को देखो, कितनी जल्दी निकल आयीं—यानी इस बरस ज़्यादा नहीं होंगी। हे भगवान, गरीबों का ध्यान रखने में तुम भी चूक जाते हो। जिनके घर में चूहे डण्ड पेलते हैं, उनके लिए तो ये खुमियाँ भी बहुत बड़ी न्यामत हैं!"

मैं चुपचाप और बहुत सावधानी से नानी के पीछे-पीछे जा रहा था और इस बात की बड़ी कोशिश कर रहा था कि मुझ पर उसकी नज़र न पड़े। कभी भगवान, कभी मेंढकों और कभी घास-पात से उसकी बातों में मैं बाधा नहीं डालना चाहता था...

लेकिन नानी ने मुझे देख ही लिया।

"नाना के पास जी नहीं लगा, क्यों?"

काली धरती हरे बेल-बूटों से सजी थी। उसकी ओर बार-बार झुकती हुई नानी मुझे बताती रही कि कैसे एक बार भगवान को बहुत गुस्सा आया। मानवजाति से वह इतने नाराज़ हो गये कि उन्होंने समूची धरती को बाढ़ से प्लावित कर दिया, जितने भी जीवधारी थे, सभी डूब गये!

"लेकिन माता मरियम ने, समय रहते अपनी टोकरी उठाई, सभी बीजों को बटोरकर उसमें रखा और फिर सूरज से बोलीं, 'इस छोर से उस छोर तक, सारी धरती अपनी किरणों से सुखा दो, लोग तुम्हारा गुणगान करेंगे!' सो सूरज ने धरती को सुखा दिया और माता मरियम ने छिपाकर रखे हुए बीजों को बो दिया। भगवान ने अब धरती की ओर देखा : वह फिर से पहले की भाँति हरी-भरी और आबाद थी—ढोर-डंगर, पेड़-पौधे और आदमी, सभी वहाँ मौजूद थे... भगवान के तेवर चढ़ गये। बोले, 'किसने यह दुस्साहस किया है?' तब माता मरियम ने सारी बात बता दी। लेकिन खुद भगवान को भी कुछ कम दुःख न था—धरती को उजड़ा-उजड़ा और सुनसान देखकर उनका हृदय भी मसोस उठता था। सो वह बोले, 'तुमने यह अच्छा किया जो धरती को आबाद

कर दिया, माता मरियम!'"

नानी की यह कहानी मुझे पसन्द आयी। लेकिन इसे सुनकर मुझे अचरज भी हुआ। पूरी गम्भीरता के साथ मैंने पूछा :

"क्या सचमुच ऐसा ही हुआ था? माता मरियम तो प्रलय के बहुत बाद पैदा हुई थी न?"

अब नानी के चकित होने की बारी थी।

"तुम्हें यह बात कहाँ से मालूम हुई?"

"स्कूल में–क़िताबों में लिखी है..."

यह सुन नानी का जी कुछ हल्का हुआ। बोली :

"स्कूलों में तो ऐसी ही बातें सिखाते हैं? और क़िताबें–भूल जाओ तुम उन्हें। दुनिया भर की झूठी बातों के सिवा उनमें और लिखा ही क्या है?"

और वह धीरे से, खुशमिजाजी से हँस दी।

"बेवकूफ़ों की बात तो देखो! कहते हैं, भगवान पहले से मौजूद थे, माता बाद में आयी। भला, जब माता ही नहीं थी तो भगवान को जन्म किसने दिया?"

"मुझे क्या मालूम?"

"मुझे क्या मालूम–स्कूल में यही तो पढ़ाया जाता है–मुझे क्या मालूम!"

"पादरी ने बताया था कि माता मरियम ने याकिम और अन्ना के यहाँ जन्म लिया था।"

"इसका मतलब यह है कि वह याकिम की बेटी मारीया थीं।"

नानी का पारा एकदम चढ़ गया। कड़ी नज़र से मेरी आँखों में देखकर वह बोली :

"अगर फिर कभी ऐसी बात मुँह से निकाली तो देख लेना, मुझसे बुरा कोई न होगा।"

कुछ देर बाद नानी ने समझाया :

"माता मरियम सदा से हैं–अन्य सबसे भी बहुत पहले से। भगवान ने उनके गर्भ से जन्म लिया और फिर..."

"लेकिन ईसा मसीह?"

नानी ने उलझन में पड़कर आँखें मूँछ लीं।

"ईसा मसीह... ईसा... अरे हाँ..."

मैंने देखा कि नानी से जवाब देते नहीं बन रहा है। यह मेरी जीत थी। नानी को मैंने सृष्टि के रहस्यों में उलझा दिया था, और यह मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

हम जंगल में बढ़ते ही गये जहाँ सूरज की सुनहरी किरणें नीले धलके को बींध रही थीं। सुहावना और सुखद जंगल अपनी निजी और निराली आवाज़ से गूंज रहा था–सपने में डूबी उनींदी आवाज़, जो खुद हमें भी स्वप्निल बना रही थी, अपने

साथ-साथ हमें भी सपनों की दुनिया में खींच रही थी। कहीं क्रासबिल पक्षी टिटिया रहे थे, कहीं टिटमाइस चहचहा रहे थे, कहीं कुकू के खिलखिलाकर हँसने की आवाज़ आ रही थी, कहीं ओरियोल सीटी बजा रहे थे, ईर्ष्या से भरे गोल्डफिंच निरन्तर गीत गाने में मगन थे और वे विचित्र फिंच पक्षी—विचारों में डूबे हुए अपना एक अलग शब्दजाल बुन रहे थे। मरकती मेंढक हमारी टाँगों के पास उछल रहे थे, और जड़ों की ओट में घास-सर्प अपना सुनहरा फन ऊपर उठाए उनकी ताक में था। नन्हें दाँतों से चटर-पटर करती एक गिलहरी, अपनी दुम फुलाए, देवदार वृक्ष की टहनियों में से कौंद गयी। इतनी चीज़ें थीं कि बस देखते ही रहो। और मन फिर भी यही कहता रहे कि अभी और देखो, बस देखते जाओ।

देवदार वृक्षों के तनों के बीच भीमाकार आकृतियों की एक छाया-सी दिखाई देती और अगले ही क्षण हरी गहराइयों में, जहाँ नीला और रुपहला आकाश झलक रहा था, विलीन हो जाती। धरती पर गहरी काई का शानदार कालीन बिछा था जिस पर नीली और लाल जंगली बेरियों के गुच्छों की क़सीदाकारी बनी हुई थी। हरी घास के बीच लाल जंगली बेरियाँ रक्त की बूँदों की भाँति चमकती थीं और खुमियों की भीनी तेज गन्ध जी को ललचा रही थी।

नानी ने उसाँस लेते हुए माता मरियम का नाम लिया, "दुनिया की जोत, माता मरियम।"

ऐसा मालूम होता था जैसे जंगल उसका है, और वह जंगल की। भारी-भरकम भालू की भाँति झूमती वह चल रही थी, हर चीज़ को देखती, हर चीज़ पर मुग्ध होती और कृतज्ञता के शब्द गुनगुनाती। सहृदयता उसके शरीर से प्रवाहित होकर जंगल में बहती प्रतीत हो रही थी। नानी का पाँव पड़ने पर जब काई दबकर सिमटती-सिकुड़ती और पाँव उठ जाने पर जब वह फिर से उभरती-फैलती तो मुझे एक ख़ास आनन्द की अनुभूति होती।

जंगल में घूमते-घूमते मैं सोचने लगा कि कितना अच्छा हो अगर मैं डाकू बन जाऊँ और अमीरों को लूटकर ग़रीबों का घर भरूँ। कितना अच्छा हो अगर इस दुनिया में सभी खुशहाल और खाते-पीते हों, न वे एक-दूसरे से जलें, न कुत्सित कुत्तों की भाँति एक-दूसरे पर गुर्राएँ! और कितना अच्छा हो कि नानी के भगवान और माता मरियम के पास जाकर मैं उनसे भेंट करूँ और उन्हें बताऊँ—सम्पूर्ण सत्य उनके सामने खोलकर रख दूँ कि लोग कितना दुःखद और कितना भयानक जीवन बिताते हैं और मरने के बाद भी कितनी बुरी तरह एक-दूसरे को निकम्मी रेत में दफ़नाते हैं। और यह कि कितने अधिक और अनावश्यक दुःखों ने धरती को दबोच रखा है। और यदि माता मरियम मेरी बात का यकीन करें, तो मैं उनसे कुछ ऐसी बुद्धि माँगू जिससे दुनिया की चीज़ों को बदला जा सके, उन्हें पहले से बेहतर बनाया जा सके। मैं उनसे,

माता मरियम से, कहूँ कि मुझे कुछ ऐसा बनाओ जिससे लोग मेरा विश्वास करें और मैं निश्चय ही उनके लिए अच्छे जीवन का रास्ता खोज निकालूँगा! माना कि अभी मैं छोटा ही हूँ, लेकिन इससे क्या? ईसा मसीह मुझसे एक ही साल तो बड़े थे और एक से एक उनकी बातों को सुनते के लिए आते थे!..

एक दिन मैं अपने विचारों में इतना डूबा था कि मुझे कुछ ध्यान न रहा और एक गहरे, खोहनुमा गड्ढे में मैं जा गिरा। एक ठूँठ की डाल से रगड़ खाकर मेरी बगल और सिर की चमड़ी उधड़ गयी। गड्ढे की तलहटी में ठण्डे और चिपचिपे कीचड़ में मैं धँसा पड़ा था। मन ही मन शर्म से मैं गड़ा जा रहा था। चिल्लाकर नानी को डराना मैं नहीं चाहता था, लेकिन इसके सिवा और चारा भी क्या था। इसलिये मैंने उसे पुकारा।

नानी ने पलक मारते मुझे बाहर निकाल लिया और सलीब का चिह्न बनाते हुए बोली :

"शुक्र है परमात्मा का! गड्ढा नहीं, यह तो भालू की माँद है। गनीमत समझो कि वह इस समय माँद में नहीं है। लेकिन अगर वह मौजूद होता तो?"

और नानी आँसुओं के बीच हँसने लगी। इसके बाद एक झरने पर ले जाकर नानी ने मेरे घाव धोए, दर्द दूर करने के लिए घावों पर कुछ पत्ते रखे, अपनी क़मीज़ फाड़कर उन पर पट्टी बाँधी और मुझे रेलवे-गार्ड की झोंपड़ी में ले गयी। मैं इतनी कमज़ोरी महसूस कर रहा था कि अपने पाँवों घर नहीं पहुँच सकता था।

फिर भी लगभग हर दिन मैं नानी से कहता :

"चलो, जंगल चलें!"

और नानी बड़ी खुशी से इसके लिए तैयार हो जाती। हम रोज़ जंगल जाते, जड़ी-बूटियाँ और जंगली फल, बेरियाँ बटोरते, खुमियाँ और जंगली बादाम जमा करते। इन सब चीज़ों को नानी बाज़ार में जाकर बेचती और इनसे जो पैसा मिलता, उनसे हम गुज़र करते।

पतझड़ बीतने तक यही सिलसिला चलता रहा।

नाना का वही हाल था। "मुफ़्तखोर!" नाना चीखते, यद्यपि उनकी खाने की चीज़ों को हम छूते तक नहीं थे।

जंगल मुझमें मानसिक शान्ति और खुशहाली की भावना जागृत करता, और यह भावना मुझे अपने हृदय के दुःख और मन खट्टा करनेवाली अन्य सभी बातों को भूलने में मदद देती। साथ ही मेरी अनुभूति भी तीव्र होती जाती, जंगल में देखने-परखने की मेरी शक्ति का भी अद्‌भुत विकास हुआ, मेरी दृष्टि पैनी हो गयी, मेरे कान आवाज़ों को और भी तेज़ी से पकड़ने लगे। मेरी स्मरण शक्ति बढ़ी और दिमाग़ का वह खाना जिसमें देखी-सुनी बातें जमा रहती हैं, और भी बड़ा हो गया।

और नानी—उसकी कुछ न पूछो। जितना ही मैं उसे देखता, उतना ही चकित होता। यों तो मैं नानी को हमेशा ही अन्य सबसे अलग, और अन्य सबसे ऊँचा समझता था—धरती के जीवों में सबसे अधिक सहृदय, सबसे अधिक समझदार। और मेरे इस विश्वास को नानी ने हर घड़ी पुष्ट ही किया। एक दिन की बात है। साँझ का समय था, खुमियाँ बटोरने के बाद हम घर लौट रहे थे। जंगल के छोर पर पहुँचकर नानी सुस्ताने के लिए बैठ गयी और मैं कुछ और खुमियाँ बटोरने की आशा से पेड़ों के पीछे चल दिया।

सहसा नानी की आवाज़ सुनकर मैंने मुड़कर देखा। नानी पगडंडी के बीचोंबीच शान्त भाव से बैठी थी और हमारी बटोरी हुई खुमियों की जड़ें काट-काटकर अलग कर रही थी। नानी के पास में ही भूरे रंग और पतले बदन का एक कुत्ता जीभ निकाले खड़ा था।

नानी कह रही थीं, "जा, भाग यहाँ से! जा, भगवान तेरा भला करे!"

कुछ ही दिन पहले वालेक ने मेरे कुत्ते को ज़हर देकर मार डाला था। मेरे मन में हुआ कि इस नये कुत्ते को ही क्यों न पाल लिया जाये। मैं पगडण्डी की ओर लपका। कुत्ते ने अपने सिर को मोड़े बिना ही कमान की भाँति विचित्र ढंग से अपना बदन तान लिया और हरे रंग की अपनी भूखी आँखों से मेरी ओर देखा, फिर अपनी दुम को टाँगों के बीच दबाये जंगल की ओर छलाँगें भरने लगा। उसकी चाल-ढाल और तेवर कुत्तों जैसे नहीं थे, और सीटी बजाकर जब मैंने उसे बुलाना चाहा तो वह बेतहाशा झाड़ियों में घुस गया।

नानी ने मुस्कराकर कहा, "देखा तुमने? धोखे में पहले मैंने भी उसे कुत्ता समझ लिया था। फिर देखा—दाँत तो भेड़िये के हैं, और गर्दन भी! मैं तो डर ही गयी : ठीक है, बोलो, अगर तू भेड़िया है तो जा भाग यहाँ से! शुक्र है, गर्मियों में भेड़िये ज़्यादा ख़ूँख़ार नहीं होते..."

जंगल में भटकना तो नानी जैसे जानती ही नहीं थी। चाहे जो हो, घर का रास्ता ढूँढ़ पाने में वह कभी नहीं चूकती थी। घास-पात की गन्ध से ही वह पता लगा लेती कि अमुक स्थान पर किस किस्म की खुमियाँ होती हैं और अमुक स्थान पर किस किस्म की। बहुधा नानी मेरी जानकारी की भी परीक्षा लेती :

"लाल खुमी किस पेड़ के नीचे उगती है? अच्छी और बिषैली खुमियों की क्या पहचान है? पर्णांग झाड़ी की ओट में कौन सी खुमियां उगती हैं?"

किसी पेड़ की छाल पर खरोंच का नन्हा-सा निशान देखकर नानी गिलहरी के कोटर का पता लगा लेती। मैं पेड़ पर चढ़ता और गिलहरी के कोटर में जाड़े के लिए जमा सारे जंगली बादाम निकाल लेता। कभी-कभी, पूरी एक पसेरी तक जंगली बादाम हाथ लग जाते।

एक बार, उस समय, जब कि मैं पेड़ पर चढ़ा गिलहरी की जमा पूँजी निकालने में व्यस्त था, किसी शिकारी ने बन्दूक चलाई और एक साथ सत्ताइस छर्रे मेरे बदन में घुस गये। नानी ने ग्यारह छर्रे तो सुई से खोद-खोदकर निकाले, बाकी कई साल तक मेरे बदन में ही घुसे रहे और धीरे-धीरे, एक-एक करके, अपने आप बाहर निकलते रहे।

नानी को दर्द के प्रति मेरी सहनशीलता बहुत पसन्द आयी।

उसने मेरी प्रशंसा की, "शाबाश, सहन है तो रहन है।"

खुमियों और जंगली बादामों की बिक्री से जब कभी कुछ फालतू पैसा मिल जाता तो वह रात को पास-पड़ोस के घरों का चक्कर लगाती और खिड़कियों की ओटक पर अपना 'गुप्त दान' रख आती। लेकिन खुद चिथड़ों और पैबन्द लगे कपड़ों में ही लिपटी रहती। चाहे कोई त्यौहार हो या उत्सव, नानी की इस वेशभूषा में कभी कोई अन्तर न पड़ता।

नाना कुढ़कर बड़बड़ाते, "इसने तो भिखमंगों को भी मात कर दिया। देखकर शर्म मालूम होती है!"

"शर्म की इसमें क्या बात है? मैं तुम्हारी बेटी तो हूँ नहीं, जिसे ब्याहने की फ़िक्र हो..."

घर में अब नित्य ही खटपट होती।

"मैंने क्या औरों से ज़्यादा पाप किये हैं?" चोट खाए स्वर में नाना चिल्लाते। "लेकिन भगवान है कि सारी सज़ा मुझे ही देने पर तुला है!"

नानी उन्हें और भी चिढ़ाती :

"शैतान को कोई भी धोखा नहीं दे सकता।"

फिर, अकेले में, मुझे समझाती :

"देखो न, बूढ़े के सिर पर शैतान का भय किस बुरी तरह सवार है। डर के मारे जर्जर हुआ जा रहा है... अरे, बेचारा..."

गर्मी के उन दिनों में मैं बहुत तगड़ा हो गया, लेकिन जंगल ने मेरा मेल-मिलाप खत्म कर दिया। अपने संगी-साथियों के जीवन और ल्युद्मीला में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रही। उसके सयानपन से मैं ऊब चला...

एक दिन जब नाना नगर से लौटे तो वह बुरी तरह भीग गये थे। शरद के दिन थे और बारिश हो रही थी। नाना दरवाज़े पर खड़े होकर गौरैया की भाँति फड़फड़ाए और गर्व से तनते हुए बोले :

"तो, लफंगे, हो जा तैयार, कल से काम पर जायेगा!"

नानी ने झुँझलाकर पूछा :

"क्या कहा, कहाँ जायेगा?"

"तुम्हारी बहन मत्र्योना के यहाँ—उसके लड़के के पास..."

"यह तो तुमने अच्छा नहीं सोचा।"

"चुप रह, बेवकूफ औरत! कौन जाने, वहाँ यह नक़्शानवीस बन जाये।"

बिना कुछ कहे नानी ने अपना सिर झुका लिया।

उसी साँझ मैंने ल्युद्मीला को बताया कि मैं नगर जा रहा हूँ और वहीं रहूँगा।

वह खोयी-खोयी-सी बोली, "मुझे भी कुछेक दिनों में शहर ले जायेंगे। पिता जी मेरी टाँग कटवा देना चाहते हैं, टाँग काट देने से मैं अच्छी हो जाऊँगी।"

गर्मियों में वह सूखकर और भी दुबली हो गयी थी। उसके चेहरे पर नीलापन छा गया था और आँखें अब बहुत बड़ी दिखाई देती थीं।

मैंने पूछा, "डर लगता है?"

"हाँ," उसने जवाब दिया और चुपचाप रोने लगी।

उसे उदास देखकर ढाढ़स बँधाने के लिए मेरे पास कुछ भी तो नहीं था। नगर के जीवन से उसकी ही नहीं, खुद मेरी भी रुह काँपती थी। बहुत देर तक हम दोनों भारी उदासी में डूबे, चुपचाप, एक-दूसरे से चिपके बैठे रहे।

अगर गर्मियों के दिन होते तो मैं नानी के सिर पड़ता और कहता कि चलो, भीख माँगने चलें! नानी बचपन में यह काम कर भी चुकी थी। ल्युद्मीला को भी हम अपने साथ ले लेते। वह एक छोटे-से कोने में बैठ जाती और मैं उसे खींचता...

लेकिन यह तो शरद के दिन थे। सड़कों पर नमी भरी हवाएँ सनसनाती चलती थीं और आकाश अनगिनत बादलों से घिरा रहता था। धरती सिकुड़ गयी थी और गन्दी, अभागिन-सी लगती थी...

4

मैं अब फिर नगर में रहने लगा। सफ़ेद रंग का, ताबूत जैसा एक दुमंज़िला मकान था जिसमें बहुत-से परिवार रहते थे। घर यों तो नया था, लेकिन खोखला और फूला हुआ-सा लगता था, सात जन्म के भूखे भिखारी की तरह जिसने एकाएक धनवान बन जाने पर तुरन्त ही खा-खाकर अपना पेट अफरा लिया हो। उसकी बग़ल सड़क की ओर थी। दोनों मंज़िलों में आठ-आठ खिड़कियाँ थी और सड़क के रुख, जिधर मकान का सामना होना चाहिए था, हर मंज़िल में चार-चार। नीचे की खिड़कियाँ आहाते में एक तंग गलियारे की ओर खुलती थीं, और ऊपर की खिड़कियों से बाड़े के उस पार गन्दा खड्ड और धोबिन का छोटा-सा घर दिखाई देता था।

असल में गली जैसी वहाँ कोई चीज़ नहीं थी। मकान के सामने यही गन्दा खड्ड फैला हुआ था, जिसपर दो जगह सँकरे बाँध बने हुए थे। उसका बाँया छोर जेलख़ाने

को छूता था। खड्ड में बस्ती का कूड़ा-करकट फेंका जाता था और उसकी तलहटी में गन्दगी की एक मोटी हरी तह जम गयी थी। दाहिने सिरे पर गन्दा ज़्वेज़्दिन कुण्ड रिसता रहता था। खड्ड का मध्य भाग ठीक हमारे घर के सामने था जिसके आधे हिस्से में कूड़ा-कचरा भरा था और कँटीली झाड़ियाँ, घास-पात तथा सरकण्डे उगे थे। बाकी आधे हिस्से में पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोवस्की ने अपना बगीचा लगा रखा था। बगीचे के बीच में हरे रंग में रंगी खपचियों से बना मण्डप था। मण्डप में ढेले फेंकने पर खपचियाँ झन्नाकर टूटती थीं।

जगह बेहद गन्दी और बेहद उबाऊ थी। सड़क ने यहाँ की कूड़ा-कचरा मिली चिकनी मिट्टी को बेरहमी के साथ कुरूप करके उसे लाल कोलतार-सा बना दिया था, जो पाँवों में इतनी बुरी तरह चिमट जाता था कि छुड़ाए न छूटता। छोटी-सी जगह में गन्दगी की इतनी भरमार मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। खेतों और जंगलों की स्वच्छता में रमने के बाद नगर का यह कोना मुझमें निराशा भरता था।

खड्ड के उस पार टूटे-फूटे मटमैले बाड़ों की पाँत दिखाई देती थी। दूरी पर उनमें भूरे रंग का वह मकान भी था जिसमें मैं जाड़ों में रहा था जब जूतों की दुकान में छोकरे का काम करता था। इस मकान को अपने इतना निकट देख मुझे और भी बुरा मालूम होता। क्यों मुझे फिर इसी सड़क पर रहना पड़ रहा है?

अपने नये मालिक से मैं पहले से परिचित था। वह और उसका भाई कभी मेरी माँ से मिलने आया करते थे, और उसका भाई बड़े ही रहस्यपूर्ण ढंग से पिनपिनाकर कहता था :

"अन्द्रेई पापा! अन्द्रेई पापा!"

दोनों के दोनों अब भी बिल्कुल वैसे ही थे। बड़े भाई की तोते जैसी नाक और लम्बे बाल थे। वह अच्छे दिल का आदमी मालूम होता था। छोटा भाई वीक्तर पहले की भाँति अब भी वैसा ही घुड़मुँहा था, और उसके चेहरे पर भूरी बिंदिया थी। उनकी माँ—मेरी नानी की बहन—बड़ी चिड़चिड़ी और झगड़ालू थी। बड़े लड़के का विवाह हो चुका था। उसकी पत्नी काली आँखोंवाली, मैदे के आटे की डबलरोटी की भाँति सफ़ेद और मोटी-ताजी थी।

शुरू के दिनों में ही उसने मुझे दो-एक बार जताया :

"तेरी माँ को मैंने चमकदार काँच के मोती जड़ा रेशमी लबादा दिया था..."

लेकिन न जाने क्यों, मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था कि उसने माँ को रेशमी लबादा भेंट किया था, और यह कि माँ ने उसे स्वीकार कर लिया था। अगली बार जब फिर उसने लबादे का ज़िक्र छेड़ा तो मैंने कहा :

"दिया था तो डींग क्यों मारती हो?"

यह सुनकर वह सुन्न रह गयी।

"क्या-आ-आ-आ? तूने मुझे समझ क्या रखा है?"

उसका चेहरा लाल चकत्तों से भर गया, आँखें बाहर निकल आयीं, उसने पति को आवाज़ दी।

कान में पेंसिल खोंसे और हाथ में परकार लिये पति ने रसोईघर में पाँव रखा। अपनी पत्नी की शिकायत सुनने के बाद उसने मुझसे कहा :

"इन्हें और दूसरे सबको यहाँ आप कहकर बुलाना चाहिए। और ज़बान को सम्भालकर रखना चाहिए!"

फिर वह बेसब्री से अपनी पत्नी की तरफ घूम गया।

"इस तरह की बकवास से मेरा दिमाग़ न चाटा करो!"

"बकवास... तुम इसे बकवास कहते हो! जब तुम्हारे अपने रिश्तेदार ही..."

"भाड़ में जायें रिश्तेदार!" उसने कहा, और फिर लपककर चला गया।

मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता था कि ये लोग नानी के रिश्तेदार हैं। मैंने देखा कि सगे-सम्बन्धी एक-दूसरे से जितना बुरा व्यवहार करते हैं, उतना अज़नबी भी नहीं कर पाते। एक-दूसरे की कमज़ोरियों और बेहूदगियों को जितना अधिक वह जानते हैं उतना कोई बाहरी आदमी कैसे जान सकता है। सो वह जमकर एक-दूसरे के बारे में निन्दा-चुगली कहते हैं, बात-बे-बात आपस में लड़ते और झगड़ते हैं।

मुझे अपना मालिक पसन्द आया। वह कुछ इतने मन-भावने ढंग से अपने बालों को पीछे की ओर झटका देता और उन्हें कानों की ओट में कर लेता कि बहुत ही भला मालूम होता। उसे देखकर न जाने क्यों मुझे 'बहुत खूब' की याद आती। वह अक्सर खूब खुलकर हँसता। हँसते समय उसकी सलेटी आँखें प्रसन्नता से चमकने लगतीं और उसके तोते जैसे नाक के दोनों ओर बहुत ही लुभावनी झुर्रियाँ पड़ जातीं।

"यह चोंच लड़ाना बन्द करो, कुड़क-मुर्ग़ियों!" नम्रता के साथ मुस्कराते हुए वह अपनी माँ और पत्नी को कहता, उसके छोटे-छोटे और खूब सटकर जमे हुए दाँत मोती-से झलकने लगते।

दोनों की दोनों आये दिन लड़ती और झगड़ती थीं। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज होता कि कितनी जल्दी और कितनी आसानी से ये एक-दूसरे का मुँह नोचने पर उतर आती हैं। सुबह तड़के से ही दोनों बिना बाल बनाए, अस्त-व्यस्त कपड़ों में आँधी की भाँति उखाड़-पछाड़ करती, कमरों में इस प्रकार घूमती मानो घर में आग लगी हो। दिन भर वे इसी प्रकार तौबा-तिल्ला मचाए रहतीं और केवल दोपहर के भोजन, चाय और साँझ के खाने के समय जब वे मेज़ पर बैठतीं तो घर में कुछ शान्ति दिखाई देती। खाने-पीने पर वे बुरी तरह टूटतीं और जब तक खाते-खाते थक न जातीं, उन पर मस्ती न छा जाती, खाती-पीती रहतीं; भोजन के समय बातें पकवानों की होतीं और बड़े झगड़े की तैयारी में रह-रहकर आलस भरी चूँ-चूँ होती। सास चाहे जो भी पकाती, बहू ताना

कसे बिना न चूकती :

"हमारी माँ तो यह ऐसे नहीं बनातीं!"

"ऐसे नहीं तो इससे खराब बनाती हैं।"

"नहीं, इससे अच्छा बनाती हैं!"

"तो, जाओ, चली जाओ अपनी माँ के पास।"

"मैं इस घर की मालकिन हूँ!"

"और मैं कौन हूँ?"

"तुमने फिर चोंचे लड़ाना शुरू कर दिया, कुड़क-मुर्ग़ियों!" पति बीच में ही टोकता। "भेजा फिर गया है क्या तुम्हारा?"

घर में हर चीज़ इतनी बेढंगी, बेडौल और अटपटी थी कि कहते नहीं बनता। रसोईघर से अगर भोजन के कमरे में जाना हो तो एक छोटे-से, तंग और सँकरे पाख़ाने में से गुज़रना पड़ता था। ले-देकर समूचे फ़्लैट में एक ही पाख़ाना था। ख़ाने की चीज़ें और समोवार सब इधर से ही ले जाकर मेज़ पर सजाया जाता था। इस पर नित्य ही मज़ाक होता और कोई न कोई मज़ेदार घटना घटती रहती। मेरे कामों में एक काम यह भी था कि पाख़ाने की टंकी कभी खाली न होने पाए। मैं रसोईघर में पाख़ाने के दरवाज़े के ठीक सामने और बाहर की ओर जानेवाले दरवाज़े की बगल में सोता था। मेरा सिर रसोईघर के अलावघर की गर्मी से भन्नाने लगता और पाँव बाहरवाले दरवाज़े से आनेवाली ठण्डी हवा से सुन्न हो जाते। रात को सोने जाते समय मैं फ़र्श पर बिछी तमाम दरियों को बटोरकर अपने पाँवों पर डाल लेता।

बड़ा कमरा बहुत ही उदास और सूना-सूना-सा लगता। उस में खिड़कियों के बीच दीवार पर दो आयीने लटके हुए थे, ताश खेलने की दो छोटी मेज़ें और बारह वीयेनी कुर्सियाँ रखी हुई थीं, और 'नीवा' पत्रिका से पुरस्कार में मिली और रुपहले चौखटों में जड़ी तसवीरें दीवारों के सूनेपन को तोड़ने का व्यर्थ प्रयत्न करती थीं। छोटी बैठक पंचरंगी गद्देदार मेज़-कुर्सियों और अल्मारियों से अटी थी जिनके खानों में दहेज में दी गयी चीज़ें रखी थीं, चाँदी के बरतनों और चाय पीने के सेटों की नुमाइश-सी सजी थी। रही-सही कसर पूरी करने के लिए छत से तीन लैम्प लटक रहे थे जो आकार-प्रकार में एक-दूसरे से होड़ लेते मालूम होते थे। सोने के कमरे में खिड़की एक भी नहीं थी। उसमें एक भीमाकार पलंग, ट्रंक और कपड़े रखने की अल्मारियों की भरमार थी जिनसे पत्ती के तम्बाकू और फारसी बबूने की बू आती थी। ये तीनों कमरे हमेशा खाली पड़े रहते थे और समूचा परिवार भोजन करने के छोटे-से कमरे में ही कसमसाता और हर घड़ी एक-दूसरे से टकराता रहता था। सुबह आठ बजे नाश्ता करने के तुरन्त बाद मालिक और उसका भाई अपनी मेज़ को फैला लेते, सफ़ेद क़ागज़ की परतें, ड्राइंग के औज़ार, पेंसिलें और रोशनाइयों से भरी प्यालियाँ लाकर काम में जुट

जाते, एक मेज़ के एक छोर पर रहता, और दूसरा ठीक उसके सामने। मेज़ हिलती थी और समूचे कमरे को घेरे थी। जब कभी छोटी मालकिन और बच्चे के खिलानेवाली दाई बच्चों के कमरे से बाहर आतीं तो मेज़ से टकराये बिना न रहतीं।

तभी वीक्तर चिल्लाकर कहता :

"देखकर नहीं चला जाता!"

मालकिन आहत चेहरे से अपने पति की ओर देखती और कहती :

"वास्या, इसे मना कर दो कि मुझ पर इस तरह न चिल्लाया करे।"

पति शान्त स्वर में समझाता :

"जरा सम्भलकर चला करो जिससे मेज़ न हिले।"

"मेरे पेट हो रहा है और यहाँ इतनी घिचपिच है..."

"अच्छी बात है। हम अपना ताम-झाम उठाकर बड़े कमरे में चले जायेंगे।"

"हाय राम, तुम भी कैसी बातें करते हो? बड़ा कमरा मेहमानों को बैठाने की जगह है या काम करने की?"

पाखाने के दरवाज़े में बूढ़ी मालकिन मात्र्योना इवानोव्ना का चेहरा दिखाई देता—चूल्हे में से निकले चुकन्दर की भाँति लाल।

"जरा इसकी बातें तो सुनो, वास्या!" वह चिल्लाकर कहती। "एक तुम हो कि काम करते-करते मरे जाते हो और एक यह है कि बच्चे-कच्चे जनने के लिए इसे चार कमरे भी छोटे पड़ते हैं! अच्छी राजकुमारी से शादी की है तुमने, जिसके भेजे में सिवा गोबर के कुछ नहीं है!"

वीक्तर तिरस्कार से खिलखिला उठता। मालिक चिल्लाता :

"बस करो!"

लेकिन उसकी पत्नी, अपनी सास पर तीखे वाणों की बौछार करते और जी भरकर कोसते हुए कुर्सी पर गिर पड़ती और लगती सिसकने :

"मैं यहाँ नहीं रह सकती! मैं गले में रस्सी बाँधकर लटक जाऊँगी!"

"मुझे काम भी करने देगी या नहीं, कम्बख़्त!" गुस्से से सफ़ेद होता हुआ पति चिल्लाता। "घर न हुआ पागलख़ाना हो गया! आख़िर तुम लोगों का दोजख़ भरने के लिए ही तो मैं यहाँ खड़े होकर अपनी कमर तोड़ता हूँ, कुड़क मुर्ग़ियों!.."

पहले-पहल ये झगड़े मुझे खूब भयभीत करते थे। एक बार तो मेरी जान ही सूख गयी। मालकिन ने गुस्से में डबल रोटी काटने का चाकू उठाया, पाखाने में घुसकर भीतर से चटखनी चढ़ा दी, और लगी वहशियों की भाँति चीखने-चिल्लाने। एक क्षण के लिए सारे घर में सन्नाटा-सा छा गया। फिर मालिक भागकर दरवाज़े के पास पहुँचा और झुककर एकदम दोहरा हो गया।

"मेरी कमर पर चढ़ जा, और शीशा तोड़कर दरवाज़े की चटखनी खोल डाल!"

उसने चिल्लाकर मुझसे कहा।

लपककर मैं उसकी पीठ पर चढ़ गया और मैंने दरवाज़े के ऊपर का शीशा तोड़ डाला। लेकिन चटखनी खोलने के लिए जैसे ही मैं नीचे की ओर झुका कि मालकिन चाकू की मूठ से मेरे सिर पर प्रहार करने लगी। जो हो, दरवाज़ा मैंने खोल दिया। इसके बाद मालिक मालकिन पर बुरी तरह झपटा, उसे खींचता हुआ भोजन के कमरे में ले गया, और उसके हाथ से चाकू छीन लिया। मैं रसोई में बैठा अपना चोट खाया सिर सहला रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि व्यर्थ ही मैंने इतनी मुसीबत मोल ली। चाकू इतना खुट्टल था कि गर्दन तो दूर, उससे डबलरोटी तक नहीं काटी जा सकती थी। न ही मालिक की पीठ पर चढ़ने की कोई ख़ास ज़रूरत थी। शीशा तोड़ने के लिए मैं कुर्सी पर भी खड़ा हो सकता था। फिर अच्छा होता कि अगर कोई बड़ा आदमी चटखनी खोलता—लम्बी बाँहें होने पर यह काम सहज ही हो जाता। इस दिन के बाद मैंने इस घर की घटनाओं से भयभीत होना छोड़ दिया।

दोनों भाई गिरजे में गाते थे। कभी-कभी काम करते समय भी वे धीमे स्वरों में गुनगुनाया करते। बड़ा भाई मध्यम सुर में गुनगुनाता :

उछलती लहरों में खोयी,
प्रिया की प्रेम निशानी!

और छोटा भाई कोमल स्वर में साथ देता :

सुख-शान्ति हुई बिरानी
हुई सूनी ज़िन्दगानी!

बच्चों के कमरे से छोटी मालकिन दबी हुई आवाज़ में कहती :

"तुम्हें हो क्या गया है? बेबी को सोने भी दोगे या नहीं?"

या फिर :

"वास्या, तुम घर-बीवीवाले आदमी हो। प्रेम की निशानियों के गीत गाते तुम शर्म से गड़ नहीं जाते! इसके अलावा गिरजे में प्रार्थना का घण्टा भी बजता ही होगा..."

"अच्छा तो यह लो, हम अभी गिरजे के गीत गाना शुरू करते हैं..."

मालकिन ज़ोर देकर कहती कि गिरजे के गीत हर कहीं नहीं गाये जा सकते—ख़ासतौर से यहाँ—और पाखाने की ओर अर्थपूर्ण ढंग से इशारा करती।

"हद है!" गुर्राते हुए मालिक कहते। "मकान बदलना ही पड़ेगा, नहीं तो इस घीचड़-पीचड़ में ..."

मकान बदलने की भाँति मालिक नयी मेज़ लाने का भी बहुधा राग अलापते थे। लेकिन तीन साल हो गये थे और मेज़ का अभी कहीं पता तक न था।

अपने पड़ोसियों के बारे में जब भी ये लोग बातें करते तो मुझे जूतों की दुकानवाले कुत्सित वातावरण की याद ताजा हो आती। वहाँ भी ऐसी ही बातें होती थीं। साफ़ मालूम होता था कि मेरे ये मालिक भी अपने आपको नगर में सबसे अच्छा, एकदम दूध का धुला, समझते हैं। बेदाग नैतिकता और सदाचार के मानो सबसे अचूक नियम उन्हें मालूम हैं और उन नियमों की कसौटी पर वे सभी को बड़ी बेरहमी से कसते, हालाँकि मेरे लिए ये नियम अस्पष्ट थे। उनकी इन आदत को देखकर उनके और उनके सदाचार के नियमों के प्रति मेरे मन में तीखा रोष घर करता और इस सदाचार को पाँव तले रौंदने में अब मुझे बेहद आनन्द आता।

मुझे भारी मेहनत करनी पड़ती : घर की महरी का सारा काम मैं ही करता, बुध के दिन रसोईघर में फ़र्श धोता, समोवार और पीतल के दूसरे बर्तनों को रगड़-रगड़कर चमकाता, शनिवार के दिन समूचे घर तथा दोनों जीनों को साफ़ करता। अलावघरों के लिए लकड़ी काटता और जूठे बर्तन माँजता और सब्जियाँ छीलता-काटता, टोकरी लेकर अपनी मालकिन के साथ बाज़ार जाता, सौदा-सुलभ और दवाइयों के लिए किराने तथा दवाफ़रोश की दुकानों के चक्कर लगाता।

मेरी बड़ी मालकिन मेरी नानी की चिड़चिड़ी और झगड़ालू बहन, रोज सुबह छह बजे ही उठ जाती। जल्दी से हाथ-मुँह धोती, निरी लम्बी शमीज़ पहने देव-प्रतिमा के सामने घुटने के बल खड़ी होती, और बड़ी देर तक अपने जीवन, अपने बेटों और बहू के बारे में भगवान से शिकायतें करती।

"हे भगवान!" अपनी उँगलियों के छोर बटोरकर वह उनसे अपने माथे को छूते हुए रुआँसी आवाज़ में झींकना शुरू करती। "हे भगवान, मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती—बस, थोड़ी-सी शान्ति चाहती हूँ, इतनी कि मेरी आत्मा को कुछ चैन, थोड़ी-सी राहत मिल सके!"

उसके इस रोने-झींकने से मेरी आँख खुल जाती और कम्बल के नीचे लेटा मैं उसकी ओर देखता रहता, सहमे हृदय से भगवान के सामने उसका बिलखना-बिसूरना सुनता। बारिश से धुली रसोई की खिड़की में से शरद की सुबह उदासी से भीतर झाँकती। और सुबह की धुँधली रोशनी में उसकी धूसर आकृति जल्दी-जल्दी फ़र्श पर झुकती और बेचैन सलीब के चिह्न बनाती रहती। उसके छोटे-से सिर पर बँधा रुमाल खिसककर उतर जाता और उसके रंग-उड़े महीन बाल उसकी गर्दन और कन्धों पर बिखर जाते। उसका बायाँ हाथ तेज़ी से हरकत करता और अपने रुमाल को फिर से सिर पर खिसकाते हुए वह बड़बड़ा उठती :

"यह चिथड़ा भी चैन नहीं लेने देता!"

सलीब का चिह्न बनाते समय वह अपने माथे, कन्धों और पेट पर ज़ोरों से हाथ मारती और भगवान के दरबार में अपनी फरियाद की पुकार छोड़ती :

"हे भगवान, अगर तुम्हें मेरा ज़रा-सा भी ख़याल हो तो मेरी इस बहू को कसकर सज़ा देना। जिस तरह वह मेरा अपमान करती है और मुझे सताती है, वैसे ही तुम भी उसे आड़े हाथों लेना और मेरे बेटे की आँखें खोलना, उसे इतनी समझ देना जिससे वह बहू की असलियत पहचाने और वीक्तर को सही नज़र से देख सके, और वीक्तर पर दया रखना, उसे अपने हाथ का सहारा देना, भगवान!.."

वीक्तर भी यहाँ, रसोईघर में ही, एक ऊँचे तख़्त पर सोता था। माँ का रोना-झींकना सुन उसकी भी नींद उचट जाती और उनींदे स्वर में चिल्लाता :

"सबेरे ही सवेरे तुमना फिर रोना-कोसना शुरू कर दिया! तुम पर भी जैसे ख़ुदा की मार है, माँ!"

"बस-बस, तू सोता रह। बहुत बातें न बना," माँ फुसफुसाकर दबे स्वर में कहती। इसके बाद, एक या दो मिनट तक, वह आगे-पीछे की ओर झूमती और फिर बदले की भावना से फनफनाकर चीख उठती :

"भगवान करें इनकी हड्डियाँ तक जमकर बर्फ़ हो जायें, और इनका सारा खून सूख जाये!.."

मेरे नाना भी कभी इतनी कुत्सित प्रार्थनाएँ नहीं करते थे।

प्रार्थना करने के बाद वह मुझे जगाती।

"उठ खड़ा हो! क्या नवाब की भाँति ऐंड़ रहा है, जैसे इसीलिये हमने तुझे यहाँ रखा हो?... उठ, समोवार तैयार कर और लकड़ियाँ भीतर लाकर रख। रात फिर चैलियाँ चीरना भूल गया, क्यों?"

उसकी फनफनाहट भरी बड़बड़ से बचने के लिए मैं खूब फुर्ती से काम करता, लेकिन उसे खुश करना असम्भव था। जाड़ों की बर्फीली आँधी की तरह सनसनाती वह रसोईघर में घूमती-फिरती और फुँकार उठती :

"शि-शि-शि, शैतान की औलाद! अगर वीक्तर को जगा दिया तो फिर देखना, कैसे कान उमेठती हूँ! अच्छा, जा, भागकर दुकान से सामान ले आ..."

नाश्ते के लिए मैं हर रोज दो पौण्ड डबलरोटी और छोटी मालकिन के वास्ते कुछ बन्द ख़रीदकर लाता था। जब मैं रोटी लेकर घर लौटता तो दोनों सन्देह भरी नज़र से उसे उलट-पलटकर देखती, हथेलियों पर रखकर उसका वजन जाँचती और पूछतीं :

"यह कम तो नहीं है? इसके साथ क्या एक टुकड़ा और नहीं था? अच्छा, जरा इधर आकर अपना मुँह तो खोल!"

इसके बाद वे इस तरह चिल्लाती मानो मैदान मार लिया हो :

"देखो, दूसरा टुकड़ा यह खुद चट कर गया—साफ़ निगल गया! इसके दाँतों में रोटी चिपकी है!"

...मैं बड़ी खुशी से काम करता था—घर की गन्दगी मिटाना मुझे बहुत पसन्द

था। बड़े मजे से मैं घर की धूल झाड़ता-बुहारता, फ़र्श को रगड़ता, पीतल के बर्तनों को चमकाता, दरवाज़ों की मूठों और दस्तों को साफ़ करता। जब घर में शान्ति होती तो स्त्रियाँ अक्सर कहती :

"काम तो यह मेहनत से करता है।"

"और साफ़-सुथरा भी करता है।"

"लेकिन बहुत सरकश है।"

"आख़िर लालन-पालन करनेवाला कौन था?"

दोनों ही चाहतीं कि मैं उनका मान करूँ, उनके साथ अदब से पेश आऊँ। लेकिन मैं उन्हें नीमपागल समझता। उन्हें पसन्द न करता, उनका कहना न मानता और हमेशा मुँह-दर-मुँह जवाब देता। छोटी मालकिन से जब यह छिपा न रहा कि कुछ बातों का मुझपर उलटा ही असर होता है तो उसने बार-बार कहना शुरू किया :

"याद रख तुझे कँगालों के परिवार से लिया गया है। तेरी माँ तक को मैंने एक बार काँच के मोती जड़ा रेशमी लबादा पहनाया था!"

जब मुझसे नहीं रहा गया तो एक दिन मैंने उससे कहा :

"तो उस लबादे के बदले में क्या अब मैं अपनी खाल उतार दूँ?"

घबराकर वह चिल्लायी :

"हाय भगवान, यह तो घर में आग ही लगा सकता है!"

यह सुनकर मैं सकपका गया—आख़िर मैं घर में आग क्यों लगाऊँगा? मेरे बारे में दोनों हर घड़ी मालिक के कान भरतीं और वह मुझे सख़्ती से डाँटता :

"बस, बहुत हो चुका। अगर अपनी हरकत से बाज़ न आये तो!..."

लेकिन एक दिन तँग आकर उसने अपनी पत्नी और माँ को भी आड़े हाथों लिया :

"तुम दोनों की अक्ल भी न जाने कहाँ चरने गयी है! जब देखो तब उस लड़के की गरदन पर सवार, मानो वह कोई घोड़ा हो! और कोई होता तो सब छोड़-छाड़ कभी का भाग गया होता, या काम करते-करते उसका अब तक कचूमर निकल गया होता!.."

यह सुन स्त्रियाँ बुरी तरह झुँझला उठीं और उनकी आँखों में आँसू चमकने लगे। गुस्से में पाँव पटकते हुए उसकी पत्नी चिल्लायी :

"और तुम्हारी बुद्धि क्या तुम्हारे इन झौंवा भर लम्बे बालों में खो गयी है जो खुद इसके सामने इस तरह की बातें करते हो? तुम्हारी बातें सुनने के बाद यह और भी सरकश हो जायेगा। तुम्हें इतना भी ख़याल नहीं है कि मेरा पैर भारी है।"

उसकी माँ ने भी शिकायत के स्वर में रोना-बिसूरना शुरू किया :

"भगवान बुरा न करे, लेकिन मेरी बात गाँठ बाँध लो कि तुम लड़के को इस

तरह सिर पर चढ़ाकर ख़राब कर डालोगे, वसीली!"

और दोनों तोबड़ा चढ़ाए वहाँ से खिसक गयी। मालिक अब मेरी ओर मुड़ा और सख़्ती से बोला :

"यह सब तेरी ही करतूत का नतीजा है। मैं तुझे फिर नाना के पास वापस भेज दूँगा। मजे से चिथड़े बटोरते फिरना!"

अपमान का यह कड़वा घूँट मेरे गले में अटक गया। पलटकर मैंने जवाब दिया :

"तुम्हारे पास रहने से तो चिथड़े बटोरना कहीं अच्छा है! तुम मुझे यहाँ काम सिखाने के लिए लाए थे। लेकिन तुमने मुझे सिखाया क्या है—गधे की भाँति घर का बोझ ढोना!.."

मालिक ने हल्के हाथ से मेरे बाल पकड़ लिये और मेरी आँखों में देखते हुए अचरज के साथ कहा :

"बड़ा तेज़-तर्रार है तू! पर भाई, ये चालें यहाँ नहीं चलेंगी... नहीं, बि-ल-कु-ल न-हीं!"

मुझे पूरा यकीन था कि वह मेरा बँधना-बोरिया गोल कर देगा। लेकिन दो दिन बाद पेंसिल, रूलर, टीस्केवयर और क़ागज़ का एक पुलिन्दा लिये उसने रसोईघर में पाँव रखा।

"चाकू साफ़ करने के बाद इसकी नक़ल उतार देना," उसने कहा।

यह किसी दुमंज़िला मकान के अग्र भाग का नक़्शा था जिसमें अनगिनत खिड़कियाँ और प्लास्तर की सजावट का काम बना था।

"लो, परकार सम्भालो। इससे सभी रेखाओं को पहले नापना और उसके बाद नुक्ते डालकर उसके छोरों के निशान बनाते जाना। फिर, रूलर की मदद से, नुक़्तों को मिलाते हुए रेखाएँ खींचना। पहले लम्बान के रूख में रेखाएँ खींचना—ये पड़ी रेखाएँ होंगी, फिर ऊपर-नीचे वाली रेखाएँ खींचना—ये खड़ी रेखाएँ होंगी। बस, इस तरह पूरी नक़ल उतार लेना! चलो!"

साफ़-सुथरा और सलीके का काम तथा कुछ सीखने का यह अवसर पाकर मुझे खुशी हुई, लेकिन क़ागज़ और परकार आदि की ओर मैं सहमी नज़र से देख रहा था और मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

फिर भी अगले ही क्षण हाथ धोकर मैं काम में जुट गया। मैंने तमाम पड़ी रेखाओं के नुक्ते लगाए और रूलर से लकीरें खींचकर उन्हें जोड़ दिया। यह सब तो बड़े मजे में हो गया। बस, एक ही बात जरा गड़बड़ थी। न जाने कैसे, तीन लकीरें फालतू खिंच गयी थीं। इसके बाद मैंने तमाम खड़ी लकीरों के निशान बनाए और उन्हें भी मिला दिया। और मेरे अचरज का ठिकाना न रहा जब मैंने देखा कि यह तो कुछ और ही बन गया है। इस घर की शक्ल-सूरत एकदम बदली हुई थी। खिड़कियाँ बगल की

ओर खिसककर दीवारों के बीच की खाली जगह में पहुँच गयी थीं, और उनमें से एक तो घर की दीवार को पार कर हवा में ही लटक रही थी। घर का मुख्य दरवाज़ा खिसककर दूसरी मंज़िल पर पहुँच गया था, कार्निस छत के मध्य में आ पहुँची थी, और रोशनदान चिमनी पर आ लगा था।

सकपकाया-सा बड़ी देर तक मैं इस अजूबे की ओर देखता रहा। कोशिश करने पर भी मेरी समझ में न आया कि यह सब कैसे हो गया। आख़िर समझने की कोशिश छोड़कर अपनी कल्पना के सहारे मैंने स्थिति को सम्भालने का निश्चय किया : सभी कार्निसों और छत की मुँडेर पर मैंने चिड़े-चिड़ियों, कौवों और कबूतरों की तस्वीरें बना दीं, और खिड़कियों के सामने की खुली जगहों को मैंने टेढ़ी-मेढ़ी टाँगोंवाले आदमियों से भर दिया। उनके हाथों में मैंने एक-एक छतरी भी थमा दी, लेकिन उनके टेढ़े-मेढ़ेपन में इससे भी कोई ख़ास कमी नहीं आयी। इसके बाद समूचे कागज पर तिरछी लकीरें डाल मैं अपने मालिक के पास पहुँचा।

मालिक की भौंहें तन गयीं, बालों में हाथ फेरते हुए और मुँह फुलाकर उसने पूछा :

“यह सब क्या है?”

“यह बारिश हो रही है,” मैंने कहा, “बारिश में सभी घर टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं, क्योंकि खुद बारिश भी उल्टी-सीधी गिरती है। और पक्षी—ये सब पक्षी हैं—कार्निसों पर सिकुड़े-सिमटे बैठे हैं। जब बारिश होती है तो सदा ऐसा ही होता है। और ये लोग अपने-अपने घर पहुँचने की जल्दी में हैं। यह बीबी जी रपटकर गिर पड़ी है, और वह नींबू बेचनेवाला है...”

“बहुत-बहुत धन्यवाद,” मालिक ने मेज़ पर झुकते हुए कहा, यहाँ तक कि उसके लम्बे बाल क़ागज़ पर खरखराने लगे। उसका समूचा बदन हँसी से हिल रहा था।

“तेरा बेड़ा ग़र्क हो, चिड़े-जानवर!”

तभी छोटी मालकिन भी मटका-सा अपना पेट लिये आ मौजूद हुई, और मेरी करतूत पर नज़र डालकर देखा।

“मार खाकर ही यह ठीक होगा!” उसने अपने पति को उकसाया।

मालिक पर इसका असर नहीं हुआ। बिना किसी झुँझलाहट के बोला :

“ओह नहीं, शुरू-शुरू में खुद मेरा भी यही हाल था...”

लाल पेन्सिल से उसने मेरी गलतियों पर निशान बना दिए और मुझे एक दूसरा कागज देते हुए बोला :

“फिर कोशिश कर! एक बार, दूसरी बार, तीसरी बार—जब तक ठीक न बने, इसे बनाता रह!..”

मेरा दूसरा प्रयत्न पहले से अच्छा था। केवल एक खिड़की अपने स्थान से खिसककर बरसाती के दरवाज़े पर आ गयी थी। लेकिन घर सूना-सूना-सा रहा। यह मुझे कुछ अच्छा नहीं मालूम हुआ। सो सभी काट-छाँट के लोगों से मैंने उसे आबाद कर दिया। खिड़कियों पर युवतियाँ बैठी पंखा झल रही थीं। युवक सिगरेट का धुआँ उड़ा रहे थे और एक युवक जो सिगरेट नहीं पीता था, अपनी नाक पर अँगूठा रखकर और उँगलियाँ फैलाकर दूसरों को अनादरपूर्वक दिखा रहा था। बाहर पोर्च के आगे एक गाड़ी खड़ी थी और कुत्ता लेटा हुआ था।

मालिक ने गुस्से से पूछा :

"यह फिर क्या काटा-पीटी कर लाया है?"

मैंने बताया कि आदमियों के बिना घर बड़ा सूना-सूना लग रहा था। लेकिन उसने मुझे डाँटना शुरू किया :

"यह क्या खुराफात है! अगर कुछ सीखना चाहता है तो कायदे से काम कर! बेकार ऊल-जलूल बातों से बाज़ आ!"

और अन्त में मूल से मिलता-जुलता एक और चित्र बनाकर जब मैं उसके पास ले गया तो वह बहुत खुश हुआ।

"देखो! अब ठीक बन गया न? अगर इसी तरह कोशिश करता रहेगा तो बड़ी जल्दी तरक्की करेगा!.."

और उसने मुझे एक नया काम सौंपा :

"हमारे अपने फ़्लैट का नया नक़्शा तैयार कर जिसमें सब चीज़ें कायदे से दिखाना—कितने कमरे हैं और किस-किस जगह बने हैं। दरवाज़े और खिड़कियाँ कहाँ-कहाँ है। हर चीज़ अपनी ठीक जगह पर होनी चाहिए। मैं तुझे कुछ नहीं बताऊँगा, सारा काम खुद ही करना होगा।"

मैं रसोईघर में आकर मन ही मन जोड़-तोड़ बैठाने लगा कि कैसे क्या लिया जाय।

लेकिन नक़्शानवीसी का मेरा यह काम आगे नहीं बढ़ सका। तभी उसका अन्त हो गया।

बूढ़ी मालकिन मेरे पास आयी और जले-भुने स्वर में बोली :

"सो अब नक़्शानवीस बनना चाहता है, क्यों?"

उसने मेरे बाल पकड़े और मेरा सिर इतने ज़ोरों से मेज़ से टकराया कि मेरी नाक और होंठ लहूलुहान हो गये। उसने हाथ-पाँव पटके, खूब उछली और कूदी, मेरे नक़्शे को उठाकर फाड़ डाला, औज़ारों को फ़र्श पर फेंक दिया, और फिर कूल्हों पर हाथ रख विजेता के अन्दाज़ में चिल्लायी :

"ले, बना नक़्शे! नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा! पराये आदमी को काम मिले और

भाई—एकमात्र सगा और मा-जाया भाई भागे?”

मेरा मालिक और उसके पीछे-पीछे उसकी पत्नी भी आ धमकी। तीनों के तीनों, चीखने और चिल्लाने, एक-दूसरे पर थूकने लगे। अन्त में स्त्रियाँ रोती-कलपतीं विदा हो गयीं और मालिक ने मुझसे कहा :

“फिलहाल तू यह सब छोड़ दे, अभी मत पढ़—देख ही रहा है क्या तूफ़ान खड़ा कर दिया इन लोगों ने!”

उसकी हालत देख मुझे दुःख हुआ—कितना दबा-पिसा और कितना निरीह। एक घड़ी के लिए भी स्त्रियों की चिल्ल-पों उसका पीछा नहीं छोड़ती थीं।

मैंने पहले ही भाँप लिया था कि बूढ़ी मालकिन को मेरा काम सीखना पसन्द नहीं है और रोड़े अटकाने में भी वह अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं छोड़ती थी। इसलिये, नक़्शा बनाने बैठने से पहले, मैं उससे यह पूछना कभी नहीं भूलता था :

“अब और कोई काम तो नहीं है, मालकिन?”

खींझकर वह जवाब देती :

“जब होगा तब अपने आप बता दूँगी। जा अब मेज़ पर अपने कीड़े-मकोड़े बना...”

और कुछ मिनट बाद ही, किसी न किसी काम के लिए वह मुझे अदबदाकर भेजती और कहती :

“ज़ीना साफ़ क्या किया है, निरी बेगार काटी है। ओने-कोने धूल से अटे पड़े हैं। जा, झाड़ू लेकर दोबारा साफ़ कर...”

लेकिन वहाँ पहुँचने पर मुझे कहीं धूल नहीं दिखाई देती।

“तू क्या बहस करता है?” वह चिल्लाती।

एक बार कागजों पर शर्बत उलटकर मेरी सारी मेहनत पर पानी फेर दिया। दूसरी बार उसने पूजा के दीप का सारा तेल उड़ेल दिया। छोटी लड़की की भाँति बचकानी चालाकी के साथ वह इस तरह से हरकतें करती, बच्चों की भाँति अपनी इन हरकतों को वह छिपा नहीं पाती। इतनी जल्दी और इतनी आसानी से नाराज़ होते या हर चीज़ और हर व्यक्ति के बारे में इतने जोश के साथ शिकायतें करते मैंने अन्य किसी को न पहले, न बाद में देखा। शिकायतें करना सभी को अच्छा लगता है, लेकिन बड़ी मालकिन यह विशेष आनन्द के साथ करती थी मानो गीत गाती हो। अपने बेटे से उसका प्रेम किसी पागलपन से कम नहीं था। इस प्रेम की शक्ति को मैं केवल मदान्ध ही कह सकता हूँ, इसे देखकर मुझे हँसी आती और डर भी लगता। सुबह की पूजा-प्रार्थना के बाद वह अलावघर की सीढ़ी पर खड़ी हो जाती, और उसके ऊपर सोने के तख़्ते पर अपनी कोहनियाँ टिकाकर पूरी तन्मयता से फुसफुसाती :

“मेरे भाग्य का सहारा, मेरे रक्त और मांस का टुकड़ा, हीरा-सा खरा और फरिश्ते

के परों-सा हल्का-फुल्का! तू सो रहा है। सो, मेरे जिगर के टुकड़े, सो! मीठे सपनों की चादर अपने हृदय पर डालकर सो। और यह देख, सपनों में तेरी दुल्हन तेररे लिए पलक-पाँवड़ें बिछाये है। कितनी सुन्दर—एकदम गोरी-चिट्टी, मानो राजकुमारी या किसी धनी सौदागर की बेटी हो! तेरे दुश्मनों को काल चट कर जाये, माँ के गर्भ में ही उन्हें लकवा मार जाये! और तेरे मित्र सैंकड़ों वर्ष जियें, और झुण्ड की झुण्ड कँवारी लड़कियाँ तुझ पर न्यौंछावर हों, बत्तखों के दल की भाँति तेरे पीछे फिरती रहें!"

यह सुन मेरे पेट में बल पड़ जाते। औघड़ और काहिल वीक्तर देखने में बिल्कुल कठफोड़वे जैसा था—वैसी ही लम्बी नाक, वैसा ही पंचरँगा, ज़िद्दी और मूर्ख।

माँ की फुसफुसाहट से कभी-कभी उसकी नींद उचट जाती और उनींदे स्वर में बड़बड़ाता :

"तुम्हें शैतान भी तो नहीं उठा ले जाता, माँ! क्या यहाँ खड़ी सीधे मुँह में थूक रही हो! जीना हराम है!"

इसके बाद बहुत कर, वह चुपचाप नीचे उतर जाती और हँसते हुए कहती :

"अच्छा, सो, सो... नालायक!"

कभी-कभी ऐसा भी होता था : उसकी टाँगें ढीली पड़ जातीं, और अलावघर के किनारे वह धम्म से ढह जाती, मुँह खोले और इस तरह हाँफते हुए, मानो उसकी जीभ जल गयी हो। तीखे शब्दों की फिर बौछार होती :

"क्या कहा कलमुँहे, तेरी अपनी माँ को शैतान उठा ले जाये! कपूत, मेरी कोख में आते ही तू मर क्यों नहीं गया? तूने जन्म ही क्यों लिया, शैतान की दुम! मेरे माथे के कलंक!"

नशे में धुत्त गली के गन्दे और बाज़ारू शब्द उसके मुँह से निकलते—भयानक और घिनौने!

वह बहुत कम सोती थी। नींद में भी उसे जैसे चैन नहीं मिलता था। कभी-कभी रात के दौरान वह कई बार अलावघर से नीचे उतरती, उस जगह पहुँचती जहाँ मैं सो रहा होता, और मुझे जगा देती।

"क्यों, क्या बात है?"

"शोर न करो," सलीब का चिह्न बनाकर और अँधेरे में किसी चीज़ की ओर देखते हुए वह फुसफुसाती, "ओह भगवान... मेरे मसीहा आलीजाह... सन्त वर्वारा... अकाल मृत्यु से हम सबकी रक्षा करना!.."

फिर काँपते हाथों से वह मोमबत्ती जलाती। कुप्पे-सी नाक वाला उसका चेहरा फूल जाता और व्याकुलता से भरी धूसर आँखें मिचमिचाती व धुँधलके से विकृत चीज़ों को ज़ोर लगाकर देखती। रसोई काफ़ी बड़ी थी, लेकिन ट्रंकों और अलमारियों की फालतू भरमार ने उसे घिचपिच बना दिया था। चाँद की रोशनी यहाँ आकर स्थिर और

शान्त हो जाती थी, और देव-प्रतिमाओं पर सदा चेतन आग की परछाइयाँ थिरकती थी। दीवार से सटे रसोई के छुरे-काँटें हिमकणों की भाँति चमकते थे और शेल्फ़ के सहारे लटकती काली कड़ाहियां बेडौल और बदनुमा अंधे चेहरों की भाँति दिखाई देती थी।

बूढ़ी मालकिन हमेशा टटोल-टटोलकर, मानो नदी के पानी की थाह लेते हुए अलावघर से सावधानी से नीचे उतरती, फिर अपने नंगे पाँवों से छप-छप करती हुई, वह उस कोने में पहुँचती जहाँ कटे हुए सिर की भाँति पानी भरने का एक डिब्बा लटका था। डिब्बे के इधर-उधर कान की भाँति दो कुंदे लगे थे। इसके नीचे गन्दा पानी जमा करने की एक बाल्टी और पास में ही साफ़ पानी से भरा एक टब रखा था।

गट-गट आवाज़ करते हुए वह पानी डकारती और फिर खिड़की के शीशे पर जमी नीली परत के बीच से झाँककर देखती।

होंठों ही होंठों में फिर फुसफुसाती :

"ओ भगवान, मुझ पर दया करना, मेरी आत्मा पर तरस खाना!"

कभी-कभी वह मोमबत्ती बुझा देती और घुटनों के बल गिरकर आहत स्वर में बुदबुदाती :

"किसी के हृदय में मेरे लिए प्यार-ममता नहीं है, मुझे कोई नहीं चाहता!"

अलावघर पर चढ़ते हुए वह चिमनी के दरवाज़े के सामने सलीब का चिह्न बनाती और फिर उसके भीतर हाथ डालकर देखती कि खटका ठीक जगह पर लगा है या नहीं। उसका हाथ कालिख से काला हो जाता, वह एकबार फिर गालियों का गोला दागती और तुरन्त सो जाती मानो किसी अदृश्य शक्ति ने उसे तुरन्त ही नींद में डुबो दिया हो। जब कभी वह मुझ पर बरसती तो मैं सोचता कि अफ़सोस की उसकी शादी नाना से नहीं हुई, यह उनके होश ठीक रखती, और खुद उसे भी अपने जैसा ही एक जोड़ीदार मिल जाता। वह अक्सर अपना गुस्सा मुझ पर उतारती, लेकिन कभी-कभी ऐसे दिन भी आते जब रूई-सा फूला उसका चेहरा कुम्हला जाता। उसकी आँखों में आँसू तैरने लगते और वह अपनी बातों के सत्य में विश्वास पैदा करने वाले ढंग से कहती :

"तुझे क्या पता, मेरे कलेजे में कितना दुःख भरा है। मैंने बच्चे जने, पाल-पोसकर उन्हें बड़ा किया और अपने पाँव पर खड़ा होने लायक बनाया, लेकिन मुझे क्या मिला? रसोईघर में बावर्चिन की भाँति दिन-रात खटना और उनका दोजख भरना। बड़ा सुख मिलता है मुझे इसमें? बेटा पराई लुगाई को घर में लाया और अपना सगा खून भूल गया। क्या यह ठीक है?"

"नहीं यह तो ठीक नहीं है," मैं सच्चे हृदय से कहता।

"देखा? ये बातें हैं..."

और वह पूरी बेशर्मी के साथ अपनी बहू की चादर उतारना शुरू करती :

"गुसलख़ाने में मैंने उसे नहाते देखा। पता नहीं, उसकी किस चीज़ पर वह इतना लट्टू है? ऐसी क्या रूपवती कहलावे है?.."

पुरुष और स्त्रियों के सम्बन्धों का ज़िक्र करते समय वह चुन-चुनकर गन्दे से गन्दे शब्दों का इस्तेमाल करती। शुरू-शुरू में उसकी बातों से मुझे बड़ी घिन मालूम होती, लेकिन शीघ्र ही बड़े ध्यान और गहरी दिलचस्पी से मैं उसकी बातें सुनने लगा, क्योंकि मैं महसूस करता था कि उसके शब्दों के पीछे कोई कटु सत्य प्रकट होने के लिए कसमसाता था।

"लुगाई में बड़ी ताकत है," हथेली को मेज़ पर पटपटाते वह भनभनाती। "लुगाई ने भगवान को भी धोखा दे दिया था। समझा? हौवा की वजह से सभी लोगों को दोजख का मुँह देखना पड़ता है!"

स्त्री की शक्ति का बखान करने से वह कभी न थकती, और हर बार मुझे ऐसा मालूम होता मानो इस तरह की बातें करके वह किसी को डरा रही है। उसकी यह बातें मुझे कभी नहीं भूलीं कि "हौवा ने ख़ुदा को भी धोखा दे दिया था।"

हमारे अहाते में एक और घर था जो उतना ही बड़ा था जितना कि हमारा। दो इमारतों के आठ फ़्लैटों में से चार में फौजी अफ़सर रहते थे। फ़ौज का पादरी एक अन्य फ़्लैट में रहता था। अहाते में साईसों, अर्दलियों की भरमार थी, बावर्चिनें, धोबिनें और घर की नौकरानियाँ उनसे मिलने आती रहती थीं। रसोईघर में नित्य ही नये गुल खिलते, इश्क और आशनाई के शिगूफे छूटते, आँसुओं और मार-पीट तक की नौबत आती। सिपाही आपस में लड़ते, खाई खोदनेवालों और घर-मालिक के मज़दूरों तक से भिड़ जाते, औरतों को पीटते। अहाता क्या था, मानो हट्टे-कट्टे मर्दों की पाशविक और बेलगाम भूख का, नंगी कामुकता और वासना का सागर हिलोरें ले रहा था। मेरे मालिक लोग जब दोपहर का खाना खाने, चाय पीने या साँझ का भोजन करने बैठते तो कोरी कामुकती और बेइमानी बर्बरता में डूबे इस जीवन और उसकी उखाड़-पछाड़ के गन्दे किस्सों का पूरी बारीकी और बेर्शमी से चटखारे ले-लेकर बयान करते। बूढ़ी मालकिन अहाते की एक-एक बात की खबर रखती और रस ले-लेकर उसे दोहराती।

छोटी मालकिन चुपचाप इन किस्सों को सुनती और उसके गदराए हुए होंठों पर मुस्कराहट थिरकने लगती। वीक्तर हँसी से दोहरा हो जाता, लेकिन मालिक नाक-भौंह सिकोड़कर कहता :

"बस भी करो, माँ!.."

"हाय राम, तुम्हें तो मेरा बोलना भी नहीं सुहाता!" माँ शिकायत करती।

वीक्तर कह देता :

"बोले जाओ, माँ। इसमें शर्म की क्या बात है? यहाँ सभी अपने लोग ही हैं..."

बड़े लड़के के हृदय में माँ के प्रति तिरस्कार भरी दया का भाव था। वह हमेशा

माँ के साथ अकेला रहने से बचता, और अगर संयोगवश कभी ऐसा हो भी जाता तो माँ उसकी पत्नी को लेकर शिकायतों का अम्बार लगा देती और अन्त में पैसे माँगने से कभी न चूकती। दो-तीन रूबल, कुछ रेजगारी निकालकर वह झट से उसके हाथ पर रख देता।

"तुम्हें पैसों की भला अब क्या ज़रूरत है, माँ? यह नहीं कि मुझे देते दुःख होता है, लेकिन सवाल यह है कि लेकर करोगी क्या?"

"मुझे तो बस वह भिखारियों के लिए, चर्च में मोमबत्तियाँ ले जाने के लिए..."

"भिखारियों की बात न करो, माँ! वीक्तर का तुम सत्यानाश करके छोड़ोगी!"

"तुम्हें अपना भाई भी फूटी आँख नहीं सुहाता! यह बड़ा पाप है!"

बेचैनी से हाथ हिलाकर वह माँ के पास से चल देता।

वीक्तर मुँहफट था और माँ का जरा भी लिहाज नहीं करता था। खाने की चीज़ों पर वह बुरी तरह टूटता, और उसका मन कभी नहीं भरता। रविवार के दिन बड़ी मालकिन मालपुए बनाती और उसके लिए कुछ मालपुए निकालकर अलग रखना कभी न भूलती। उन्हें मर्तबान में छिपाकर वह उस तख़्ते के नीचे रख देती जिस पर मैं सोता था। गिरजे से लौटते ही वीक्तर सीधे मर्तबान पर झपट्टा मारता और बड़बड़ाकर कहता :

"ऊँट की दाढ़ में जीरा! थोड़ा मालपुए और रख देती तो क्या तेरा कुछ बिगड़ जाता? बूढ़ी चमरखट्टो!"

"ज़्यादा बोलो नहीं। चुपचाप निगल जाओ। अगर किसी ने देख लिया तो..."

"तो क्या? मैं साफ़ कह दूँगा कि शैतान की मौसी खुद इस बूढ़ी खूसट ने मेरे लिए ये मालपुए चुराकर रखे थे!"

एक दिन मैंने मर्तबान निकाला और दो-एक मालपुए खुद चट कर गया। वीक्तर ने मेरी खूब मरम्मत की। वह मुझसे उतनी ही घृणा करता था जितनी कि मैं उससे। वह मुझे चिढ़ाता, दिन में तीन बार अपने जूतों पर मुझसे पॉलिश कराता, अपने तख़्ते पर लेटने के बाद लकड़ी की पट्टियाँ खिसकाता और मेरे सिर पर निशाना साधकर दराज़ के बीच से ज़ोरों से थूकता।

अपने बड़े भाई की भाँति जिसे बात-बात में "कुड़क-मुर्गियों" या इसी तरह के दूसरे फिकरे कसने की आदत थी, वह भी कुछ ख़ास ढले-ढलाए फिकरे दोहराने की कोशिश करता। लेकिन उसके फिकरे हद से ज़्यादा बेहूदे और बेतुके होते थे।

"माँ, अटैंशन! मेरे मोज़े कहाँ हैं?"

बेमानी सवालों से वह मेरी जान खाता। जैसे :

"अलेक्सई, बता 'बुलबुल' लिखकर हम उसे 'गुलगुल' क्यों पढ़ते हैं? जिस तरह कुछ लोग 'चाकू' को 'काचू' कहते हैं, वैसे ही 'चाबुक' को 'बाचुक' क्यों न कहा

जाये? और यह 'कुच' शब्द क्या 'कूची' से बना है? अगर ऐसा है तो..."

उनकी बोलचाल और बातचीत करने का ढंग मुझे बहुत बुरा लगता। जन्म से ही नाना और नानी की साफ़-सुथरी और सुघड़ भाषा की घुट्टी पीकर मैं बड़ा हुआ था। बेमेल शब्दों का गठबन्धन कर जब वे प्रयोग करते तो शुरू-शुरू में मुझे बड़ा अजीब लगता। मेरी समझ में न आता कि यह क्या गोरखधन्धा है... 'भयानक मजा', 'इतना खाने का दिल है कि मर ही जाऊँ', 'भीषण प्रसन्नता', या इसी तरह के अन्य बेमेल शब्द। और मैं सोचता कि जो मजेदार है वह भयानक कैसे हो सकता है, भोजन या खाने के साथ मरने का भला क्या सम्बन्ध हो सकता है, और प्रसन्नता के साथ भीषण शब्द का जोड़ कैसे बैठ सकता है?

और मैं उनसे सवाल करता :

"इस तरह बोलना क्या ठीक है?"

झुँझलाकर वे जवाब देते :

"बस-बस, ज़्यादा उस्तादी झाड़ने की कोशिश मत कर! नहीं तो तेरे कान तोड़ देंगे..."

मुझे यह भी ग़लत मालूम हुआ। कान भी क्या कोई पेड़-पौधा या फूल-पत्तियाँ है जिन्हें तोड़ा जा सकता है?

यह दिखाने के लिए कि मेरे कानों को सचमुच तोड़ा जा सकता है, उन्होंने मेरे कान खींचे। लेकिन मैं निश्चल खड़ा रहा और अन्त में विजय के स्वर में चिल्लाकर बोला :

"अहा, कान खींचने को तुम कान तोड़ना कहते हो! मेरे कान तो अभी भी वहीं हैं, जहाँ पहले थे!"

चारों ओर जिधर भी नज़र उठाकर देखता, पूरी हृदयहीनता से लोग एक-दूसरे को सताते, दुनियाभर की चालें चलते और घिनौने नंगेपन का प्रदर्शन करते। जहाँ की गन्दगी और नंगेपन ने कुनाविनो के काठ बाज़ार और चकलाखाने को भी मात कर दिया था जहाँ कदम-कदम पर बेसवा घर थे और हरजाई औरतों की सड़कों पर भरमार दिखाई देती थी। कुनाविनो की गन्दगी और हृदयहीनता के पीछे तो फिर भी किसी ऐसी चीज़ का आभास मिलता था जिसने इस गन्दगी और हृदयहीनता को अनिवार्य बना दिया था : जानलेवा ग़रीबी, भुखमरी और कमरतोड़ मेहनत। यहाँ खाते-पीते लोग रहते थे, चैन से जीवन बिताते थे, और श्रम के बदले ग़ैरज़रूरी समझ में न आनेवाली हलचल में डूबते-उतरते थे। यहाँ हर चीज़ तेज, झुँझलाहट भरी ऊब से रँगी हुई थी।

मेरी बुरी हालत थी, और जब भी कभी नानी मुझसे मिलने आती तब तो मानो मेरी जान पर ही बन आती। वह हमेशा पीछे के दरवाज़े से रसोई में दाखिल होती। पहले वह देव-प्रतिमाओं के सामने सलीब का चिह्न बनाती, इसके बाद अपनी छोटी

बहन के सामने झुकते समय वह एकदम दोहरी हो जाती। उसका इस तरह झुकना मुझे पूर्णतया कुचल देता, ऐसा मालूम होता मानो ढाई मन का बोझ मेरे ऊपर आ गिरा हो।

एकदम ठण्डे, उपेक्षापूर्ण अन्दाज़ में मालकिन कहती :

"अरे, तुम यहाँ कहाँ से टपक पड़ीं, अकुलीना?"

नानी मेरी पहचान से बाहर हो जाती। इस अन्दाज़ में वह अपने होंठों को काटती कि उसके चेहरे का भाव एकदम बदल जाता। ऐसा मालूम होता मानो वह नानी का चेहरा नहीं है। वह वहीं, गन्दे पानीवाले डोल के पास, दरवाज़े के साथ लगी बेंच पर चुपचाप बैठ जाती और मुँह से एक शब्द भी न निकालती—एकदम गुमसुम, मानो उसने कोई अपराध किया हो। अपनी बहन के सवालों का जवाब भी वह दबे और सहमें हुए से स्वर में देती।

मुझसे यह सहन न होता। झुँझलाकर कहता :

"यह तुम कहाँ बैठ गयी?"

दुलार भरी कनखियों से वह मेरी ओर देखती, और प्रभावपूर्ण ढंग से कहती :

"बहुत जबान न चला। तू क्या इस घर का मालिक है?"

"इसके तो ढंग ही निराले हैं," बूढ़ी मालकिन कहती, "चाहे जितना इसे मारो या डाँटो, पर यह हर बात में अपनी टाँग अड़ाने से बाज़ नहीं आता!" और शिकायतों का सिलसिला शुरू हो जाता।

कभी-कभी बड़े ही कुत्सित ढंग से वह अपनी बहन को कोचती :

"तो अब माँग-ताँग कर गुज़र हो रहा है, अकुलीना?"

"बुरी बात क्या है..."

"जब लाज ही बाकी न रही तो बात ही क्या है!"

"लोग कहते हैं कि ईसा मसीह भी माँग-ताँग कर ही गुज़र करते थे..."

"यह तो मूर्खों की बातें हैं। नास्तिक ही ऐसी बातें करते हैं। और तुम बूढ़ी उनकी बातें सुनती हो! ईसा मसीह क्या भिखारी था? वह भगवान का बेटा था। कहा गया है कि एक दिन वह आयेगा और सभी के भले-बुरे काम का जायजा लेगा—जो ज़िन्दा हैं उनके भी और जो मर गये हैं उनके भी—याद रखो! तुम गल-सड़कर चाहे धूल में ही क्यों न मिल जाओ, उसकी नज़रों से फिर भी न छिप सकोगी। वह तुम्हें और तुम्हारे वसीली से बदला लेगा, तुम्हारे घमण्ड के लिए और मेरे लिए, जब अपना धनी रिश्तेदार समझकर मैंने तुम्हारे आगे हाथ फैलाया था..."

नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया :

"मुझसे जो बना, तुम्हारे लिए सदा करती रही। और भगवान ने हमसे बदला लिया है, तुम्हें मालूम है..."

"थोड़ा लिया है, थोड़ा..."

उसकी जबान रुकने का नाम न लेती, और उसके शब्द नानी के हृदय पर कोड़े की बनकर बरसते। मुझे बड़ा अटपटा मालूम होता और समझ में न आता कि नानी यह सब कैसे बरदाश्त करती है। नानी का यह रूप मुझे ज़रा भी अच्छा न लगता।

तभी छोटी मालकिन कमरों में से आती और अहसान-सा जताते हुए कहती :

"चलो, खाने के कमरे में चलें। हाँ-हाँ, सब ठीक है। बस, चली जाओ!"

बड़ी मालकिन नानी को पीछे से आवाज़ देती :

"अपने पाँव तो साफ़ कर लिये होते, चर्र-मर्रा चरखे की माल!"

मेरे मालिक का चेहरा प्रसन्नता के साथ खिल उठता। नानी को देखते ही वह कहते :

"ओह, पण्डिता अकुलीना! कहो, कैसी हो? बूढ़ा काशीरिन तो अभी ज़िन्दा है न?"

नानी के चेहरे पर अत्यन्त स्नेहपूर्ण मुस्कराहट खेलने लगती।

"और तुम्हारा क्या हाल है? क्या अब भी उसी तरह काम में जुटे रहते हो?"

"हाँ, काम में ही जुटा रहता हूँ। कैदी की तरह।"

मालिक के साथ नानी की बातचीत में अपनापन और सहृदयता का भाव रहता। वह इस तरह बातें करती जैसे बड़े छोटों से कहते हैं। कभी-कभी मालिक मेरी माँ का भी ज़िक्र करता, कहता :

"वर्वारा वसील्येव्ना... क्या औरत थी—दिलेर और ताकतवर!"

"तुम्हें याद है न," नानी की ओर मुँह करते हुए उसकी पत्नी ने एक बार कहा, "मैंन उसे एक लबादा दिया था—काले रेशम का, और शीशे के मोती जड़ा!"

"हाँ, हाँ, याद है..."

"एकदम नया मालूम होता था..."

"ऊँह, लबादा, सबादा—जीवन का कबाड़ा!" मालिक बड़बड़ाया।

"यह क्या-क्या कहा तुमने?" उसकी पत्नी ने संदेहपूर्वक पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं... सुखी दिन गुजर जाते हैं, अच्छे लोग गुजर जाते हैं..."

पत्नी के माथे पर चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गईं। बोली :

"मेरी समझ में नहीं आता—यह क्या बातें कर रहे हो तुम?"

इसके बाद नानी नवजात बच्चे को देखने चली गयी और मैं चाय के बरतन आदि साफ़ करने के लिए रह गया। मालिक ने धीमे और विचारमग्न से स्वर में कहा :

"बड़ी अच्छी है नानी तेरी..."

उसके इन शब्दों को सुनकर मेरे हृदय में कृतज्ञता पैदा हो गयी। लेकिन अकेले में मुझसे नहीं रहा गया। दुःखते हृदय से मैंने नानी से कहा :

"तुम यहाँ आती ही क्यों हो? क्या तुम नहीं देखती कि ये किस क़िस्म के लोग हैं?..."

"हाँ, अल्योशा, मैं सब कुछ देखती हूँ," नानी ने उसाँस भरते हुए कहा और मेरी तरफ देखा। नानी के अद्भुत चेहरे पर एक बहुत ही कोमल मुस्कराहट जगमगा उठी, और मैंने तुरन्त लज़्ज़ा का अनुभव किया। सचमुच, नानी की आँखों से कुछ छिपा नहीं था—वह सब कुछ देखती थी, सभी कुछ जानती थी, वह उस उथल-पुथल तक से परिचित थी जो कि उस समय मेरे हृदय में हो रही थी।

नानी ने चौकस होकर इधर-उधर नज़र डाली और यह देखकर कि आस-पास में कोई नहीं है, मुझे अपनी बाँहों में खींच लिया और उमड़ते हुए हृदय से बोली :

"अगर तुम न होते तो मैं यहाँ कभी न आती—इन लोगों से भला मेरा क्या वास्ता? फिर नाना बीमार हैं और उनकी बीमारी के चक्कर में मेरा सारा समय चला जाता है। मैं कुछ काम नहीं कर पाती, इसलिये हाथ भी तंग है। उधर मिखाइलो ने अपने साशा को धता बता दिया है, सो उसका खाना-पीना भी मुझे ही जुटाना पड़ता है। इन्होंने तुम्हें छह रूबल साल का देने का वायदा किया था। सो मैंने सोचा कि अगर ज़्यादा नहीं तो कम से कम एक रूबल इनसे मिल ही जायेगा। क्यों आधा साल तो होने आया न तुम्हें इनके यहाँ काम करते?..." नानी और भी नीचे झुक गयी और फुसफुसाकर मेरे कान में कहने लगी : "इन्होंने मुझसे भी तुम्हें डाँटने के लिए कहा है। शिकायत करते थे कि तुम कहना नहीं मानते। कुछ दिन और यहाँ टिक जाओ—एक-दो साल, जब तक खुद मजबूत नहीं हो जाते—निभा लो किसी तरह, निभाओगे न, बेटे?"

मैंने वादा तो कर लिया, लेकिन था यह बेहद कठिन। तुच्छ, उबाऊ, खाने की भाग-दौड़ में सिमटा यह जीवन मेरे लिए बड़ा भारी बोझ था। मुझे ऐसा मालूम होता मानो दुःस्वप्नों की दुनिया में मेरा जीवन बीत रहा है।

कभी-कभी मेरे मन में होता कि यहाँ से भाग चलूँ। लेकिन कमबख्त जाड़ा अपने पूरे ज़ोर पर था। रात को बर्फ़ की आँधियाँ चलतीं, अटारी में हवा साँय-साँय करती और ठण्ड से जकड़ी लकड़ी की छतें चरमरा उठतीं। ऐसे में भागकर मैं जाता भी कहाँ?

बाहर जाकर खेलना मेरे लिए मना था, सच तो यह है कि मुझे खेलने की फुरसत ही नहीं मिलती थी। जाड़ों के छोटे दिन यों ही काम की चकर-घिन्नी में गायब हो जाते थे।

लेकिन मुझे गिरजे ज़रूर जाना पड़ता—एक तो शनिवार के दिन संध्या-प्रार्थना के लिए, दूसरे त्योहार के दिन दोपहर की प्रार्थना के लिए।

गिरजे जाना मुझे अच्छा लगता था। किसी लुके-छिपे सूने कोने की मैं खोज करता और वहाँ जाकर खड़ा हो जाता। देव-प्रतिमाओं को दूर से देखना बड़ा अच्छा

लगता—ऐसा मालूम होता मानो पत्थर के धूसर फ़र्श के ऊपर प्रवाहित मोमबत्तियों के सुनहरे प्रकाश की प्रशस्त धारा में देव-प्रतिमाओं की वेदी तैर रही हो। देव-प्रतिमाओं की काली आकृतियों में हल्का-सा कम्पन पैदा होता और राज-द्वार की सुनहरी झालरें झूमकर झिलमिला उठतीं। नीले-से शून्य में लटकी मोमबत्तियों की लौ सुनहरी मधुमक्खियों की भाँति मालूम होती और स्त्रियों तथा लड़कियों के सिर फूलों की भाँति दिखाई देते।

सहगान शुरू होता और हर चीज़ मानो उसकी स्वरलहरियों के साथ थिरकने लगती, हर चीज़ मानो इस पार्थिव जगत से ऊपर उठकर परियों के लोक में पहुँच जाती, समूचा गिरजा हौले-हौले डोलने लगता, मानो काजल की भाँति गहन, अँधेरे शून्य में पालना झूल रहा हो।

कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि गिरजा किसी झील में गोता लगाकर दुनिया की आँखों से दूर, खूब गहराई में छिप गया है जिससे कि वह अपना एक अलग और अन्य सब से भिन्न जीवन बिता सके। यह भावना शायद नानी की एक कहानी का फल थी जो कितेज नगर के बारे में थी। अपने चारों ओर की हर चीज़ के साथ-साथ मैं भी बहुधा उनींदा-सा झूमने लगता—सहगान की स्वरलहरियों मुझे थपकियाँ देतीं, फुसफुसाकर बोली गयी प्रार्थनाएँ और पूजा करनेवालों की उसाँसें मेरी पलकों को मूँछ देतीं, और मैं नानी की उस उदासी भरी मधुर कहानी को मन ही मन गुनगुनाने लगता :

सुबह का था समय, शुभ और पवित्र।
बज रहे थे घण्टे गिरजों में मातिन प्रार्थना के।
तभी किया धावा धर्म-द्वेषी तातार लुटेरों ने
घोड़ों पर कसे जीन, कील-काँटों और अस्त्रों से लैस
घेर लिया आनन-फानन में प्यारे नगर कितेजग्राद को!
ओ, इस दुनिया के प्यारे स्वामी,
ओ, प्यारी मरियम पवित्र!
ख़ुदा के बन्दों की खातिर उतरो इस धरती पर,
न पड़े कोई विघ्न उनकी पूजा-प्रार्थना में,
दैवी प्रकाश से हो नागरिकों के हिय का अँधेरा दूर!
पवित्रता तेरे मन्दिर की कर सके न कोई नष्ट,
न रौंदी जाये लाज नगर कन्याओं की,
न फिरे नन्हें बच्चों के गलों पर तेग,
न आये बड़े-बूढ़ों और दुर्बलों पर आँच!
परम पिता जेहोवाह ने यह सुना
और सुना माँ मरियम पवित्र ने।

कर दिया उन्हें विचलित और व्यथित
लोगों के क्रन्दन और दुःख की गुहारों ने।
और दिया आदेश परम पिता जेहोवाह ने
अपने सबसे बड़े फरिश्ते मिखाईल को :
मिख़ाईल, मानव-लोक में ज़रा जाओ तो
कितेजग्राद की धरती को ज़रा हिलाओ तो
फटे धरती और फूट पड़ें पानी के सोते
छिप जाये कितेजग्राद, पानी की लहरों में
तातार लुटेरों की पहुँच से दूर—बहुत दूर!
और ख़ुदा के बन्दे
हों, अपनी प्रार्थनाओं में संलग्न,
अविरल और अविश्रान्त,
सुबह, साँझ और आठों याम, वर्ष प्रति वर्ष—
बहे जब तक जीवन की अनन्त धारा!

उन दिनों नानी की कविताएँ मेरे रोम-रोम में वैसे ही समायी थीं जैसे मधुमक्खियों के छत्ते में शहद। यहाँ तक कि मेरे विचार और कल्पनाएँ तक उन्हीं कविताओं के साँचे में ढली होती थीं।

गिरजे में जाकर मैं प्रार्थना नहीं करता था, नाना की द्वेष भरी मिन्नतों और मान्यताओं तथा उदास ईश-प्रार्थनाओं को नानी के भगवान के सामने दोहराते मेरी जुबान अटकती। मुझे पक्का यकीन था कि नानी का भगवान उन्हें उतना ही नापसन्द करेगा जितना कि मैं करता हूँ। इसके अलावा वे सब क़िताबों में छपी-छपाई थीं। दूसरे शब्दों में यह कि किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति की भाँति भगवान को भी वे जबानी याद होंगी।

इस कारण जब कभी मेरा हृदय किसी मधुर उदासी से दुखता या बीते हुए दिन के छोटे-मोटे आघातों से कराह उठता तो मैं अपनी निजी प्रार्थनाएँ रचने का प्रयत्न करता। और उसके लिए मुझे कोई ख़ास प्रयास भी नहीं करना पड़ता। अपने दुखी जीवन पर मैं एक नज़र डालता और शब्द अपने आप आकार-रूप ग्रहण कर प्रकट होने लगते :

भगवान, ओ मेरे भगवान,
हूँ मैं कितना दुखिया
बिनती मेरी,
झटपट मुझे बड़ा बना दे!

बहुत सहा—सह चुका बहुत मैं,
न होना मुझ पर गुस्सा
गर हो जाऊँ मैं तंग
और कर दूँ इस जीवन का अन्त,
मरती यहाँ सभी की नानी
नहीं सिखाते, नहीं सिखाते
खाक-धूल, कुछ नहीं बताते
और यह बुढ़िया आफत की परकाला
जीवन को जंजाल बनाती,
सदा डाँटती, कान खींचती।
कर दे उसका मुँह काला।
भगवान, ओ मेरे भगवान,
हूँ मैं कितना दुखिया!

खुद रची हुई इन “प्रार्थनाओं” में से कितनी ही मुझे आज दिन भी याद हैं। बचपन में जिस तरह दिमाग काम करता है, उसकी छाप कभी-कभी हृदय पर इतनी गहरी पड़ती है कि मृत्यु के दिन तक नहीं मिटती।

गिरजे में बहुत ही सुहावना मालूम होता। वहाँ मैं उतने ही सुख और सन्तोष का अनुभव करता जितना कि पहले खेतों और जंगलों में करता था। मेरा नन्हा हृदय जो अभी से ही रात-दिन की चोटों से छलनी और जीवन की बेहूदगियों से विषैला हो चुका था, धुँधले, पर रंग-बिरंगे सपनों में तैरने लगता।

लेकिन मैं केवल तभी गिरजे जाता जब बला की ठण्ड पड़ती या जब नगर में बर्फानी आँधियाँ सनसनातीं और ऐसा मालूम होता कि आकाश भी जमकर बर्फ़ हो गया है, कि हवा ने उसे बर्फ़ के बादलों में बदल दिया है, और धरती पर इतनी बर्फ़ गिरती कि वह पूरी की पूरी ढँक जाती, जमकर वह भी बर्फ़ हो जाती और ऐसा मालूम होता मानो उसके हृदय की धड़कन अब फिर कभी नहीं सुनाई देगी।

रात के सन्नाटे में मुझे नगर में घूमना अधिक अच्छा लगता, कभी इस सड़क को नापता तो कभी उस। एकदम निराले कोनों की मैं खोज करता। तेजी से मेरे डग उठते, मानो पर लगे हों। मैं सड़क पर ऐसे ही तैरता जैसे आकाश में चाँद तैरता है, बिल्कुल अकेला। मेरी परछाई मुझसे आगे चलती, प्रकाश में चमकते हिमकणों पर पड़ उन्हें बुझा देती और हास्यास्पद ढंग से खम्बों तथा बाड़ों से टकराती। खाल का भारी-भरकम कोट पहने, हाथ में लाठी और साथ में अपना कुत्ता लिये चौकीदार सड़क के बीचोंबीच गश्त लगाता दिखाई देता।

उसका भारी-भरकम आकार देखकर मुझे लगता कि लकड़ी का कुत्ताघर न जाने

कैसे आँगन में से लुढ़ककर सड़क पर आ गया है और आगे बढ़ चला है और दुखी कुत्ता उसके पीछे हो लिया है।

कभी-कभी खिलखिलाती जवान लड़कियों और उनके चहेतों से मुठभेड़ होती और मैं मन ही मन सोचता कि ये लोग भी गिरजे से भाग आये हैं।

खिड़कियाँ रोशनी से चमचमाती रहतीं। उनकी दराज़ों में से स्वच्छ हवा में कभी-कभी एक अज़ीब क़िस्म की गन्ध आती—भीनी और अपरिचित गन्ध जो एक भिन्न प्रकार के, अज्ञात जीवन का आभास देती। खिड़की के पास रुककर मैं कान लगाकर सुनता और यह पता लगाने का प्रयत्न करता कि किस तरह के लोग यहाँ रहते हैं, कैसा जीवन वे बिताते हैं। उस समय जबकि सभी भले लोगों को संध्या-प्रार्थना में शामिल होना चाहिए, ये लोग हँसते और अठखेलियाँ करते हैं, ख़ास क़िस्म का गिटार झनझनाते और खिड़कियों में से मधुर स्वर-लहरियाँ प्रवाहित करते हैं।

दो सूनी सड़कों—तिखोनोव्स्काया और मरतीनोव्स्काया—के कोने पर स्थित एक नीचा, एकमंज़िला घर मुझे ख़ास तौर से अजीब मालूम हुआ। सर्दियाँ खत्म होने के त्यौहार से पहले की बात है। मौसम बदल चला था और बर्फ़ पिघलने लगी थी। इन्हीं दिनों, चाँदनी खिली रात में, इस घर के पास मैं गुजरा और वहीं उलझकर रह गया। गर्म भाप के साथ-साथ खिड़की में से एक अद्‌भुत आवाज़ भी गा रही थी, ऐसा मालूम होता था मानो कोई बहुत ही मजबूत और बहुत ही दयालु व्यक्ति होंठों को बन्द किये गा रहा हो। बोल तो समझ में नहीं आते थे, लेकिन धुन बहुत ही जानी-पहचानी और समझी-बूझी मालूम होती थी। मैं उसे समझ भी लेता, लेकिन उसके साथ जो तार का बाजा झनझना रहा था, वह मानो गीत के प्रवाह और उसकी बोधगम्यता को छिन्न-भिन्न कर रहा था। मैं समझ गया कि किसी जादू भरे, हृदय को मरोड़ देने की अद्‌भुत शक्ति से सम्पन्न वायलिन से यह संगीत प्रवाहित हो रहा है और वहीं सड़क के किनारे पत्थर के बने पीढ़े पर बैठ गया। संगीत का एक-एक स्वर वेदना में डूबा था। कभी-कभी उसका स्वर इतना ज़ोरदार हो जाता कि लगता मानो समूचा घर थरथरा उठा है, खिड़कियों के काँच झनझनाने लगे हैं। पिघली हुई बर्फ़ छत पर से टपाटप गिरती और आँसुओं की बूँदें मेरे गालों पर से ढुलकतीं।

मैं अपने आप में इतना खो गया था कि चौकीदार के आने का मुझे पता तक नहीं चला। धक्का देकर उसने मुझे पीढ़े पर से गिरा दिया।

"यहाँ किस लोफरी की ताक में बैठे हो?" उसने पूछा।

मैंने बताया :

"जरा संगीत..."

"संगीत सुन रहा था, ऊह! बस, नौ-दो ग्यारह हो जाओ यहाँ से!"

मैं जल्दी से इमारतों के पीछे से घूमकर फिर उसी घर के सामने आ गया। लेकिन

अब कोई संगीत सुनाई नहीं दे रहा था। खिड़की में से अब चुहल और अठखेलियों की उलटी-पलटी आवाज़ें आ रही थीं जो उस उदास संगीत से इतनी भिन्न थीं कि मुझे लगा वह संगीत मैंने सपने में सुना था।

क़रीब-क़रीब हर शनिवार को मैं उस घर के पास पहुँचने लगा, लेकिन वायलीन का संगीत केवल एक ही बार और सुनने को मिला। वसन्त के दिन थे। पूरी आधी रात तक, बिना रुके, संगीत चलता रहा। इसके बाद जब मैं घर लौटा तो खूब मार पड़ी।

जाड़ों की रातें, आकाश में तारे जड़े हुए और नगर की सूनी सड़कें—मैं खूब घूमता और तरह-तरह के अनुभव बटोरता। मैं जान-बूझकर दूर की बस्तियों की सड़कें चुनता। नगर की मुख्य सड़कों पर जगह-जगह लालटेनें जलती थीं। मेरे मालिकों की जान-पहचान के लोगों में से अगर कोई मुझे देख लेता तो उन्हें खबर कर देता कि मैं संध्या-प्रार्थनाओं से गायब रहता हूँ। इसके सिवा नगर की मुख्य सड़कों पर शराबियों, पुलिसवालों, और शिकार की खोज में निकली हरजाई स्त्रियों से टकराने पर घूमने का सारा मजा किरकिरा हो जाता था। केन्द्र से दूर की निराली सड़कों पर मैं निश्चिन्त होकर घूमता। चाहे जहाँ जाता और निचले तल्ले की चाहे जिस खिड़की में झाँककर देखता—बशर्ते कि उस पर परदा न पड़ा हो, या पाले ने उसे ढँक न दिया हो।

इन खिड़कियों में से मैं अनेक प्रकार के दृश्यों की झाँकी लेता। कहीं लोग प्रार्थना करते दिखाई देते, कहीं चूमा-चाटी करते, कहीं एक-दूसरे के बाल नोचते, कहीं ताश खेलते और कहीं, पूरी गम्भीरता से, दबे हुए स्वरों में बातचीत करते। एक के बाद दूसरे दृश्य मेरी आँखों के सामने से गुजरते—मछलियों की भाँति मूक, मानो सन्दूक़ची के शीशे पर आँखें गड़ाए मैं बारह मन की धोबन वाला खेल देख रहा हूँ।

निचले तल्ले की एक खिड़की में से दो स्त्रियों पर मेरी नज़र पड़ी—एक युवती, दूसरी कुछ बड़ी। दोनों मेज़ पर बैठी थीं। उनके सामने मेज़ के दूसरी ओर लम्बे बालों वाला एक छात्र बैठा था और खूब हाथ हिला-हिलाकर वह उन्हें कोई पुस्तक पढ़कर सुना रहा था। युवती कुर्सी से पीठ लगाए बैठी थी और बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसकी भौंहें सिकुड़ गयी थीं। बड़ी स्त्री ने जो बहुत ही दुबली-पतली थी और जिसके बाल घने और मुलायम मालूम होते थे, सहसा दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया, उसके कन्धे हिलने लगे। छात्र ने अपनी पुस्तक नीचे पटक दी, युवती उछलकर खड़ी हो गयी और भागकर कमरे से बाहर चली गयी। तब छात्र उठा और मुलायम बालों वाली स्त्री के सामने घुटनों के बल गिरकर उसके हाथ चूमने लगा।

एक अन्य खिड़की में से एक लमतड़ंग दाढ़ीवाले आदमी पर मेरी नज़र पड़ी। लाल ब्लाउज पहने एक स्त्री को वह अपने घुटनों पर इस तरह झुला रहा था मानो

वह कोई छोटा बच्चा हो। साथ ही वह कुछ गाता भी मालूम होता था। कारण कि रह-रहकर वह भट्टा-सा अपना मुँह खोलकर दीदे मटकाता। स्त्री खिलखिलाकर दोहरी हो जाती। पीछे की ओर झुकती और अपनी टाँगों को हवा में नचाने लगतीं। वह फिर उसे सीधा बैठाता, गाता और वह फिर खिलखिलाकर दोहरी हो जाती। बहुत देर तक मैं उन्हें देखता रहा और तभी वहाँ से हिला जब समझ गया कि उनका यह गाना और खिलखिलाना सारी रात इसी तरह चलता रहेगा।

यह तथा इसी तरह के अन्य कितने ही दृश्य मेरी स्मृति में सदा के लिए अंकित हो गये। इन दृश्यों को बटोरने में मैं इतना उलझ जाता कि घर देर से पहुँचता और मालिकों के हृदय में सन्देह का कीड़ा कुलबुलाने लगता। वे पूछते :

"किस गिरजे में गया था? कौन से पादरी ने पाठ किया था?"

वे नगर के सभी पादरियों को जानते थे। उन्हें यह भी मालूम था कि कब कौन-सी प्रार्थना होती है। मैं झूठ बोलता तो वे आसानी से पकड़ लेते।

दोनों स्त्रियाँ नाना वाले क्रोधमूर्त्ति भगवान की पूजा करती थीं—एक ऐसे भगवान की, जो चाहता कि सब उससे डरें, सब उसका आतंक मानें। भगवान का नाम सदा उनके होंठों पर नाचता रहता, उस समय भी जब कि वे लड़तीं-झगड़तीं।

"जरा ठहर तो कुतिया, भगवान तेरी खबर लेगा कि तू भी याद रखेगी!..." वे एक-दूसरी पर चीखतीं।

इसाई चालीसे के पहले रविवार को बूढ़ी मालकिन मालपूवे बना रही थी जो कड़ाही में ही चिपककर जलते जा रहे थे।

"इन मरों को भी मेरी ही जान खानी थी!" झुँझलाकर वह चिल्लाई। आग की तपन से उसका मुँह तमतमा रहा था।

सहसा कड़ाही की गन्ध सूँघकर उसके चेहरे पर घटा घिर आयी, कड़ाही को उठाकर उसने फ़र्श पर पटक दिया और चीख उठी :

"ओह मेरे भगवान, कड़ाही से घी की गन्ध आ रही है! पवित्र सोमवार के दिन मैं इसे तपाकर शुद्ध करना भूल गयी! मैं अब क्या करूँ, हे भगवान!"

वह घुटनों के बल गिर गयी और आँखों में आँसू भरकर भगवान से फरियादें करने लगी :

"क्षमा करना, भगवान, मुझ पापिन को क्षमा करना, मुझ पर तरस खाना! मेरी तो बुद्धि सठिया गयी है, भगवान!"

मालपूवे कुत्ते के सामने डाल दिए गये। कड़ाही भी तपाकर शुद्ध कर ली गयी। लेकिन इसके बाद, जब भी मौका मिलता, छोटी मालकिन सास को इस घटना की याद दिला कर कोचने से न चूकती।

"तुम तो चालीसे के पवित्र दिनों में भी घी लगी कड़ाही में मालपूवे बनाती हो!"

झगड़ा होने पर वह कहती।

घर में जो भी बात होती, वे भगवान को घसीटना न भूलतीं। अपने तुच्छ जीवन के हर अँधेरे कोने में वे भगवान को भी अपने साथ खींचकर ले जातीं। ऐसा करने से मरे-गिरे जीवन में कुछ महत्व और बड़प्पन का पुट आता तथा वह जीवन प्रत्येक क्षण किसी ऊँची शक्ति की सेवा में लगा हुआ लगता। हर ऐरी-गैरी चीज़ के साथ भगवान को चस्पां करने की उनकी आदत मुझे दबाती, अनायास ही ओनों-कोनों में मेरी नज़र पहुँच जाती, और मुझे ऐसा मालूम होता मानो कोई अदृश्य आँखें मुझे ताक रही हैं। रातों के अँधेरे में डर के ठण्डे बादल मुझे घेर लेते। उनका उदय रसोई के उस कोने में होता जहाँ धुएँ में काली पड़ी देव-प्रतिमाओं के सामने दिन-रात एक दिया जलता रहता था।

ताक़ से लगी हुई दोहरे चौखटे की एक बड़ी-सी खिड़की थी। खिड़की के उस पार नीले शून्य का अनन्त विस्तार दिखाई देता था। ऐसा मालूम होता मानो यह घर, यह रसोई, और यहाँ की हर चीज़ जिसमें मैं भी शामिल था, एकदम कगार से अटके हों और अगर जरा-सा भी हिले-डुले तो बर्फ़ से ठण्डे इस नीले शून्य में, तारों से भी परे पूर्ण निस्तब्धता के सागर में, डूबते चले जायेंगे, ठीक वैसे ही जैसे पानी में फेंका गया पत्थर डूबता चला जाता है। सिकुड़ा-सिमटा, हिलने-डुलने तक का साहस न करता हुआ मैं दीर्घकाल तक दुनिया के प्रलयकारी अन्त की प्रतीक्षा में निश्चल पड़ा रहता।

यह तो अब याद नहीं पड़ता कि इस डर से किस प्रकार मैंने छुटकारा प्राप्त किया, लेकिन इस डर से मेरा पीछा छूट गया, और सो भी बहुत जल्दी ही। स्वभावतः नानी के भगवान ने मुझे सहारा दिया, और मुझे लगता है कि उन दिनों में भी एक सीधी-सादी सच्चाई का मैंने साथ नहीं छोड़ा था। वह यह कि मैंने कोई ग़लती नहीं की है, और अगर मैं बेकसूर हूँ तो दुनिया में कोई क़ानून ऐसा नहीं है जो मुझे सजा दे सके, और यह कि दूसरों के गुनाहों के लिए मुझे कटघरे में नहीं खड़ा किया जा सकता।

दोपहर की प्रार्थना से भी मैं गायब रहने लगा—ख़ासतौर से वसन्त के दिनों में। प्रकृति के नवयौवन का अदम्य उभार गिरजे के आकर्षण पर पानी फेर देता। इसके अलावा मोमबत्ती ख़रीदने के लिए अगर मुझे कुछ पैसे मिल जाते तब तो कहना ही क्या! मोमबत्तियों के बजाय मैं गोटियाँ ख़रीदता और खूब खेलता। प्रार्थना का सारा समय खेल में बीत जाता और घर पर मैं अदबदाकर देर से पहुँचता। एक बार प्रसाद और मृतकों की प्रार्थना के लिए मुझे दस कोपेक मिले और मैंने उन्हें भी ऐसे ही उड़ा दिया। नतीजा उसका यह हुआ कि जब गिरजादार वेदी से थाल लिये उतरे तो मैंने अन्य किसी के प्रसाद पर हाथ साफ़ किया।

खेलने का मुझे बेहद शौक था, और खेल से मैं कभी नहीं थकता था। मेरा बदन तगड़ा और चपल था। गेंद, गोटियों और गोरोद्की मैं खूब खेलता था। शीघ्र ही समूची बस्ती में मेरा सिक्का जम गया।

चालीसे के दिनों में मुझे भी गुनाह-मुक्ति के चक्र में से गुजरना पड़ा। हमारे पड़ोसी पादरी दोरीमेदोन्त पोक्रोव्स्की के सामने मुझे अपने गुनाह स्वीकार करने थे। मेरे मन में उनका आतंक बैठा था और वे सब शैतानी हरकतें मेरे हृदय में खड़बड़ मचा रही थी जो कि मैं उनके खिलाफ़ आजमा चुका था। पत्थर मारकर उनके मण्डप की खपचियों के मैंने परखचे उड़ाए थे, उनके बच्चों को मारा-पीटा था और अन्य बहुत से जुर्म किये थे, जिनकी वजह से वह मुझे बहुत बड़ा पापी समझ सकते थे। एक-एक करके सभी कुछ मुझे याद आ रहा था, और उस समय जब अपने गुनाह स्वीकार करने के लिए मैं उस छोटे और गरीब से गिरजे में जाकर खड़ा हुआ, तो मेरा हृदय बुरी तरह धक-धक कर रहा था।

लेकिन पादरी देरीमेदोन्त उस समय मानो भलमनसाहत का पुतला बना हुआ था।

"ओह, तुम तो हमारे पड़ासी हो... अच्छा तो अब घुटनों के बल बैठ जाओ, बताओ, क्या-क्या गुनाह किये हैं?"

उसने मेरे सिर पर भारी मखमल डाल दिया। मोम और लोबान की गन्ध से मेरा दम घुटने लगा, बोलना मुश्किल हो रहा था और दिल भी नहीं कर रहा था।

"अपने बड़ों का कहना मानते हो?"

"नहीं।"

"कहो, मैंने गुनाह किया!"

अनायास ही, न जाने कैसे, मैं कह उठा :

"प्रसाद चुराया था।"

"क्या, यह क्या कहा तुमने? कहाँ चोरी की?" एक क्षण रुककर पादरी ने स्थिर भाव से पूछा।

"तीन सन्तों के गिरजे में, पोक्रोव गिरजे में और सन्त निकोलाई..."

"मतलब सभी गिरजों में... बुरी बात है, बेटा। ऐसा करना पाप है—समझे?"

"हाँ।"

"कहो, मैंने गुनाह किया! तुम बड़े नादान हो। क्या खाने के लिए प्रसाद चुराया था?"

"कभी-कभी ख़ाने के लिए लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि गोटियों के खेल में मैं अपने पैसे हार जाता और प्रसाद के बगैर मैं घर नहीं लौट सकता था, इसलिये चोरी करके जान छुटाता..."

पादरी देरीमेदोन्त ने दबे स्वर में बुदबुदाकर कुछ कहा, फिर दो-चार सवाल और किये। इसके बाद कड़े स्वर में पूछा :

"क्या तुम भूमिगत छापेखाने से निकली पुस्तकें भी पढ़ते रहे हो?"

यह सवाल ऐसा था जो मैं समझ नहीं सका। मेरे मुँह से निकला : "क्या?"

"वर्जित पुस्तकें क्या तुमने कभी पढ़ी हैं?"

"नहीं, मैंने नहीं पढ़ीं..."

"अच्छी बात है। तुम गुनाहों से मुक्त हुए... अब खड़े हो जाओ!" मैंने कुछ अचकचाकर उसके चेहरे की ओर देखा। उसका चेहरा गम्भीर और दया के भावों से पूर्ण था। मैं कटकर रह गया। गुनाह मुक्ति के लिए भेजते समय मालकिन ने तो मेरी रूह ही कब्ज कर दी थी। ऐसी-ऐसी डरावनी बातें उसने बतायी थीं कि अगर मैंने कुछ भी छिपाकर रखा तो मानो प्रलय ही हो जायेगी।

मैं बोला, "मैंने तुम्हारे मण्डप पर पत्थर फेंके थे।"

"यह बुरा किया। लेकिन अब तुम भाग जाओ..."

"और तुम्हारे कुत्ते पर..."

पादरी ने जैसे सुना ही नहीं। मुझे विदा करते हुए बोले :

"चलो, अब किसकी बारी है?"

विक्षोभ से भरा और धोखा खाया हुआ महसूस करते हुए मैं वहाँ से चला आया। जिस चीज़ को लेकर मन ही मन मैंने इतना तूमार बाँधा था और हृदय का एक-एक तार झनझना उठा था, वह कुछ भी तो नहीं निकली—इसमें कोई भयानक बात नहीं थी, यहाँ तक कि इसमें दिलचस्पी भी कुछ न थी। रहस्यमय पुस्तकों की बात ही दिलचस्प थी। मुझे उस पुस्तक का ध्यान आया जिसे वह छात्र घर के निचले तल्ले में दो स्त्रियों को पढ़कर सुना रहा था। और मुझे "बहुत खूब" का भी ध्यान आया। उसके पास भी काली जिल्द की कितनी ही मोटी-मोटी क़िताबें थीं जिसमें अजीबोगरीब चित्र बने हुए थे।

अगले दिन पन्द्रह कोपेक देकर मुझे यूखारिस्ट प्रसाद लेने भेजा गया। उस साल इस्टर का उत्सव कुछ देर से आया था। बर्फ़ पिघल चुकी थी और खुश्क सड़कों पर धूल के छोटे-छोटे बगूले उठते थे। मौसम रुपहला और खूब सुहावना था।

गिरजे की चारदीवारी के पास कुछ मजदूर गोटियाँ खेल रहे थे। मेरा मन ललचा उठा। मैंने सोचा, प्रसाद लेने से पहले एक-दो हाथ यहाँ भी हो जायें तो क्या बुरा है। मैंने पूछा :

"मुझे भी खेलने दोगे?"

"खेल में शामिल होने के लिए—एक कोपेक—समझे!" लाल बाल और मुँह पर चेचक के दागवाले एक मज़दूर ने गर्व से ऐलान किया।

मैंने भी उतने ही गर्व से ज़वाब दिया :

“बाईं ओर से दूसरी जोड़ी, मैं तीन कोपेक रखता हूँ!”

“पहले पैसे निकालो!”

और खेल शुरू हो गया!

मैंने पन्द्रह कोपेक का अपना सिक्का भुना लिया और तीन कोपेक गोटियों की जोड़ी पर रखे। जो कोई उस जोड़ी को गिरा देगा तीन कोपेक जीत लेगा, नहीं तो मैं उससे तीन कोपेक हासिल करता हूँ। मेरा सितारा ऊँचा था। दो ने मेरे पैसे का निशाना लगाया, और दोनों ही चूक गये। मुझे छह कोपेक मिले। बड़ी उम्र के लोगों को मैंने मात दी, इससे मेरी हिम्मत बड़ी...

तब खिलाड़ियों में से एक ने कहा :

“इस पर निगाह रखना—कहीं ऐसा न हो कि एकाध दाँव जीतकर यह भाग निकले!”

यह मेरे सम्मान पर चोट थी। मैंने तड़ाक से चिल्लाकर कहा :

“बाँयी ओर, आख़िरी जोड़ी पर, मेरे नौ कोपेक!”

मेरी इस बहादुरी का खिलाड़ियों पर कोई रोब नहीं पड़ा। लेकिन मेरी ही आयु का एक अन्य लड़का चेतावनी देते हुए चिल्लाया :

“सम्भलके—इसकी किस्मत तेज़ है। यह ज्वेज्दीन्का मुहल्ले का है, नक़्शानवीस, मैं इसे जानता हूँ!”

“नक़्शानवीस है? वाह, भई, वाह...” एक दुबले-पतले मज़दूर ने कहा जिसके बदन से चमड़े की गन्ध आ रही थी।

उसने सावधानी से निशाना साधा और मेरे दाँव को पीट दिया।

“क्यों बच्चू, आयी रुलाई?” मेरे ऊपर झुकते हुए वह बोला।

“दाहिनी ओर, आख़िरी जोड़ी पर, तीन कोपेक और!” मैंने जवाब में कहा।

“देखते जाओ, मैं इसे भी नहीं छोड़ूँगा।” शेखी बघारते हुए उसने निशाना साधा और चूक गया।

कायदे के अनुसार एक आदमी तीन से अधिक बार लगातार दाँव नहीं लगा सकता। सो मैंने दूसरों की जोड़ियों को गिराना शुरू किया और इस तरह चार कोपेक और बहुत-सी गोटियाँ जीतीं। इसके बाद दाँव लगाने का जब मेरा नम्बर आया तो मैं अपनी सारी जमापूँजी हार गया। ठीक इसी समय गिरजे की प्रार्थना खत्म हुई—घण्टे बजने लगे, और लोग गिरजे से बाहर निकल आये।

“शादी हो चुकी है?” चमड़ा कमानेवाले मज़दूर ने पूछा और मेरे बाल पकड़ने की कोशिश की।

मैं उसके चंगुल से निकल भागा और एक युवक के पास पहुँचा जो खूब बढ़िया

कपड़े पहने गिरजे से निकला था। मैंने मुलामियत से पूछा :

"क्या तुम यूखारिस्ट प्रसाद लेकर आ रहे हो?"

"क्यों, तुम से मतलब?" सन्देह से देखते हुए उसने जवाब दिया।

मैंने उससे जानना चाहा कि यूखारिस्ट लेने में कैसे क्या हुआ, पादरी ने क्या कहा और यूखारिस्ट में शामिल होने वालों को क्या करना था।

युवक ने घूरकर मुझे देखा और गरजते हुए बोला :

"अच्छा, तो यूखारिस्ट के वक़्त घूमता रहा, नास्तिक? मैं तुझे कुछ नहीं बताऊँगा—करने दे तेरे बाप को तेरी धुनाई!"

मैं अब घर की ओर लपका। मुझे पक्का यकीन था कि घर पर पूछ-ताछ होगी और यह बात खुल जायेगी कि मैं यूखारिस्ट में शामिल नहीं हुआ।

लेकिन बड़ी मालकिन ने मुझे बधाई देने के बाद केवल एक सवाल पूछा :

"पादरी को तुमने क्या दिया?"

"पाँच कोपेक," मैंने यूँ ही अललटप्पू जवाब दे दिया।

"तू भी निरा भोंदू ही है!" बड़ी मालकिन ने कहा। "उसके लिए तो तीन भी बहुत होते, और बाकी दो तू अपने पास रख लेता!"

...चारों ओर वसन्त छाया था। प्रत्येक दिन एक नया बाना धारण करके आता, बीते दिन से अधिक उज्ज्वल तथा अधिक सुन्दर। घास की नई कोपलों और भोज-वृक्ष की ताज़ी हरियाली से मादक गन्ध निकलती। बाहर खेतों में सुहावनी धरती पर लेटकर भरत पक्षी का चहचहाना सुनने के लिए मन बुरी तरह उतावला हो उठता। लेकिन मैं था कि यहाँ जाड़ों के कपड़ों पर ब्रुस करके उन्हें ट्रंक में बन्द करता, तम्बाकू की पत्तियाँ कूटता और गद्देदार फर्नीचर की गर्द झाड़ता—सुबह से रात तक ऐसे कामों में जुटा रहता जिन्हें न तो मैं पसन्द करता था, और न आवश्यक ही समझता था।

और जो थोड़ा-बहुत समय काम से बचता, वह भी यों ही बेकार चला जाता। मेरी समझ में न आता कि फुरसत की इन घड़ियों का क्या करूँ। हमारी गली एकदम सूनी थी, और उसकी सीमा से बाहर जाने की मुझे मनाही थी। हमारा अहाता खाई खोदने वाले थके-हारे और चिड़-चिड़े मज़दूरों, बावर्चिनों और धोबिनों से अटा पड़ा था। और हर साँझ साँठ-गाँठ के इतने बेहूदा और घृणित दृश्य दिखाई देते कि मैं विक्षुब्ध हो उठता, सोचता, यह सब देखने से तो अन्धा होना ही बेहतर।

कैंची और कुछ रंगीन कागज लेकर मैं ऊपर अटारी में पहुँच जाता और फूल-पत्तियाँ काटकर उनसे छत के शहतीरों और खम्भों को सजाता। इससे मेरे मन की ऊब और नीरसता कुछ हल्की हो जाती। किसी ऐसी जगह जाने के लिए मेरा हृदय बुरी तरह ललकता जहाँ लोग कम सोते हों, कम झगड़ते हों और कभी न खत्म होनेवाले अपने रोने-झींखने से भगवान को या कभी न चूकनेवाले अपने कड़वे बोलों से लोगों

को इस हद तक न सताते हों।

...ईस्टर के शनिवार को हमारे नगर में ओरान्स्की मठ से व्लादीमिर्स्काया माता मरियम की प्रतिमा का आगमन हुआ। यह प्रतिमा अपने चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध थी। जून के मध्य तक वह हमारे नगर की मेहमान थी और इस काल में एक-एक करके बस्ती के सभी घरों में उसे ले जाया जा रहा था।

एक दिन सुबह के समय मेरे मालिकों के घर में उसका आगमन हुआ। मैं रसोई में बैठा बर्तन चमका रहा था। एकाएक दूसरे कमरे में छोटी मालकिन सकपकायी-सी आवाज़ में चिल्लाई :

"जाकर बाहर का दरवाज़ा खोल! ओरान्स्काया माता आ रही है!" मेरे हाथ चिकनाई और पिसी हुई ईंट के चूरे से लथपथ थे। वैसी ही गन्दी हालत में मैं लपककर नीचे उतरा और बाहर का दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़े पर एक युवक मठवासी खड़ा था। उसके एक हाथ में लालटेन थी, और दूसरे में लोबान का धूप-दान।

"अभी तक सो रहे हो?" उसने भुनभुनाकर कहा। "इधर आ, थोड़ा सहारा दे..."

दो नगरनिवासी भारी प्रतिमा उठाए थे। वे उसे लेकर तंग जीने पर चढ़ने लगे। मैंने भी सहारा दिया। प्रतिमा के एक कोने के नीचे मैंने कन्धा लगाया और अपने गन्दे हाथों से उसे थाम लिया। हमारे पीछे कुछ गोल-मटोल मठवासी और थे जो अनिच्छा से भारी स्वर में गुनगुना रहे थे :

"माँ मरियम, सुनो टेर हमारी..."

उदास विश्वस्तता के साथ मैंने सोचा :

"माता मरियम ज़रूर इस बात का बुरा मानेगी कि मैंने गन्दे हाथों से उसे छुआ और मेरे हाथ सूख जायेंगे..."

दो कुर्सियों को जोड़कर उन पर एक सफ़ेद चादर बिछा दी गयी। प्रतिमा को उन्हीं पर टिका दिया गया। अगल-बगल दो युवक मठवासी उसे थामे थे—देखने में सुन्दर, चमकदार आँखें, मुलायम बाल और चेहरे प्रसन्नता से खिले हुए। ऐसा मालूम होता मानो वे कोई फरिश्ते हों।

पूजा-प्रार्थना शुरू हुई।

घने बालों में छिपे अपने कान की सूजी हुई लोलकी को लाल उँगली से बार-बार छूते हुए एक लम्बे-चौड़े पादरी ने ऊँची आवाज़ में गाया :

"माँ मरियम, जगत जननी..."

अन्य मठवासियों ने अनमने भाव से साथ दिया :

"पवित्र-पावन माँ, दया करो..."

मैं माता मरियम को जी-जान से चाहता था। नानी ने मुझे बताया था कि दुखियों के आँसू पोंछने और उनके जीवन में आनन्द भरने के लिए मरियम ने ही धरती को

फूलों से सजाया, हर उस चीज़ की रचना की जो भली और सुन्दर है। और जब उसके हाथों को चूमने की रस्म अदा करने का समय आया तो मैंने, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि बड़े क्या कर रहे हैं, काँपते हृदय से देव-प्रतिमा को होठों पर चूम लिया।

एकाएक किसी के मज़बूत हाथ का धक्का खाकर मैं दरवाज़े के पास कोने में जा गिरा। यह तो मुझे याद नहीं कि मठवासी प्रतिमा को उठाकर कैसे विदा हो गये, लेकिन यह मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि मैं फ़र्श पर बैठा था, मेरे मालिक तथा मालकिन मुझे घेरे हुए थे और परेशान मुद्रा में दुनिया भर की अलाय-बलाय का ज़िक्र कर रहे थे जो मुझ पर नाजिल हो सकती थीं।

"पादरी के पास चलकर हमें इसका उपाय पूछना चाहिए," मेरे मालिक ने कहा, और फिर मुझे हल्की-सी डाँट पिलाते हुए बोला :

"यह तूने क्या किया, बेवकूफ़! क्या तुझे इतना भी नहीं मालूम कि होंठों को नहीं चूमा जाता? और तू स्कूल में पढ़ता था!"

कई दिन तक एक इसी बात का हौल मेरे दिल में समाया रहा कि इसकी न जाने मुझे क्या सज़ा मिलेगी। यही क्या कम था कि गन्दे हाथों से मैंने माता मरियम को छुआ, तिस पर मैंने ग़लत ढंग से उसे चूम भी लिया। निश्चय ही इसकी मुझे सजा मिलेगी, किसी प्रकार भी मैं छूट नहीं सकूँगा!

लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो माता मरियम ने अनजाने में किये गये इन गुनाहों को माफ़ कर दिया था। मेरे मन में बुरी भावना नहीं थी। प्रेम से अनुप्राणित होकर ही मैंने ये गुनाह किये थे। या फिर यह भी हो सकता है कि मरियम ने मुझे जो सज़ा दी वह इतनी हल्की थी कि इन भले लोगों की बारहमासी डाँट-फटकार के चक्कर में मुझे उसका पता तक न चला।

कभी-कभी बूढ़ी मालकिन को चिढ़ाने के लिए मैं अफसोस भरे स्वर में कहता :

"मालूम होता है, माता मरियम को मुझे सजा देना याद नहीं रहा!"

"तू देखता रह, अभी आगे क्या होता है..." बड़ी मालकिन द्वेषपूर्ण मुस्कान के साथ जवाब देती।

...चाय के गुलाबी लेबुलों, टीन के पत्तों, वृक्ष की पत्तियों और इसी तरह की अन्य छोटी-मोटी चीज़ों से अटारी में छत के शहतीरों और खम्भों को सजाते समय जो भी मन में आता मैं गुनगुनाने लगता और उसे गिरजे के गीतों की धुन में गूँथने की चेष्टा करता, जैसा कि रास्ते में कलमीक लोग किया करते हैं :

बैठा हुआ अटारी में
कैंची लिये हाथ में
ऊब उठा हूँ खूब मैं!
गर होता कुत्ता मैं

न टिकता क्षण भर यहाँ
जहाँ रहना है दुश्वार!
चीखकर कहते सब :
कहना मान, न बड़बड़ा
नहीं तो फूटेगा खोपड़ा!

बूढ़ी मालकिन जब मेरी कारीगरी और सजावट देखती तो वह सिर हिलाते हुए कहती :

"रसोईघर को भी क्यों नहीं ऐसे ही सजा देता?"

एक दिन मालिक भी अटारी में आया, मेरी कारीगरी पर एक नज़र डाली और उसाँस लेते हुए बोला :

"तू भी अजीब है, पेशकोव। पता नहीं तेरा क्या होगा? क्या जादूगर बनने की तैयारी कर रहा है? कुछ कहा भी नहीं जा सकता।"

और उसने मुझे निकोलाई प्रथम के काल का पाँच कोपेक का एक बड़ा सिक्का भेंट किया।

सिक्के को मैंने महीन तार के सहारे तमगे की भाँति लटका दिया। मेरी रंग-बिरंगी सजावट के बीच उसे प्रथम स्थान मिला।

लेकिन अगले ही दिन वह गायब हो गया। मुझे पक्का यकीन है कि बूढ़ी मालकिन ने ही उस पर हाथ साफ़ किया होगा!

5

वसन्त के दिनों में मैं भाग ही निकला। सुबह को चाय के लिए मैं रोटी लेने गया था। मैं पावरोटी ख़रीद ही रहा था कि किसी बात पर पावरोटीवाले का अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया, उसने उसके सिर पर भारी बटखरा दे मारा। वह बाहर की ओर भागी और सड़क पर आकर ढेर हो गयी। चारों ओर लोग जमा हो गये और उसे एक गाड़ी में डालकर अस्पताल ले चले। मैं भी लपककर गाड़ी के साथ-साथ हो लिया और इसके बाद, पता नहीं कैसे, एकदम अनजाने में ही वोल्गा के तट पर पहुँच गया। मेरी मुट्ठी में बीस कोपेक का सिक्का था।

वसन्त का दिन वसन्ती मुसकान की वर्षा कर रहा था। वोल्गा के पाट का कोई वार-पार न था, विशाल धरती कोलाहलमय थी। लेकिन मैं—मैं था कि उस दिन तक चूहे की भाँति एक बिल में जीवन बिता रहा था। मैंने निश्चय किया कि अपने मालिक के घर अब नहीं लौटूँगा, न ही अपनी नानी के पास कुनाविनो जाऊँगा। नानी को मैंने वचन दिया था, और उसे पूरा न कर सकने के कारण उसके सामने जाते मुझे शर्म

आती थी। और नाना तो जैसे ऐसे अवसरों के लिए लपलपाते ही रहते थे।

दो या तीन दिन तक मैं नदी-तट पर यों ही मटरगश्ती करता रहा।

भाईचारे में घाट-मज़दूर खाना खिला देते, घाट पर ही उनके साथ मैं रात को सोता। आख़िर उनमें से एक ने कहा :

"इस तरह मुफ़्तखोरी से काम नहीं चलेगा, बलुआ! 'दोब्री' जहाज़ में नौकरी क्यों नहीं कर लेते? रसोईघर में तश्तरियाँ साफ़ करने के लिए वहाँ एक आदमी की ज़रूरत है..."

मैं चल दिया। बारमैन एक लमतड़ंग दाढ़ीवाला आदमी था—सिर पर रेशम की काली टोपी, और चश्मे के भीतर से झाँकती धुँधली-सी आँखें। सिर उठाकर उसने मेरी ओर देखा और धीरे से बोला :

"दो रूबल महीना। पासपोर्ट ला।"

मेरे पास पोसपोर्ट नहीं था। बारमैन ने एक क्षण कुछ सोचा। फिर बोला : ''माँ को ले आ!''

भागा हुआ मैं नानी के पास पहुँचा। नानी ने मेरे इस नए कदम का समर्थन किया और नाना को भी समझा-बुझाकर व्यवसायों के दफ़्तर में भेजा ताकि वह मेरे लिए पासपोर्ट ले आयें और खुद मेरे साथ जहाज़ पर पहुँची।

"बहुत ठीक," बारमैन ने उड़ती नज़र से हमारी ओर देखा। "मेरे साथ चला आ।"

वह मुझे जहाज़ के पिछले हिस्से में ले गया जहाँ तगड़े बदन का बावर्ची सफ़ेद पोशाक पहने और टोपी लगाए मेज़ के पास बैठा था। वह चाय पी रहा था और साथ ही एक मोटी सिगरेट से धुआँ उड़ा रहा था। बारमैन ने मुझे उसकी ओर धकेलते हुए कहा :

"यह बरतन साफ़ करेगा।"

इसके बाद वह उलटे पाँव लौट गया। बावर्ची ने नाक सिकोड़ी, फिर अपनी काली मूँछों को फरफराया और बारमैन को लक्ष्य कर फनफनाते हुए बोला :

"किसी भी ऐरे-ग़ैरे को रख लेते हो, बस मजदूरी कम देनी पड़े!"

अपने भारी-भरकम सिर को जिसके काले बाल खूब महीन छँटे हुए थे, झुँझलाकर उसने पीछे की ओर फेंका, फिर अपनी काली आँखों से मेरी ओर ताकते और अपने गालों को कुप्पा-सा फुलाते हुए चिल्लाकर कहा :

"कौन है तू?"

यह आदमी मुझे कतई पसन्द नहीं आया। इसके बावजूद कि वह सिर से पाँव तक सफ़ेद कपड़ों में ढँका था, वह मुझे गन्दा मालूम हुआ। उसकी उँगलियों पर खूब घने बाल थे, और उसके छाज-से कानों पर भी बाल थे।

"मुझे भूख लगी है," मैंने कहा।

उसने अपनी आँखें मिचमिचाईं, और अचानक उसके चेहरे का रूखापन देखते-देखते गायब हो गया। प्रशस्त मुसकराहट से वह खिल उठा, उसके लाल गाल लहरियाँ लेते कानों तक फैल गये, और उसके बड़े-बड़े घोड़े जैसे दाँत चमकने लगे। उसकी मूँछें विनम्र भाव से झुक गयीं और वह एक मोटी-ताजी कोमलहृदय गृहिणी जैसा लगने लगा।

गिलास में बची चाय उसने जहाज़ से नीचे पानी में फेंक दी, फिर गिलास में ताजी चाय उंड़ेली और सासेज के एक बड़े टुकड़े के साथ पावरोटी मेरी ओर बढ़ा दी।

"लो, यह खाओ," उसने कहा। "तुम्हारे माँ-बाप तो हैं न? चोरी करना जानते हो? कोई बात नहीं, जल्दी ही सीख जाओगे। चोरी करने में यहाँ सभी माहिर हैं!"

वह बोलता क्या, भौंकता था। वह इतनी कसकर हजामत बनाए हुए था कि उसके भारी-भरकम गाल नीले लगते थे। नाक के इर्द-गिर्द महीन लाल शिराओं का जाल बिछा था। उसकी कुप्पी-सी लाल नाक मूँछों के साथ दखलन्दाजी करती थी, उसका निचला मोटा होंठ उपेक्षा से नीचे लटक आया था और मुँह के कोने में एक सिगरेट चिपकी हुई थी। लगता था मानो वह अभी गुसलखाने से स्नान करके निकला हो। उसके बदन से भोज-वृक्ष की टहनियों और मिरचौनी वोद्का की गन्ध आ रही थी और उसकी गरदन और कनपटियों पर पसीने की बूँदें उभर आयी थीं।

जब मैं भर पेट खाना खा चुका तो उसने मेरे हाथ में एक रूबल थमा दिया।

"अपने लिए दो एप्रन ख़रीद लेना। नहीं, रहने दो। मैं खुद ही ख़रीदकर ला दूँगा!"

उसने टोपी को ठीक किया और रीछ की तरह भारी कदमों पर डगमगाता, पैरों से डेक को टटोलता चल दिया।

...रात का समय था। चन्द्रमा उज्ज्वल छटा फैलाता हमारे जहाज़ से बायें चरागाहों की ओर भागता जा रहा था। पुराना-सा मटमैले कत्थई रंग का हमारा जहाज़, जिसकी चिमनी पर सफ़ेद लकीर बनी हुई थी, अलस भाव से पानी के रजत तल पर अपने चप्पूदार चक्कर से असमान छप-छप कर रहा था। जहाज़ को भेंटने के लिए नदी के काले तट धीरे-धीरे पानी पर परछाइयाँ डालते हुए उभर रहे थे; उनके ऊपर घरों की खिड़कियों में लाल झिलमिलाहट हो रही थी। गाँव की ओर से गाने की आवाज़ आ रही थी—गाँव की लड़कियाँ घेरे में नाच-गा रही थीं और उनके गीत की टेक 'आयलूली' से 'हल्लिलूयाह' की धुन का धोखा होता था...

हमारा जहाज़ तारों के एक लम्बे रस्से के सहारे बजरे को खींच रहा था। इस बजरे का रंग भी मटमैला कत्थई था। डेक पर लोहे का एक बड़ा-सा कटघरा था और कटघरे में जलावतनी और कठोर श्रम की सजा पाये कैदी बन्द थे। गलही पर खड़े संतरी की संगीन मोमबत्ती की लौ की भाँति चमक रही थी, और गहरे नीले आकाश

में छोटे-छोटे तारे भी मोमबत्तियों की भाँति जल रहे थे। बजरे पर निस्तब्धता छायी हुई थी और चाँद अपनी चाँदनी लुटा रहा था। कटघरे की काली सलाखों के पीछे गोल धूमिल परछाइयाँ दिखाई देती थीं। यह कैदी वोल्गा को देख रहे थे। पानी छल-छल करता बह रहा था—पता नहीं वह रो रहा था, या सहमे हुए भाव से हँस रहा था। हर चीज़ से गिरजे का आभास मिलता था, यहाँ तक कि तेल की गन्ध लोबान की याद दिलाती थी।

बजरे की ओर देखते-देखते मुझे अपने बचपन की याद हो आयी : आस्त्राखान से नीज्नी की यात्रा, नकाब के समान माँ का चेहरा और मेरी नानी उसकी उँगली पकड़कर मैंने जीवन की इन कठोर, किन्तु दिलचस्प राहों पर पाँव रखा। नानी की याद आते ही जीवन के घृणित और हृदय को कचोटने वाले पहलू मानो गायब हो जाते, हर चीज़ बदल जाती, पहले से ज़्यादा हृदयग्राही और ज़्यादा सुखद बन जाती, और लोग ज़्यादा प्रिय तथा बेहतर लगने लगते...

रात की सुन्दरता मुझे इतना उद्वेलित कर रही थी कि मेरी आँखें डबडबा आयीं। बजरा भी मुझे उद्वेलित कर रहा था। वह ताबूत की भाँति दिखाई देता और इस छलछलाती नदी के प्रशस्त वक्ष और इस सुहावनी रात की ध्यानोन्मुखी निस्तब्धता में उसका अस्तित्व बहुत ही अटपटा तथा बहुत ही बेतुका मालूम होता था। नदी-तट की असम रेखाएँ, जो कभी उभरतीं और कभी नीचे उतरती थीं, हृदय में स्फूर्ति का संचार करतीं और मन में अच्छा बनने तथा मानव जाति का कुछ भला करने की भावना हिलोरे लेने लगती।

जहाज़ के हमारे यात्री भी कुछ निराले ही थे। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे सब के सब—बूढ़े भी और जवान भी, पुरुष भी और स्त्रियाँ भी—एक ही साँचे में ढले हों। कछुवे की चाल से हमारा जहाज़ चलता था। काम-काज वाले लोग डाक जहाज़ से सफर करते। और हमारे जहाज़ की शरण केवल मस्त निखट्टू ही लेते। सुबह से साँझ तक ये खाते और पीते-पिलाते ढेर सारी तश्तरियाँ, छुरी-काँटों और चम्मचों को गन्दा करते। मेरा काम था इन तश्तरियों को साफ़ करना तथा छुरी-काँटों को चमकाना। सुबह के छह बजे से लेकर रात के बारह बजे तक दम मारने को भी फुरसत न मिलती। दोपहर के दो बजे से लेकर छह बजे तक और रात को दस से बारह तक, काम का ज़ोर बहुत हल्का हो जाता। कारण कि भोजन करने के बाद यात्री केवल चाय, बीयर या वोद्का पीते। इन घण्टों में सभी वेटर अर्थात मेरे सभी साहब खाली होते। फनेल के पास एक मेज़ पड़ी थी। चाय पीने के लिए आमतौर से यहीं उनका अखाड़ा जमता। बावर्ची स्मूरी, उसका सहायक याकोव इवानोविच, रसोई के बरतन माँजनेवाला मक्सिम और गालों की उभरी हड्डियोंवाले चेचक के दागों से भरे चेहरे और चिपचिपी आँखों वाला और कुबड़ा वेटर सेर्गेई जो डेक पर यात्रियों को चीज़ें परोसने का काम

करता था, सभी एक मण्डली में जमा होते। याकोव इवानोविच उन्हें गन्दी कहानियाँ सुनाता और अपने सड़े हुए हरे दाँत दिखाते हुए जब वह हँसता तो ऐसा मालूम होता मानो सुबकियाँ ले रहा हो। सेर्गेई का मेंढकनुमा मुँह इस कान से उस कान तक फैल जाता। सदा रूखा मक्सिम चुप्पी साधे रहता और अनिश्चित रंग की अपनी बेजान आँखों से उन्हें ताकता।

बड़ा बावर्ची रह-रहकर अपनी गूँजती आवाज़ में चिल्ला उठता :

"आदमखोर!"

मैं इन सभी से घिनाता था। मोटा गंजा याकोव इवानोविच जब देखो तब स्त्रियों का ही ज़िक्र करता, सो भी निहायत गन्दे ढंग से। उसके भाव शून्य चेहरे पर नीले चकत्ते थे। एक गाल पर मस्सा था जिसमें लाल बाल उग रहे थे जिन्हें उमेठकर वह सुई-सी बनाता। जहाज़ पर जैसे ही कोई चंचल और नरम स्वभाव की स्त्री सवार होती वह उसके सामने बिछ जाता और भिखारी की भाँति छाया बना उसके साथ लगा रहता, चासनी में पगे मिमियाते स्वरों में उसे बतियाता, उसके होंठों पर झाग उफ़न आती जिसे उसकी गन्दी जबान लपलपाकर तेजी से चाटती रहती। न जाने क्यों, मुझे ऐसा लगता कि जल्लाद भी ठीक इतने ही मोटे होते होंगे।

"औरतों को फुसलाना भी एक हुनर है!" वह सेर्गेई और मक्सिम को सिखाने लगा; वे मुँह बाए मन ही मन उमड़ते-घुमड़ते सुन रहे थे और उनके चेहरे पर लाली दौड़ रही थी।

गूँजती आवाज़ में स्मूरी घृणा से चिल्लाया :

"आदमख़ोर!"

फिर कसमसाकर वह उठा और मुझसे बोला :

"पेशकोव, मेरे साथ आओ!"

जब हम उसके केबिन में पहुँचे तो उसने मेरे हाथ में एक क़िताब थमा दी जिस पर चमड़े की जिल्द बँधी हुई थी। फिर वह अपने तख़्ते पर पसर गया जो कोल्ड स्टोरेज रूम की दीवार से सटा था।

"इसे पढ़कर सुनाओ!"

मकारोनी सिवइयों की एक पेटी पर बैठकर मैं अदब से पढ़कर सुनाने लगा :

"अम्बराकुलम में अगर तारे छिटके दिखाई दें तो उसका अर्थ है कि स्वर्ग के देवता तुमसे प्रसन्न हैं, सारे कलुष और गन्दगी से मुक्त होकर तुम दिव्य ज्ञान प्राप्त करोगे..."

सिगरेट जलाकर और मुँह से धुएँ का बादल छोड़ते हुए स्मूरी भुनभुनाया :

"ऊँट के ताऊ! क्या लिखा है..."

"अगर उघड़ी हुई बायीं छाती दिखाई दे तो उसका अर्थ है निष्कपट हृदय..."

"किसकी बायीं छाती?"

"यह तो कुछ नहीं लिखा।"

"मतलब स्त्री की... ओह, लुच्चे कहीं के!.."

उसने आँखें बन्द कर लीं और हाथों का सिरहाना बनाकर लेट गया। होंठों के कोने से लगी अपनी सिगरेट को जो क़रीब-क़रीब बुझ-सी चली थी, सम्भालकर उसने ठीक किया और इतने ज़ोरों से कश खींचा कि उसके सीने के अन्दर से कोई सीटी-सी आवाज़ आयी और उसका बड़ा चेहरा धुएँ में डूब गया। कई बार बीच-बीच में मुझे लगता कि वह सो गया है, मैं पढ़ना बन्द कर देता और उस मनहूस क़िताब की ओर चुपचाप देखता रहता।

लेकिन उसकी भौंकने जैसी आवाज़ सुनाई देती।

"पढ़ो, पढ़ो!"

"वेनेराब्ल ने जवाब दिया : देखो, मेरे नेकदिल फ़्रेहर सूवेरियन..."

"सेवेरियन..."

"सूवेरियन लिखा है..."

"मारो गोली इसे! अन्त में कुछ कविताएँ छपी हैं। उन्हें पढ़ो..."

मैंने पढ़ना शुरू किया :

ऐ अज्ञानियों, हमारी लीलाओं को जानने को तुम उत्सुक,
निष्कान्त नेत्र तुम्हारे देख न पायेंगे उन्हें कभी,
और न जानोगे तुम यह भी, कैसे गाते हैं फ़्रेहर!

"बस करो!" स्मूरी ने चिल्लाकर कहा। "यह भी कोई कविता है? लाओ, इसे मुझे दो!"

क़िताब को अपने हाथ में लेकर उसने गुस्से से उसके मोटे नीले पन्ने उलटे-पलटे और फिर गद्दे के नीचे ठूँस दिया।

"दूसरी लाकर पढ़ो!"

मेरी मुसीबत को लोहे के कुन्दों और कील-कांटों से लैस काले रंग का उसका सन्दूक़ क़िताबों से अटा पड़ा था। इसमें ऐसी पुस्तकें थीं : 'सन्त ओमीर की वाणी', 'तोपख़ाने के संस्मरण', 'लार्ड सेडेनगाली के पत्र', 'क़िताब नुक़सानदायक कीड़े खटमल के बारे में, उसे मारने के और दूसरे कीड़ों को भी मारने के नुस्खों के साथ'; ऐसी भी पुस्तकें थीं जिनका न आदि था न अन्त। कभी-कभी बावर्ची मुझसे सब क़िताबें निकलवाता और उनके नाम पढ़वाता,—मैं पढ़ता और वह गुस्से से बड़बड़ाता :

"शैतान कहीं के, लिखते क्या हैं, मानो औचक में मुँह पर तमाचा-सा मारते हैं। और किसलिये—समझ में नहीं आता! गेरवासी! भाड़ में जाये गेरवासी! अम्बराकुलम..."

अटपटे और अजीब शब्द, ऐसे नाम जो न कभी देखे और न कभी सुने, स्मृति में आकर अटक जाते, उन्हें बार-बार दोहराने के लिए मेरी जीभ खुजलाने लगी—शायद उनकी ध्वनि से उनका अर्थ मेरी समझ में आ जाये। खिड़की से बाहर कामा नदी गाती और छपछपाती रहती। मेरा मन डेक पर जाने के लिए उतावला हो उठता जहाँ बक्सों के बीच जहाजियों की चौकड़ी जमती। वे गीत गाते, दिलचस्प किस्से सुनाते या ताश के खेलों में यात्रियों की जेबें खाली करते। उनके साथ बैठकर उनकी सीधी-सादी बातें सुनना और कामा नदी के तटों, खम्भों की भाँति सीधे खड़े देवदार वृक्षों के ऊँचे तनों और चरागाहों की ओर देखना जहाँ बाड़ का पानी जमा होने से ऐसी छोटी-छोटी झीलें बन गयीं थी जिसमें नीला आसमान टूटे हुए आयीने के टुकड़ों की भाँति चमकता दिखाई देता था, बहुत अच्छा लगता था। हमारा जहाज़ तट से कटा हुआ था और उससे दूर भाग रहा था। लेकिन तट की ओर से थके हुए दिन के सन्नाटे में आँखों से ओझल किसी गिरजे के घण्टों की आवाज़ हवा के साथ बहकर आती और आबाद बस्तियों और लोगों की हलचल की याद दिलाती। किसी मछियारे का डोंगा रोटी के टुकड़ों की भाँति पानी पर नाचता नज़र आता। फिर एक गाँव निकट आता दिखाई देता, जहाँ छोटे लड़कों का एक दल पानी में छप-छप करता तैर रहा होता और लाल क़मीज़ पहने कोई किसान पीले फीते की भाँति फैली रेत पर चला आ रहा होता। दूर से देखने पर हर चीज़ सुहावनी मालूम होती। हर चीज़ खिलौनों की भाँति रंग-बिरंगी और नन्हीं-मुन्नी लगती। मन करता कि स्नेहसिक्त दयार्द शब्द ज़ोर-ज़ोर से बोलूँ ताकि किनारे वाले और बजरे वाले भी उन्हें सुन पायें।

कत्थई रंग का वह बजरा मानो मेरे मन में बसा था। मन्त्रमुग्ध-सा मैं घण्टों बैठा उसके ठुके-पिटे से अग्र भाग को गन्दला पानी चीरकर अपना रास्ता बनाते एकटक देख सकता था। हमारा जहाज़ गले में रस्सी बाँधें सुअर की भाँति उसे खींच रहा था। लोहे का रस्सा जब ढीला पड़ जाता तो पानी से टकराता और इसके बाद, नाक के बल बजरे को खींचते समय, पानी को काटता हुआ फिर तन जाता और उसपर से पानी की प्रचुर बूँद गिरती और वह फिर बजरे को गलही से खींचता। मन में होता कि बजरे पर जाकर उन लोगों के चेहरे देखूँ जो जानवरों की भाँति लोहे के कटघरे में बन्द थे। पेर्म में जब उन्हें बजरे से उतारा जा रहा था, मैं भी जहाज़ से उतरने के तख़्ते पर अपना रास्ता बना रहा था; दल के दल मटमैले जीव, थैलों के बोझ से दोहरे और अपनी जंजीरों को बजाते, मेरे पास से धमधम करते गुजरे। उनमें पुरुष थे, स्त्रियाँ थी, उनमें बूढ़े थे और जवान थे, सुन्दर और असुन्दर, सभी तरह के लोग थे—ठीक वैसे ही जैसे कि सब लोग होते हैं, सिवा इसके कि वे दूसरी तरह के कपड़े पहने थे, और सिर घुटे होने के कारण उनके चेहरे-मोहरे भद्दे दिखाई देते थे। वे ज़रूर डाकू ही रहे होंगे। लेकिन नानी तो डाकुओं के बारे में इतने बढ़िया किस्से सुनाया करती थी!

स्मूरी औरों से कहीं ज़्यादा दबंग लुटेरा मालूम होता था।

"भगवान ऐसे दिन न दिखाना!" बजरे की ओर देखते हुए वह बुदबुदाता।

एक दिन मैंने उससे पूछा :

"ऐसा क्यों है कि तुम खाना पकाते हो और दूसरे लोग हत्या कर रहे हैं, लूटते हैं?"

"खाना तो औरतें भी पकाती हैं, पर बावर्ची का काम वे नहीं करतीं। मैं बावर्ची हूँ, समझा?" उसने थोड़ा हँसकर कहा। फिर एक क्षण कुछ सोचकर बोला :

"लोगों में अन्तर उनकी बेवकूफ़ी का होता है। कुछ लोग सयाने होते हैं, कुछ कूढ़ दिमाग़ और कुछ बिल्कुल गोबर गणेश। और समझदार बनने के लिए ठीक ढंग की—जैसे काला जादू और ऐसी दूसरी बहुत-सी—क़िताबें पढ़नी चाहिए। सभी क़िताबें पढ़नी चाहिए तभी सही क़िताबों का पता लगेगा..."

वह मुझसे सदा यही कहता :

"पढ़ो, अगर कोई क़िताब समझ में न आये तो उसे सात बार पढ़ो। अगर सात बार पढ़ने पर भी समझ में न आये तो उसे बारह बार पढ़ो..."

स्मूरी जहाज़ पर हर किसी से, यहाँ तक कि सदा चुप रहनेवाले बारमैन से भी दो-टूक बातें करता था। बोलते समय उसका निचला होंठ उपेक्षापूर्वक लटका होता, मूँछें खड़ी हो जातीं और शब्द ऐसे निकलते मानो लोगों को ढेले मार रहा हो। लेकिन मेरे साथ वह मुलामियत से पेश आता, हालाँकि उसकी इस हार्दिकता में भी कुछ ऐसी बात थी जिससे मुझे डर लगता था। कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि नानी की बहन की भाँति उसके दिमाग का भी कोई पुर्जा ढीला है।

"पढ़ना बन्द करो..." वह मुझसे कहता और आँखें बन्द किये नाक से सूँ-सूँ करता देर तक चुपचाप पड़ा रहता, उसका भारी पेट उठता और गिरता, उसके हाथ सीने पर लाश की भाँति आड़े रखे रहते, उसकी बालों वाली झुलसी हुई उँगलियाँ इस प्रकार तुड़तीं-मुड़तीं मानो वह अदृश्य सलाइयों से कोई अदृश्य मोजा बुन रहा हो।

फिर, एकाएक, वह बुदबुदाना शुरू करता :

"हाँ, भई। लो, यह लो अक़्ल और जियो। पर अक़्ल तो कंजूसी से मिली है और वह भी बराबर नहीं। अगर कहीं सब एक से अक्लमन्द होते, पर—नहीं... एक समझता है, दूसरा नहीं समझता और ऐसे भी हैं, जो समझना ही नहीं चाहते, क्यों!"

लड़खड़ाते हुए से शब्द उसके मुँह से निकलते और वह अपने सैनिक जीवन की कहानियाँ सुनाता। उसकी कहानियों में मुझे कभी कोई तुक नहीं दिखाई देती और वे मुझे हमेशा बेमजा मालूम होतीं,—ख़ास तौर से इसलिये भी कि वह कभी शुरू से शुरू नहीं करता, बल्कि जहाँ से भी बात याद आ जाती, वहीं से सुनाना शुरू कर देता।

"सो रेजिमेण्ट के कमाण्डर ने उस सैनिक को तलब किया और उससे पूछा :

'तुमसे लेफ्टीनेण्ट ने क्या कहा था?' और उसने सभी कुछ बता दिया, कुछ भी छिपाकर न रखा, क्योंकि सैनिक का यह फर्ज है कि वह सच बोले। लेफ्टीनेण्ट ने उसकी ओर इस तरह से देखा मानो वह दीवार हो, फिर मुँह फेरकर सिर झुकाया। ऊँह..."

बावर्ची को क्रोध आ रहा था, धुआँ छोड़ते हुए वह बुदबुदाया :

"मानो मुझे मालूम ही हो गया कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं! उन्होंने लेफ्टिनेण्ट को जेल में बन्द कर दिया, और उसकी माँ... ओह, मेरे भगवान! मुझे तो कुछ भी सिखाया नहीं किसी ने..."

बड़ी उमस थी। इर्द-गिर्द की हर चीज़ काँप और भनभना रही थी। केबिन की लौह-दीवार से बाहर जहाज़ का चप्पूदार चक्कर धम-धम करता घूम रहा था और पानी से छप-छप कर रहा था। खिड़की में से पानी की चौड़ी धारा उमड़ती-घुमड़ती गिर रही थी, दूर चरागाह की हरियाली नज़र आ रही थी और वृक्षों के झुरमुट आँखों के सामने उभरने लगे थे। सब आवाज़ों को सुनते-सुनते मेरे कान इतने आदी हो गये कि निस्तब्धता के सिवा मुझे अन्य किसी चीज़ का भान न होता, हालाँकि जहाज़ की गलही पर एक मल्लाह एकरस आवाज़ में बराबर दोहरा रहा था :

"सा-आ-त... सा-आ-क..."

मैं हर चीज़ से अलग रहना चाहता था,— न कुछ सुनना चाहता था, न करना,— बस किसी ऐसे कोने में छिप जाना चाहता था जहाँ रसोई की गर्म और चिकनी गन्ध प्रवेश न कर सके और जहाँ बैठकर पानी पर तैरते इस हलचल रहित और थके-हारे जीवन को अलसायी-उनींदी आँखों से देखा जा सके।

"पढ़ो!" झकझोरते हुए स्वर में स्मूरी ने आदेश दिया।

पहले दर्जे के वेटर तक उससे डरते और ऐसा मालूम होता मानो सहमा-सिमटा, घुन्ना और मुँहबन्द बारमैन भी मन ही मन स्मूरी से भय खाता है।

"ऐ सुअर!" स्मूरी वेटरों आदि पर चिल्लाता। "इधर आ, चोर, आदमख़ोर... अम्बराकुलम!"

मल्लाह और कोयला झोंकने वाले उसकी इज़्ज़त करते थे, यहाँ तक कि उसकी नज़रों में अच्छा बनने का भी प्रयत्न करते थे वह उन्हें शोरबे में से गोश्त की बोटियाँ निकालकर देता, उनके बाल-बच्चों और गाँव के जीवन के बारे में पूछता। कालिख में सने और चीकट कोयला झोंकनेवाले बेलारूसी लोग जहाज़ की तलछट समझे जाते थे। उन सभी को एक ही नाम—याकूत—से पुकारा जाता और उन्हें चिढ़ाते थे :

"यागू, आगू, भागू..."

स्मूरी जब यह सुनता तो उसका पारा गर्म हो जाता। उसकी मूँछें फरफराने लगतीं, चेहरा तमातमा जाता और कोयला झोंकनेवाले से वह चिल्लाकर कहता :

"तुम इन कत्सापों* से डरते क्यों हो? इनका तोबड़ा क्यों नहीं तोड़ डालते!"

एक बार मल्लाहों के मुखिया ने जो शक्ल-सूरत से अच्छा तथा स्वभाव से चिड़चिड़ा था, उससे कहा :

"यागूत और ख़ोख़ोल** दोनों एक बराबर हैं।"

स्मूरी ने एक हाथ से उसकी पेटी दबोची और दूसरे से गरेबान। फिर सिर से ऊँचा उठाकर उसे हिलाते-झँझोड़ते हुए चिल्ला उठा :

"बोल, निकाल दूँ कचूमर?"

अक्सर झगड़े होते थे और कभी-कभी लड़ाई तक बढ़ जाते। लेकिन स्मूरी को कभी कोई हाथ नहीं लगाता था। एक तो इसलिये कि ताकत में वह पूरा देव था, दूसरा इसलिये भी कि कप्तान की पत्नी उससे अक्सर विनम्रतापूर्वक बातें करती थी। वह ऊँचे कद की स्त्री थी, मरदाना चेहरा और लड़कों की भाँति सीधे कटे हुए बाल।

वह वोद्का बहुत पीता था, लेकिन मदहोश कभी नहीं होता था। सुबह से वह पीना शुरू करता, चार पेगों में ही एक बोतल खाली कर देता और फिर दिन भर बीयर चुसकता रहता। धीरे-धीरे उसका चेहरा लाल हो जाता, और उसकी काली आँखें इस तरह फैल जातीं मानो उनमें अचरज का भाव भरा हो।

कभी-कभी, साँझ के समय सफ़ेद रंग की भीमाकार प्रतिमा की भाँति वह चुप्पी साधे डेक पर घण्टों बैठा रहता और मुँह फुलाये पीछे छूटती हुई दूरी को घूरा करता। ऐसे क्षणों में प्रायः सभी उससे और भी ज़्यादा डरते, लेकिन मुझे उस पर तरस आता।

याकोव इवानोविच रसोई से बाहर निकलता, चेहरा लाल और पसीने में तर वह अपनी गंजी खोपड़ी को खुजलाता और फिर निराशा से हाथ हिलाता हुआ गायब हो जाता। या वह दूर से कहता :

"मछली मर गयी..."

"मिले-जुले सूप में डाल दो..."

"अगर कोई मछली का शोरबा या भाप में पकी मछली माँगने लगा तो क्या करोगे?"

"बना डालो। वे सब चट कर जायेंगे!"

कभी-कभी साहस बटोरकर मैं उसके पास चला जाता। बड़ी कठिनाई से आँखें मेरी ओर घुमाकर वह पूछता :

"क्यों?"

"कुछ नहीं।"

"ठीक है..."

---

* कत्साप—रूसी के लिए एक अपमानजनक शब्द।—सं.

** उक्राइनी के लिए एक अपमानजनक शब्द।—सं.

एक बार मैंने उससे ऐसे एक मौके पर पूछ ही लिया :

"तुम सभी को डराते क्यों हो—तुम तो दयालु हो?"

मेरी आशा के विपरीत वह झुँझलाया नहीं।

"मैं केवल तुम्हारे साथ ही दयालु हूँ," उसने जवाब दिया, और फिर कुछ सोचते हुए खुले दिल से बोला :

"शायद यह ठीक है—मैं सभी के साथ दयालु हूँ। केवल मैं दिखाता नहीं। लोगों को यह कभी नहीं दिखाना चाहिए, वरना वे तुम्हें नोच खायेंगे। जो भला होता है, लोग उस पर इस तरह चढ़ बैठते हैं जैसे कि वह दलदल के बीच सूखी मिट्टी का कोई टीला हो और वे उसे पाँव तले रौंद डालते हैं। जाओ, बीयर उठा लाओ..."

एक के बाद एक कई गिलास बीयर पीने के बाद उसने अपनी मूँछों को चाटा और बोला :

"अगर तुम कुछ बड़े होते तो तुम्हें बहुत-सी बातें सिखाता... मैं भी थोड़ी-बहुत काम की बातें जानता हूँ—निरा बौड़म नहीं हूँ... तुम पुस्तकें पढ़ो, पुस्तकों में काम की सभी बातें होनी चाहिए। क़िताबें फिजूल की चीज़ नहीं हैं। क्यों कुछ बीयर पियोगे?"

"मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"यह अच्छी बात है। कभी नशा न करना। नशा एक बहुत बड़ी बला है। वोद्का शैतान की देन है। अगर मैं अमीर होता तो पढ़ने के लिए तुम्हें स्कूल भेज देता। अनपढ़े आदमी को पूरा बैल ही समझो। चाहो तो उस पर जुआ लाद दो, चाहे उसे काटकर खा जाओ—दुम फड़फड़ाने के सिवा वह और कुछ नहीं करता..."

कप्तान की पत्नी ने उसे गोगोल की एक पुस्तक दी : 'भयानक बदला'। मुझे यह पुस्तक बहुत पसन्द आयी। लेकिन स्मूरी गुस्से से चिल्ला उठा :

"निरी बकवास, परियों की कहानी जैसी। मैं जानता हूँ—दूसरी क़िताबें भी हैं..."

उसने मेरे हाथ से पुस्तक छीन ली और कप्तान की पत्नी से एक अन्य पुस्तक ले आया।

"लो, अब इसे पढ़ो—तारास— जरा देखो तो, इसका पूरा नाम क्या है? ढूँढ़ो।" अपनी तरंग में बहते हुए उसने आदेश दिया। "वह कहती है कि बहुत बढ़िया पुस्तक है... लेकिन बढ़िया किस के लिए? हो सकता है कि यह उसके लिए बढ़िया हो, और मेरे लिए घटिया। और देखो न, अपने बाल कटा लिये! अपने कान भी क्यों नहीं कटा लिये?"

पुस्तक पढ़ते-पढ़ते जब मैं उस स्थल पर पहुँचा जहाँ तारास ने ओस्तान को लड़ने के लिए ललकारा, बावर्ची भरभराई आवाज़ में हँसा।

"यह सही है! और क्या?" उसने कहा। "तू विद्वान, मैं बलवान! क्या छापते हैं! ऊँट की औलाद!.."

वह ध्यान से सुन रहा था लेकिन बीच-बीच में भुनभुनाता भी जाता था।

"ऊँह, यह भी क्या बकवास है। एक ही बार में कन्धे से कमर तक आदमी को नहीं काटा जा सकता। एकदम ग़लत। और बर्छी की नोक पर आदमी को भला कैसे उठाओगे, वह टूट न जायेगी? क्या मैं जानता नहीं, मैं खुद सैनिक रह चुका हूँ..."

अन्द्रेई के विश्वासघात का प्रसंग सुनकर वह घृणा से बोला :

"नीच जात है, न? लुगाई पर मर गया। थू!"

पर जब तारास ने अपने बेटे के सीने में गोली दागी तो स्मूरी उचककर बैठ गया, अपनी टाँगों को उसने तख़्ते से नीचे लटका लिया, उसके किनारे को दोनों हाथों से पकड़कर झुका और रोने लगा। आँसू धीरे-धीरे उसके गालों पर से लुढ़कते हुए फ़र्श पर गिरने लगे। नथुने फड़काते हुए वह बुदबुदाया :

"ओह, मेरे भगवान... मेरे भगवान..."

सहसा वह मुझ पर चिल्ला उठा :

"पढ़ना क्यों बन्द कर दिया, शैतान के पूत!"

वह और भी ज़ोरों से, फफक-फफककर रोने लगा उस समय जब ओस्ताप अपने प्राणदण्ड से पहले चीख उठा, "बापू! मुझे सुन रहे हो?"

"सभी कुछ समाप्त हो गया," स्मूरी भुनभुनाया। "कुछ भी बाकी नहीं बचा। खत्म भी हो गया? आह, सत्यानाश हो इसका, पर लोग कैसे थे, हैं? यह तारास क्या आदमी था! हाँ, यह थे असली आदमी..."

उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और ध्यान से उसे देखता रहा, क़िताब की जिल्द आँसुओं से भीग गयी।

"बड़ी अच्छी क़िताब है! तबीयत खुश कर दी!"

इसके बाद 'आइवनहो' का पाठ शुरू हुआ। स्मूरी को रिचर्ड प्लांटागेनेट का चरित्र बहुत पसन्द आया।

"बादशाह हो तो ऐसा!" उसने रोबीली आवाज़ में कहा। मुझे यह क़िताब उबानेवाली लगी।

आम तौर पर हमारी रुचि एक-दूसरे से भिन्न थी। 'थोमस जोन्स की कहानी' ने, जो 'लावारिस टाम जोन्स की जीवनी' का पुराना अनुवाद था, मुझे मन्त्रमुग्ध कर लिया। लेकिन स्मूरी बड़बड़ाया :

"एकदम बकवास! भाड़ में जाये तुम्हारा थोमस। मुझे उससे क्या लेना? बढ़िया पुस्तकें खोजनी चाहिए..."

एक दिन मैंने उसे बताया कि मुझे मालूम है कि पुस्तकों की एक और क़िस्म होती है : वर्जित पुस्तकें, जिन्हें केवल रात के समय तहख़ानों में बैठकर पढ़ा जाता है।

उसकी आँखें फैल गईं, मूछें फरफराने लगीं।

"क्या-आ कहा तुमने? क्यों बेपर की उड़ा रहे हो?"

"मैं झूठ नहीं कहता। पाप-स्वीकारोक्ति के समय खुद पादरी ने उनके बारे में मुझसे पूछा था, और उससे भी पहले मैंने लोगों को उन्हें पढ़ते और उन पर आँसू बहाते देखा है..."

चुँधी-सी आँखों से उसने मेरी ओर देखा :

"आँसू बहाते देखा है? कौन था वह?"

"एक स्त्री जो सुन रही थी, और दूसरी तो डर के मारे भाग ही गयी!.."

"ज़रा होश में आओ, क्या बड़बड़ा रहे हो?" अपनी आँखों को धीरे-धीरे सिकोड़ते हुए स्मूरी ने कहा। फिर कुछ रुककर बोला :

"बेशक कहीं होनी चाहिए... कोई गुप्त चीज़... न होना असम्भव है... मेरी उम्र वैसी नहीं... और स्वभाव भी तो नहीं... फिर भी..."

बिना रुके घण्टों तक वह इसी तरह "धाराप्रवाह" बातें कर सकता था...

एकदम अनजाने में ही मुझे पढ़ने की आदत पड़ गयी और मैं चाव के साथ क़िताबें पढ़ने लगा; पुस्तकों में वर्णित जीवन वास्तविक जीवन से, जो अधिकाधिक दूभर होता जा रहा था, कहीं सुखद था।

स्मूरी की दिलचस्पी भी पुस्तकों में बढ़ती गयी। अक्सर वह मुझे अपना काम भी न करने देता। कहता :

"पेशकोव, चलो पुस्तक पढ़कर सुनाओ।"

"यहाँ जूठे बर्तनों का ढेर लगा हुआ है।"

"मक्सिम साफ़ कर लेगा।"

स्मूरी बड़े बर्तन माँजनेवाले की गरदन दबोचकर उससे मेरा काम लेता, वह काँच के गिलास तोड़कर अपना बदला चुकाता। और बारमैन निश्चल आवाज़ में मुझे चेतावनी देता :

"तुम्हें जहाज़ से निकाल दूँगा।"

एक दिन मक्सिम ने जान-बूझकर गन्दे पानी के बरतन में गिलास पड़े रहने दिए। मैंने बरतन का गन्दा पानी जहाज़ से नीचे फेंका तो गिलास भी उसके साथ-साथ जा गिरे।

"यह क़सूर मेरा है," स्मूरी ने बारमैन से कहा। "गिलासों के दाम मेरे हिसाब से काट लेना।"

वेटरों ने भी मुझसे जलना और कुढ़ना शुरू कर दिया। मुझे कोंचते हुए कहते :

"कहो क़िताबी कीड़े, खूब हराम की खाते हो आजकल!"

मेरा काम बढ़ाने के लिए वे जान-बूझकर रक़ाबियों को गन्दा कर देते। मैं

समझता था कि इस छेड़छाड़ का अन्त अच्छा नहीं होगा और ऐसा ही हुआ भी।

साँझ का समय था। एक छोटे-से घाट पर एक लाल चेहरेवाली स्त्री हमारे जहाज़ पर सवार हुई। उसके साथ एक लड़की भी थी जो पीले रंग का रुमाल और गुलाबी रंग का नया ब्लाउज पहने थी। दोनों कुछ-कुछ नशे में थीं। स्त्री बराबर मुस्कराती, झुककर सभी का अभिवादन करती और उसके मुँह से तोते की भाँति शब्द निकलते :

"मुझे माफ करना, मेरे प्यारे! आज मैंने थोड़ी-सी चढ़ा ली है। मेरे पर मुकदमा चला था और मैं बेदाग छूट गयी, सो अब खुशी मना रही हूँ..."

लड़की भी अपनी धुँधली आँखों से सभी पर डोरे डालती हँस रही थी और स्त्री को धकेल रही थी :

"अरी जा, सिरफिरी..."

जहाज़ के दूसरे दर्जे के डेक-रूम के पास उस केबिन के सामने जहाँ याकोव इवानोविच और सेर्गेई सोते थे, दोनों ने अपना अड्डा जमाया। स्त्री तो शीघ्र ही कहीं गायब हो गयी, और सेर्गेई लड़की के बगल में जाकर जम गया। उसका मेंढकनुमा मुँह लालसापूर्वक फैला था।

काम-काज से निबटकर उस रात सोने के लिए मैं मेज़ पर चढ़ा ही था कि सेर्गेई मेरे पास आया और मेरा हाथ खींचते हुए बोला :

"चल, हम आज तेरी जोड़ी मिलायेंगे..."

वह नशे में धुत्त था। मैंने उससे अपना हाथ छुड़ाना चाहा तो उसने मुझे मारा :

''चल!''

तभी मक्सिम भागा हुआ आ गया। वह भी नशे में धुत्त था। दोनों ने मुझे पकड़ा और डेक तथा सोते हुए यात्रियों के पास से खींचते हुए मुझे अपने केबिन की ओर ले चले। लेकिन दरवाज़े के पास स्मूरी और ठीक दरवाज़े के बीचों-बीच याकोव इवानोविच लड़की का रास्ता रोके खड़ा था। वह उसकी पीठ पर घूसे बरसा रही थी। और नशीली आवाज़ में बार-बार चिल्ला रही थी :

"जाने दो..."

स्मूरी ने मुझे मक्सिम और सेर्गेई के चंगुल से छुड़ा लिया, बाल पकड़कर उनके सिरों को एक-दूसरे से टकराया, और परे फेंक दिया—वे दोनों गिर पड़े।

"आदमख़ोर!" वह याकोव पर चिल्लाया और झटके से उसके मुँह पर दरवाज़ा बन्द कर दिया। फिर मुझे धकियाते हुए गुर्रा उठा :

"दफ़ा हो जाओ यहाँ से!"

मैं जहाज़ के दबूसे की ओर भाग गया। बादलों घिरी रात थी, नदी काली थी। जहाज़ के पीछे पानी में दो भूरी धारियाँ उफ़नती हुई अदृश्य तटों की ओर भागी जा

रही थीं। इन धारियों के बीच बजरा घिसट रहा था। कभी दाहिनी ओर कभी बाँयी ओर रोशनियों के लाल धब्बे दिखाई देते और फिर, किसी चीज़ को आलोकित किये बिना ही नदी के घुमावों के पीछे तुरन्त ग़ायब हो जाते। उनके ओझल हो जाने के बाद रात का अँधेरा और मेरे अन्तरतम को लगी चोट और गहरी होती जाती।

बावर्ची आकर मेरे पास ही बैठ गया। गहरी साँस खींचकर उसने सिगरेट सुलगायी।

"क्या वे तुम्हें उस छछूँदर के पास ले जा रहे थे? बदजात कहीं के! मैंने सुना था, वे कैसे उस पर हाथ डाल रहे थे..."

"तुमने उसे उनके चंगुल से छुड़ाया?"

"उसे?" भद्दे-से शब्दों में उसने लड़की को कोसा और फिर भारी आवाज़ में बोला :

"यहाँ सभी कमीने हैं! यह जहाज़ देहात से भी बदतर है। क्या तू कभी देहात में भी रहा है?"

"नहीं।"

"देहात—पूरी मुसीबत है। जाड़ों में तो ख़ास तौर से..."

उसने सिगरेट का टुर्रा पानी में फेंक दिया और कुछ रुककर बोला :

"इन सुअरों के झुण्ड के बीच तेरा सत्यानाश हो जायेगा! तुझे देखकर दुःख होता है, पिल्ले। दुःख तो मुझे सभी पर होता है। और कभी-कभी तो न जाने क्या करने को तैयार होता हूँ। मन करता है कि घुटनों के बल गिरकर उनसे कहूँ : 'यह तुम क्या कर रहे हो, हरामी पिल्ले? क्या तुम अन्धे हो?' ऊँट कहीं के..."

जहाज़ ने देर तक सीटी की आवाज़ की, तार का रस्सा पानी में गिरकर छपछपाया, घने अँधेरे में लाल्टेन की रोशनी झूल उठी जो इस बात की सूचक थी कि जहाज़ घाट यहाँ है, और भी रोशनियाँ धुँधलके में झिलमिलाने लगी।

"यही है वह 'नशीला जंगल'," बावर्ची बड़बड़ाया। "नशीली नाम की नदी भी है। एक अफसर का नाम था शराबोव। और एक पियक्कड़ नाम का क्लर्क भी... मैं किनारे पर जाऊँगा..."

कामा प्रदेश की हट्टी-कट्टी स्त्रियाँ लम्बी डोलियों पर लकड़ी लाद कर ला रही थीं। फुर्ती से छोटे-छोटे डग भरती, बोझ से झुकी-झुकी, दो-दो के जोड़ों में जहाज़ के ईंधनघर तक आती और उसके काले मुँह में ज़ोरों से 'धाईशा-आ' की आवाज़ करती हुई लकड़ी के कुन्दों को झोंक देती।

जब वे लकड़ी लेकर आतीं तो मल्लाह उनकी टाँगें खींचते, उनकी छातियों को पकड़कर मसकते और स्त्रियाँ कींकती हुई उनके मुँह पर थूकतीं। लकड़ियाँ उतारकर जब वे लौटतीं तो जहाज़ियों के धक्कों और चिकोटियों से बचने के लिए वे पलटकर

अपनी डोलियों से उन पर वार करतीं। दसियों बार, हर फेरे में, मैं यह देख चुका था। जहाँ कहीं भी जहाज़ लकड़ियाँ लेता, इसी तरह के दृश्य दिखाई देते।

मुझे ऐसा मालूम होता मानो मैं कोई बड़ा बूढ़ा आदमी हूँ, लम्बे अर्से से जहाज़ पर रहा हूँ, और पहले से ही बता सकता हूँ कि यहाँ अगले दिन, अगले सप्ताह, अगली शरद में या अगले वर्ष क्या होगा।

उजाला हो चला था। घाट से परे रेत के टीले पर देवदार के एक बड़े जंगल की शक्ल दिखाई देने लगी। जंगल की ओर स्त्रियाँ टीले पर जा रही थीं। वे हँसती, गीत गाती, किलकारियाँ भर रही थीं। अपनी लम्बी डोलियों से लैस वे सैनिकों के दल की भाँति दिखाई दे रही थीं।

जी रोने को चाहता था। आँसू हृदय में उमड़-घुमड़ रहे थे, वह मानो उनमें उबल रहा था; इससे मुझे बहुत पीड़ा पहुँचती थी।

लेकिन रोने में मुझे शर्म मालूम हुई। सो मैं उठा और डेक साफ़ करने में मल्लाह शूरिन का हाथ बँटाने लगा।

शूरिन उन जहाजियों में से था जिनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। पीला और बेरंग, जहाज़ के ओने-कोने में छिपकर बैठा बस अपनी छोटी आँखें मिचमिचाता रहता।

एक दिन मुझसे बोला :

"असल में मेरा नाम शूरिन नहीं, सूरिन है। जिस माँ ने मुझे जन्म दिया, वह पूरी सूरी थी। वह मेरी बहन—वह भी अपनी माँ से कम नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि विधाता ने इन दोनों के भाग्य में यही लिख दिया था। भाग्य, मेरे भाई, उस पत्थर की भाँति है जो गले में बँधा रहता है। तुम उबरने के लिए हाथ-पाँव मारते हो, और वह तुम्हें ले डूबता है..."

और अब, डेक को साफ़ करते समय, धीमे स्वर में कहने लगा :

"देखा तूने, ये लोग लड़कियों को किस तरह मसकते और कचोटियां काटते हैं? कौन जानता है कि अगर पीछे पड़े रहो तो सीली लड़की भी गरमा जाती है! मुझसे यह नहीं देखा जाता। नहीं भाई, मैं यह सब सहन नहीं कर सकता। अगर मैं लड़की होता तो ईसा मसीह की कसम खाता हूँ, किसी अन्धे कुएँ में डूब मरता... इंसान तो यूँ ही आज़ाद नहीं होता; ऊपर से लोग उकसाते हैं। बंधिए तो, भाई मेरे, कोई मूर्ख थोड़े ही है, कभी सुना है बधियों के बारे में? समझदार लोग हैं—भले जीवन का रास्ता खोजने में उन्हें देर न लगी। बस, मन को भटकाने वाली इन छोटी चीज़ों को जड़-मूल से काटकर फेंक दो और, शुद्ध तन-मन से भगवान की सेवा करो..."

कप्तान की पत्नी हमारे पास से गुजरी। डेक पर पानी फैला हुआ था। अपने घाघरों को भीगने से बचाने के लिए वह उन्हें ऊँचा उठाए थी। वह हमेशा जल्दी उठ

जाती थी। लम्बी और सुघड़, चेहरा कुछ इतना निष्कपट और भोलेपन का कुछ ऐसा भाव लिये कि मेरा मन ललक उठता, जी करता कि भागकर उसके पीछे जाऊँ और अपना समूचा हृदय उड़ेलते हुए उससे कहूँ :

"मुझसे बातें कीजिए—कुछ तो कहिए!..."

जहाज़ धीरे-धीरे घाट से दूर होने लगा।

"चल दिए!" शूरिन ने कहा, और अपने हाथ से सलीब का चिह्न बनाया...

6

सारापूल पहुँचने पर मक्सिम जहाज़ से चला गया। चलते समय उसने किसी से विदा तक न ली। बस, एकदम चुपचाप, शान्त और गम्भीर, वह जहाज़ से चल दिया। रंगीन स्वभाव की वह स्त्री भी हँसती और खिलखिलाती, उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। साथ में लड़की भी थी—मसली और मुरझायी-सी, आँखें सूजी हुई। सर्गेई कप्तान के केबिन के सामने देर तक बैठा रहा, दोनों घुटने टेके हुए। दरवाज़े की चौखट को वह चूमता था, और रह-रहकर उसपर अपना सिर पटकता था।

"मुझे माफ करो," झींकता हुआ वह कहता। "मैंने कुछ नहीं किया। वह सब मक्सिम का कसूर था..."

मल्लाहों, बारवालों, यहाँ तक कि कुछ यात्रियों को भी मालूम था कि वह झूठ बोल रहा है। फिर भी वे उसे उकसा और बढ़ावा दे रहे थे :

"ठीक है, डटा रह! वह माफ कर देगा!"

कप्तान ने उसे भगाया, यहाँ तक कि ऐसी लात जमाई कि सेर्गेई फ़र्श पर गिर पड़ा, लेकिन फिर माफ कर दिया। अगले ही क्षण सेर्गेई हाथों में नाश्ते की ट्रे लिये डेक पर इधर से उधर लपकता और मार खाए पिल्ले की भाँति लोगों की आँखों में झाँकता हुआ नज़र आने लगा।

मक्सिम की जगह जिस आदमी को रखा गया, वह व्यात्का प्रदेश का रहनेवाला था और पहले फौज की नौकरी कर चुका था। हड्डियों का ढाँचा, छोटा-सा सिर और लाल-भूरी आँखें। आते ही छोटे बावर्ची ने उसे मुर्ग़ियाँ काटने भेज दिया। दो तो उसने काट डालीं, और बाकी डेक पर निकल भागीं। यात्रियों ने उन्हें पकड़ने की कोशिश की, और तीन मुर्ग़ियाँ फुदककर जहाज़ से पानी में जा गिरीं। रसोईघर के पास लकड़ियों का ढेर पर निराशा से सिर झुकाये सैनिक बैठ गया, और फूट-फूटकर रोने लगा।

"अरे बुद्धू कहीं का, हुआ क्या?" स्मूरी ने अचरज में भरकर पूछा। "छिः, सैनिक भी कभी रोते हैं, क्या?"

सैनिक ने धीमे स्वर में कहा :

"मैं तो ग़ैर लड़ाकू सैनिक था।"

वह कहना ही था कि उसका तो तमाशा बन गया। आध घण्टा बीतते न बीतते जिसे देखिए वही जहाज़ में उस पर हँस रहा था। एक-एक करके लोग उसके एकदम नजदीक आते, उसके चेहरे पर आँखें गाड़ देते और पूछते :

"क्या यही है?"

इसके बाद बहुत ही भोंड़े और भद्दे ढंग से खिलखिलाकर उसकी वे उसकी हँसी उड़ाते, और हँसते-हँसते दोहरे हो जाते।

शुरू में सैनिक का ध्यान न तो उनकी ओर गया और न ही उनके खिलखिलाने और हँसने की ओर। वह केवल उसी जगह बैठा हुआ अपनी फटी पुरानी क़मीज़ की आस्तीन से अपने आँसुओं को इस तरह पोंछता रहा मानो उन्हें अपनी आस्तीन में छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। लेकिन शीघ्र ही उसकी लाल-भूरी आँखें गुस्से से दमकने लगीं और व्यात्का निवासियों के चुहचुहाते लहजे में उसकी ज़बान कतरनी-सी चल पड़ी :

"इस तरह दीदें फाड़कर मुझे क्यों घूर रहे हो? तुम्हारी बोटी-बोटी नुचे, मुओ!.."

उसकी इस बात ने लोगों को और भी गुदगुदा दिया। वे आते और उसकी पसलियों में अपनी उँगलियाँ गाड़ते, उसकी कमीज और उसका एप्रन पकड़कर खींचते मानो बकरे के साथ खेल रहे हों। इस तरह भोजन का समय होने तक वे उसे पूरी बेरहमी से चिढ़ाते रहे। भोजन के बाद किसी ने लकड़ी के चमचे के हत्थे में निचुड़ा नींबू गड़ाकर उसे उसके एप्रन की डोरियों से पीठ पीछे बाँध दिया। सैनिक जब इधर-उधर हिलता-डुलता तो चमचा भी उसके साथ-साथ झकोले खाता और लोग उसे देख-देखकर हँसी के मारे दोहरे हो जाते। चूहेदानी में बन्द चूहे की भाँति वह छटपटाता और भुनभुनाता—उसकी समझ में न आता कि आख़िर ये लोग इतना हँस क्यों रहे हैं।

बिना कुछ बोले, बड़ी गम्भीरता से, स्मूरी ने उसे देखा और उसका चेहरा किसी स्त्री के चेहरे के भाँति कोमल हो उठा।

मुझे भी सैनिक पर तरस आया। मैंने स्मूरी से पूछा :

"कहो तो चमचे के बारे में उसे बता दूँ?"

स्मूरी ने सिर हिलाकर अनुमति दे दी।

जब मैंने सैनिक को यह बताया कि वह क्या चीज़ है जिस पर सब लोग हँस रहे हैं तो उसका हाथ झपटकर चमचे पर पहुँचा, उसकी डोरी को उसने तोड़ डाला, फिर चमचे को फ़र्श पर पटक उसे पाँव तले रौंदा और अपने दोनों हाथों से मेरे बाल पकड़कर मुझे खींचना शुरू कर दिया। फिर क्या था, हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गये

और अन्य सब लोग तुरन्त घेरा-सा बनाकर बड़ी खुशी से हमारा तमाशा देखने लगे।

स्मूरी ने सबको इधर-उधर कर हमें एक-दूसरे से छुड़ा दिया। पहले उसने मेरे कान गरम किये, फिर सैनिक को कान से पकड़ लिया। अपना कान छुड़ाने के लिए जब टुईयाँ-से उसके बदन ने ऐंठना और बल खाना शुरू किया तो लोग उसे देख-देखकर उछल पड़े और उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। तालियों और सीटियों की आवाज़ से लोगों ने आसमान सिर पर उठा लिया और हँसी के मारे दोहरे हो गये।

"वाह रे, मेरे शेर! देखता क्या है, मार सिर बावर्ची की तोंद में!"

लोगों के झुण्ड के इस जंगलीपन को देखकर मेरे मन में हुआ कि एक लट्ठा उठाकर इन सबके सिर चकनाचूर कर दूँ।

स्मूरी ने सैनिक को छोड़ दिया और जंगली सुअर की भाँति उसने अब लोगों की ओर रुख किया। उसके हाथ उसकी कमर के पीछे थे, उसके दाँत चमक रहे थे और मूँछों के बाल फरफरा रहे थे।

"दफ़ा हो जाओ—अपनी-अपनी जगह! आदमख़ोर कहीं के..."

सैनिक एक बार फिर मेरी तरफ झपटा, लेकिन स्मूरी ने उसे एक हाथ से उठा लिया और इसी प्रकार उठाये-उठाये उसे पानी के नल तक ले गया। फिर पानी निकालते हुए उसने सैनिक का सिर नल के नीचे कर दिया और उसके टुईयाँ-से बदन को पानी की धार के नीचे इस तरह उलट-पलटकर घुमाने लगा मानो वह चिथड़ों की गुड़िया हो।

कुछ मल्लाह, उनका मुखिया और कप्तान का सहायक लपककर बाहर निकल आये और एक बार फिर भीड़ जमा हो गयी। भीड़ में बारमैन का सिर अन्य सबसे ऊँचा दिखाई दे रहा था। वह सदा की भाँति चुपचाप था मानो बोलना जानता ही न हो।

सैनिक रसोईघर के पास लकड़ी के ढेर पर बैठ गया और काँपते हाथों से अपने जूते उतारने लगा। उसने उन चिथड़ों को निचोड़ा जो उसके पाँवों से लिपटे थे। लेकिन वे सूखे थे जबकि बेतरतीबी से बिखरे हुए उसके बालों से पानी टपटप गिर रहा था। यह देख लोगों ने फिर हँसना शुरू कर दिया।

"कुछ भी हो," सैनिक ने ज़ोर लगाकर पतली आवाज़ में कहा, "छोकरे को मैं जिन्दा न छोड़ूँगा।"

स्मूरी मेरा कन्धा थामे था। उसने कप्तान के सहायक से कुछ कहा। मल्लाहों ने लोगों को तितर-बितर कर दिया। जब सब चले गये तो स्मूरी ने सैनिक से पूछा :

"बोलो, तुम्हारा अब क्या किया जाये?"

सैनिक कुछ नहीं बोला। बदहवास आँखों से बस मेरी ओर देखता भर रहा।

उसका समूचा शरीर अजीब ढंग से बल खा रहा था।

"अटेंशन, बातों के शेर!" स्मूरी ने कहा।

"ठेंगा ले ले। यहाँ कोई फ़ौज-वौज नहीं है।" सैनिक ने जवाब दिया।

बावर्ची अचकचा गया। उसके फूले हुए गाल पिचक गये, उसने थूका और मुझे अपने साथ घसीटता हुआ ले चला। मुझे भी जैसे काठ मार गया।

बार-बार मुड़कर मैं सैनिक की ओर देखता। स्मूरी बुदबुदाया :

"बड़ा ढीठ है। ऐसे आदमी के मुँह कौन लगे?.."

तभी सेर्गेई लपककर हमारे पास आया और न जाने क्यों फुसफुसाकर बोला :

"वह तो अपना गला काटने पर उतारू है!"

"क्या?" स्मूरी के मुँह से निकला और वह तेजी से उलटे पाँव मुड़ चला।

हाथ में बड़ा-सा चाकू लिये जो मुर्ग़ियों की गर्दन हलाल करने तथा जलाने के लिए छिपटियाँ चीरने के काम आता था, सैनिक उस केबिन के दरवाज़े पर खड़ा था जिसमें वेटर रहते थे। चाकू कुण्ठित था, उसमें आरी जैसे दाँतें बन गये थे। केबिन के सामने लोग फिर जमा हो गये थे, और भीगे बालों वाले इस टुइंयाँ से आदमी को देख रहे थे जो उनके लिए एक अच्छा-ख़ासा तमाशा बन गया था। ऊपर को उठी नाकवाला उसका चेहरा जेली की भाँति काँप रहा था, उसका मुँह खुले का खुला रह गया था, उसके होंठों में बल पड़ रहे थे और वह बार-बार बुदबुदा रहा था :

"जालिम... ह-त्या-रे..."

मैं उछलकर किसी चीज़ पर खड़ा हो गया और उचककर लोगों के चेहरों को देखने लगा। खिलखिलाकर वे हँस रहे थे, और एक-दूसरे को कोहनियाते हुए कह रहे थे :

"अरे देखो, इसे देखो..."

अपने बच्चों जैसे दुबले-पतले हाथ से जब उसने पतलून के भीतर अपनी कमीज खोंसनी शुरू की तो मेरे पास ही खड़े हुए एक अच्छे-ख़ासे से डीलडौल वाले आदमी ने उसाँस भरते हुए कहा :

"ठीक है। गरदन चाहे साफ़ हो जाये पर पतलून नहीं खिसकनी चाहिए..."

लोग और भी ज़ोरों से हँसने लगे। सभी समझते थे कि यह मरदूद जान नहीं दे सकता। मेरा भी ऐसा ही ख़याल था। लेकिन स्मूरी ने उछलती-सी नज़र से देखने के बाद, लोगों को अपने पेट से धकियाते और इधर-उधर करते हुए उन्हें डाँटना शुरू किया :

"हट जा यहाँ से, बेवकूफ़ कहीं का!"

समूह को एक व्यक्ति की भाँति "बेवकूफ़ कहीं का" कहने की उसे आदत थी। चाहे कितने भी लोग क्यों न जमा हों, वह उनके पास जाता और उन सबको एकवचन

में कहता :

"दफ़ा हो जा, बेवकूफ़ कहीं का!"

उसे ऐसा करते देख हँसी छूटती, लेकिन यह भी सच था कि आज, सुबह से ही, सभी लोगों ने एक बहुत बड़े "बेवकूफ़" का रूप धारण कर लिया था।

लोगों को तितर-बितर करने के बाद वह सैनिक के पास गया और अपना हाथ फैलाते हुए बोला :

"इधर दे चाकू..."

"सब बराबर हैं..." सैनिक ने कहा और चाकू की धार स्मूरी की ओर कर दी। स्मूरी ने चाकू मुझे थमा दिया और सैनिक को केबिन में धकेला :

"लेटकर सो जाओ! आख़िर तुम्हें यह क्या सूझा?"

सैनिक सोने के तख़्ते पर चुपचाप बैठ गया।

"यह तुम्हारे लिए कुछ खाना और थोड़ी-सी वोदका ले आयेगा। वोद्का पीते हो?"

"थोड़ी-सी पी लेता हूँ..."

"और देखो इसे हाथ न लगाना। तुम्हारी हँसी उड़ानेवालों में यह नहीं था। मैं कहता हूँ यह नहीं था..."

सैनिक ने धीमे स्वर में पूछा :

"वे क्यों मेरी जान के पीछे पड़े हैं?"

कुछ क्षण तक स्मूरी चुप रहा। अन्त में बड़बड़ाया :

"मुझे क्या मालूम?"

मेरे साथ रसोई की ओर जाते हुए स्मूरी बुदबुदाया :

"ऊँह, मरे को मारे शाह मदार! देखा तुमने? भाई मेरे, लोगों का बस चले तो तुम्हारी जान ही निकाल लें... बस, खटमलों की भाँति चिपक जाते हैं, और बस, छोड़ने का नाम नहीं। खटमल तो क्या, उनसे भी बुरे..."

सैनिक के लिए जब मैं कुछ रोटी, मांस और वोद्का लेकर उसके पास पहुँचा तो वह तख़्ते पर बैठा स्त्रियों की भाँति सिसक-सिसककर रो रहा था और उसका बदन आगे-पीछे हिल रहा था। रक़ाबी मेज़ पर रखते हुए मैंने कहा :

"यह लो, खाओ..."

"दरवाज़ा बन्द कर दो।"

"अँधेरा हो जायेगा।"

"बन्द कर दो, कहीं वे फिर न आ जायें..."

मैं बाहर निकल आया। सैनिक मुझे अटपटा लगा। उसके प्रति मेरे हृदय में सहानुभूति और दया का कोई भाव पैदा नहीं हुआ और मैं बेचैन हो उठा—नानी ने सदा

मुझे सीख दी थी :

"लोगों पर तरस खाना चाहिए, सभी अभागे हैं, मुसीबतों के मारे..."

"खाना दे आये?" वापस लौटने पर बावर्ची ने पूछा। "अब उसका क्या हाल है?"

"रो रहा है।"

"निरा पज़ामा है। यह भी कोई सैनिक है क्या?"

"मुझे तो उस पर जरा भी तरस नहीं आया।"

"क्या? क्या कहा तुमने?"

"लोगों के साथ दया का बरताव करना चाहिए..."

स्मूरी ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने निकट खींच लिया।

"किसी पर जबर्दस्ती दया कैसे दिखाओगे, और झूठ बोलना तो और भी बुरा है। समझे?" उसने रोबीले स्वर में कहा। "इस तरह मोम बनने से काम नहीं चलेगा, अपने काम में मस्त रहा करो..."

उसने मुझे अपने से परे धकेल दिया। फिर उदास स्वर में बोला :

"नहीं, यह जगह तुम्हारे लिए नहीं। तुम्हें कहीं और होना चाहिए। तुम यहाँ बेकार आ फँसे। लो, सिगरेट पी लो..."

यात्रियों के बरताव ने मेरे हृदय में गहरी उथल-पुथल मचा दी। जिस बुरे ढंग से उन्होंने सैनिक को चिढ़ाया और स्मूरी के उसका कान पकड़कर उठाने पर जिस कुत्सित ढंग से खिलखिलाकर वे हँसे, वह सब मुझे अकथनीय रूप से अपमानजनक तथा अवसादक लगा। इस घृणित और दयनीय स्थिति में भी कोई हँसने की बात थी? उसमें उन्हें ऐसा क्या दिखाई दिया जो वे हँसी की अपनी इस बाढ़ को रोक नहीं सके?

पहले की भाँति वे अब फिर डेक पर सायबान के नीचे बैठे या लेटे हुए थे। उनके जबड़े चल रहे थे, वे पी और चबा रहे थे, ताश खेल रहे थे, शान्त और सुघड़ ढंग से बातें कर रहे थे, और नदी का नज़ारा देख रहे थे। उन्हें देखकर कोई सोच भी नहीं सकता था कि यही वे लोग थे जो एक घण्टा पहले एकदम बेलगाम होकर उछल-उछलकर सीटियाँ बजा रहे थे। सदा की भाँति वे अब फिर निश्चल और काहिल हो गये थे। मच्छरों या सूरज की रोशनी में चक्कर खाते धूल के कणों की भाँति सुबह से साँझ तक वे जहाज़ में टल्लानवीसी करते, इधर से उधर गोल-गर्दिश में घूमते। यह देखो, दसेक लोग उतरने के तख़्ते के पास धक्का-मुक्की करते सलीब का चिह्न बनाते जहाज़ से घाट पर उतर रहे हैं और घाट से उन्हीं जैसे लोग सीधे उन पर चढ़े आ रहे हैं, वे भी उन्हीं जैसे कपड़े पहने हैं और उन्हीं की भाँति पोटले-पोटलियों के बोझ से झुके हैं...

लोगों की इस निरन्तर आवाज़ाही से जहाज़ के जीवन में कोई अन्तर न पड़ता। नए यात्री भी उन्हीं चीज़ों के बारे में बातें करते जिनके बारे में दूसरे कर चुके थे :

ज़मीन और काम के बारे में; ख़ुदा और स्त्रियों के बारे में। यहाँ तक कि उनके शब्दों के प्रयोग में भी कोई भिन्नता न होती :

"भगवान का हुक्म है कि इंसान सब कुछ सहता जाये, सो सहता जा, बन्दे। और कर ही क्या सकता है, आदमी की किस्मत ही ऐसी है..."

इस तरह की बातों से मुझे बड़ी ऊब मालूम होती, मन झुँझलाने लगता। गन्दगी से मेरा बैर था। न ही मैं यह सहन करना चाहता था कि मेरे साथ कोई दुखदायी, बेरहमी और ग़ैर-इंसाफ़ी का बरताव करे। मुझे पक्का विश्वास था, मैं महसूस करता था कि मैं इस तरह के बरताव के योग्य नहीं हूँ। न ही सैनिक ऐसे बरताव के योग्य था। शायद वह खुद अटपटा दिखना चाहता था...

मक्सिम जैसे गम्भीर और दयालु आदमी को तो उन्होंने जहाज़ से बाहर निकाल दिया जबकि कुत्सित सेर्गेई की नौकरी पर कोई आँच नहीं आयी। ये सारी बातें ठीक नहीं हैं। और क्यों ये लोग जो किसी को भी सहज ही इस हद तक सता सकते हैं कि वह पागल हो जाये, मल्लाहों के भोंड़े से भोंड़े आदेशों को दुम दबाकर मानते हैं और उनकी गन्दी से गन्दी गालियाँ और डाँट-डफट को गले के नीचे यूँ ही उतार लेते हैं?

"ऐ, बाड़े पर जमघट न लगाओ!" सुन्दर लेकिन क्रोधभरी आँखों को सिकोड़ते हुए मल्लाहों का मुखिया चिल्लाता। "जहाज़ सारा इधर झुक गया! हट जाओ यहाँ से, शैतान के पिल्लो!"

शैतान के पिल्ले भाग के डेक के दूसरे बाजू पहुँच गये और वहाँ से फिर उन्हें भेड़ों के रेवड़ की भाँति खदेड़ा जाता :

"जाओ, मुओ..."

उमस भरी रातों में दिन के तपे हुए टीन के सायबान तले टिकना दूभर हो जाता। यात्री तिलचट्टों की भाँति डेक पर बिखर जाते और जहाँ भी जी करता, पड़े रहते। घाट आने पर मल्लाह ठोकर और घूसे मारकर उन्हें जगाते।

"ऐ, रास्ता छोड़ो! भागो अपनी-अपनी जगहों पर!.."

वे चौंककर उठ बैठते और उनींदी आँखों से चाहे जिस दिशा में चल देते।

मल्लाहों और यात्रियों में केवल इतना ही अन्तर था कि दोनों की वेशभूषा भिन्न थी। फिर भी वे यात्रियों को पुलिसवालों की भाँति डाँटते-फटकारते और इधर से उधर खदेड़ते।

लोगों के बारे में सबसे मुख्य बात यह है कि वे संकोची, दब्बू और सिर पर जो आ पड़े उसे उदास भाव से सहन करने वाले होते हैं और वे उस समय बहुत ही अजीब तथा भयानक मालूम होते हैं जब हुक्मबरदारी का उनका बाँध एकाएक टूट जाता है और बर्बर उच्शृंखलता की एक ऐसी बाढ़ में वे डूबने-उतरने लगते हैं जो क्रूर, अर्थहीन

और प्रायः उदासी भरी होती है। मुझे ऐसा मालूम होता मानो उन लोगों को यह भी नहीं पता है कि उन्हें कहाँ ले जाया जा रहा है और इस बात का भी उनके लिए कोई विशेष महत्व नहीं है कि जहाज़ उन्हें कहाँ उतारता है। जहाँ कहीं भी जहाज़ उन्हें उतारेगा, तट पर वे थोड़ी देर ही रहेंगे और फिर इस या किसी दूसरे जहाज़ पर सवार हो जायेंगे और वह उन्हें अन्य किसी जगह ले जायेगा। वे सब के सब कुछ भटके हुए से, घर-द्वारहीन थे, सारी पृथ्वी उनके लिए परायी थी और वे सभी पागलपन की हद तक बुजदिल थे।

एक दिन, आधी रात बीते मशीन में किसी चीज़ के टूटने का बड़े ज़ोर से धमाका हुआ मानो किसी ने तोप दागी हो। देखते-देखते समूचा डेक भाप के सफ़ेद बादल से घिर गया जो इंजन-घर से निकल रही थी और सभी दरारों में दिखाई दे रही थी। कोई अदृश्य कानफोड़ आवाज़ में ज़ोर से चिल्ला रहा था :

"ग्रावीलो! लाल सीसा, नमदा लाओ!"

मैं इंजन-घर की बगल में उसी मेज़ पर सोता था जहाँ मैं तश्तरियाँ साफ़ करता था। धमाके की आवाज़ और मेज़ के हिलने से जब मेरी आँख खुली तब डेक पर सन्नाटा छाया हुआ था, मशीन भाप से सनसना रही थी और हथौड़ियाँ तेजी से खटा-खट कर रही थीं। लेकिन अगले ही क्षण डेक पर यात्रियों की भयानक चीख-पुकार ने आसमान सिर पर उठा लिया और तत्क्षण बड़ा भयानक-सा लगने लगा।

धुँध की सफ़ेद चादर को बींधकर, जो अब तेजी से झीनी पड़ती जा रही थी, बिखरे हुए बालोंवाली स्त्रियाँ और मछलियों जैसी गोल आँखों वाले पुरुष घबराहट में इधर-उधर भाग रहे थे, एक-दूसरे को धक्का देकर गिरा रहे थे। सबके सब अपने पोटले-पोटलियों, थैलों और सूटकेसों से जूझ रहे थे, ठोकरें खा रहे थे और भगवान तथा सन्त निकोलाई से फरियाद कर रहे थे तथा एक-दूसरे को मार रहे थे। दृश्य भयानक था, और साथ ही दिलचस्प भी। लोगों की हरकतों को देखने और यह जानने के लिए कि वे क्या करते हैं, मैं भी उनके साथ-साथ चक्करघिन्नी बना हुआ था।

जहाज़ पर रात में फैली बेचैनी का यह मेरा पहला अनुभव था और फौरन ही ऐसा लगने लगा कि यह सारा बवण्डर ग़लती से हुआ है। जहाज़ उसी तेजी से चल रहा था। दाहिनी तट पर बहुत ही नजदीक घसियारों के अलाव जल रहे थे। उजली रात थी। पूनो का ऊँचा भरा-पूरा चाँद चाँदनी बरसा रहा था।

लेकिन डेक पर लोगों की घबराहट बढ़ती जा रही थी। पहले दर्जे के यात्री भी निकल आये। कोई छलाँग मारकर पानी में कूद गया। कुछ औरों ने भी उसका साथ दिया। दो किसान और एक पुरोहित ने लपककर लकड़ी के कुन्दे उठाये और उनसे डेक पर पेचों से कसी बेंचों में से एक उखाड़ डाली। दबूसे से मुर्ग़ियों से भरा बड़ा-सा पिंजरा पानी में फेंका गया। डेक के बीचोंबीच कप्तान के मंच की सीढ़ियों के पास

एक किसान घुटनों के बल खड़ा होकर सामने से भागते हुए लोगों के सम्मुख झुक-झुककर भेड़िये की तरह चीख रहा था :

"ओह ख़ुदा के सच्चे बन्दो, मैं पापी हूँ!.."

एक मोटा साहब जो नंगे बदन, केवल पतलून पहने ही बाहर निकल आया था, छाती कूट-कूटकर चिल्ला रहा था :

"डोंगी, शैतान के बच्चो, डोंगी!"

मल्लाह भीड़ में झपटकर कभी एक की गरदन नापते कभी किसी दूसरे के सिर पर घूँसा लगाते और ठोकरें मारकर उन्हें डेक पर पटक देते। स्मूरी भी रात के कपड़ों पर कोट डाले भारी धमक के साथ यहाँ से वहाँ जा रहा था और गरज़ती हुई आवाज़ में हरेक को डाँट रहा था :

"कुछ तो शर्म करो! अपने दिमाग का इतना दिवाला न निकालो! देखते नहीं जहाज़ रुक गया है, रुका हुआ है! दो हाथ पर ही नदी का किनारा है! और वह देखो, उधर दो डोंगियाँ दिखाई दे रही हैं, आदमियों से लदी। ये वही बेवकूफ़ हैं जो पानी में कूद पड़े थे। घसियारों ने सभी को बाहर निकाल लिया है!"

जहाँ तक तीसरे दर्जे के यात्रियों का सम्बन्ध है, उनकी खोपड़ियों पर वह ऊपर से नीचे यूँ घूँसा मारता था कि वे डेक पर बोरों की भाँति ढह जाते थे।

हंगामा अभी शान्त होने भी न पाया था कि लक़दक़ कपड़े पहने एक स्त्री चम्मच हिलाते हुए झपटकर स्मूरी के पास पहुँची और उसके मुँह के सामने चम्मच हिलाते हुए चिल्लाकर बोली :

"यह क्या बदतमीज़ी है?"

भीगे हुए साहब ने उसे रोकते हुए और अपनी मूँछों को चूसते हुए झुँझलाकर कहा :

"छोड़ो इस मूसलचन्द को..."

स्मूरी ने अपने कन्धे बिचकाए और सकपकाकर आँखें मिचमिचाते हुए मुझसे पूछा :

"यह बात क्या है भला? क्यों मेरे पीछे पड़ी है यह? मैं तो इसे पहली बार देख रहा हूँ!..."

एक किसान जो नाक से बहते हुए खून को सुड़कने का प्रयत्न कर रहा था, चिल्लाया :

"लोग क्या हैं, पूरे डाकू हैं—डाकू!..."

पूरी गर्मियों में दो बार जहाज़ पर ऐसी भगदड़ मची थी और दोनों ही बार सचमुच के किसी खतरे ने नहीं, बल्कि खतरे के डर ने लोगों को बौखला दिया था। तीसरी बार यात्रियों ने दो चोरों को पकड़ा—उनमें से एक तीर्थयात्री के भेष में था और मल्लाहों

से छिपकर यात्रियों ने पूरे एक घण्टे तक उनकी खूब मरम्मत की। अन्त में मल्लाहों ने उनके चंगुल से चोरों को छुड़ाया तो लोग उन पर भी झपटे। चिल्लाकर बोले :

"चोर-चोर मौसेरे भाई!"

"तुम खुद चोर हो, और इसलिये उन्हें भी छूट देते हो..."

चोरों को इस हद तक पीटा गया था कि वे बेहोश हो गये थे और जब अगले घाट पर उन्हें पुलिस के हवाले किया गया, वे अपने पाँवों पर खड़े नहीं हो सकते थे...

एक के बाद इस तरह की अनेक घटनाएँ घटी, इस हद तक हृदय को कोचने वाली कि दिमाग भन्ना जाता और समझ में न आता कि लोग सचमुच में नेक हैं या दुष्ट, दब्बू हैं या जानमार? आख़िर क्या चीज़ है वह जो उन्हें इतनी क्रूरता और हवस की हद तक दुष्ट और इसी के साथ-साथ शर्मनाक हद तक दब्बू तथा दीन-हीन बनाती है?

स्मूरी से जब कभी मैं इस बारे में पूछता तो वह सिगरेट से इतना धुआँ छोड़ता कि उसका सारा मुँह ढँक जाता और झुँझलाकर जवाब देता :

"आख़िर तुमसे मतलब? लोग जैसे होते हैं, वैसे होते हैं... कोई चतुर होता है, और कोई एकदम बुद्धू। उनकी चिन्ता छोड़ और पुस्तकों में मन लगा। उनमें तुझे सभी सवालों के जवाब मिल जायेंगे, अगर वे ठीक ढंग की हुईं..."

धार्मिक पुस्तकों और सन्तों की जीवनियों उसे पसन्द नहीं थी। उनका ज़िक्र आने पर कहता :

"वे तो पादरियों के लिए हैं, या फिर पादरियों के छोकरों के लिए..."

उसे खुश करने के लिए मैंने एक पुस्तक भेंट करने का निश्चय किया। कजान पहुँचने पर मैंने जहाज़ घाट पर पाँच कोपेक में एक पुस्तक ख़रीदी : 'किस्सा उस सिपाही का, जिसने जान बचायी प्योत्र महान की'। लेकिन उस समय वह नशे में चूर था और गुस्से में था और मुझे यह साहस नहीं हुआ कि मैं उसे अपनी भेंट दूँ, सो पहले खुद यह पुस्तक मैंने पढ़ डाली। मुझे वह बेहद पसन्द आयी। हर बात थोड़े में, बहुत ही साफ़-सुथरे, सीधे-साधे और इतने दिलचस्प ढंग से कही गयी थी कि मैं मुग्ध हो गया। मुझे पक्का विश्वास था कि वह भी उसे खूब पसन्द करेगा।

लेकिन जब मैंने उसे पुस्तक दी, तो हुआ यह कि उसने, चुपचाप पुस्तक को हथेलियों के बीच दबोचकर उसकी गेंद-सी बनायी और उसे पानी में फेंक दिया।

"वह गयी तेरी पुस्तक, मूर्ख कहीं का!" उसने झल्लाकर कहा। "मैं तुझे शिकारी कुत्तों की तरह साध रहा हूँ और तू जंगली चिड़िया ही खाना चाहता है?"

फ़र्श पर उसने अपना पाँव पटका और मुझपर चिल्लाया :

"यह क्या क़िताब है? मैं सारी बकवास पढ़ चुका हूँ। इसमें क्या लिखा है—सच लिखा है? कहो!"

"मुझे नहीं मालूम।"

"लेकिन मैं जानता हूँ। अगर आदमी का सिर काट दिया जाये तो वह सीढ़ी के नीचे लुढ़क आयेगा और दूसरे लोग सूखी घास के अम्बार पर नहीं चढ़ेंगे—सैनिक इतने बेवकूफ़ नहीं होते! वे सूखी घास के अम्बार में आग लगा देंगे जिससे सारा झँझट ही मिट जाता! समझे!"

"हाँ।"

"देखो, यह बात है! और वह प्योत्र ज़ार—मैं जानता हूँ कि उसके साथ कभी उस तरह की कोई घटना नहीं घटी। बस, अब दफा हो जा यहाँ से!"

मैं समझता था कि बावर्ची की बात सही है, लेकिन पुस्तक के साथ मेरा मन फिर भी उलझा रहा। मैंने उसे दुबारा ख़रीदा और एक बार फिर पढ़ा और इस बार यह जानकर खुद मुझे भी अचरज हुआ कि पुस्तक सचमुच दो कौड़ी की थी। मुझे अपने ऊपर बड़ी शर्म आयी, और स्मूरी को मैं और भी ज़्यादा आदर तथा भरोसे की नज़र से देखने लगा और वह खुद, कारण चाहे जो भी हो, बहुधा मुझसे झुँझलाहट के साथ कहता :

"ओह, तुम्हें तो लिखना-पढ़ना चाहिए। यह जगह तुम्हारे लिए ठीक नहीं है..."

मैं भी कुछ ऐसा ही अनुभव करता कि यह जगह मेरे लिए नहीं है। सेर्गेई मेरे साथ बहुत बुरा बरताव करता था। मेरे मेज़ पर से वह चाय के बर्तन उड़ा लेता और इस तरह यात्रियों से मिलनेवाले पैसों को बारमैन को सौंपने के बजाय अपने पास रख लेता। मैं जानता था कि इस तरह की कमाई को चोरी कहा जाता है। स्मूरी भी एक से अधिक बार मुझे चेता चुका था :

"जरा चौकस रहना। ऐसा न हो कि वेटर तुम्हारी मेज़ से चाय के बर्तनों का सफाया कर दे!"

इसी तरह की मेरे लिए और भी कितनी ही बुरी बातें थीं। अक्सर मन में होता कि अगले ही घाट पर जहाज़ छोड़कर जंगलों की राह लूँ। लेकिन स्मूरी की वजह से ऐसा न कर पाता। उसकी घनिष्ठता बराबर बढ़ती जा रही थी। इसके अलावा जहाज़ के निरन्तर गति का भी कुछ कम आर्कषण नहीं था। घाटों पर जब भी जहाज़ रुकता, मुझे बड़ा बुरा मालूम होता और किसी ऐसी घटना या चमत्कार की मैं प्रतीक्षा करता जिसकी बदौलत, पलक झपकते, कामा नदी से बेलाया और उससे भी खूब आगे व्यात्का या वोल्गा नदी में सैर करूँ, और नए तटों, नए नगरों तथा नए लोगों को देखने का मुझे अवसर मिले।

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरे जहाज़ी जीवन का एकाएक और शर्मनाक ढंग से अन्त हो गया। एक साँझ, उस समय जबकि हम कज़ान से नीज़्नी की ओर यात्रा कर रहे थे, बारमैन ने मुझे अपने पास बुलाया। जब मैं उसके सामने हाजिर हुआ तो

उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया और कालीन चढ़े एक स्टूल पर उदास मुद्रा में बैठे स्मूरी से उसने कहा :

"लो, आ गया।"

"क्या तुम सेर्गेई को चम्मच और दूसरी चीज़ें देते हो?" स्मूरी ने रूखी आवाज़ में पूछा।

"मेरी आँख बचाकर इन चीज़ों को वह खुद अपने आप उठा लेता है।"

"देखता नहीं, पर पता है इसे," बारमैन ने धीमे-से कहा।

स्मूरी का मुट्ठी-बँधा हाथ धम से घुटने पर गिरा और फिर वह उसे सहलाने लगा।

"जरा ठहरो। ऐसी कोई जल्दी नहीं है," उसने कहा और रुककर किसी सोच में पड़ गया।

मैंने बारमैन की ओर देखा और उसने मेरी ओर, लेकिन मुझे ऐसा लगा मानो उसके चश्मे के पीछे आँखें हैं ही नहीं।

वह निःशब्द जीवन बिताता था, चलते समय जरा भी आवाज़ नहीं करता था और धीमे स्वर में बोलता था। कभी-कभी उसकी रंग-उड़ी दाढ़ी पर खोखली आँखें किसी कोने में झलकतीं और फिर तुरन्त विलीन हो जातीं। सोने से पहले एक लम्बे अर्से तक घुटनों के बल वह देव-प्रतिमा के सामने बैठा रहता जिसके सामने, दिन हो चाहे रात, चौबीसों घण्टे एक दिया जलता था। दरवाज़े में बने पान के इक्के जैसे छेद में से मैं उसे देखता था, लेकिन उसे प्रार्थना करते मैं कभी देख नहीं पाया—घुटनों के बल बैठा हुआ वह केवल देव-प्रतिमा ओर एकटक देखता, उसाँस लेता और अपनी दाढ़ी सहलाता रहता था।

थोड़ी देर रुककर स्मूरी ने फिर पूछा :

"क्या सेर्गेई ने तुझे कभी पैसे दिए?"

"नहीं।"

"कभी भी नहीं?"

"नहीं, कभी भी नहीं।"

"यह झूठ नहीं बोलेगा," स्मूरी ने बारमैन से कहा।

"इससे कोई फर्क नहीं पड़ता," बारमैन ने धीमे स्वर में जवाब दिया।

"चल अब!" मेरी मेज़ के पास आते और सिर पर हल्के से चपत जड़ते हुए स्मूरी ने चिल्लाकर कहा : "चुगद! और चुगद तो मैं भी हूँ जो तेरे बारे में चौकस नहीं रहा..."

नीज़्नी में बारमैन ने मेरा हिसाब चुकता कर दिया। मुझे क़रीब आठ रूबल मिले। यह पहला मौका था जब मुझे अपनी कमाई की इतनी बड़ी रकम मिली थी।

विदा के समय स्मूरी उदास स्वर में बोला :

"आगे अपनी आँखे खुली रखियो, समझा? यह नहीं कि मुँह बाए मक्खियाँ पकड़

रहे हैं...”

काँच के रंग-बिरंगे मोती जड़ा तम्बाकू रखने का एक चमकदार बटुआ उसने मेरे हाथ में थमा दिया।

“यह ले, यह बहुत बढ़िया चीज़ है! मेरी मुँह-बोली बेटी ने यह मेरे लिए बनाया था... अच्छा अब जा! पुस्तकें पढ़ना, उनसे बड़ा साथी तुम्हें और कोई नहीं मिलेगा!”

उसने मुझे बाँहों के नीचे से पकड़ा, हवा में उठाकर मेरा मुँह चूमा और फिर सम्भालकर मज़बूती से मुझे घाट पर खड़ा कर दिया। मुझे अपने पर भी तरस आया, और उस पर भी। और जब वह, एकदम एकाकी, अपने भारी-भरकम, हिंडोले-से झूलते शरीर को घाट-मज़दूरों को धकियाता हुआ जहाज़ की ओर लौट चला तो मैं बड़ी मुश्किल से अपने आँसुओं को रोक पाया...

उस जैसे न जाने कितने लोग,—इतने ही भले, इतने ही अकेले और जीवन से इतने ही छिटके हुए,—आगे भी मेरे जीवन में आये...

7

नानी और नाना अब फिर नगर में आ बसे थे। इस बार जब मैं उनके पास पहुँचा तो मेरा मन गुस्से से उमड़ रहा था और हर किसी से लड़ने को जी चाहता था। मेरा हृदय भारी बोझ से दबा जा रहा था—आख़िर क्यों और किस बित्ते पर मुझे चोर ठहराया गया था?

नानी ने मुझे बड़े प्यार से अपनाया, और तुरन्त समोवार गरम करने चली गयी। नाना अपनी आदत के अनुसार चिंगारियाँ छोड़ने से न चूके :

“क्यों, कितना सोना बटोर लाया?”

खिड़की के पास बैठते हुए मैंने कहा :

“जो भी बटोरा, सब मेरी मिल्कियत है।”

बड़ी गम्भीरता के साथ मैंने जेब में हाथ डाला, और सिगरेट का पैकेट निकालकर रोब के साथ धुआँ उड़ाने लगा।

“ओहो,” मेरी प्रत्येक हरकत का मुआयना करते हुए नाना ने कहा, “यह बातें हैं! यह शैतान की बूटी भी पीने लगा? बड़ी जल्दी लगी थी?”

“मुझे तो भेंट में तम्बाकू का बटुवा भी मिला है!” मैंने शेखी बघारी।

“तम्बाकू का बटुवा!” नाना चीख़ उठे। “तू क्या मुझे चिढ़ा रहा है?”

वह मेरी ओर झपटे। उनके पतले, मज़बूत हाथ आगे बढ़े हुए थे और आखें चिंगारियाँ छोड़ रही थीं। मैंने उछलकर उनके पेट में सिर से टक्कर मारी। बूढ़ा वहीं फ़र्श पर बैठ गया और सन्नाटे से पूर्ण उन भारी क्षणों में, अँधेरी खोह की भाँति

हक्का-बक्का-सा अपना मुँह बाए, अचरज में आखें मिचमिचाकर मेरी ओर देखता रह गया। फिर शान्त भाव के साथ पूछा :

"तूने मुझे, अपने नाना को धकेला... मुझे... अपनी माँ के सगे बाप को?"

"मेरी चमड़ी उधेड़ने में तुम्हीं कौन कसर छोड़ते थे," यह समझकर कि सचमुच मुझसे एक घिनौनी हरकत हो गयी है मैं बुदबुदाया।

नाना, अपना सूखा हल्का-फुल्का बदन लिये उठ खड़े हुए और मेरे बगल में आकर बैठ गये। मेरे हाथ से उन्होंने तपाक से सिगरेट छीन ली और उसे खिड़की से बाहर फेंक भय से काँपती आवाज़ में बोले :

"तू भी निरा काठ का उल्लू है! इस तरह की हरकत के लिए भगवान तुझे ताज़िन्दगी माफ़ नहीं करेंगे!" फिर वह नानी की ओर मुड़े :

"देखा री अम्मा, और किसी ने भी नहीं, इसने मुझे मारा, हाँ, इसी ने मुझे मारा! यकीन न हो तो ख़ुद पूछ देखो!"

पूछना-ताछना तो दूर, नानी सीधी मेरे पास आयी और बाल पकड़कर मुझे झँझोड़ने लगी।

"इसकी यही सजा है," नानी ने कहा और बालों को झटका-सा देते हुए दोहराया, "यही सजा है..."

नानी की इस सजा ने, और ख़ास तौर से नाना की घृणापूर्ण हँसी ने, मेरे शरीर को चोट तो नहीं पहुँचाई, लेकिन मेरे हृदय को बुरी तरह घायल कर दिया। नाना कुर्सी पर बैठे उचक रहे थे और घुटनों पर हाथ मारते हुए हँसते-हँसते कौए की तरह काँ-काँ कर रहे थे :

"ठीक, बहुत ठीक..."

नानी के चंगुल से अपने को छुड़ाकर मैं ड्योढ़ी में भागा, और वहाँ एक कोने में पड़ा रहा—खिन्न और सूना-सूना-सा। कानों में समोवार में रखे पानी के खलबलाने की आवाज़ आ रही थी।

नानी आयी और मेरे ऊपर झुकते हुए इतने धीमे स्वर में फुसफुसाकर बोली कि उसके शब्द बड़ी मुश्किल से सुनाई देते थे :

"बुरा न मानना, मैं तुम्हें सचमुच की सजा थोड़े ही दे रही थी। इसके सिवा मैं और करती भी क्या? तुम्हारे नाना तो बूढ़े आदमी हैं, और उनका तुम्हें ध्यान रखना चाहिए। उन्होंने क्या कम किस्मत की मार खाई है? सारी हड्डियाँ टूटी हुई हैं, और उनका हृदय दुःखों से लबालब भरा है। उन्हें और चोट पहुँचाना क्या अच्छी बात है? तुम अब नन्हे-मुन्ने तो हो नहीं, खुद सारी बातें समझ सकते हो... तुम्हें समझना चाहिए, अल्योशा, नाना भी बस बच्चों की हालत में हैं..."

नानी के शब्दों ने मरहम का काम किया। ऐसा मालूम हुआ मानो सुहानी बयार

का झोंका हृदय को सहलाता हुआ निकल गया हो। नानी के शब्दों की प्यार भरी सरसराहट से मेरा हृदय हल्का हो गया। सारी दुखन जाती रही, लाज का मैंने अनुभव किया और मैं कसकर नानी से लिपट गया। नानी ने मुझे, और मैंने नानी को चूम लिया।

"जाओ, नाना के पास जाओ। डरो नहीं, सब ठीक हो जायेगा। केवल नाना के सामने एकाएक सिगरेट निकालकर अब फिर से न पीने लगना। अभी वह तुम्हें सिगरेट पीता देखने के आदी नहीं हैं। इसके लिए कुछ तो समय चाहिए न?..."

जब मैंने कमरे में पाँव रखा और नाना पर नज़र डाली तो मेरे लिए हँसी रोकना मुश्किल हो गया। इस समय वह, सचमुच, बच्चों की भाँति प्रसन्न थे। चेहरा खिला हुआ था, पाँव पटक रहे थे और ललौहें बालों वाले अपने पंजों से मेज़ पर धमाधम तबला-सा बजा रहे थे।

"बोल मरखने बकरे की औलाद, फिर आ गया,—टक्कर मारने का शौक क्या अभी भी पूरा नहीं हुआ? डाकू कहीं का! आख़िर है तो अपने बाप का ही बेटा! मुँह उठाया और सीधे घर में चले आये, न सलीब का चिह्न बनाया, न किसी से दुआ-सलाम की, और एक टुकड़ची सिगरेट मुँह में दबाकर धुआँ उड़ाना शुरू कर दिया! वाह रे, टकियल नेपोलियन!"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। उनके शब्द चुक गये और वह थककर चुप हो गये। लेकिन चाय के समय उन्होंने फिर से मुझे लेक्चर पिलाना शुरू किया :

"बिना लगाम के घोड़ा और बिना भगवान के डर का आदमी, दोनों एक से हैं। भगवान के सिवा और कौन हमारा हो सकता है? इंसान का सबसे बड़ा दुश्मन है इंसान!"

नाना के केवल इन शब्दों की सच्चाई ने तो मेरे हृदय को छुआ कि इंसान ही इंसान का दुश्मन है। इसके अलावा नाना ने जो कुछ कहा, उसका मेरे हृदय पर कोई असर नहीं हुआ।

"देख, अभी तू अपनी मौसी मत्र्योना के यहाँ लौट जा, और वहीं काम कर। इसके बाद चाहे तो वसन्त में फिर किसी जहाज़ में नौकरी कर लेना। लेकिन जाड़ों भर तू उन्हीं के यहाँ रहियो, और उन्हें यह न बताइयो कि वसन्त में तू गोल हो जायेगा..."

"लेकिन यह तो धोखा देना होगा," नानी ने कहा जो अभी कुछ देर पहले सज़ा के नाम पर मुझे झूठ-मूठ हिला-झँझोड़कर खुद नाना को धोखा दे चुकी थी।

"धोखा दिये बिना जिया ही नहीं जा सकता," नाना अपनी बात पर ज़ोर दे रहे थे, "जरा बता तो, धोखे के बिना कौन रहता है?"

उसी साँझ जब नाना धर्मग्रन्थ का पाठ करने बैठे तो मैं और नानी फाटक से बाहर निकल आये और खेतों की ओर चल दिये। छोटा-सा दो खिड़कियों वाला यह

घर जिसमें नाना अब रहते थे, नगर के एकदम छोर पर, उस कनात्नाया गली के पिछवाड़े में था, जहाँ किसी ज़माने में उनका निजी मकान था।

"देखो न, घूम-फिरकर हम भी अब कहाँ आ बसे हैं!" नानी ने हँसते हुए कहा। "तुम्हारे नाना को कहीं शान्ति नहीं मिलती, वह बराबर घर बदलते रहते हैं। मुझे तो यह घर अच्छा लगता है, लेकिन नाना को यहाँ भी चैन नहीं है!"

हमरे सामने दो-ढाई मील लम्बा-चौड़ा, खड्डों से कटा-फटा मैदान फैला था। उसके अन्त में कज़ान जानेवाली सड़क थी जिसके किनारे भोजवृक्ष खड़े थे। खड्डों में से पेड़ों-झाड़ियों की नंगी-बूची टहनियाँ निकली हुई थीं, साँझ के सूरज की ठण्डी पड़ती हुई लाली में वे खून का दाग लगे हण्टरों की भाँति मालूम होती थीं। हल्की हवा के झोंके धूसर टहनियों को सरसरा रहे थे। पास वाले खड्ड के उस पार युवक-युवतियों के जोड़े टहल रहे थे और उनकी छाया-आकृतियाँ भी, टहनियों की भाँति, हवा में हिल रही थीं। दूर दाहिने छोर पर पुरातन पन्थियों के क़ब्रिस्तान की लाल दीवार थी। यह क़ब्रिस्तान 'बुग्रोव्स्की स्कीत' कहलाता था। बाईं ओर खड्ड के ऊपर जहाँ वृक्षों का एक काला-सा झुरमुट दिखाई देता था, यहूदियों का क़ब्रिस्तान था। हर चीज़ पर मनहूसियत-सी छाई थी, हर चीज़ मानो क्षत-विक्षत धरती से चुपचाप चिपटी हुई थी। शहर के छोर पर खड़े छोटे-मोटे घरों की खिड़कियाँ सहमी हुई नज़रों से धूल-अटी सड़क की ओर ताकती रहतीं, जिस पर भूख की मारी मुर्ग़ियाँ गश्त लगाती थीं। देविची मठ के पास से रँभाती हुई गायों का एक रेवड़ गुजर रहा था और पास की छावनी से फौजी संगीत की आवाज़ आ रही थी—बैंड बज रहे थे।

कोई शराबी, पूरी बेरहमी से एकार्डियन बजाते हुए, लड़खड़ाते डगों से जा रहा था और ठोकरें खाते हुए बुदबुदा रहा था :

"तुझे खोज ही लूँगा कहीं न कहीं..."

सूरज की लाल रोशनी में आँखें मिचमिचाते हुए नानी बोली, "किसे खोज लेगा, बेवकूफ़! यहीं कहीं लड़खड़ाकर गिर पड़ेगा, दीन-दुनिया का कुछ होश नहीं रहेगा और कोई ऐसा सफ़ाया करेगा, तेरा यह एकार्डियन तक ग़ायब हो जायेगा जिसे तू अपने हृदय से सटाये है..."

मैं चारों ओर देखता जाता था और नानी को अपने जहाज़ी जीवन के बारे में बताता भी जाता था। उस जीवन में जो कुछ मैं देख चुका था उसके बाद मुझे अपना मौजूदा वातावरण बहुत ही बोझिल मालूम दे रहा था और मैं पानी से निकाली मछली जैसा महसूस कर रहा था। नानी मेरी बातों को बड़े चाव और ध्यान से सुन रही थी, वैसे ही जैसे कि मैं नानी की बातें सुनना पसन्द करता था और जब मैंने स्मूरी का ज़िक्र किया तो नानी ने अभिभूत होकर सलीब का चिह्न बनाया और बोली :

"भला आदमी था, माँ मरियम उसका भला करे! और देख, उसे कभी न भूलना!

अपने दिमाग के कोठे में अच्छी चीज़ों को कसकर बन्द रखना और बुरी चीज़ों को,—बस, आँखें मूदकर ठुकरा देना..."

जहाज़ से निकाले जाने की बात को नानी के सामने खोलकर रखना मुझे बेहद कठिन मालूम हुआ। लेकिन मैंने दाँत भींचकर अपना जी कड़ा किया और जैसा भी बना, नानी को सब बता दिया। नानी के हृदय पर उसका जरा भी असर नहीं हुआ। सारी घटना सुनने के बाद उपेक्षा से इतना ही कहा :

"तुम अभी छोटे हो। जीना नहीं जानते..."

"सब एक-दूसरे से यही कहते हैं कि तुम जीना नहीं जानते," मैंने कहा, "किसानों को भी मैंने ऐसा कहते सुना है, जहाज़ी लोग भी ऐसा ही कहते थे, और मौसी मत्र्योना भी अपने बेटे के सामने यही राग अलापती थी। आख़िर जीना सीखने का क्या मतलब है?"

नानी ने अपने होंठ भींच लिये और सिर हिलाते हुए ज़वाब दिया :

"यह तो मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानतीं तो फिर इस बात को बार-बार दोहराती क्यों हो?"

"दाहराऊँ क्यों नहीं?" नानी ने अविचलित स्वर में जवाब दिया। "लेकिन तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम अभी छोटे हो, इतनी कम उम्र में भला जीवन के रंग-ढंग तुम कैसे जान सकते हो? सच तो यह है कि जीवन को जानने का दावा कोई भी नहीं कर सकता, केवल चोरों को छोड़कर। अपने नाना ही को देखो—पढ़े-लिखे और काफ़ी चतुर हैं, लेकिन सब एकदम बेकार, कुछ भी तो नहीं कर पाये..."

"और तुम—तुम्हारा अपना जीवन कैसा रहा?"

"मेरा? अच्छा ही जीवन बिताया मैंने। और बुरा भी। हर तरह का..."

हमारे पास से लोग धीरे-धीरे गुजर रहे थे, उनकी लम्बी परछाइयाँ उनके पीछे घिसट रही थीं और पाँवों से उड़ी धूल धुएँ की भाँति उठकर परछाइयों पर छा जाती थी। साँझ की उदासी और भी बोझिल हो चली थी और खिड़की में से नाना के भुनभुनाने की आवाज़ आ रही थी :

"ओ भगवान, अपने गुस्से का पहाड़ मेरे सीने पर न तोड़! मुझे इतनी तो सजा न दे कि मैं बरदाश्त ही न कर सकूँ..."

नानी मुस्कराई।

"भगवान भी इसका रोना-झींकना सुनते-सुनते तँग आ गया होगा," उसने कहा। "हर साँझ इसी तरह हूकें भरते हैं, पर किसलिये? बूढ़ा तो हो गया है, जीवन में कोई साध भी बाकी नहीं रही, फिर भी मिमियाना और रोना-झींकना नहीं छूटता! हर साँझ इसकी आवाज़ सुनकर भगवान मुस्कराता होगा कि यह लो, वासीली काशीरिन फिर भुनभुना रहा है... चलो अब, सोने का वक़्त हो आया..."

मैंने निश्चय किया कि अब गाने वाली चिड़ियों को पकड़ने का धन्धा शुरू किया जाये। मुझे लगा कि इससे अच्छे पैसे मिल जायेंगे। मैं चिड़ियों को पकड़कर लाऊँगा और नानी उन्हें बाज़ार में बेच आया करेगी। सो मैंने एक जाल, एक फन्दा, लासे का कुछ सामान ख़रीद लिया और कुछ पिंजरे बना लिये। और लो, सवेरा होते ही मैं खड्ड की झाड़ियों में छिपकर बैठ गया और नानी, एक बोरा और टोकरी लिये, आस-पास के जंगल में जाकर खुमियाँ, बेरों और जंगली बादामों की खोज में निकल गयी।

सितम्बर महीने का थका हुआ सूरज अभी-अभी निकला था। उसकी पीली किरणें कभी तो बादलों में ही खो जातीं और कभी रुपहले पंख की भाँति फैलकर उस जगह भी पहुँच जातीं जहाँ मैं छिपा हुआ था। खड्ड के तल पर अभी भी परछाइयाँ तैर रही थीं और एक सफ़ेद कुहरा-सा उठ रहा था। खड्ड की खड़ी ढाल एकदम काली, और नंगी-बूची थी, दूसरी अधिक ढलवाँ ढाल पर मुरझी हुई लाल, पीली और कत्थई पत्तियोंवाली झाड़ियाँ उगी थीं। हवा के झोंकों से पत्तियाँ उड़-उड़कर खड्ड में छितर रही थीं।

तल की कँटीली झाड़ियों में गोल्डफिंच पक्षी चहचहा रहे थे और झिनझिनी पत्तियों के बीच उनके छोटे-छोटे बाँके सिरों पर गुलाबी मुकुट झिलमिला रहे थे। मेरे अगल-बगल और आगे-पीछे कुतूहली गंगरे पंछी टिटिया रहे थे, अपने सफ़ेद गालों को अनोखे ढंग से फुलाये वे मेले-ठेले के दिन कुनाविनो की युवतियों की भाँति दुनिया भर का शोर मचा रहे थे। चपल-चतुर और रसीले—हर चीज़ की ओर वे लपकते, उसे छूने-कुरेदने के लिए ललक उठते, और इस प्रकार एक के बाद एक फँदे में फँसते जाते। इसके बाद वे इतनी बुरी तरह छटपटाते कि उन्हें देखकर हृदय मसोस उठता। लेकिन व्यापारी का मेरा धन्धा सख़्ती का है और मैं उन्हें पास के पिंजरे में बन्द करके एक बोरी में डाल देता, अँधेरे में वे शान्त हो जाते।

बन-संजली की झाड़ी को सूरज की किरणों ने रंग दिया था। सिसकिन पक्षियों का एक झुण्ड उस पर आकर बैठा। सूरज की सुहानी किरणों में पक्षियों की खुशी का वार-पार नहीं था, अपने उछलने-कूदने में वे स्कूली लड़कों से मिलते-जुलते थे। लालची, चौकस और अपनी गाँठ का पक्का श्राइक पक्षी—जिसने गर्म प्रदेशों की ओर प्रयाण करने में देरी लगाई थी—बन-गुलाब की झूमती हुई टहनी पर बैठा हुआ चोंच से अपने परों को सँवार रहा था और काली आँखों से शिकार की खोज में इधर-उधर देख रहा था। सहसा लार्क पक्षी की भाँति ऊपर उड़कर उसने एक भौंरे को पकड़ा, उसे बड़े ध्यान से एक काँटें में बींधा और फिर बैठकर चोर की भाँति चौकन्ना अपनी मटमैली गर्दन को इधर-उधर घुमाने लगा। एक पाइनफिंच पक्षी जिसे पाने के लालच भरे सपने मैं कब से देख रहा था, निस्स्वर उड़ता हुआ मेरे पास से निकला—कितना अच्छा हो अगर इसे पकड़ सकूँ! लाल रंग का बुलफिंच पक्षी, जनरल की भाँति गर्वीला,

अपने झुण्ड से अलग होकर सुस्ताने के लिए आल्डर के पेड़ पर आ बैठा और अपनी काली चोंच को ऊपर-नीचे करते हुए रोब से चिचियाने लगा।

जैसे-जैसे सूरज आकाश में ऊँचा उठता, वैसे-वैसे पक्षियों की संख्या भी बढ़ती जाती, वे और भी खुशी से चहचहाने लगते। समूचा खड्ड उनके संगीत से भर जाता, हवा के झोंकों में झाड़ियों की निरन्तर सरसराहट इस संगीत की मुख्य धुन थी। पक्षियों की बाँकी आवाज़ों का उभार इस मृदु, मधुर और उदास सरसराहट को दबा न पाता। मुझे उसमें ग्रीष्म विदा-गीत की ध्वनि का आभास मिलता, वह मेरे कान में अनोखे शब्द फुसफुसाती, जो अपने आप गीत का रूप धारण कर लेते और बीते हुए जीवन के दृश्य बरबस मेरे स्मृति-पट पर मूर्त हो उठते।

सहसा कहीं ऊँचे से नानी की आवाज़ सुनाई दी :

"तुम कहाँ हो?"

वह खड्ड के कगार पर बैठी थी। पास ही ज़मीन पर रुमाल बिछा था और पावरोटी, खीरे, शलजम और कुछ सेब रुमाल पर सजे थे। इन सब बरकतों के बीचे एक बहुत ही सुन्दर मीना रखी थी जिसका बिल्लौरी काग नेपोलियन के सिर की आकृति का था। मीना में वोद्का छलछला रही थी जिसमें, उसे और भी सुगंधित बनाने के लिए, सन्तजॉन नामक घास मिली हुई थी।

नानी ने गद्गद् हृदय से सन्तोष की साँस छोड़ी :

"कितना अच्छा है यह सब, मेरे भगवान!"

"मैंने एक गीत बनाया है!"

"क्या सचमुच?"

मैंने कुछ इस तरह की पंक्तियाँ सुनानी शुरू कीं :

शिशिर निकटतर आता जाता,
होता है यह भान,
विदा, विदा, ओ सूर्य ग्रीष्म के,
विदा तुम्हें दिनमान!...

नानी मुझे बीच में ही टोककर बोली :

"ऐसा एक गीत तो मुझे पहले से ही याद है और तुम्हारे इस गीत से अच्छा है।"

और नानी ने गुनगुनाते हुए गीत सुनाया :

हाय, चल दिया सूर्य ग्रीष्म का
काली रातों में मिलने को, दूर, जंगलों के उस पार।
हाय, रह गयी मैं युवती तो
सब वसन्त की खुशियों के बिन, खोकर अपना प्यार...

सुबह-सवेरे गाँव-छोर पर जब जाती,
मई महीने की मौजों की सुधि आती,
खुला-खुला मैदान, नहीं मुझको भाता
यौवन यहाँ लुटाया, याद मुझे आता।

अरी, सुनो तो तुम, सखिया प्यारी मेरी!
यहाँ, बर्फ़ की पहली चादर जब पाओ,
तुम निकाल दिल मेरा गोरी छाती से
उसी बर्फ़ में दफ़नाओ!

गीत रचने की अपनी क्षमता पर मुझे जो गर्व था, उसे जरा भी चोट नहीं पहुँची। नानी का यह गीत मुझे बेहद अच्छा लगा और गीत की कुँवारी लड़की के लिए मेरा हृदय भी वेदना से भर गया।

"देखा, कसक का गीत किस तरह गाया जाता है," नानी ने कहा। "यह गीत किसी कुँवारी लड़की का रचा हुआ है। वसन्त में उसका साजन उसके साथ था। लेकिन जाड़ा आते-आते वह विदा हो गया, उसे अकेली छोड़ गया, शायद किसी दूसरी के पास चला गया और उसके हृदय की वेदना आँसू बनकर बह निकली और इन आँसुओं से इस गीत का ज़न्म हुआ... जिसके हृदय में कभी टीस नहीं उठी, उसके गीतों में तड़प भी कहाँ से आयेगी? देखा, कितना अच्छा गीत बनाया है उस लड़की ने!"

पक्षियों के बेचने पर पहली बार जब चालीस कोपेक हाथ में आये तो नानी चकित रह गयी :

"कमाल हो गया! मैं तो सोचती थी कि इससे कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। सोचा कि छोटे लड़के की जिद है, लेकिन देखो न, यह तो बड़े मुनाफे की चीज़ निकली!"

"तुमने तो सस्ते में ही बेच दिया..."

"सच?"

जिस दिन बाज़ार लगता, वह एक रूबल या इससे भी अधिक कमाकर लाती और अपने इस अचरज को पचा न पाती कि छोटी-मोटी चीज़ों से भी कितना अधिक धन मिल सकता है!

"और कोई स्त्री दिनभर कपड़े धोकर या किसी दूसरे के घर जाकर बर्तन-भाड़े साफ़ करके मुश्किल से पचीस कोपेक कमाती है। और तुम खेल ही खेल में इतना कमा लेते हो। नहीं, इसमें कोई तुक नहीं है। यह ग़लत है! और पक्षियों को पकड़-पकड़कर पिंजरे में बन्द करना भी ग़लत है। यह अच्छा धन्धा नहीं है, अल्योशा! तुम इसे छोड़ दो!"

लेकिन पक्षियों को पकड़ने का मुझे भारी चस्का लगा। इसमें मुझे आनन्द आता और पक्षियों को छोड़ अन्य किसी को इसमें ज़रा-सी भी परेशानी नहीं होती थी और मैं किसी पर निर्भर नहीं था। अब मैं बढ़िया साज-सामान से लैस था। पुराने बहेलियों से मिल-जुलकर मैंने बहुत कुछ सीख लिया था। अब मैंने अकेले ही बीस-पचीस मील दूर स्थित कस्तोव्स्की जंगल में धावे मारने शुरू किये : वहाँ वोल्गा के तट पर, देवदार के ऊँचे वृक्षों के बीच क्रॉसबिलों या एक ख़ास जाति के लम्बी दुम और सफ़ेद रंग-वाले बेहद सुन्दर और दुर्लभ गंगरों को पकड़ सकता था जिनकी पक्षियों के प्रेमी भारी कद्र करते थे।

प्रायः मैं साँझ के समय रवाना होता और रातभर कज़ान वाली सड़क पर चलता रहता—कभी-कभी शरद् की वर्षा में कीचड़ भरे रास्ते पर मेरी कमर पर मोमिया थैला लगा होता जिसमें फुसलाऊँ पक्षी होते और हाथ में रहती एक मोटी लाठी। शरद की अँधेरी रातें ठण्डी और डरावनी होतीं—बहुत ही डरावनी!... सड़क के किनारे बिजली-मारे पुराने भोजवृक्ष खड़े होते और वर्षा में भीगी उनकी टहनियाँ मेरे सिर के ऊपर; बाँयी ओर पहाड़ी की तलहटी में जिधर वोल्गा बहती थी आख़िरी जहाज़ों और बजरों के मस्तूलों की रोशनियाँ चमक उठतीं और तैरते हुए निकल जातीं, मानो वे किसी अतल गहराई में समाते जा रहे हों। उनके भोंपुओं और चप्पुओं के पानी में छप-छप करने की आवाज़ें सुनाई देतीं।

कच्चे लोहे-सी कड़ी भूमि पर सड़क के किनारे गाँव के घर अँधेरे में से उठ खड़े होते, कटखने भूखे कुत्ते मेरी टाँगों की ओर झपटते और रात का चौकीदार अपना खटखटा बजाते हुए भय से चीख उठता :

"कौन है? किसकी बला आयी!"

मुझे डर लगता कि कहीं मेरे फँदे आदि न छीन लिये जायें और इसलिये, चौकीदारों का मुँह बन्द करने के लिए, पाँच कोपेक के सिक्के मैं सदा अपनी जेब में रखता। कोकीनों गाँव के चौकीदार से तो मेरी दोस्ती भी हो गयी। हर बार मुझे देखकर वह आश्चर्यचकित-सा आह-आह करता :

"फिर चल दिया! वाह रे, मेरे निडर, रात के पंछी!"

उसका नाम था नीफोन्त। कद का छोटा, सफ़ेद बालोंवाला। वह कोई सन्त लगता था। अक्सर वह अपनी कमीज में हाथ डालता और शलजम या सेब, या मुट्ठी भर मटर के दाने निकालकर मुझे देते हुए कहता :

"ले, दोस्त, तेरे लिए थोड़ी-सी सौगात रख छोड़ी थी, खा ले, मुँह मीठा कर ले।"

और वह गाँव के छोर तक मेरे साथ चलता।

"अच्छा जा, भगवान तेरा भला करे।"

मैं पौ फटने के साथ जंगल में पहुँचता, अपने जाल फैलाता, झांसे के पक्षियों

के साथ लासे लटकाता और जंगल के किनारे लेटकर दिन निकलने की बाट जोहने लगता... चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। हर चीज़ शरद की गहरी नींद में डूबी हुई है। धुँध-लिपटी पहाड़ियों की तलहटी में दूर-दूर तक फैली चरागाहों की हलकी-सी झलक दिखाई दे रही है जिन्हें काटती हुई वोल्गा बह रही है। नदी के पार चरागाहें कुहासे में घुल रही हैं। कुछ दूर, चरागाहों के उस पार जंगलों के पीछे से उज्ज्वल सूरज अलस भाव से निकलता है, पेड़ों के काले अयालों पर रोशनियाँ दमक उठती हैं और देखते-देखते एक अदभुत और रोम-रोम में व्याप्त हो जाने वाली हरकत शुरू हो जाती है : सूरज की किरणों में चांदी-सी चमकती धुँध की चादर अधिकाधिक तेज़ गति से चरागाहों के ऊपर उठती हैं। झाड़ियाँ, पेड़ की सूखी घास के गाँज मानो धीरे-धीरे धरती से फिर उठने लगते हैं। लगता है जैसे कि सूरज की गर्मी पाकर चरागाहें पिघलने और सभी दिशाओं में अपनी सुनहरी-पीत आभा लेकर बहने लगी है। नदी-तट पर पहुँचे सूरज ने अब उनके निश्चल जल का स्पर्श किया है और ऐसा लगता है मानो समूची नदी उसी के एक स्थल की उमड़ चली है जहाँ सूरज ने डुबकी ली है। सोने का थाल ऊँचा उठता जाता है और चारों ओर खुशी के लाल गुलाल की वर्षा होने लगी है। शीत से सिकुड़ी-सिमटी और काँपती धरती में जान पड़ी है, वह कसमसायी और अपनी कृतज्ञतापूर्ण उसाँसों से शरद की सोंधी सुगन्ध फैलाने लगी है। पारदर्शी वायु से धरती विशाल दिख रही है, वायु ने उसके विस्तार को निस्सीम रूप से बढ़ा दिया है। हर चीज़ मानो दूर धरती के नीले छोरों को छूने के लिए ललक रही है और अन्य सभी को भी अपने इसी रंग में रंगने के लिए अपना माया जाल फैला रही है। सूरज निकलने का यह दृश्य, इसी जगह से, बीसियों बार मैंने देखा है, और हर बार एक नई दुनिया मेरी आँखों के सामने उभर आती है जिसका सौंदर्य हर बार नया होता है...

सूरज से, न जाने क्यों, मुझे ख़ास तौर से प्रेम है। मुझे उसका नाम, उसके नाम की मधुर ध्वनियाँ, उनमें छिपी हुई झंकार बहुत अच्छी लगती है। आँखें बन्द करके सूरज की गर्म किरणों की ओर मुँह करना, बाड़े की दरार या पेड़ की टहनियों के बीच से तीर-सी निकलती किरण को हथेली पर पकड़ लेना मुझे बहुत अच्छा लगता है। नाना, 'राजा मिख़ाईल चेर्नीगोव्स्की और बोयारिन फेओदोर, जिन्होंने सूरज के आगे सिर नहीं झुकाये' की बड़ी इज्ज़त करते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि वे बड़े कुत्सित, जिप्सियों की भाँति काले और मनहूस मोर्दोविया के गरीबों की भाँति चपड़-चुँधी आँखों वाले रहे होंगे। जब चरागाहों के पीछे से सूरज ऊपर उठता है तो मैं बरबस मुस्करा उठता हूँ। मेरे सिर के ऊपर चीड़ का जंगल गूँजता है। वह अपनी सुईनुमा हरी पत्तियों से ओस की हरी बूँदें झड़ाता है और नीचे, पेड़ों की छाया में, पर्णांग की नक्काशीदार पत्तियों पर ओस की बूँदें सुबह के पाले से जम गयी हैं, ऐसा मालूम होता है, जैसे किसी ने रुपहले बेल-बूटे काढ़ दिये हैं। कत्थई घास बारिश से कुचली हुई धरती की

ओर झुके हुए डण्ठल निश्चल पड़े हैं। लेकिन सूरज की किरणों का स्पर्श पाकर उनमें भी हल्की-सी कुनमुनाहट दौड़ जाती है, मानो जीवित रहने के लिए वे आख़िरी प्रयास कर रहे हों।

पंछी जाग गये हैं। गंगरों ने भूरे रंग की गुलगुली गेंदों की भाँति, डाल-डाल पर फुदकना शुरू कर दिया है। अगिया क्रॉसबिल देवदार की फुनगियों पर अपनी टेढ़ी चोंचों से देवदार के शंकु तोड़ रहे हैं। देवदार की पंजानुमा टहनी के छोर पर सफ़ेद नटहैच पंछी अपने लम्बे पंख हिलाता झूल रहा है, मनके-सी काली आँख मेरे जाल की ओर संदेहभरी तिरछी नज़र से देख रही है। बिल्कुल अनायास ही सुनायी देता है कि कैसे समूचा जंगल, जो एक क्षण पहले तक गम्भीर-सा गहरे चिन्तन में डूबा था, अब सैंकड़ों पंछियों की सुस्पष्ट आवाज़ से गूँज उठा, धरती के सबसे पवित्र जीवों के कोलाहल से भर गया। इन्हीं के रूप पर इस धरती पर सौन्दर्य के पिता मानव ने अपने मन के सुख के लिए परियों, केरुवीन और सेराफ़ीम फ़रिश्तों की कल्पना की है।

पंछियों को पकड़ना दुःखद था और उन्हें पिंजरों में कैद करना शर्मनाक। उन्हें स्वच्छन्द देखने से मुझे अधिक आनन्द प्राप्त होता। लेकिन शिकारी की लगन और पैसा कमाने की इच्छा का पलड़ा भारी पड़ता और मेरी संवेदनशीलता को झुका देता।

पक्षियों की चतुराई देखकर मुझे हँसी आती। नीले गंगरे ने ध्यान जमाकर जाल का सविस्तार अध्ययन किया, उसमें छिपे खतरे को समझ गया और बगल की ओर से जाकर छड़ों के बीच से बिना किसी खतरे के अन्दर रखे चीज़ों को निकाल लिया। गंगरे बड़े चतुर हैं, पर उनमें ज़रूरत से ज़्यादा कुतूहल भरा है और यह बात उन्हें ले डूबती है। शानदार बुलफिंच बुद्धू होते हैं। गिरजे की ओर जा रहे बस्ती के मोटे-ताजे लोगों की भाँति वे मेरे जाल में झुण्ड के झुण्ड आ फँसते हैं। जब मैं उन्हें बन्द करता हूँ तब वे चौंक उठते हैं, भारी अचरज के साथ अपनी आँखों को टेरते और अपनी मोटी चोंच से मेरी उँगलियों को नोचते। क्रॉसबिल बड़ी शान्ति और शान से जाल में फंस जाता है। निराला फिंच अज्ञान, किसी भी अन्य पक्षी से भिन्न—चौड़ी दुम से टेक लगाकर और अपनी लम्बी चोंच को अलस भाव से इधर-उधर घुमाते हुए देर तक जाल के सामने बैठा रहता है। वह गंगरों के पीछे-पीछे पेड़ों के तनों पर कठफोड़वे की तरह भागता है। भूरे रंग का यह छोटा-सा पक्षी, न जाने क्यों मुझे बड़ा मनहूस मालूम होता है—एकदम अकेला, जिसके पास कोई नहीं भटकता, चमकीलें चीज़ें चुराना और उन्हें छिपाना पसन्द करता है। दोपहर तक मैं अपना काम समाप्त कर लेता और जंगलों तथा खेतों में होकर घर लौटता। सड़क का रास्ता पकड़कर गाँवों से होकर जाने पर गाँव के लड़के मेरे पिंजरों को छीन लेते और मेरे जाल को तोड़ डालते। मैं यह भोग चुका था।

घर पहुँचते-पहुँचते साँझ हो जाती। बदन थककर चूर-चूर हो जाता और पेट में

चूहे कूदने लगते। लेकिन मुझे लगता था कि दिन में मैं और बड़ा तथा बलवान हो गया हूँ, मैंने कुछ नई बात जान ली। इस नई शक्ति के सहारे नाना के ताने-तिसनों को ठण्डे दिल से सुनता था। यह देखकर नाना गम्भीरतापूर्वक मतलब की बातें करने लगते :

"छोड़ दो यह बेमतलब का धन्धा, छोड़ दो! चिड़िया पकड़कर दुनिया में आज तक कोई आगे नहीं बढ़ा! अपने लिए कोई ठिकाना खोजो और दिमाग की समूची शक्ति से एक जगह जमकर काम करो। आदमी का जीवन इसलिये नहीं है कि उसे ओछी बातों में नष्ट किया जाये। वह भगवान का बीज है और अच्छी फसल पैदा करना उसका काम है! आदमी सिक्के की भाँति है। अगर उसे ठीक ढंग से काम में लाया जाये तो वह अपने साथ और सिक्कों को भी खींच लाता है। क्या तुम जीवन को आसान समझते हो? नहीं, वह एक कठोर चीज़ है, बहुत ही कठोर! दुनिया अँधेरी रात के समान है जिसमें हर व्यक्ति को खुद मशाल बनकर अपने लिए उजाला करना होता है। भगवान ने हम सभी को समान रूप से दस उँगलियाँ दी हैं, लेकिन हर आदमी दूर-दूर तक अपने पंजों को फैलाना और दबोच लेना चाहता है। अपनी ताक़त दिखानी चाहिए, अगर ताक़त नहीं है तो चालाकी दिखाओ। जो बड़ा नहीं, बलवान नहीं—वह न तो स्वर्ग पहुँचेगा, न नरक में। लोगों के साथ मेल-जोल रखना, लेकिन यह कभी न भूलना कि तुम अकेले हो। बात सबकी सुनना, लेकिन विश्वास किसी पर न करना। आँखों देखी बात भी झूठी हो सकती है। जबान मुँह में रखना—घर और शहर जबान से नहीं, रुपये और हथौड़े से बनते हैं। तू न तो खानाबदोश बश्कीर है, न काल्मीक जिसकी सारी पूँजी है जुंएँ और भेड़ें!.."

रात घिर आती और उनकी बातों का यह सिलसिला फिर भी खत्म न होता। उनके शब्द मुझे जबानी याद थे। जब वह बोलते तो उनके शब्दों की ध्वनि मुझे अच्छी लगती, लेकिन उनके अर्थ के बारे में संदेह रहता। वह जो कुछ कहते, उसे सुनकर एक ही बात समझ में आती। वह यह कि दो ताकतें हैं जो जीवन को कठिन बना रही हैं : भगवान और लोग।

खिड़की के पास बैठकर अपनी चपल उँगलियों से तकली को फिरकी की भाँति नचाते हुए नानी बेल-बूटों के लिए सूत कातती। नाना के शब्दों को देर तक वह चुपचाप सुनती, फिर एकाएक कह उठती :

"जैसी माँ मरियम की इच्छा होगी, वही होगा!"

"यह क्या?" नाना चिल्लाते, "मैं भगवान को भूला नहीं, मैं भगवान को जानता हूँ। बेअक़्ल बुढ़िया, भगवान ने ज़मीन पर मूर्ख जन्मे हैं क्या?"

...मुझे लगता है कि धरती पर सबसे अच्छी तरह से सैनिक और कज़्ज़ाक रहते हैं, उनका जीवन सीधा-सादा और मौजी होता है। अच्छा मौसम होने पर सुबह-सुबह

वे आकर हमारे घर के सामने खड्ड के उस पार वाले मैदान में इधर-उधर बिखर जाते और उनका मज़ेदार जटिल खेल शुरू हो जाता : मज़बूत और चतुर, सफ़ेद क़मीज़ें पहने, हाथों में रायफलें ताने वे फुर्ती के साथ मैदान में दौड़ते खड्ड में छिप जाते, बिगुल की आवाज़ सुनते ही फिर दौड़कर बाहर निकल आते और "हुर्रा" की आवाज़ों तथा फौजी ढोल की कँपा देने वाली धमाधम के साथ सीधे हमारे घर की ओर रुख किये तेज़ी से बढ़ने लगते। उनकी संगीनें चमचमातीं, मानो अगले ही क्षण वे हमारे घर पर टूट पड़ेंगे और सब कुछ उलट-पुलटकर उसे मलबे का ढेर बना देंगे।

मैं भी ज़ोरों से "हुर्रा" की आवाज़ करता और उनके पीछे-पीछे दौड़ता ढोल की जानसोख आवाज़ सुन मेरे मन को कुछ नष्ट करने, किसी बाड़े को खींचकर गिराने या लड़कों को पकड़कर पीटने के लिए उतावली पैदा होती।

अवकाश के क्षणों में वे मुझे अपना घटिया तम्बाकू पिलाते और अपनी भारी रायफलों से खेलने देते। कभी-कभी उनमें से कोई मेरे पेट में अपनी संगीन की नोक गड़ा देता और गुस्से में भौंहों को चढ़ाकर बनावटी आवाज़ में चिल्लाता :

"अभी बींध दूँगा तिलचट्टे को!" संगीन धूप में चमचमा उठती और उसमें जिन्दा साँप की भाँति बल पड़ने लगते, ऐसा मालूम होता कि बस, अभी वह मुझे डस लेगी। इसलिये भय लगता था लेकिन उल्लास भय से भी अधिक होता था।

मोर्दोविया जाति के एक लड़के ने जो ढोलची था, मुझे ढोल बजाने की मुंगरियाँ पकड़ना सिखाया। पहले वह मेरी कलाइयाँ पकड़कर हाथों को दर्द होने तक घुमाता, फिर ढीली पड़ी मेरी उँगलियों में मुंगरियाँ थमा देता।

"हाँ, अब बजा—इक-दू, इक-दू! धम-धा-धा-धम! बजा—बाँया—हल्का, दाँया—दबाके, धम-धा-धा-धम!" चिड़िया जैसी गोल आँखों से वह मुझे घूरता और फटे हुए गले से रेंकता।

क़वायद समाप्त होने तक मैं भी सैनिकों के साथ-साथ दौड़ता, फिर उनके साथ समूचे नगर में मार्च करता हुआ उनकी बैरकों तक जाता, उनके ज़ोरदार गाने सुनता और उनके दयालु चेहरों को एकटक देखता रहता जो मुझे, एक सिरे से, अभी-अभी टकसाल से निकले सिक्कों की भाँति एकदम नए और उजले मालूम होते।

एकरूप आदमियों का यह ठोस समूह उल्लासपूर्वक सड़क पर संयुक्त शक्ति का रूप लेकर बहता था, अपने प्रति मित्रता का भाव पैदा करता था। मन उसमें डूबने, उसमें प्रवेश करने के लिए उतावला हो उठता—जैसे कि कोई नदी में डूब जाता है या जंगल में प्रवेश करता है। डर इन लोगों को छू तक नहीं गया था। साहस के साथ हर चीज़ का ये सामना करते थे, कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके लिए अजेय हो, जिसे वह चाहे और प्राप्त न कर सके, और सबसे बढ़कर यह है कि वे नेकदिल और सीधे-सच्चे थे।

लेकिन एक दिन, अवकाश के क्षणों में एक युवा सूबेदार अफसर ने मुझे मोटी-सी सिगरेट भेंट की।

"यह लो, सिगरेट पिओ। यह एक बहुत ही बढ़िया क़िस्म की सिगरेट है। तुम्हारे सिवा अगर और कोई होता तो उसे कभी न देता। तुम इतने अच्छे हो इसलिये मैं तुम्हें यह सिगरेट दे रहा हूँ।"

मैंने सिगरेट सुलगाई। वह पीछे हट गया। एकाएक सिगरेट से लाल लपट निकली और मैं चौंधिया गया—मेरी उँगलियाँ, नाक और भौंहे झुलस गयीं। भूरे तेजाबी धुएँ ने नाक में वह दम किया कि छींकते-खाँसते हुलिया तंग हो गया। आँखों के चौंधिया जाने और घबराहट के मारे मैं उसी एक जगह खड़ा हाथ-पाँव नचा रहा था। सैनिक मेरे चारों ओर घेरा बनाए खड़े थे और खूब खिलखिलाकर हँस रहे थे। मैं घर की ओर चल दिया। पीछे से उनके हँसने, सीटियाँ बजाने और गड़रियों जैसा हण्टर फटकारने की आवाज़ आ रही था। मेरी उँगलियों में जलन थी, चेहरे में कांटे-से चुभ रहे थे और आँखों से आँसू बह रहे थे। लेकिन इस पीड़ा से भी अधिक जानलेवा, अधिक परेशान करनेवाली चीज़ दुःख और अचरज का यह भाव था जो मेरे हृदय को मथ रहा था और जिसे मैं समझ नहीं पा रहा था। आख़िर उन्होंने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? इतने भले लोग भी इस तरह की चीज़ में कैसे आनन्द ले सके?

घर पहुँचने के बाद मैं ऊपर अटारी पर चढ़ गया, और बहुत देर तक वहाँ बैठा हुआ समझ में न आने वाली बर्बरता के उन सभी मौकों को याद करता रहा जिनसे मेरा वास्ता इतना अक्सर पड़ रहा था। सारापूल का वह टुंइयाँ-सा सैनिक मेरी कल्पना में मूर्त हो उठा। एकदम सजीव रूप में, मेरी आँखों के सामने खड़ा हुआ मुझसे मानो पूछ रहा हो :

"क्यों, समझा?"

शीघ्र ही मुझे कुछ और भी ज़्यादा क्रूर तथा हृदय को और ज़्यादा आहत करने वाला अनुभव हुआ।

मैंने पेचेर्स्काया स्लोबोदा के निकट उन बैरकों में भी जाना शुरू कर दिया जिनमें कज्ज़ाक रहते थे। कज्ज़ाक दूसरे सैनिकों से भिन्न थे—केवल इसलिये नहीं कि वे उनसे अच्छे कपड़े पहनते थे और मँजे हुए घुड़सवार थे, बल्कि इसलिये कि उनके बोलने का ढंग भिन्न था, वे भिन्न गीत गाते थे, और कमाल का नाचते थे। साँझ को घोड़ों की मलाई-दलाई करने के बाद सब कज्ज़ाक अस्तबल के पास घेरा बनाकर जमा हो जाते। नाटे कद का लाल सिर वाला एक कज्ज़ाक घेरे के बीच में निकल आता और अपने लहरदार बालों को पीछे की ओर झटकाकर नफ़ीरी जैसी तेज आवाज़ में गाने लगता। धीमे-धीमे तनकर वह नीली डेन्यूब नदी के बारे में उदास गीत गाता। प्रातः-पक्षी की भाँति वह अपनी आँखें बन्द कर लेता, जो अक्सर उस समय तक गाता

रहता जब तक कि वह निष्प्राण होकर धरती पर नहीं गिर पड़ता। उसके सलूके के गला खुला रहता जिसमें से उसकी हँसुली तपे हुए ताँबे के लगाम की भाँति दिखाई देती। और उसका समूचा शरीर ताँबे की ढली हुई प्रतिमा मालूम होता। पतली टाँगों पर झूलता मानो उसके तले ज़मीन डोल रही हो, हाथों को लहराता, बन्द आँखें, गूँजती आवाज़—वह मानो इंसान न रहकर बिगुलवादक का बिगुल या गड़रिए की बाँसुरी बन गया हो। कभी-कभी मुझे ऐसा मालूम होता कि वह अभी पीठ के बल धरती पर गिर पड़ेगा और प्रातः-पक्षी की भाँति ही निष्प्राण हो जायेगा, क्योंकि उसने अपना सारा हृदय, अपनी सारी शक्ति गीत में लगा दी थी।

उसके साथी उसके इर्द-गिर्द खड़े हैं, हाथों को अपनी जेब में डाले या कमर के पीछे किये। उनकी आँखें, बिना पलक झपकाए उसके ताम्र चेहरे और लहराते हुए हाथों पर टिकी है और गिरजे के सहगान की भाँति वे शान्त और गम्भीर ढंग से गा रहे हैं। ऐसे क्षणों में वे सब—दाढ़ीवाले भी और बिना दाढ़ी के भी—समान रूप से देव-प्रतिमाओं की भाँति मालूम होते, लोगों से उतने ही अलग, उतने ही भयोत्पादक। और गीत उतना ही अनन्त जितना कि अनन्त राजपथ होता है, उतना ही समतल, चौड़ा और युगों-युगों का अनुभव अपने में समेटे हुए। गीत के स्वर रोम-रोम में समा जाते हैं। न दिन का ज्ञान रहता है, न रात का। न बुढ़ापे की सुध रहती है, न बचपन की। सभी कुछ भूल जाता है! गायकों की आवाज़ें निस्तब्धता में डूब जाती हैं तो घोड़ों की उसाँसे सुनाई देती हैं जिन्हें स्तेपी के विस्तारों की याद सता रही हो। और खेतों की ओर से शरद रात्रि के अदम्य आगमन की पदचाप सुनाई देती है। भीतर से एक उबाल-सा उठता है और भावनाओं का यह भरा-पूरा और असाधारण उभार, अपने देश, धरती और उसपर बसने वाले लोगों के प्रति मौन अनुराग की यह व्यापक भावना, मेरे हृदय में उमड़ती-घुमड़ती और बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगती है।

मुझे ऐसा मालूम होता था कि तपे ताँबे-सा नाटे कद का यह कज़्ज़ाक निरा मानव नहीं है, वरन वह मानव से बड़ा और उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है—वह मानव जीवधारियों से अलग और उनसे ऊपर, लोककथाओं का जीव है। मुझसे उससे बात करते न बनता। वह मुझसे कुछ पूछता तो खुशी से मेरा चेहरा खिल उठता और मैं शर्माता हुआ चुप रहता। उसे देखने, उसका गाना सुनने के लिए, एक वफ़ादार कुत्ते की भाँति, मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलते रहने को तैयार था।

एक दिन मैंने उसे अस्तबल के कोने में खड़ा देखा। वह हाथ चेहरे के पास करके अपनी उँगली में चाँदी की एक सादी अँगूठी को बड़े ध्यान से देख रहा था। उसके सुन्दर होंठ हिल रहे थे, उसकी छोटी-छोटी लाल मूँछें बल खा रही थीं। उसके चेहरे पर उदास और चोट खाया हुआ-सा भाव मण्डरा रहा था।

एक दिन अँधेरी साँझ के समय स्ताराया सेन्नाया चौक के शराबखाने में मैंने

उसे देखा। शराबख़ाने का मालिक गाने वाली चिड़ियों का बेहद शौकीन था, और मुझसे अक्सर चिड़ियां ख़रीदा करता था। इस समय भी कुछ पिंजरे लेकर मैं उसके पास गया था।

कज्ज़ाक बार के निकट, अलावघर और दीवार के बीच, बैठा था। उसके साथ एक मोटी थलथल स्त्री थी जो आकार-प्रकार में क़रीब-क़रीब उससे दूनी थी। उसका गोल-मटोल लाल चिकना चेहरा रेशम की तरह चमक रहा था और वह बड़े चाव और लगन से कज्ज़ाक की ओर देख रही थी जैसे माँ अपने बच्चे की ओर देखती है, उसकी नज़र में कुछ-कुछ चिन्ता झलक रही थी। कज्ज़ाक नशे में धुत्त था और उसके पाँव मेज़ के नीचे बराबर कुलबुला रहे थे। वह ज़रूर ही स्त्री को ठोकर मार रहा था क्योंकि वह चौंककर भौंहें सिकोड़ती और धीमे स्वर में उससे अनुरोध करती :

"यह क्या हरकत है?"

कज्ज़ाक बड़ी मुश्किल से अपनी भौंहें उठाता लेकिन वे फिर शिथिल-सी गिर जातीं। गर्मी के मारे बुरा हाल था। उसने अपने कोट और क़मीज़ के बटन खोल डाले और उसकी गरदन नंगी हो गयी। स्त्री ने रुमाल सिर से खिसकाकर अपने कन्धों पर डाल लिया, फिर अपनी हृष्ट-पुष्ट सफ़ेद बाँहों को मेज़ पर रखा और दोनों हाथों को मिलाकर इतने ज़ोर से भींचा कि उँगलियों की पोरें लाल पड़ गईं। जितना ही अधिक मैं उन्हें देखता, उतना ही अधिक वह कज्ज़ाक मुझे नेक माँ के लड़के की भाँति मालूम होता, जिससे कोई कसूर हो गया है। औरत उसे प्यार और ताने के साथ कुछ कह रही थी और वह लज्ज़ित-सा चुप था—उसके जायज़ तानों के ज़वाब में उसके पास कहने को कुछ नहीं था।

सहसा वह खड़ा हो गया, मानो किसी बिच्छू ने उसे काट लिया हो। अपनी टोपी को उसने माथे पर खींचा और थपथपाकर उसे खूब जमा लिया। इसके बाद, कोट के बटन बन्द किये बिना ही, वह दरवाज़े की ओर बढ़ा। स्त्री भी उठ खड़ी हुई।

"हम अभी लौट आयेंगे, कुज़मिच," स्त्री ने शराबख़ाने के मालिक से कहा।

लोगों ने उन्हें हँसी और फबतियों के साथ विदा किया। किसी ने सख़्ती के साथ गहरी आवाज़ में कहा :

"लौटने दो मल्लाह को—वह ससुरी की खबर लेगा!"

मैं भी उनके पीछे-पीछे चल दिया। वे अँधेरे में मुझसे कोई बीसेक क़दम आगे चल रहे थे। कीचड़ भरे चौक को पार कर वे सीधे वोल्गा के ऊँचे तट की ओर चल दिए। मैंने देखा कि कज्ज़ाक अपने लड़खड़ाते पाँवों से चल नहीं पा रहा है, और उसे सम्भालने के प्रयत्न में खुद स्त्री भी डगमगा जाती है। स्त्री, दबे स्वर में, उससे मिन्नत-सी करती हुई पूछ रही थी :

"यह आप किधर चल दिए? बोलिये न, किधर?"

मैं भी उनके पीछे-पीछे कीचड़ में चलने लगा, हालाँकि मेरा रास्ता दूसरा था। जब वे ढाल की पटरी पर पहुँचे तो कज़्ज़ाक रुक गया, एक कदम पीछे हटा और फिर एकाएक स्त्री के मुँह पर भरपूर हाथ से तमाचा मारा। स्त्री भय और अचरज से चीख उठी :

"ओह राम, यह किसलिये?"

मैं भी चौंक उठा, और लपककर उनके पास पहुँचा। लेकिन कज़्ज़ाक ने झपटककर स्त्री को कमर से उठा लिया, रेलिंग के उस पार फेंक दिया, और खुद भी उसके पीछे-पीछे कूद गया और दोनों, काले ढेर की भाँति घास उगी ढाल पर से नीचे लुढ़कते चले गये। मुझे जैसे काठ मार गया, और बुत की तरह वहीं खड़ा हुआ तड़प-झड़प की, कपड़ों के फटने और कज़्ज़ाक के हाँफने और भरभराने की आवाज़ सुनता रहा। स्त्री, नीचे स्वर में, रह-रहकर बुदबुदा रही थी :

"मैं चिल्ला पड़ूँगी... मैं चिल्ला पड़ूँगी..."

उसने ज़ोरों से दर्द भरी आह मारी और सब तरफ सन्नाटा-सा छा गया। मैंने एक पत्थर टटोला और उसे नीचे लुढ़का दिया—घास की सरसराहट सुनाई दी। चौक पर शराबख़ाने का काँच का दरवाज़ा झनझना रहा था, कराहने-काँखने की आवाज़ आयी, जैसे कोई गिर पड़ा हो और उसके बाद फिर सन्नाटा छा गया, जिसके गर्भ में आतंक और डर छिपा हुआ था।

ढाल के नीचे बड़े आकार की कोई सफ़ेद-सी चीज़ दिखाई दी। लड़खड़ाती-सी, सुबकती और भुनभुनाती, वह धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही थी। वह स्त्री थी। मैंने देखा कि उसका बदन कमर तक नंगा है। उसकी बड़ी-बड़ी गोल छातियाँ सफ़ेद दमक रही थीं, और ऐसा मालूम होता था मानो उसके तीन चेहरे हों। आख़िर वह रेलिंग से आ लगी, और मेरे पास ही पटरी पर बैठ गयी। वह गरमाए हुए घोड़े की भाँति हाँफ रही थी, और अपने उलझे-बिखरे बालों को सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी। उसके सफ़ेद बदन पर कीचड़ के काले निशान साफ़ दिखाई देते थे। वह रो रही थी, मुँह साफ़ करती बिल्ली की सी हरकतों से अपने आँसुओं को पोंछ रही थी।

"हाय राम, कौन है?" मुझ पर नज़र पड़ते ही वह धीमे से चिल्लाई। "भाग यहाँ से—बेशर्म कहीं का!"

लेकिन मुझसे भागा नहीं जाता। गहरे दुःख और अचरज से मैं बुत-सा बन गया हूँ। मुझे नानी की बहन के शब्द याद आते हैं :

"लुगाई में बड़ी ताकत है, हौवा ने ख़ुदा को भी धोखा दे दिया था..."

स्त्री उठकर खड़ी हो गयी। कपड़ों के नाम पर जो कुछ बच रहा था, उससे उसने अपनी छातियों को ढँका, और ऐसा करने के प्रयत्न में अब उसकी टांगें उघड़ी रह गईं। तेज डगों से वह चल दी। तभी ढाल पर कज़्ज़ाक चढ़ता दिखाई दिया। उसके हाथ

में कुछ सफ़ेद कपड़े थे जिन्हें वह हवा में हिला रहा था। धीमे से उसने सीटी बजाई, कान लगाकर सुना, फिर प्रसन्न आवाज़ में बोला :

"दार्या! क्यों? कज़्ज़ाक जो चाहता है उसे लेकर ही छोड़ता है... तूने समझा कि मुझे नशा चढ़ा है? लेकिन नहीं, ना-आ-आ, यह तो बस तुझे ऐसा लगा था... दार्या!"

उसके पाँव ज़मीन पर मजबूती से जमे थे। उसकी आवाज़ में नशे का नहीं, व्यंग्य का पुट था। नीचे झुककर स्त्री के कपड़ों से उसने अपने जूतों का कीचड़ पोंछा और फिर बोला :

"यह ले, अपनी कोती ले जा! ज़्यादा बन मत..."

और फिर ज़ोर से स्त्रियों के लिए शर्मनाक नाम लेकर उसे पुकारा।

मैं पत्थरों के ढेर पर बैठा उसकी आवाज़ सुनता रहा—रात की निस्तब्धता में इतनी अकेली और इतनी दबंग।

मेरी आँखों के सामने चौक की लालटेनों की रोशनियाँ नाच रही थीं। दाहिनी ओर काले पेड़ों के झुरमुट के बीच कुलीन वर्ग की लड़कियों के स्कूल की सफ़ेद इमारत दिखाई दे रही थी। अलस भाव से गन्दे शब्दों को अपने मुँह से उगलता और सफ़ेद कपड़ों को हिलाता कज़्ज़ाक चौक की ओर बढ़ा और एक दुःस्वप्न की भाँति ओझल हो गया।

ढाल के नीचे, पम्प घर की ओर से भाप निकलने के पाईप की सनसनाती आवाज़ आ रही थी। ढाल पर से खड़खड़ करती घोड़ागाड़ी जा रही थी। चारों ओर सन्नाटा था। मैं बिषाक्त-सा ढाल के किनारे-किनारे चलने लगा। हाथ में एक ठण्डा पत्थर था जिसे मैं कज़्ज़ाक पर फेंक न पाया। सन्त जॉर्ज विजेता के गिरजे के पास चौकीदार ने मुझे रोका और झुँझलाकर पूछने लगा कि मैं कौन हूँ और मेरी पीठ पर लटके थैले में क्या है।

मैंने उसे कज़्ज़ाक का सारा किस्सा बताया। हँसते-हँसते वह दोहरा हो गया, चिल्लाते हुए बोला :

"क्या हाथ मारा है!.. कज़्ज़ाक, भाई मेरे, घुइंयाँ होते हैं। हमारा-तुम्हारा मुकाबला क्या! और औरत कुतिया..."

फिर वह हँसते-हँसते दोहरा हो गया और मैं आगे बढ़ चला। मेरी समझ में न आया कि हँसी की ऐसी क्या बात उसने देखी?

"अगर वह स्त्री मेरी माँ या मेरी नानी होती तो?..." मैं सोचता, और मेरा हृदय भय से काँप उठता।

8

बर्फ़ गिरना शुरू होते ही नाना मुझे फिर नानी की बहन के यहाँ ले गये। बोले :

"कोई बुराई नहीं इसमें तेरे लिए, कोई बुराई नहीं।"

मुझे लगता था कि बीती गर्मियों में मैंने बहुत दुनिया देख ली है, मैं बड़ा हो गया हूँ, मुझे कुछ अक्ल आ गयी है, और मालिकों के यहाँ इस बीच ऊब और भी गहरी हो गयी है। वैसे ही उन्हें अपने पेटूपन के कारण बदहज़मी होती रहती है, वे बीमार पड़ते रहते हैं और एक-दूसरे को ब्यौरेवार अपनी बीमारी का हाल बताते रहते हैं, बुढ़िया की भगवान को गुस्से से भरी ज़हरीली प्रार्थनाएँ जारी हैं। छोटी मालकिन बच्चा जनने के बाद कुछ दुबली हो गयी है, आकार में थोड़ी कम हो गयी है, फिर भी पहले जैसे ही वह जब गर्भवती थी, धीरे-धीरे और रौब से चलती है। जब वह बच्चों के कपड़े सीती है तो हमेशा एक ही गीत गुनगुनाती रहती है :

वान्या, वान्या, वानिचका
नन्हां वान्या, प्यारा वान्या
अपनी अम्माँ की गाड़ी खींचेगा
अपनी अम्माँ का कहना मानेगा...

अगर मैं कमरे में आ जाता तो वह तुरन्त गाना बन्द कर देती :

"क्या चाहिए?"

मुझे यकीन था कि इसके सिवा वह अन्य कोई गीत नहीं जानती।

साँझ होते ही मालिक लोग मुझे भोजन के कमरे में तलब करते और कहते :

"हाँ तो, सुना, जहाज़ पर तेरे साथ क्या-क्या बीती?"

पाख़ाने के दरवाज़े के पास कुर्सी पर मैं बैठ जाता और उन्हें सारी बातें बताता। इस अनचाहे और अनचेते जीवन के बीच उस जीवन की याद करना मुझे अच्छा लगता। उसका वर्णन करने में मैं इतना डूब जाता कि मुझे अपनी मालकिनों की उपस्थिति तक का ध्यान न रहता। लेकिन यह हालत अधिक देर तक न टिकती। दोनों औरतों ने कभी जहाज़ पर यात्रा नहीं की थी। वे सवाल करतीं :

"फिर भी तुझे डर तो ज़रूर लगा होगा?"

मेरी समझ में नहीं आता कि डरना किस बात का?

"अगर कहीं गहरे में जाकर जहाज़ पानी में समा जाता तो?.."

मालिक खिलखिलाकर हँसता और मैं, यह जानते हुए भी कि जहाज़ गहरे पानी में नहीं डूबते हैं, स्त्रियों के हृदय में यह बात न बैठा पाता। बूढ़ी मालकिन को पक्का यकीन था कि जहाज़ पानी में तैरता नहीं, बल्कि उसके पहिए सड़क पर चलनेवाले

गाड़ी के पहियों की भाँति नदी की तह में चलते हैं।

"अगर जहाज़ लोहे का बना है तो वह तैर कैसे सकता है? कुल्हाड़ी तो तैरती नहीं, एकदम डूब जाती है..."

"लेकिन डोल तो नहीं डूबता।"

"डोल की खूब कही। एक तो वह छोटा होता है, और दूसरे खोखला..."

स्मूरी का और उसकी पुस्तकों का जब मैंने उनसे ज़िक्र किया तो उन्होंने सन्देह की नज़र से मुझे देखा। बूढ़ी मालकिन को यकीन था कि पुस्तकें धर्मभ्रष्ट और बेवकूफ लोग लिखते हैं।

"तो भजन संहिता किसने लिखी? राजा दाऊद ने नहीं?"

"भजन संहिता की बात छोड़—वह पवित्र पुस्तक है। यों दाऊद राजा ने भी अपनी भजन संहिता के लिए भगवान से माफ़ी माँगी थी!"

"यह कहाँ लिखा है?"

"यहाँ मेरे हाथ पर जिसका तमाचा पड़ते ही तुझे सब पता चल जायेगा!"

वह सदा हर बात जानती थी और बड़े विश्वास के साथ हर बात की नुक्ताचीनी करती थी जो हमेशा बेहूदा होती थी।

"पेचोर्का गली में एक तातार मरा तो मुँह के रास्ते उसकी जान निकली कोलतार की तरह—एकदम काली!"

"जान का मतलब है आत्मा," मैं बोला, लेकिन वह तिरस्कार भरे स्वर में चिल्लायी :

"तातार की आत्मा नहीं होती, बेवकूफ़!"

छोटी मालकिन भी पुस्तकों को हौव्वा समझती थी।

"क़िताबें पढ़ना बहुत बुरा है, ख़ास तौर से कच्ची उमर में," वह कहती। "हमारे मुहल्ले में अच्छे-भले घर की एक लड़की क़िताबें पढ़ती थी और बस पढ़ते-पढ़ते पादरी से इश्क करने लगी। पादरी की घरवाली ने उसकी वो बेइज्ज़ती की—तौबा, तौबा! भरी गली में सारे लोगों के सामने..."

कभी-कभी मैं उन शब्दों को दोहराता जो मैंने स्मूरी की पुस्तकों में पढ़े थे। इन पुस्तकों में से एक में मैंने पढ़ा था, "असल बात यह है कि बारूद का किसी एक व्यक्ति ने आविष्कार नहीं किया, वह उन छोटे-छोटे प्रयोगों और खोज-कार्यों का नतीजा था जिनका लम्बा सिलसिला बहुत पहले ही शुरू हो चुका था।"

न जाने क्यों, ये शब्द मेरी स्मृति में जमकर बैठ गये। ख़ास तौर से शुरू का टुकड़ा "असल बात यह है कि" मुझे बहुत पसन्द आया और ज़ोरदार लगा। इसके इस्तेमाल करने के कारण मुझे बहुत दुःख भोगना पड़ा, हास्यपद दुःख। ऐसा भी होता है।

एक बार जब मालिकों ने जब मुझसे अपने जहाज़ी जीवन की और कोई कहानी सुनाने के लिए कहा तो मेरे मुँह से निकला :

"असल बात यह है कि अब और कुछ कहने के लिए बाकी नहीं रहा..."

सुनकर वे अचकचा गये और लगे मेढक की भाँति टर्राने :

"यह क्या? क्या कहा तूने?"

फिर चारों खूब खिलखिलाकर हँसे, और उन्होंने बार-बार दोहराना शुरू किया :

"असल बात यह है—ओ मेरे भगवान!"

मालिक तक ने मुझसे कहा :

"यह तो तुझे बुरी ही सूझी, सनकी!"

और काफ़ी दिनों तक वे मुझे "असल बात" कहकर पुकारते और चिढ़ाते रहे :

"अरे, असल बात, जरा इधर आ! बच्चे ने फ़र्श गन्दा कर दिया है। असल बात, इसे झटपट साफ़ तो कर दे..."

उनका यह बेमतलब चिढ़ाना मुझे बड़ा अजीब लगता। बुरा मानने के बजाय मैं अचरज से उनकी ओर देखता।

जानलेवा उदासी की धुँध मुझपर छायी रहती। उससे छुटकारा पाने के लिए मैं जी तोड़कर काम करता। काम की कोई कमी नहीं थी। घर में दो बच्चे थे, दोनों गोद के। कोई भी दाई या आया उनके यहाँ टिक न पाती—आये दिन बदलती रहती। नतीज़ा यह है कि बच्चे की देखभाल भी ज़्यादातर मेरे ही सिर पड़ती। रोज मैं उनके पोतड़े धोता और हफ़्ते में एक बार जन्दार्मी सोते पर जाकर कपड़े पछाड़ता। वहाँ धोबिन मेरी हँसी उड़ाती :

"यह तू क्या औरतों का काम कर रहा है?"*

कभी-कभी, चिढ़कर गीले कपड़ों के कोड़ों से मैं उनकी खबर लेता। कोड़े का जवाब वे भी कोड़े से देतीं। बड़ा मजा आता और उनके साथ खूब जी लगता।

जन्दार्मी सोता गहरे खड्ड में बहता था। यह खड्ड ओका नदी की ओर निकलता था और नगर से एक मैदान अलग कटता था, जिसका नाम प्राचीन स्लाव देवता के नाम पर—यारीलो—था। ईस्टर के बाद सातवें सप्ताह में बृहस्पति के दिन नगर निवासी इस मैदान में जमा होते और उत्सव मनाते थे। नानी ने मुझे बताया था कि उसकी युवा अवस्था तक लोग यारीलो देवता को मानते थे और उसकी पूजा किया करते थे। वे एक पहिए पर कोलतार में डुबोया पटुआ लपेटते और आग लगाकर उसे पहाड़ी पर से लुढ़का देते थे। लोग खूब शोर मचाते और गीत गाते थे। अगर पहिया ओका नदी तक पहुँच जाता तो समझते कि यारीलो ने उनका पूजन स्वीकार कर लिया है, ग्रीष्म

---

* रूस में कपड़े धोने का काम केवल स्त्रियाँ करती थीं।—सं.

ऋतु इस बार बहुत बढ़िया होगी, और घर-घर रौनक छा जायेगी।

अधिकांश धोबिनें यारीलो मैदान में रहती थी। फुर्ती उन सबमें कूट-कूटकर भरी थी और कतरनी की भाँति उनकी जबान चलती थी। नगर के जीवन की एक-एक बात उन्हें मालूम थी और दुकानदारों, क्लर्कों और अफ़सरों के बारे में, जिनके यहाँ वे कपड़े धोती थीं, उनकी कहानियाँ बहुत ही दिलचस्प होती थीं। जाड़ों के दिनों में जब सोते का पानी बर्फ़ की भाँति ठण्डा हो जाता तो कपड़े पछाड़ना बड़ा जालिम काम मालूम होता। स्त्रियों के हाथ सुन्न हो जाते और खाल तड़कने लगती। लकड़ी की नाँद पर, जिनमें पानी बहकर आता था, झुके-झुके कमर अकड़ जाती। सिर पर लकड़ी की एक गिरी-पड़ी-सी छत थी जो न तो हवा से उनकी रक्षा कर पाती थी, न हिमकणों की बौछार से। उनके चेहरे लाल और पाला मारे हो जाते, दुखती हुई उँगलियों के जोड़ काम करने से इंकार कर देते, आँखों से पानी बहता, लेकिन उनका चहकना फिर भी एक क्षण के लिए बन्द न होता, वे बराबर बतियाती रहतीं, ताज़ी से ताज़ी घटनाओं की चर्चा करती, और लोगों तथा दुनिया भर की चीज़ों का निबटारा करने में असाधारण साहस का परिचय देतीं।

बातें करने में नताल्या कोज्लोव्स्काया उनमें सबसे तेज थी। आयु तीस से कुछ ऊपर, ताज़ी और हृष्ट-पुष्ट, जबान ख़ास तौर से तेज़ और लचकीली, और खिल्ली उड़ाती-सी आँखें। जब वह बोलती तो सबके कान उसकी ओर लग जाते, जब कोई बात सिर पर आ पड़ती तो सब उससे सलाह लेतीं और काम में दक्ष होने के कारण सब उसकी इज्ज़त करतीं। इसके अलावा उसकी इज्ज़त करने के कारणों में यह भी था कि वह बहुत ही साफ़-सुथरे और सुघड़ ढंग से कपड़े पहनती थी, और यह कि वह अपनी लड़की को पढ़ने के लिए स्कूल में भेजती थी। दो झौवा भर गीले कपड़ों के बोझ से झुकी, पथ की रपटन से बची जब वह आती तो सबके चेहरे खिल जाते और वे हमदर्दी के साथ पूछतीं :

"तुम्हारी लड़की तो मजे में है न?"

"हाँ, अच्छी तरह है। पढ़ रही है। भला करें भगवान!"

"मेम बनेगी, हैं?"

"इसीलिये तो स्कूल में भर्ती कराया है। साहबों की लाली कहाँ से आ ली? सब हम मूर्ख गरीबों में से ही तो, और कहाँ से? सारी बात विद्या की है, जितनी ज़्यादा विद्या, उतने लम्बे हाथ, उतना ज़्यादा समेट लेगा इंसान, और जिसने ज़्यादा ले लिया, उसने मामला जीत लिया। भगवान तो भेजता है हमें दुनिया में नादान बच्चे बनाकर, वापस माँगता है अक्लमंद बुड्ढे, सो पढ़ना चाहिए!"

सहज विश्वास के साथ, बिना किसी दुविधा के, उसके मुँह से शब्दों की धारा निकलती और सब, एकदम चुप होकर उसकी बातें सुनतीं। मुँह पर वे उसकी तारीफ

करतीं और उसकी पीठ के पीछे भी। उसकी शक्ति, लगन और चतुराई देखकर वे चकित रह जातीं। लेकिन उस जैसा बनने की बात किसी को न सूझती। कोहनी तक अपनी बाँहों की हिफ़ाजत करने और अपनी आस्तीनों को भीगने से बचाने के लिए उसने उन पर फुलबूट के ऊपरी चमड़े को काँट-छाँटकर सी लिया था। यह देख सभी ने उसकी सूझ-बूझ की सराहना की, लेकिन अन्य किसी ने अपने लिए ऐसा नहीं किया और जब मैंने किया तो सबने मेरा मज़ाक उड़ाया।

"हो-हो-हो, महरिया की नकल करता है!"

उसकी लड़की के बारे में वे कहतीं :

"कौन बड़ी बात है। क्या हुआ, एक मेम और हो जायेगी, यही न? और कौन जाने, पढ़ाई पूरी भी होगी, पहले ही मर गयी, तो..."

"पढ़े-लिखे ही कौन सुखी हैं? वो बाखीलोव की लड़की तो पढ़ती रही, पढ़ती रही, और फिर आप ही जाकर मास्टरनी बन गयी। और मास्टरनी कहाँ ब्याहेगी..."

"और नहीं तो क्या! ब्याहनेवाले तो अनपढ़ी को भी ले जायेंगे, बस लेने को कुछ होना चाहिए..."

"लुगाई की अक्ल खोपड़ी में थोड़े ही रखी है..."

अपने ही बारे में जब वे इतनी निर्लज्जता से बातें करतीं तो बड़ा अजीब और अटपटा लगता। सैनिकों, जहाजियों और बेलदारों को स्त्रियों के बारे में दुनिया भर की उलटी-सीधी बातें करते मैं सुन चुका था, और पुरुषों को आपस में डींग मारते और इस बात से अपने पुरुषत्व की माप करते भी मैं देख चुका था कि कितनी स्त्रियों को उन्होंने उल्लू बनाया। उनकी बातों और व्यवहार में "घाघरा-वर्ग" के प्रति दुश्मनी का भाव साफ़ झलकता, लेकिन जब कभी भी मैं किसी पुरुष के मुँह से उसकी "विजयों" का वर्णन सुनता तो मुझे लगता कि वह डींग मार रहा है, उसकी बातों में सच्चाई कम है और व्यर्थ का तूमार अधिक।

धोबिनें एक-दूसरे से अपने प्रेम के किस्सों का बखान नहीं करती थीं, लेकिन पुरुषों का जब वे ज़िक्र करतीं तो उसमें हँसी उड़ाने और बदला लेने का भाव झलकता जो इस कथन की पुष्टि करता कि लुगाई में सचमुच एक ऐसी ताकत है जिसे मात देना आसान नहीं है।

"मर्द कहीं भी जाये, किसी के साथ भी रहे," नताल्या ने एक दिन कहा, "पर घूम-फिरकर औरत के तलुवे ही चाटेगा।"

"तलुवे नहीं चाटेगा तो और क्या करेगा!" एक बूढ़ी धोबिन ने फटे बाँस जैसी आवाज़ में कहा। "साधु-संन्यासी तक पूजा-पाठ छोड़ औरत के पीछे खिंचे चले आते हैं!..."

पानी की सुबकती छपाछप और कपड़ों के पछाड़ने की आवाज़ों के साथ बातों

का यह सिलसिला चलता रहता और खाई के तल पर, इस सड़ांध भरी दरार में जिसे जाड़े की बर्फ़ तक अपनी शुद्ध चादरों से ढँक नहीं पाती, निहायत नंगे और कुत्सापूर्ण ढंग से जन-सृष्टि के उस महान रहस्य का परदा उघाड़ा जाता जिसके फलस्वरूप सभी जातियों और सभी कबीलों का इस दुनिया में आना सम्भव हुआ है। उनकी ये बातें मुझमें भयावनी घृणा पैदा करतीं और मेरे विचारों और भावनाओं को "इश्क" की बातों से दूर भगातीं, जिससे मैं बुरी तरह घिरा हुआ था। मेरे मन में यह बात घर कर गयी कि "इश्क" का मतलब ही गन्दी, कामुकता भरी बात है।

यह सब होने पर भी खड्ड में धोबिनों के साथ, या रसोईघरों में अफसरों के अरदलियों अथवा तहख़ानों में बेलदारों के साथ, समय बिताना मुझे कहीं अच्छा लगता। इसके मुकाबले में मालिकों के घर पर बोलने-चालने, सोचने और घटनाओं की एकरूपता केवल बोझिल तथा क्रोध भरी ऊब पैदा करती थी। मालिकों का जीवन क्या था, खाने-पीने, सोने और बीमार पड़ने का एक कुत्सित चक्र था, या खाने की तैयारियाँ हो रही हैं, या सोने की; बातें पाप और मौत की ही करते थे, उससे वे बहुत डरते थे, चक्की में डाले दानों का सा उनका जीवन था, हर घड़ी यही डर कि अब पाट तले पिसे कि पिसे।

काम से छुट्टी मिलने पर मैं बाहर सायबान में चला जाता और लकड़ियाँ चीरने लगता। इस तरह मैं अकेले रहने का प्रयत्न करता, लेकिन बहुत कम सफल हो पाता : अफ़सरों के अरदली, अदबदाकर, आ धमकते और अहाते के जीवन के बारे में बातें शुरू कर देते।

इन अरदलियों में से दो, येर्मोख़िन और सीदोरोव, अक्सर मेरे पास आते थे। येर्मोख़िन कलूगा प्रदेश का रहनेवाला था। लम्बा क़द और कन्धे झुके हुए, छोटा सिर, आँखें धुँधली और उसका समूचा शरीर, ऊपर से नीचे तक, मोटी और मजबूत शिराओं का ताना-बाना मालूम होता था। वह काहिल और इतना बेवकूफ़ था कि उससे तबीयत भन्ना जाती थी। चाल-ढाल में वह बेढंगा और सुस्त था। जब किसी स्त्री को देख लेता तो मिमियाने लगता और आगे की ओर यों झुकता जैसे अभी उसके पाँवों पर गिरकर ढेर हो जायेगा। बावर्चिनों और नौकरानियों पर वह इस तरह आनन-फानन डोरे डालता कि अहाते में सभी चकित रह जाते। सभी उससे ईर्ष्या करते, और भालू जैसी उसकी शक्ति से भय खाते। सीदोरोव तूला का रहनेवाला था। दुबला-पतला और कड़ियल। वह हमेशा उदास-सा रहता, दबे हुए स्वर में बातें करता, और सहमा हुआ-सा खाँसता-खँखारता। उसकी आँखों में जैसे डर झलक मारता और वे हमेशा अँधेरे कोनों की खोज करतीं। चाहे वह फुसफुसाकर बातें करता हो, या एकदम चुपचाप बैठा हो, उसकी आँखें हमेशा सबसे अँधेरा कोना खोजतीं और वहीं चिपकी रहतीं।

"इधर क्या देख रहा है?"

"हो सकता है, कोई चूहा इधर से निकल आये। मुझे चूहे पसन्द हैं—चुपचाप इधर-उधर भागते रहते हैं..."

अरदली मुझसे चिट्ठियाँ लिखवाते, कभी अपनी प्रेमिकाओं के नाम, कभी अपने घरवालों के नाम जो देहातों में रहते थे। मुझे चिट्ठियाँ लिखना अच्छा लगता, ख़ास तौर से सीदोरोव की चिट्ठियाँ लिखने में मेरा खूब जी लगता। हर शनिवार के दिन वह अपनी बहन के नाम चिट्ठी लिखाता, जो तूला में रहती थी।

वह मुझे अपने रसोईघर में ले जाता और एक मेज़ पर मेरी बगल में बैठ जाता। अपने सफ़ाचट सिर को तेजी से खुजलाता और मेरे कानों में फुसफुसाता :

"हाँ, तो अब शुरू कर! सबसे पहले तो सिरी नामा लिख : 'मेरी अत्यन्त पूजनीय बहन, भगवान तुम्हें सदा खुश रखे'—और जो सब लिखना चाहिए। अब आगे लिख : 'तुमने जो रूबल भेजा था सो मुझे मिल गया, लेकिन यह तुमने ठीक नहीं किया, आगे तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, और इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। यहाँ किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, मैं बहुत अच्छी तरह से हूँ'—असल में तो ज़िन्दगी कुत्तों से भी बदतर है, पर तू यह नहीं लिख, लिख कि अच्छी है! वो तो अभी छोटी है—कुल चौदह साल की—उसे यह सब क्या जानना? अब आगे अपने आप लिख, जैसे तुझे सिखाया गया है..."

और वह मेरे कन्धे पर झुक जाता। उसके मुँह से निकली बदबू भरी गर्म साँस मेरे मुँह पर आती और वह बराबर फुसफुसाकर कहता :

"और यह भी लिख दे कि वह लड़कों को अपने पास न फटकने दे, छातियों और कहीं पर उनकी हवा तक न लगने दे। और लिख कि कभी किसी की मीठी बातों के बहकावे में न आये। अगर कोई मीठी बातें करे तो समझे कि वह उसे उल्लू बना रहा है, और उसका नास करने का जाल रच रहा है..."

खाँसी रोकने के भारी प्रयास में उसका भूरा चेहरा लाल हो उठता, उसके गाल कुप्पा-से हो जाते, आँखों में आँसू आ जाते, वह कुर्सी पर कुलबुलाता और मुझे धकेलता।

"तुम बार-बार मेरा हाथ हिला रहे हो!"

"कोई बात नहीं, लिखता जा : 'साहब लोगों से ख़ास तौर से बचकर रहना। ये पहली बार में ही मिट्टी खराब कर देते हैं। कुछ इस ढंग से चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं कि एक बार अपने जाल में फँसाने के बाद तुम्हें कसबिन बनाकर ही छोड़ेंगे। अगर तुम एक रूबल जोड़ लो तो उसे पादरी के पास जमा करा देना, लेकिन यह देख लेना कि पादरी ईमानदार हो। अच्छा तो यह होगा कि उसे कहीं ज़मीन में गाड़कर छिपा दो ताकि किसी की नज़र न पड़े, और जिस जगह गाड़ो, उसे भूल न जाओ।'"

खिड़की के एक हिस्से में लगी टीन की फिरकी की चरचराहट में डूबी उसकी

फुसफुसाहट हृदय को बुरी तरह कुरेदती है। सिर उठाकर मैं कालिख लगे अलावघर और बरतन रखने की अलमारी की ओर देखता हूँ जिसे मक्खियों के दाग-धब्बों ने रंग रखा है। रसोई क्या है, गन्दगी का घर है। खटमलों की भरमार है और धुएँ, मिट्टी के तेल और जली हुई चर्बी की गन्ध से वह भरा हुआ है। अलावघर के ऊपर रखी छिपटियों में तिलचट्टे सरसराते हैं। मेरा हृदय बोझिल और उदास हो जाता है, और इस गरीब सिपाही तथा उसकी बहन पर तरस के मारे आँखों में आँसू उमड़ आते हैं। क्या इस तरह जीना ठीक है, उचित है?

सीदोरोव की फुसफुसाहट से बेखबर मैं लिखता ही जाता हूँ। लिखता हूँ कि जीवन कितना बोझिल, कितने दर्द और दुःखों से भरा है। और वह ठण्डी साँस लेते हुए बोलता है :

"तूने ढेर सारा लिख दिया, शुक्रिया। अब उसे मालूम हो जायेगा कि किन-किन चीज़ों से उसे डरना चाहिए..."

"किसी भी चीज़ से डरना नहीं चाहिए!" मैं झुँझलाकर कहता हूँ, हालाँकि मैं खुद भी कितनी ही चीज़ों से डरता हूँ।

खाँसते हुए वह हँसता है और बोलता है :

"तूरा निरा चुगद है! डरे बिना भला कैसे रहा जाये? साहबों का डर, भगवान का डर और कम चीज़ें हैं डरने की क्या?"

जब उसे अपनी बहन का खत मिलता तो वह लपका हुआ मेरे पास आता। कहता :

"ज़रा जल्दी से पढ़कर सुना तो..."

और निराशाजनक हद तक छोटे तथा बेकार उस ख़त को जिसकी लिखावट को समझना अच्छा-ख़ासा मुश्किल काम होता, वह मुझसे तीन बार पढ़वाकर सुनता।

वह दयालु और नरम स्वभाव का आदमी था। लेकिन स्त्रियों के प्रति उसका रवैया भी वैसा ही था जैसा कि दूसरे लोगों का—अनगढ़ और आदिम। चाहे-अनचाहे इन सम्बन्धों को देखते हुए, जो अक्सर मेरी आँखों के सामने ही विस्मयकारी तथा घृणित तेजी के साथ शुरू से अन्त तक विकसित होते थे, मैं देखता था कि किस तरह सीदोरोव औरत के सामने अपनी कठोर सैनिक जीवन का रोना रोकर उसके हृदय में सहानुभूति जगाता, कैसे इस प्यार भरे झूठ से औरत को नशा चढ़ता और बाद में येर्मोख़िन से अपनी विजय का ज़िक्र करते समय मुँह बनाकर वह इस तरह ज़मीन पर थूकता जैसे उसने कोई कड़वी दवा पी हो। यह देखकर मेरे कलेजे को चोट लगती और मैं गुस्से में भरकर सिपाही से पूछता कि क्यों ये सब औरतों को धोखा देते हैं, उनसे झूठ बोलते हैं और बाद में उनकी खिल्ली उड़ाते हुए उन्हें एक के बाद दूसरे के हाथों में उछालते हैं, और अक्सर उन्हें मारते-पीटते भी हैं?

वह धीमे-धीमे हँसता और बोलता :

“तेरे लिए इन सब बातों की ताक-झाँक करना ठीक नहीं। ये बातें बुरी हैं। सोलहों आना पाप हैं। तू अभी बहुत छोटा है। अभी तेरा समय नहीं आया...”

लेकिन एक दिन मैंने उसे सीधा और साफ़ जवाब देने पर विवश कर दिया। और उसका यह जवाब मैं उम्र भर न भूला।

“तेरी समझ में औरत यह नहीं जानती कि उसे उल्लू बनाया जा रहा है?” आँख मारकर खखारते हुए उसने कहा। “वह इसे खूब अच्छी तरह जानती है। वह खुद चाहती है कि उसे उल्लू बनाया जाये। इस मामले में सभी झूठ बोलते हैं। ऐसा है यह मामला, सभी को शर्म मालूम होती है न! असलियत यह है कि कोई किसी से प्रेम नहीं करता, केवल मजे के लिए यह सब करते हैं! और यह एक बहुत ही शर्मनाक बात है कुछ दिन की कसर और है, बड़ा होने पर तू भी यह सब सीख जायेगा! रात का अँधेरा इसके लिए ज़रूरी है, और अगर दिन हो तब भी किसी अँधेरे कोने की ज़रूरत पड़ती है। इस बात पर भगवान ने आदम और हौवा को स्वर्ग से निकाल दिया, और इसी की वजह से दुनिया में सभी दुःखी हैं...”

यह सब उसने कुछ इतना खुलकर, सच्चे और उदास हृदय से कहा कि उससे एक हद तक मैं उसके इश्कों को बर्दाश्त करने लगा। उसके साथ मैं जितना घुल-मिल गया, उतना येर्मोख़िन के साथ नहीं। येर्मोख़िन से तो मैं घृणा करता था। उसकी नाक में दम करने और उसका मजाक उड़ाने से कभी न चूकता। मेरा तीर निशाने पर बैठता और येर्मोख़िन मेरी जान का दुश्मन बना हुआ, बहुधा अहाते में मेरे पीछे झपटता लेकिन उसका बेढंगापन साथ न देता और मैं साफ़ निकल भागता।

“इसकी मनाई है,” सीदोरोव कहा करता था।

यह वर्जित है, यह तो मैं भी जानता था, लेकिन मानव की सारी मुसीबतों और दुःख-दर्द की जड़ भी वही है, यह बात मेरे गले के नीचे नहीं उतरती थी। यह देखते हुए भी लोग दुःखी हैं, मैं इस पर विश्वास नहीं कर पाता था, क्योंकि उस असाधारण चमक से मैं परिचित था जो प्रेम में पड़े स्त्री-पुरुष की आँखों में दिखाई देती थी। मैं प्रेमी-प्रेमिकाओं की अद्भुत हार्दिकता महसूस कर चुका था। हृदय का यह उत्सव देखना सदा प्रिय लगता था। फिर भी जीवन और भी अधिक बोझिल, और भी अधिक क्रूर होता लग रहा था। लगता था कि जीवन सदा-सदा के लिए उन सम्बन्धों और रूपों में जकड़ा हुआ है जिन्हें मैं आये दिन देख रहा था। जो कुछ हर रोज अटलता के साथ आँखों के सामने आता रहता है, उससे अच्छा भी कुछ हो सकता है, ऐसी सम्भावना का विचार भी नहीं आता था।

लेकिन एक बार सैनिकों के मुँह से मैंने एक ऐसी घटना सुनी जिससे मेरा हृदय बुरी तरह झनझना उठा।

हमारे अहाते के ही एक फ़्लैट में एक कटर रहता था। वह नगर के सबसे अच्छे दर्ज़ी की दुकान पर काम करता था। वह शान्त स्वभाव का बहुत ही भला आदमी था। वह रूसी नहीं था। उसकी पत्नी एक छोटी-सी औरत थी—फ़क़तदम, न कोई बच्चा, न कच्चा, दिन भर क़िताबें पढ़ा करती। शोर-गुल भरे अहाते में शराबियों से भरे घरों में वे दोनों अदृश्य और शान्त जीवन बिता रहे थे। वे कभी किसी को अपने घर नहीं बुलाते थे, न खुद कहीं जाते थे, एक रविवार को छोड़कर जब थिएटर देखने के लिए वे बाहर निकलते।

पति तड़के ही काम पर चला जाता, और गयी रात लौटता। उसकी पत्नी जो देखने में चौदह-पन्द्रह साल की लड़की मालूम होती थी, सप्ताह में दो बार दोपहर के समय पुस्तकालय जाती। छोटे-छोटे डग भरती, डगमगाती हुई, मानो लँगड़ाती हो, स्कूली लड़कियों जैसी सीधी-सादी, प्यारी, नई, साफ़, छोटे-छोटे हाथों में दस्ताने पहने और पुस्तकों का बण्डल उठाए जब वह गली में गुजरती तो मैं उसे देखा करता। चिड़िया-सा उसका चेहरा था, और चपल आँखें। वह सारी इतनी सुन्दर थी जैसी ताक पर रखी जानेवाली चीनी की गुड़िया। सैनिकों का कहना था कि उसके दाहिने बाजू की एक पसली ग़ायब है, इसलिये चलते समय वह इस अजीब ढंग से डगमगाती है। लेकिन मुझे यह प्रिय लगता और वह हमारे अहाते में रहनेवाली अन्य महिलाओं-अफसरों की बीवियों से एकदम भिन्न लगती। अपनी ऊँची आवाज़, रंग-बिरंगे कपड़ों के बावजूद ये स्त्रियाँ घिसी हुई-सी लगती थीं मानो वे अँधेरी कोठरियों में बेकार की चीज़ों के बीच देर तक भूली-बिसरी पड़ी हों।

अहाते में कटर की छोटी-सी पत्नी नीमपागल मानी जाती थी। लोगों का कहना था कि क़िताबों में उसने अपना दिमाग खो दिया है, और वह इस लायक भी नहीं रही कि घर का कोई काम कर सके। उसका पति ही खुद बाज़ार से सौदा-सुलफ़ लाता है, खुद बावर्चिन को खाने का आदेश देता है। यह बावर्चिन भी कोई ग़ैर-रूसी थी—भारी-भरकम और चिड़चिड़ी। उसकी एक आँख लाल थी जो बराबर बहती थी और दूसरी आँख की जगह पतली, गुलाबी पट्टी जैसा छेद ही था। घर की मालकिन का यह हाल था कि वह—पड़ोसियों के शब्दों में—सुअर की मांस और गोमांस तक में तमीज नहीं कर सकती थी। एक दिन वह बाज़ार गयी और गाजर के बजाय मूली ख़रीदकर खूब बेवकूफ़ बनी!

तौबा, तौबा, ज़रा सोचो तो भला !

वे तीनों अहाते में पराए-से लगते थे मानो यूँ ही, संयोगवश, मुर्ग़ियों इस बड़े दड़बे में आ टपके हों, आकाश में उड़ने वाले उन पक्षियों की भाँति जो बर्फ़ीली हवा के थपेड़ों से बचने के लिए रोशनदान के रास्ते लोगों के किसी गन्दे और दमघोट निवास में घुसकर शरण लेते हैं।

और अचानक अरदलियों के मुँह से मैंने सुना कि कटर की इस छोटी-सी पत्नी के साथ उनके अफसर एक बहुत ही कमीना और बेहूदा खेल खेल रहे हैं : बिला नागा क़रीब-क़रीब हर रोज उनमें से कोई उसके नाम परवाना भेजता, अपने प्रेम और हृदय की खुदर-पुदर का राग अलापता, उसकी खूबसूरती की तारीफ़ के पुल बाँधता। ज़वाब में वह लिखती कि मुझे बख़्शो। इस बात पर वह बहुत दुःख प्रकट करती कि उसकी वजह से उनके हृदय की यह हालत हुई। और कामना करती कि भगवान उन्हें शीघ्र ही इस रोग से छुटकारा दिलाए। उसका ऐसा पत्र पाते ही सब अफ़सर जमा होकर उसे पढ़ते, जी भरकर हँसते, और फिर सब मिलकर नया पत्र लिखते जिसपर उनमें से कोई एक दस्तख़त कर देता।

यह सब बताते समय अरदली भी हँसने और स्त्री की टाँग खींचने में पीछे न रहते।

"यह लँगड़ी भी एकदम उल्लू है!" येर्मोख़िन गहरी गूँजती हुई आवाज़ में कहता और सीदोरोव धीमी आवाज़ में हामी भरता :

"हरेक लुगाई चाहती है कि उसे कोई उल्लू बनाए। वह सब जानती है..."

मुझे यक़ीन नहीं हुआ कि कटर की पत्नी जानती है कि अफ़सर उसे उल्लू बना रहे हैं। और मैंने उसे तुरन्त खबर देने का निश्चय कर लिया। एक दिन, यह देखकर कि बावर्चिन नीचे तहखाने में गयी हुई है, पीछे के जीने से लपककर मैं उसके घर में चढ़ गया। रसोईघर में मैंने प्रवेश किया, वह खाली था। फिर कमरों में गया। वहाँ कटर की पत्नी दिखाई पड़ी। एक हाथ में वजनदार सुनहरा प्याला और दूसरे में एक खुली पुस्तक लिये वह मेज़ के पास बैठी थी। डर के मारे उसने पुस्तक अपनी छाती से सटा ली, और धीमे स्वर में चीख उठी :

"कौन है? देखो तो, आगुस्ता! कौन हो तुम?"

अटपटे से कुछ शब्द तेजी से मेरे मुँह से निकले और मुझे लगा कि प्याला या क़िताब दोनों में से कोई एक चीज़ अभी मेरे सिर से आकर टकराएगी। बैंगनी रंग की बड़ी-सी आरामकुर्सी पर वह बैठी थी, आसमानी रंग का लबादा उसने पहन रखा था जिसमें नीचे झालर और गले तथा कलाइयों पर लेस लगी थी, और सुनहरे रंग के घुँघराले बाल उसके कन्धों पर लहरा रहे थे। ऐसा मालूम होता था जैसे गिरजे के राजद्वार की मेहराब के फ़रिश्तों में से एक यहाँ उतर आया है। आरामकुर्सी की टेक से चिपककर वह गोल-मटोल आँखों से नज़र गड़ाकर मेरी ओर देखने लगी। पहले तो उसकी आँखों में गुस्से की लपक थी, फिर उस पर अचरच और मुस्कराहट नज़र आयी।

उसे सब कुछ बताने के बाद मैं साहस खोकर दरवाज़े की ओर मुड़ा।

"जरा ठहरो!" वह चिल्लाई।

प्याला उसने ट्रे में टिका दिया, क़िताब को मेज़ पर पटककर उसने हथेलियों

को मिलाया और बड़े आदमी की भरपूर आवाज़ में बोली :

"तुम भी कितने अजीब लड़के हो... जरा इधर आओ!"

सहमा-सा मैं उसकी ओर बढ़ा। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया, और छोटी ठण्डी उँगलियों से उसे थपथपाते हुए पूछा :

"क्यों, मुझे यह सब बताने के लिए किसी और ने तो तुम्हें नहीं भेजा? अच्छा-अच्छा, तुम्हारी बात का मैं यक़ीन करती हूँ, देखती हूँ कि तुम खुद अपने मन से यहाँ आये हो..."

उसने मेरा हाथ छोड़कर अपनी आँखों को बन्द किया और धीमी, खिंची हुई आवाज़ में बोली :

"तो ये मुँहजले फौजी मेरे बारे में इस तरह की वाही-तबाही बकते हैं!"

"आप यह जगह छोड़ क्यों नहीं देतीं, यहाँ से कहीं और चली जाइए," बड़ों की भाँति मैंने सलाह दी।

"क्यों?"

"वे आपको तंग कर मारेंगे।"

वह बड़े ही सुहावने ढंग से हँसी, फिर पूछा :

"क्या तुम पढ़ना-लिखना जानते हो? तुम्हें पुस्तकें पढ़ने का चाव है?"

"मुझे वैसे ही फुरसत नहीं मिलती।"

"पढ़ने का चाव हो तो फुरसत भी निकाल ही लोगे। अच्छा, तो अब जाओ, धन्यवाद!"

उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। अँगूठे और उँगली के बीच में चाँदी का एक सिक्का था। इस ठण्डी चीज़ को लेने में मुझे शर्म आयी, लेकिन मुझसे इंकार करते नहीं बना और लौटते समय मैंने उस सिक्के को जीने के खम्भे पर छोड़ दिया।

गहरी और सर्वथा नई छाप लेकर मैं इस स्त्री के यहाँ से लौटा। मेरे सामने मानो नयी उषा का उदय हुआ हो। कई दिन तक मुझ पर उल्लास सवार रहा और उस खुले-से कमरे तथा फ़रिश्ते की भाँति आसमानी लबादा पहने कटर की पत्नी की याद में मैं झूमता रहा। वहाँ की हर चीज़ में एक अनदेखा सौन्दर्य था। उसके पाँव के नीचे गुदगुदा सुनहरा कालीन बिछा था और जाड़ों का ठिठुरा हुआ दिन, मानो उसके स्पर्श से अपने को गरमाने के लिए, रुपहली खिड़कियों में से भीतर झाँक रहा था।

मेरा मन उसे एक बार और देखने के लिए ललक रहा था। क़िताब माँगने के बहाने अगर मैं उसके पास जाऊँ तो कैसा रहे?

मैं गया, और उसे ठीक उसी जगह पर बैठे देखा। इस बार भी वह अपने हाथों में एक क़िताब लिये थी। लेकिन इस बार उसके चेहरे पर लाल-से रंग का एक रुमाल बँधा था, और उसकी एक आँख सूजी हुई थी। उसने मुझे काली ज़िल्द वाली एक

क़िताब उठाकर दे दी और बुदबुदाकर कुछ कहा जो मैं समझ नहीं सका। भारी हृदय से मैं पुस्तक लेकर चला आया। पुस्तक में से क्रेयोसोट और अनीसीड दवा की सुगन्ध आ रही थी। घर लौटने पर मैंने पुस्तक को एक क़ागज़ और साफ़ क़मीज़ में लपेटा और ऊपर जाकर अटारी में छिपा दिया। मुझे डर था कि अगर पुस्तक मालिकों के हाथ पड़ गयी तो वे उसे नष्ट कर डालेंगे।

मेरे मालिक 'नीवा' पत्रिका मँगाते थे, यह इसलिये कि इसमें पोशाकों के नमूने छपते थे और ग्राहकों को मुफ़्त उपहार मिलते थे। पत्रिका को वे पढ़ते कभी नहीं थे, केवल चित्रों को देखते और इसके बाद, सोने के कमरे में, कपड़े रखने की अलमारी के ऊपर उसे डाल देते। साल पूरा होने पर वे उसकी ज़िल्द बँधवा लेते और पलंग के नीचे छिपाकर रख देते जहाँ 'चित्र-जगत' की तीन जिल्दें रखी हुई थीं। जब कभी मैं सोने के कमरे का फ़र्श धोता तो गन्दा पानी क़िताबों के नीचे चला जाता। इनके अलावा मेरा मालिक 'रूसी कोरियर' समाचारपत्र भी मँगाता था और साँझ के समय उसे पढ़ते हुए बड़बड़ाता :

"शैतान जाने, यह सब क्यों लिखते हैं! निरी बोरियत है..."

शनिवार के दिन कपड़े सुखाने के लिए जब मैं ऊपर अटारी में गया तो मुझे क़िताब का ध्यान आया। मैंने उसे बाहर निकाला, उसका कागज खोला और शुरू की पंक्ति पर नज़र डाली :

"इंसानों की भाँति घरों की भी अपनी-अपनी शक्लें होती है।" इसकी सच्चाई ने मुझे स्तब्ध कर दिया। मैंने आगे पढ़ना शुरू किया और रोशनदान से सटा उस समय तक पढ़ता रहा जब तक कि ठण्ड के मारे वहाँ बैठे रहना असम्भव न हो गया। साँझ को जब मेरे मालिक गिरजे चले गये तो पुस्तक के साथ मैंने रसोईघर में अड्डा जमाया और पतझड़ के पत्तों की भाँति पीले पड़े उसके जीर्ण पन्नों में इतना डूब गया कि कुछ सुध न रही। उन्होंने मुझे दूसरी ही दुनिया में पहुँचा दिया, नए नामों और नए नाते-रिश्तों की दुनिया में, जिसमें नेक नायक भी थे और खल नायक भी—इस दुनिया के उन सभी लोगों से भिन्न जिन्हें मैं जानता-पहचानता और अपने चारों ओर देखता था। यह द-मोन्तेपिन का लिखा उपन्यास था। उसके सभी उपन्यासों की तरह वह भी लंबा तथा पात्रों और घटनाओं से भरे अज़ीब, द्रुत-प्रवाही जीवन का चित्र था। उपन्यास में हर चीज़ आश्चर्यजनक रूप से सीधी-सादी और स्पष्ट थी मानो पंक्तियों के पीछे कोई रोशनी छिपी हो जो हर बुरे और भले पहलू को उजागर करती, प्रेम और घृणा करने में मदद देती तथा घने जाल में फँसे लोगों के भाग्यों के उतार-चढ़ाव पर अपलक नज़र रखने को बाध्य करती थी। कुछ पात्रों को सहारा देने के लिए जी ललक उठता; और कुछ के प्रति घृणा होती, जी चाहता कि उन्हें रोका जाये। यह भूल जाता कि यह सारा जीवन, जो इतने अप्रत्याशित रूप में आँखों के सामने प्रकट हुआ है, केवल पुस्तक

के पन्नों तक ही सीमित है, क़ागज़ के पन्ने से बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। घटनाओं के उतार-चढ़ाव में सब कुछ भूल जाता, एक पन्ने पर हृदय खुशी से नाच उठता और दूसरे पर निराशा के बादल छा जाते।

पढ़ने में मैं इस हद तक पूर्णतया डूब गया कि जब दरवाज़े की घण्टी बजी तो एकाएक मैं समझ नहीं सका कि उसे कौन बजा रहा है और किसलिये।

मोमबत्ती क़रीब-क़रीब सारी जल चुकी थी और मोमबत्तीदान में जिसे मैंने आज सुबह ही चमकाया था, पिघले हुए मोम की परत जमी हुई थी। देव-प्रतिमा का दीया जिसे सदा चेतन रखना मेरा काम था, दीवट से खिसककर बुझ गया था। अपने अपराधों के चिह्नों को छिपाने के लिए मैंने रसोईघर में लपक-झपक शुरू की, क़िताब को मैंने अलावघर के नीचे खिसका दिया, और देव-प्रतिमा के दीये को ठीक करने लगा।

"बहरा हो गया क्या? घण्टी की आवाज़ सुनाई नहीं देती?" कमरों में से भागकर आते हुए आया चिल्लाई।

मैं सदर दरवाज़े की ओर लपका।

"क्या सो रहा था?" मालिक ने कड़े स्वर में कहा। उसकी पत्नी मुश्किल से सीढ़ी पर चढ़ते हुए चिचियाई के मेरी वजह से उसे ठण्ड ने जकड़ लिया है। बुढ़िया ने भी लगे हाथ डाँटना-डपटना शुरू कर दिया। रसोईघर में पाँव रखते ही जली हुई मोमबत्ती पर उसकी नज़र पड़ी और वह पूछ-ताछ करने लगी कि मैं क्या कर रहा था।

मैं चुप था, मानो कहीं ऊँचाई से गिर पड़ा हूँ और भय के मारे मेरी जान सूख गयी कि क़िताब बुढ़िया के हाथों में पड़ जायेगी। और वह चिल्ला रही थी कि मैं एक दिन सारा घर जलाकर राख कर दूँगा। मेरा मालिक और उसकी पत्नी खाना खाने आये। बुढ़िया ने मेरी शिकायत की :

"देखो न, इसने सारी मोमबत्ती जला डाली। घर भी जला डालेगा..."

खाना खाते समय मुँह के साथ-साथ उनकी जबान भी चलती रही और मुझे भला-बुरा कहने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ी। जाने-अनज़ाने मेरे सभी गुनाहों का उन्होंने ज़िक्र किया और मुझे चेताया कि मेरा अंजाम बहुत बुरा होगा। लेकिन मैं जानता था कि उनकी सारी डाँट-फटकार के पीछे न तो कोई बुरी भावना है और न भली, बल्कि यह सब वे अपनी ऊब को डुबोने के लिए बोल रहे हैं। और यह देखकर मुझे बड़ा अजीब लगा कि पुस्तक के पात्रों के मुकाबले में वे कितने तुच्छ और बेहूदा मालूम होते हैं।

खाना खाकर वे बोझिल हो गये और थके-थके सोने के लिए चल दिए। बूढ़ी मालकिन, झुँझलाहट भरी शिकायतों से कुछ देर तक भगवान की नाक में दम करने के बाद अलावघर पर चढ़कर चित्त हो गयी। तब मैं उठा, अलावघर के नीचे से क़िताब

निकाली और खिड़की के पास आया। उजली रात थी, आकाश में पूरा चाँद साफ़ चमक रहा था, लेकिन पुस्तक के छोटे-छोटे अक्षरों को पढ़ना मुश्किल था। हृदय में पढ़ने की ललक इतनी ज़ोरदार थी कि उसे दबा न सका। बरतनों के खाने में मैंने ताम्बे का एक पतीला निकाला और चाँद की किरणों का उस पर जो अक्स पड़ा, उससे पुस्तक के पन्नों को चमकाने की कोशिश की। लेकिन चमकने के बजाये पन्ने और भी धुँधले दिखाई देने लगे। तब मैं कोने में रखी बेंच पर खड़ा हो गया और देव-प्रतिमा के दीये की रोशनी में पढ़ने लगा। जब थकान के मारे टाँगें जवाब देने लगीं तो मैं वहीं बेंच पर पड़कर सो गया। बूढ़ी मालकिन की चिल्लाहट और घूँसों ने मुझे जगा दिया। केवल रात का लबादा पहने, नंगे पाँव, वह वहाँ खड़ी गुस्से में अपनी लाल बालोंवाला सिर झटक रही थी। उसका चेहरा गुस्से से तमतमा रहा था, मेरी पुस्तक अपने हाथ में लिये उसी से मेरे कन्धों पर प्रहार कर रही थी, जिनसे बड़ा दर्द होता था। अलावघर के बगल में बने सोने के तख़्ते से वीक्तर हूक रहा था :

"ओहो, यह चिल्लाना बन्द करो, माँ! जीना हराम कर रखा है..."

मैं सोच रहा था कि अब क़िताब की खैर नहीं, बिना फाड़े बुढ़िया दम न लेगी।

सुबह के चाय के समय मेरी पेशी हुई।

"यह क़िताब कहाँ से लाया?" मालिक ने कड़े स्वर में सवाल किया।

स्त्रियाँ एक-दूसरी को टोकते हुए चिल्ला रही थीं। वीक्तर शक में भरा पुस्तक सूँघ रहा था और कह रहा था :

"इसमें से तो इत्र की गन्ध आती है, खुदा की क़सम..."

यह जानकर कि पुस्तक पादरी की है वे सब पुस्तक को उलट-पुलटकर देखने लगे और उपन्यास पढ़नेवाले पादरी पर झुँझलाहट तथा अचरज उतारने लगे। इससे उनका गुस्सा कुछ हल्का पड़ा, हालाँकि मालिक मुझे फिर भी देर तक समझाता रहा कि पुस्तकें पढ़ना नुकसानदेह और खतरनाक है। बोला :

"यही क़िताबें पढ़ने वालों ने तो रेल की पटरियाँ उड़ा दीं, लोगों को मारना चाहते थे..."

"तुम पागल तो नहीं हो गये!" भय और गुस्से से भरी आवाज़ में मालकिन पति पर चिल्लाई। "क्या कह रहे हो इसे?"

मोन्तेपिन की पुस्तक लेकर मैं सैनिक के पास पहुँचा और जो कुछ बीता था, सब उसे कह सुनाया। बिना कुछ कहे सीदोरोव ने पुस्तक को अपने हाथ में लिया, छोटा-सा सन्दूक़ खोलकर उसने एक साफ़ तौलिया निकाला, पुस्तक को उसमें लपेटा और फिर उसे सन्दूक़ में छिपा दिया।

"उनकी बात मत सुन। यहाँ आकर पढ़ लिया कर। मैं किसी से नहीं कहूँगा," उसने कहा, "और अगर तू आये और मैं उस समय नहीं मिलूँ तो कुंजी देव-प्रतिमा

के पीछे लटकी होती है। सन्दूक़ खोल और पढ़..."

पुस्तक के प्रति मालिकों के इस रवैये ने मेरी आँखों में एकदम उसे गम्भीर और भयोत्पादक रहस्य की ऊँचाई पर उठा दिया। यह तथ्य कि "पुस्तकें पढ़ने वाले" कुछ लोगों ने किसी की हत्या करने के लिए रेल की पटरियाँ उड़ा दी थीं, मुझे विशेष दिलचस्प नहीं मालूम हुआ, लेकिन मुझे पाप-स्वीकारोक्ति के दौरान किया गया पादरी का सवाल याद आया। न ही मैं उस छात्र को भूला था जिसे मैंने निचले तल्ले के मकान में दो स्त्रियों के सामने पुस्तक पढ़ते देखा था, स्मूरी की याद भी मेरे दिमाग में ताज़ी थी जो "सही ढंग" की पुस्तकों का ज़िक्र किया करता था। साथ ही काली बुरी पस्तकें पढ़ने वाले उन फ्रीमैसनों की भी मुझे याद हो आयी थी जिनका ज़िक्र करते हुए नाना ने मुझे बताया था :

"और उन दिनों जब ज़ार अलेक्सान्द्र पाब्लोविच ईश्वर प्रदत्त शासन की बागडोर अपने हाथों में सम्भाले थे, ऊँचे कुलीनों ने साजिश का ऐसा जाल बिछाया कि रूस की समूची जनता रोम के पोप के चंगुल में फँस जाती, काफ़िर कहीं के! लेकिन भला हो जनरल आराक्चेयेव का, ऐन वक़्त पर आकर उसने सब को रंगे हाथ पकड़ लिया। बस, सबका पुलिन्दा बाँधकर साइबेरिया के लिए रवाना कर दिया। गल-सड़कर वे भी उसी तरह खत्म हो गये जैसे कि हर सड़ी-गली चीज़ खत्म हो जाती है..."

'अम्बराकुलम में अगर तारे छिटके दिखाई दें' भी मुझे याद था, न ही मैं 'गेरवासी' और उन गम्भीर तथा खिल्ली भरे शब्दों को भूला था :

"ऐ अज्ञानियों, हमारी लीलाओं को जानने को तुम उत्सुक, निष्काम नेत्र तुम्हारे देख न पायेंगे उन्हें कभी!"

मुझे ऐसा मालूम हो रहा था मानो किसी महान रहस्य का भेद मेरी आँखों के सामने खुलने वाला है और मैं इस तरह घूमता मानो मेरे सिर पर कोई भूत सवार हो। मैं पुस्तक को ज़ल्दी से ज़ल्दी खत्म करना चाहता था। साथ ही यह भय भी मेरे हृदय को कचोटता रहता कि सैनिक के पास वह खो जायेगी या वह उसे किसी न किसी तरह खराब कर देगा। तब मैं कटर की पत्नी को क्या कहूँगा?

बूढ़ी मालकिन की नज़र सदा मेरा पीछा करती और इस बात की ताक-झाँक में रहती कि कहीं मैं अरदली के पास न खिसक जाऊँ। वह मुझे बराबर डाँटती रहती :

"क़िताबचाटू! जिसे बदमाशी सीखनी हो वह बस क़िताबें पढ़ना शुरू कर दे। उस चुचमुँही को देखो न जो हर घड़ी क़िताबों में ही डूबी रहती है, क़िताबों के पीछे जा अब घर के लिए सौदा-सुलफ़ लेने तक नहीं जा सकती। बस, अफ़सरों से चोंच लड़ाया करती है। क्या मैं नहीं जानती कि दिन-दहाड़े वे उसके यहाँ जाते हैं!"

मैं उतावला हो उठा कि चिल्लाकर बुढ़िया का मुँह बन्द कर दूँ :

"यह सफ़ेद झूठ है! वह अफ़सरों से कतई चोचें नहीं लड़ाती!"

लेकिन कटर की पत्नी की हिमायत में मैं जबान खोलने का साहस नहीं कर सका। मुझे डर था कि कहीं बुढ़िया यह न भाँप ले कि पुस्तक मैं वहीं से लाया हूँ।

कई दिन तक मैं बेहद परेशान रहा। मैं खोया-खोया-सा रहता और चिन्ता भरी उदासी मुझे खाती रहती। रात को नींद न आती और हर घड़ी यही चिन्ता सताती कि द-मोन्तेपिन की अब खैर नहीं। अन्ततः एक दिन कटर की पत्नी की बावर्चिन ने मुझे अहाते में रोका और बोली :

"वह क़िताब लौटा दो!"

भोजन के बाद, उस समय जब मेरे मालिक झपकी ले रहे थे, मैं कटर की पत्नी के पास पहुँचा, परेशान और बुझा हुआ सा दिल लिये।

इस समय भी वह वैसी ही थी जैसी मैंने उसे पहली बार देखा था, सिवा इसके कि कपड़े दूसरे पहने थी। सलेटी रंग का घाघरा, काले रंग की मखमली चोली, और खुले गले में फ़ीरोज़े का क्रॉस। एकदम मादा बुलफ़िंच की याद दिलाती थी।

जब मैंने उसे बताया कि मुझे पुस्तक खत्म करने का अवसर नहीं मिला और यह कि मेरे पढ़ने पर रोक लगा दी गयी है तो इस बात की चोट और उसे एक बार फिर देखने की खुशी से मेरी आँखें भर आयीं।

"थू, कितने गँवार लोग हैं!" अपनी कमान-सी भौंहों को चढ़ाते हुए उसने कहा। "शक्ल से तो तुम्हारा मालिक बहुत सुन्दर लगता है। लेकिन तुम इतना परेशान मत हो, मैं कोई उपाय सोचूँगी। मैं उसे एक पत्र लिख दूँगी।"

इससे मेरे होश फ़ाख़्ता हो गये। मैंने उसे बताया कि मालिकों को असल बात मालूम नहीं है। मैंने उनसे झूठमूठ कह दिया है कि पुस्तक पादरी से लाया हूँ।

"नहीं, उन्हें पत्र नहीं लिखना," मैंने बिनती के स्वर में कहा, "वे केवल आपकी हँसी उड़ायेंगे और भी उलटी-सीधी सुनायेंगे। अहाते में सभी आपसे चिढ़ते हैं, आपका मजाक उड़ाते हैं, और कहते हैं कि आप बेवकूफ़ हैं और आपकी एक पसली ग़ायब है..."

एक ही सपाटे में मैं यह सब कह गया और कहने के तुरन्त बाद सकपकाकर मैंने अनुभव किया कि मेरे शब्दों से उसके हृदय को चोट पहुँची होगी। उसने अपना ऊपर का होंठ दाँतों से भींचा और हाथ अपने कूल्हे से इस तरह टकराया मानो वह घोड़े पर सवार हो। मैंने अपना सिर लटका लिया, मैं धरती में समा जाना चाहता था, लेकिन कटर की पत्नी धम्म से कुर्सी पर बैठ गयी और खूब खिलखिलाकर हँसने लगी।

"ओह, कैसी मूर्खता है यह! लेकिन मैं क्या कर सकती हूँ?" मेरी ओर एकटक देखते हुए उसने अपने आप से ही पूछा। फिर एक लम्बी साँस छोड़ते हुए बोली, "तुम भी अज़ीब लड़के हो, बहुत ही अजीब!.."

उसके पास ही, आयीने में मेरा अक्स पड़ रहा था : ऊँचे कल्ले, चौड़ी नाक से लैस चौखटा, माथे पर चोट का बड़ा-सा निशान और बेतरतीबी से हर तरफ बिखरे हुए बिना कटे बाल। क्या "बहुत ही अजीब लड़का" ऐसा ही होता है? यह "अज़ीब लड़का" नन्ही-मुन्नी चीनी की सुन्दर गुड़िया से बिल्कुल भी नहीं मिलता...

"पिछली बार मैंने तुम्हें पैसा दिया था। उसे तुम यहीं छोड़ गये, क्यों?"

"मुझे उसकी ज़रूरत नहीं..."

उसने एक साँस भरी।

"अच्छा, तो क्या किया जाये! अगर मालिक तुम्हें पढ़ने की इजाज़त दें तो आना, मैं तुम्हें क़िताबें दूँगी..."

आयीने के सामने ताक पर तीन पुस्तकें रखी थीं। मैंने जो अभी लौटायी थी, वह सबसे मोटी थी। उदास आँखों से मैंने उसे देखा। कटर की पत्नी ने अपना छोटा-सा गुलाबी हाथ बढ़ाया और बोली :

"अच्छा, अब जाओ!"

मैंने बहुत सम्हलकर उसके हाथ का स्पर्श किया और तेजी से लौट आया।

उसके बारे में लोग शायद ठीक ही कहते हैं कि वह कुछ नहीं जानती। बीस कोपेक के सिक्के को उसने पैसा कहा—बिल्कुल छोटे बच्चे की तरह।

लेकिन उसका यह अल्हड़पन मुझे अच्छा लगा...

9

पुस्तकें पढ़ने की अपनी इस अचानक धुन के कारण मुझे क्या कुछ नहीं सहना पड़ा : अपमान के कड़वे घूँट मैंने पिये, हृदय में लगी चोटों से मैं कराह उठा। इस सबकी जब मैं याद करता हूँ तो दुःख भी होता है और हँसी भी आती है।

कटर की पत्नी की पुस्तकें बेहद कीमती लगती थीं, और इस भय से कि बूढ़ी मालकिन उन्हें जला डालेगी मैंने उससे पुस्तकें लेने का ख़याल तक अपने दिमाग़ से निकाल दिया और उस दुकान से जहाँ नाश्ते के लिए मैं पावरोटी ख़रीदने जाता था, रंग-बिरंगी छोटी-छोटी पुस्तकें लाना शुरू कर दिया।

दुकानदार बहुत बदनुमा लड़का था—मोटे होंठ, जब देखो तब पसीने में लथपथ, फोड़े-फुंसियों के दागों और नश्तरों से कटा-फटा थलथल और लेई-सा चेहरा, पीलिया आँखें, और बादी-फूले हाथों की छोटी, भोंडी उँगलियाँ। साँझ होते ही हमारे मोहल्ले के छोकरों और छिछोरी लड़कियों का उस दुकान पर जमघट लगता। मेरे मालिक का भाई भी बीयर पीने और ताश खेलने के लिए लगभग हर साँझ वहाँ पहुँचता। साँझ के खाने का समय होने पर मुझे अक्सर दौड़ाया जाता कि लपककर उसे दुकान से बुला ला।

एक से अधिक बार मैंने दुकान के पीछे एक छोटे-से कमरे में दुकानदार की लाल गालों वाली और गोबर दिमाग बीवी को वीक्तर या और किसी छोकरे के घुटनों पर बैठे देखा था। लगता था कि दुकानदार बुरा नहीं मानता। न ही उसे उस समय बुरा मालूम होता जब उसकी बहन, जो ग्राहकों को निबटाने में उसका हाथ बँटाती थी, सैनिकों और गायकों और अन्य सभी के साथ जो जरा भी इशारा करते, चूमा-चाटी पर उतर आती। दुकान में बहुत ही कम बिक्री का सामान दिखाई देता। पूछने पर मालिक बताता कि अभी नया-नया ही काम शुरू किया है और दुकान का ढर्रा बैठाने के लिए उसे अभी तक समय नहीं मिला, हालाँकि दुकान का कारोबार उसने पतझड़ के दिनों में शुरू किया था। वह अपने ग्राहकों को गन्दी तस्वीरें दिखाता और हर किसी को, जो भी इसकी इच्छा प्रकट करता, गन्दी तुकबन्दियों की नकल करने देता।

प्रति पुस्तक एक कोपेक किराए के हिसाब से मैंने मीशा येव्स्तिग्नेयेव की पुस्तकें पढ़ डालीं जिनमें कोई जान नहीं थी। यह महंगा सौदा था। फिर इन पुस्तकों के पढ़ने में कतई मजा नहीं आता था। 'गुआक अथवा अदम्य वफादरी', 'वेनिस का फ्रान्तिसल', कबरदीनों के साथ रूसियों का युद्ध, या 'तुर्क सुन्दरी जो अपने पति के ताबूत पर मर गयी'—इस तरह की क़िताबें मुझे जरा भी अच्छी न लगती और उन्हें पढ़कर मैं अक्सर झुँझला उठता। ऐसा मालूम होता, मानो ये पुस्तकें मुझे बेवकूफ़ समझकर मेरी खिल्ली उड़ा रही हों। निहायत भोंडी भाषा और एकदम बेसिर-पैर की असम्भव बातें इनमें भरी थीं।

'स्त्रेल्त्सी', 'यूरी मिलोस्लाव्स्की', 'रहस्यमय सन्त' और 'तातार घुड़सवार यापाँचा'—ऐसी पुस्तकें मैं अधिक पसन्द करता, कम से कम मेरे हृदय पर वे कुछ तो छाप छोड़तीं। लेकिन सबसे ज़्यादा खुशी मुझे होती सन्तों की जीवनियाँ पढ़कर। इनमें गम्भीरता होती, इनकी बातों पर यक़ीन करने को जी चाहता, और कभी-कभी तो वे हृदय में गहरी उथल-पुथल मचा देतीं। न जाने क्यों, महान सन्तों के बारे में जब मैं पढ़ता तो मुझे 'बहुत खूब' का ध्यान हो आता, स्त्री सन्तों के बारे में पढ़ा तो नानी का चित्र आँखों के सामने घूमने लगता और ऊँचे पादरियों के बारे में पढ़कर मुझे उन क्षणों की याद हो आती जिनमें कि नाना अपने श्रेष्ठतम रूप में दिखाई देते थे।

पुस्तकें पढ़ने के लिए मैं ऊपर अटारी की शरण लेता या फिर सायबान में उस समय पढ़ता जब मैं वहाँ लकड़ियाँ चीरने जाता। दोनों ही जगहें समान रूप से ठण्डी और तकलीफदेह थीं। कभी-कभी अगर पुस्तक ख़ास तौर से दिलचस्प होती या किसी वजह से मैं खुद उसे जल्दी से खत्म करना चाहता तो मैं रात को उठ बैठता और मोमबत्ती की रोशनी में पढ़ता। लेकिन बूढ़ी मालकिन की नज़रों से यह छिपा न रहा कि रात में मोमबत्तियाँ छोटी हो जाती हैं। नतीज़ा यह कि अब वह मोमबत्तियों को लकड़ी की खपची से नापती और खपची को कहीं छिपाकर रख देती। इस खपची को

मैं अक्सर खोज निकालता और तोड़कर उसे भी जली हुई मोमबत्ती की लम्बाई का बना देता। जब कभी भी मैं ऐसा करने में चूक जाता और सुबह उठने पर वह देखती कि खपची और मोमबत्ती की लम्बाई में अन्तर है, तो रसोईघर में इस बुरी तरह शोर मचाती कि सारे घर को सिर पर उठा लेती। एक दिन उसकी आवाज़ सुनकर वीक्तर झुँझला उठा और उसने तख़्ते पर से चिल्लाकर कहा :

"यह टाँय-टाँय बन्द करो, माँ, जीना हराम कर रखा है! वह मोमबत्तियाँ ज़रूर जलाता है, न जलाये तो दुकान से लायी हुई पुस्तकें कैसे पढ़े! मुझे मालूम है! जरा अटारी पर जाकर देखो तो..."

बुढ़िया अटारी की ओर लपकी। एक पुस्तक उसके हाथ लगी जिसे उसने चीर-चीर कर दिया।

कहने की ज़रूरत नहीं कि यह एक आघात था, लेकिन इसने पुस्तकें पढ़ने की मेरी लगन को और भी तेज कर दिया। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं था कि चाहे कोई सन्त ही क्यों न इस घर में चला आये, मेरे मालिक लोग उसे भी सबक पढ़ाना और उसे अपने मनचीते साँचे में ढालना शुरू कर देंगे। और यह वे अपनी ऊब को डुबोने के लिए करेंगे। अगर उन्हें कभी चीखना-चिल्लाना, दूसरे लोगों पर फतवे कसना और उनका मजाक उड़ाना छोड़ देना पड़े तो वे गूँगे हो जायें, बोलने के लिए उनके पास कुछ न रहे। अपने आपे की सुध रखने के लिए ज़रूरी है कि आदमी दूसरों के प्रति कोई रवैया अपनाए। मेरे मालिक लोग अन्य लोगों के प्रति केवल एक ही रवैया जानते थे—सिखाने वालों और निन्दा करने वालों का रवैया। अगर कोई अपने आपको उनके साँचे में ढालने की कोशिश करता तो वे इसके लिए भी उसे आड़े हाथों लेने से न चूकते। यह उनकी घुट्टी में मिला हुआ था।

पढ़ने के लिए मुझे नित्य नए पैंतरे बदलने पड़ते। बूढ़ी मालकिन कई बार मेरी पुस्तकें फाड़ चुकी थी और अचानक मैं दुकानदार का कर्ज़दार हो गया—पूरे सैंतालीस कोपेक की भारी रकम का बोझ मेरे सिर पर लदा था। दुकानदार तुरन्त अदायगी के लिए तक़ाज़ा करता और धमकी देता कि पावरोटी ख़रीदने के लिए जब मैं मालिकों के पैसे लेकर आऊँगा तो वह उनमें से काट लेगा।

"तब क्या होगा?" वह मुझे कोंचते हुए पूछता था।

उससे मुझे इतनी घिन मालूम होती कि मैं बरदाश्त न कर पाता। शायद उसने यह भाँप लिया और दुनिया भर की धमकियाँ देकर मुझे सताने में वह ख़ास मजा लेता। मेरे दुकान में पाँव रखते ही उसके नोंचे-खरोंचे चेहरे पर मुस्कराहट का लेप चढ़ जाता।

"क्यों, मेरा कर्ज़ा लाया?" वह धीमे स्वर में कहता।

"नहीं।"

यह उसे डराता, वह अपनी भौंहें चढ़ा लेता।

"नहीं? तो क्या कचहरी में तेरी शिकायत करूँ? ताकि तेरी नालिश हो जाये और तुझे हवालात की सैर करनी पड़े?"

पैसा पाने का कोई रास्ता नहीं था। जो पगार मुझे मिलती थी, वह नाना के हवाले कर दी जाती थी। मेरी समझ में नहीं आता था कि क्या किया जाये। जब मैंने दुकानदार से कुछ दिन की और मोहलत माँगी तो वह डबल रोटी की भाँति मोटा और चीकट अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाकर बोला :

"चूम ले! मोहलत मिल जायेगी!"

लेकिन जब मैंने काउण्टर पर से बटखरा उठाकर उसके सिर का निशाना साधा वह डुबकी-सी लगाकर चिल्लाया :

"अरे, अरे यह क्या करता है? मैं तो बस मजाक कर रहा था!"

मैं समझता था कि वह मजाक नहीं करता। उससे छुटकारा पाने के लिए मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मेरे मालिक की जेबों में छुट्टा रेजगारी पड़ी रहती थी। सुबह कोट साफ़ करते समय यह मैं अक्सर देख चुका था। कभी-कभी जेब से निकलकर वह फ़र्श पर भी आ गिरती, और एक बार तो ऐसा हुआ कि एक सिक्का लुढ़कता हुआ जीने के नीचे लकड़ियों के ढेर में जाकर ओझल हो गया। दूसरे कामों में इसका मुझे कुछ ध्यान नहीं रहा और मैं अपने मालिक को बताना भूल गया। बाद में, लकड़ियाँ उठाते समय, बीस कोपेक का वह सिक्का मुझे मिला। जब मैंने उसे मालिक को लौटाया तो उसकी पत्नी बोली :

"देखा तुमने? जेब में रेज़गारी छोड़ने से पहले गिन तो लिया करो!"

"अरे नहीं, यह चोरी नहीं करेगा, मुझे विश्वास है," मेरी ओर मुस्कराकर देखते हुए मालिक ने जवाब दिया।

और अब, चोरी के अपने निश्चय को पूरा करने के लिए जब मैं आगे बढ़ा, तो मुझे मालिक के इन शब्दों और उसकी विश्वास भरी मुस्कराहट का ध्यान हो आया। इससे मेरा काम और भी कठिन हो गया। कई बार मैंने उसकी जेब से रेज़गारी निकाली, उसे गिना, और फिर उसकी जेब में ही डाल दिया। तीन दिन तक मैं अपने से संघर्ष करता रहा, और इसके बाद सारा मामला एकाएक आसानी से हल हो गया।

"पेशकोव, तुझे आजकल हो क्या गया है?" अनायास ही मेरे मालिक ने मुझसे पूछा, "तू अपने आपे में नहीं दिखाई देता। क्या तबीयत ख़राब है?"

अपनी परेशानी का कारण मैंने साफ़-साफ़ बता दिया।

"देखा न, क़िताबों ने तुझे किस उलझन में फँसा दिया है," भौंहें चढ़ाकर उसने कहा। "वे कोई न कोई मुसीबत ज़रूर खड़ी करेंगी—यह तो पक्की बात है..."

उसने मुझे पचास कोपेक का सिक्का दे दिया। साथ ही सख़्ती से चेतावनी दी :

"देख, मालकिन या माँ के कानों में इसकी भनक तक न पड़े, नहीं तो तूफान

बरपा हो जायेगा।”

इसके बाद, बहुत ही भले ढंग से हँसते हुए बोला :

“तू अपनी धुन का पक्का है, शैतान! लेकिन ठीक है, धुन का पक्का होना बुरा नहीं। बस, एक बात है। वह यह कि क़िताबों को धता बता! नए साल से मैं एक अच्छा अखबार मँगा दूँगा। उसे पढ़ा करियो...”

और लो, हर साँझ चाय और भोजन के बीच, मैं अपने मालिकों को ‘मोस्कोव्स्की लीस्तोक’ (मास्को का पर्चा) पढ़कर सुनाने लगा जिसमें वाश्कोव, रोक्शानिन, रूदूनिकोव्स्की और इसी तरह के अन्य कितने ही लेखकों के उपन्यास ऊब के मारे लोगों के हाजमे के लिए छपते थे।

ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सुनाना मुझे अच्छा नहीं लगता था, इससे शब्दों का अर्थ पकड़ने में बाधा पहुँचती थी। लेकिन मेरे मालिक लोग बड़े ध्यान से, श्रद्धालु लालच से सुनते, नायकों की बदमाशी पर आह भरकर अचकचाते और गर्व के साथ एक-दूसरे को कहते :

“और हमें देखो तो—चैन से, शोर-शराबे से दूर जी रहे हैं, कोई लेना-देना नहीं, शुक्र है भगवान तेरा!”

वे हर चीज़ को ग़लत-सलत कर देते, प्रसिद्ध चूर्किन के कारनामों को वे गाड़ीवान फ़ोमा क्रुचीना के सिर मढ़ देते; नामों के बारे में वे अदबदाकर गड़बड़ करते और मैं जब उनकी भूलों को उलझावों को सीधा करके उनके सामने रखता तो अचरज में भरकर कहते :

“वाह, कैसी याददाश्त है!”

अक्सर ‘मोस्कोव्स्की लीस्तोक’ में लेओनीद ग्रावे की कविताएँ भी छपतीं। मुझे वे बेहद पसन्द आतीं और मैं उन्हें अपनी कापी में उतार लेता। लेकिन मेरे मालिक कवि पर फतवे कसते :

“देखो न, बुढ़ापे में इसे कविता का शौक चर्राया है।”

“उस जैसा शराबी-कबाबी और नीम पागल और करेगा भी क्या!”

स्त्रुज़्किन और काउण्ट मेमेन्तो-मोरी की कविताएँ भी मुझे बहुत अच्छी लगती, लेकिन बूढ़ी और छोटी दोनों मालकिनें इस राय पर अड़ जातीं कि कविता निरी बकवास है :

“भाड़ों और नाटक वालों के सिवा और कोई कविताओं में बातें नहीं करता।”

जाड़ों की साँझें, छोटा-सा कमरा, जिनमें साँस लेते दम घुटता, और मालिकों की नज़रें जो मुझपर जमी रहतीं, मेरा जी बुरी तरह उकता जाता। खिड़की से बाहर मौत की भाँति सन्नाटा खींचे रात फैली होता, जब तब बर्फ़ के चटखने की आवाज़ आती और लोग, बर्फ़ से सुन्न मछलियों की भाँति मेज़ के इधर-उधर गुम-सुम बैठे रहते।

या फिर तेज हवा अपने पंजों से दीवारों तथा खिड़कियों को नोचती-झकझोरती और चीखती-सनसनाती चिमनी में घुसती और नमदानों को खड़खड़ाती। जो कसर रह जाती उसे बच्चों के कमरों में उनका रोना-टर्राना पूरा कर देता। मेरा मन भीतर ही भीतर उबलता-उफनता और जी चाहता कि यहाँ से चुपचाप खिसक जाऊँ और किसी अँधेरे कोने में पहुँचकर भेड़िए की भाँति हूँकना शुरू कर दूँ।

मेज़ के एक छोर पर सिलाई या बुनाई का ताम-झाम लिये स्त्रियाँ बैठी थीं, दूसरे छोर पर वीक्तर अनमने भाव से उस नक़्शे पर झुका हुआ था जिसकी वह नक़ल उतार रहा था। बीच-बीच में वह चीखता जाता :

"मेज़ न हिलाओ, शैतान की दुमो! क्यों, चुहियों-बिल्लियों, इस घर में रहने भी दोगी या नहीं?.."

कुछ हटकर एक बाजू मेरा मालिक बैठा था उसके सामने एक लम्बा-चौड़ा चौखटा रखा था चौखटे में एक मेज़पोश कसा हुआ था और वह सुई-धागे से उस पर कसीदे का काम काढ़ रहा था। उसकी चपल उँगलियों के स्पर्श से लाल केकड़े, नीली मछलियाँ, वसन्ती तितलियां और पतझड़ के पीले पत्ते आकार ग्रहण कर रहे थे। ये डिजाइन खुद उसके बनाए हुए और पूरा करते उसे तीन जाड़े बीत चुके थे। इस मेज़पोश से अब वह पूरी तरह से उकता चुका था और अक्सर, अगर दिन में मैं खाली हाथ होता तो मुझे बुलाकर कहता :

"चल, पेशकोव, यह मेज़पोश तेरा इन्तज़ार कर रहा है। लग जा काम में!"

मैं कसीदा काढ़ने की मोटी सुई उठाता और मेज़पोश पर अपना हाथ आजमाने लगता। अपने मालिक पर मुझे तरस आता और जैसे भी बनता, मैं उसका हाथ बँटाने की कोशिश करता। मुझे ऐसा लगता था कि यह नक़्शे बनाना, कसीदे काढ़ना, और ताश खेलना एक दिन वह छोड़ देगा और कोई दूसरा काम शुरू कर देगा, कोई ऐसा काम जो कुछ दिलचस्प हो, जो उसके उन सपनों से मेल खाता हो जिन्हें कि वह कभी-कभी देखा करता। काम करते-करते वह एकाएक रुक जाता और अचरज के भाव से इस तरह उसकी ओर निहारता मानो वह कोई एकदम अनजानी चीज़ हो। उसके बाल उसकी भौंहों से हाथ मिलाते और उसके गालों का स्पर्श करते, मानो वह कोई संन्यासी हो।

"क्या सोच रहे हो?" उसकी पत्नी पूछती।

"यों ही," वह जवाब देता और फिर अपने काम में जुट जाता।

मैं मन ही मन अचरज करता कि भला यह भी कोई पूछने की बात है कि कोई क्या सोच रहा है? फिर इस तरह के सवाल का कोई जवाब भी क्या दे सकता है? एक साथ, एक ही वक़्त में, बहुत-सी चीज़ों के बारे में आदमी सोचता है—उन चीज़ों के बारे में जिन्हें कि उसकी आँखें इस समय देख रही हैं, उन चीज़ों के बारे में भी

जिन्हें उसने कल या पिछले साल देखा था और इस तरह जितने भी चित्र आँखों के सामने उभरते हैं, सभी धुँधले और उलझे हुए, बराबर चलायमान और हर घड़ी बदलते हुए होते हैं।

'मोस्कोव्स्की लीस्तोक' के व्यंग्य लेख साँझ के लिए काफ़ी नहीं पड़ते। मैंने सुझाव दिया कि पलंग के नीचे पड़ी पत्रिकाओं को पढ़ना शुरू किया जाये।

"वे भी कोई पढ़ने की चीज़ हैं?" छोटी मालकिन ने अविश्वास के साथ कहा। "उसमें सिवा तस्वीरों के और होता ही क्या है?"

लेकिन पलंग के नीचे अकेला 'चित्र-जगत' ही नहीं था, 'ओगोन्योक' पत्रिका भी थी। उसे निकालकर हमने सालियास कृत उपन्यास 'काउण्ट त्यातिन-बाल्तीइस्की' पढ़ना शुरू किया। मेरे मालिक को इस उपन्यास का मूढ़-सा नायक बहुत पसन्द आया। युवा रईस के मुसीबतों भरे कारनामों पर वह बेरहमी के साथ आँसू निकल आने तक हँसता और चिल्लाता :

"ओ, कितनी मजेदार चीज़ है!"

"सब मनगढ़न्त है," उसकी पत्नी कहती यह दिखाने के लिए कि वह भी अपना दिमाग रखती है।

पलंग के नीचे पड़े साहित्य ने मेरा एक बड़ा काम किया। इन पत्रिकाओं को रसोईघर में ले जाने और उन्हें रात को पढ़ने का अधिकार मैंने जीत लिया।

मेरे सौभाग्य से बुढ़िया बच्चों के कमरे में अपना बिस्तर लगाने लगी—आया ने रात-दिन पीना शुरू कर दिया था। वीक्तर को मेरे पढ़ने न पढ़ने की कोई चिन्ता नहीं थी। जब सब सो जाते तो वह चुपचाप कपड़े पहनता और सज-धजकर सुबह तक के लिए बाहर खिसक जाता। मोमबत्ती मुझे नहीं दी जाती, उसे अपने साथ दूसरे कमरे में ले जाया जाता और मैं बिना रोशनी के रह जाता। मोमबत्ती ख़रीद लाने के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। तब मैं मोमबत्तियों के पिघले हुए मोम को चुपचाप बटोरने लगा और उसे एक खाली टीन की डिबिया में जमा कर देता। मोम के ऊपर देव-प्रतिमा के दीये में से कुछ तेल भी डाल देता। फिर धागों को बटकर एक बत्ती बनाता और इस तरह तैयार किये अपने लैम्प को, जो रोशनी से अधिक धुआँ देता था, अलावघर के ऊपर जमा देता।

भारी-भरकम जिल्दों के पन्नों को जब मैं पलटता तो लैम्प की नन्हीं लाल लौ काँपने और दम तोड़ने लगती। बत्ती बार-बार खिसककर पिघले हुए सुगन्ध भरे तरल मोम में डूबने लगती, और धुएँ से मेरी आँखें कड़वा उठतीं। लेकिन ये सब झँझट-बाधाएँ उस आनन्द में डूब जातीं जिसके साथ मैं तस्वीरों को देखता और नीचे छपे परिचयों को पढ़ता।

ये चित्र मेरे सामने दुनिया को फैलाते और बढ़ाते जा रहे थे। उन्होंने उसे अद्‌भुत

नगरों, गगनचुम्बी पहाड़ों और सुन्दर समुद्र तटों से सजा दिया। जीवन में एक सुन्दर फैलाव आ रहा था। भाँति-भाँति के नगरों, लोगों और काम-धन्धों की बहुलता धरती को और भी आकर्षक बना देती, वह मुझे और भी अधिक रंग-बिरंगी मालूम होती। अब वोल्गा के उस पार के विस्तारों को देखते हुए मैं जानता था कि उनमें निरा सूनापन नहीं है। पहले इन विस्तारों को जब मैं देखता था तो अदबदाकर उदास हो उठता था : अन्तहीन सपाट चरागाहें, काले धब्बों-सी इक्की-दुक्की झाड़ियाँ, चरागाहों से परे जंगल की कटी-कटी-सी दीवार, चरागाहों के ऊपर धुँधली-सी ठण्डी नीलिमाँ सूनी और उदास धरती। मेरा हृदय भी सूना हो जाता, एक कोमल उदासी उसे मथती, सभी अरमान मुरझा जाते, सोचने के लिए कुछ बाकी न रहता, आँखें मूँछ लेने को जी चाहता। वीरानी का यह आलम हृदय की हर आकांक्षा को सोख लेता, आशा उसके स्पर्श से बेजान हो जाती।

चित्रों के नीचे लिखे मजमूनों ने सीधी-सादी भाषा में दूसरे देशों और दूसरे लोगों से मेरा परिचय कराया, अतीत और वर्तमान की बहुत-सी घटनाओं के बारे में बताया जिनमें से कई मेरी समझ में न आतीं, और इससे मेरा हृदय कचोट उठता। कभी-कभी, तीर की भाँति, कुछ विचित्र शब्द मेरे दिमाग से आकर टकराते : 'अधितात्त्विकी', 'किलियज्म', 'चार्टिस्ट' आदि। ये शब्द मेरे जी का जंजाल बन जाते और मेरे दिमाग में घुसकर इतना फैलते-बढ़ते कि उनके सिवा और कुछ सुझाई न देता, और मुझे ऐसा लगता कि इन शब्दों के अर्थ का पता लगाए बिना मेरी समझ में कभी कुछ नहीं आयेगा, मानो ये शब्द प्रहरियों की भाँति सभी रहस्यों के द्वार पर खड़े हों। बहुधा, समूचे के समूचे वाक्य मेरे दिमाग में अटककर रह जाते, मांस में घुसी फाँस की भाँति खटकते और मेरे लिए अन्य किसी ओर ध्यान लगाना असम्भव कर देते।

एक दिन मैंने अजीब पंक्तियाँ पढ़ीं :

पहने हुए इस्पाती जामा
काला और मौत-सा गम्भीर
हूणों का सरगना अतीला
रौंद रहा रेगिस्तानों को।

उसके पीछे योद्धा, काली घटा की भाँति, उमड़-उमड़कर गरज रहे थे :

कहाँ है रोम,
कहाँ है शक्तिशाली रोम?

यह तो मैं जानता था कि रोम एक नगर है, लेकिन ये हूण कौन थे? मुझे अब रहस्य का उद्घाटन करना था।

अनुकूल अवसर देख मैंने अपने मालिक से पूछा।

"हूण?" उसने कुछ अचरज से कहा। "शैतान ही जानता है कि यह क्या है! होगी ऐसी ही कोई बक़वास..."

फिर उसने नाराज़गी से अपना सिर हिलाया :

"पेशकोव, दुनिया भर का कबाड़ तूने अपने दिमाग़ में जमा कर लिया है, यह बहुत बुरा है!"

बुरा हो चाहे भला, मुझे तो इसका पता लगाना ही था।

मैंने अन्दाज़ा लगाया कि हो न हो, फौज के पादरी सोलोव्योव को ज़रूर मालूम होगा कि हूण कौन थे। अहाते में मुठभेड़ होने पर मैंने उसके सामने अपना मसला पेश कर दिया।

वह एक मरियल-सा आदमी था : पीले रंग का, रोगी और सदा चिड़चिड़ा। उसकी आँखें लाल थीं, भौंहें नदारद और छोटी-सी पीली दाढ़ी।

"तुझे हूणों से क्या लेना?" अपनी काली लाठी को धूल में धँसाते हुए उसने उलटे मुझे ही कुरेदा।

लेफ्टिनेण्ट नेस्तेरोव के सामने जब मैंने अपना सवाल रखा तो वह ज़ोरों से चिल्लाया :

"क्या-आ-आ?"

तब मैंने दवाफ़रोश से पूछने का निश्चय किया। वह काफ़ी मिलनसार मालूम होता था। समझदार चेहरा, भारी-भरकम नाक जिसपर सुनहरा चश्मा चढ़ा हुआ था।

"हूण," दवाफ़रोश पावेल गोल्डबर्ग ने मुझसे कहा, "किरगिज़ों की भाँति खानाबदोश जाति के लोग थे। अब वे नहीं हैं—सबके सब मर-खप गये।"

मुझे बड़ी निराशा हुई और झुँझलाहट ने मुझे घेर लिया, इसलिये नहीं कि हूण मर-खपकर लोप हो गये थे, बल्कि इसलिये कि जिस शब्द ने मुझे इतना सताया, उसका अर्थ इतना साधारण और मेरे लिए इतना बेकार सिद्ध हुआ।

फिर भी हूणों का मैं बेहद कृतज्ञ था। उन्हें लेकर इतनी परेशानियों में से गुजरने के बाद शब्द मुझे कम सताने लगा। और भला हो अतीला का, उसकी वजह से दवाफ़रोश से मेरी जान-पहचान हो गयी।

भारी-भरकम और पण्डिताऊ शब्दों का सीधा-सादा अर्थ उसे मालूम था और हर रहस्य की कुंजी उसके पास थी। हाथ की दो उँगलियों से वह अपने चश्मे को ठीक करता और मोटे शीशों के भीतर से घूरकर मेरी आँखों में देखता और इस तरह बोलना शुरू करता मानो अपने शब्दों को कीलों की भाँति वह मेरे दिमाग में ठोंक रहा हो :

"शब्द, मेरे मित्र, उसी तरह होते हैं जैसे पेड़ के पत्ते, और यह जानने के लिए कि पत्तों का रूप-रंग ऐसा ही क्यों है, किसी दूसरे प्रकार का क्यों नहीं, यह जानना

ज़रूरी है कि पेड़ किस प्रकार बढ़ता-पनपता है,—जिसमें तुम्हें हर वह चीज़ मिलेगी जो सुहावनी और लाभदायक है...”

बड़े-बूढ़ों के वास्ते, जिन्हें हमेशा पेट और छाती में जलन की शिकायत रहती थी, सोडा और मैगनीशिया लाने और छोटों के वास्ते लारेल का मरहम तथा अन्य छोटी-मोटी दवाइयाँ लाने मुझे अक्सर दवाफरोश की दुकान के चक्कर लगाने पड़ते। दवाफ़रोश की नपी-तुली सीखों की बदौलत पुस्तकों के साथ मेरा लगाव और भी गहरा हो गया और अनजाने में वे मेरे लिए उतनी ही अनिवार्य हो उठीं जितनी कि एक शराबी के लिए वोद्का।

पुस्तकें मुझे एक दूसरी दुनिया की सैर करातीं, जिसमें आशा-आकांक्षाओं का सागर हिलोरें लेता, उसके भँवर में पड़कर लोग भले से भले और बुरे से बुरे काम करते। लेकिन जिस तरह के लोगों को मैं अपने चारों ओर देखता था, उनमें न भले काम करने की सकत थी, न बुरे। क़िताबों में जो कुछ लिखा था, उससे सर्वथा भिन्न—एकदम अलग जीवन वे बिताते थे, और उनके इस जीवन में खोजने पर भी दिलचस्प चीज़ नज़र नहीं आती थी। जो हो, एक चीज़ मेरे दिमाग में साफ़ थी—वह यह कि मैं वैसा जीवन नहीं बिताना चाहता था, जैसा कि वे बिताते थे...

चित्रों के नीचे मज़मूनों से मुझे पता चला कि प्राग, लन्दन और पेरिस में, नगर के बीचोंबीच, न तो कूड़ा-करकट के पहाड़ दिखाई देते हैं, न गन्द भरे खड्ड नज़र आते हैं। वहाँ की सड़कें चौड़ी और सीधी होती हैं, और इमारतें तथा गिरजे सर्वथा भिन्न थे और वहाँ के लोग लम्बे जाड़ों के मारे पूरे छह महीनों तक घरों में बन्द नहीं रहते, न ही वहाँ व्रत-उपवास के पैंतालीस दिन होते हैं जिनमें नमकीन बन्दगोभी, खुमियों, जौ के आटे, और अलसी के घिनौने तेल में तैरते आलुओं के सिवा और कुछ नहीं खाया जा सकता। व्रत-उपवास के दिनों में पढ़ना गुनाह होता है इसलिये ‘चित्र-जगत’ को उठाकर रख दिया गया, और मुझे भी इस सूने उपवासी जीवन का अंग बनने के लिए मज़बूर किया गया। अब, क़िताबों के जीवन से इस जीवन की तुलना करने के बाद, मुझे यह और भी बेरंग और भी बदनुमा मालूम होता। पुस्तकें पढ़ने पर मुझे लगता कि मेरी शक्ति बढ़ गयी है, में अधिक स्वस्थ बन गया हूँ और मैं भार लगन तथा आपा भूलकर काम में जुट जाता था, क्योंकि मेरे सामने अब एक लक्ष्य होता : वह यह कि जितनी जल्दी काम खत्म होगा, उतना ही अधिक समय मुझे पढ़ने के लिए मिलेगा। अब क़िताबों के न रहने पर मैं सुस्त और काहिल हो गया था, खोया-खोया-सा घूमता, और एक ऐसी विकृत बेख़बरी ने मुझे जकड़ लिया जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था।

मुझे याद है कि उन नीरस दिनों में एक रहस्यमय घटना घटी। साँझ का समय था, सब लोग सोने की तैयारियाँ कर रहे थे। तभी बड़े गिरजे का घण्टा एकाएक बजना

शुरू हुआ। सकपकाकर सभी लोग चौंके, और अधूरे कपड़ों में ही खिड़कियों पर जा खड़े हुए।

"यह क्या खतरे का घण्टा है? क्या कहीं आग लग गयी है?" वे एक-दूसरे से पूछ रहे थे।

अन्य घरों से भी लोग इधर-उधर डोलने और दरवाज़ों को बन्द करने की आवाज़ें आ रही थी। एक आदमी, घोड़े की लगाम थामे अहाते में भाग रहा था। बूढ़ी मालकिन चिल्ला रही थी कि गिरजा लूटा गया है। मालिक ने उसका मुँह बन्द करते हुए कहा :

"चुप भी रहो, माँ, साफ़ तो सुनाई दे रहा है कि यह खतरे का घण्टा नहीं है!"

"तब फिर क्या है, कहीं बड़े पादरी तो नहीं मर गये!"

वीक्तर अपने तख़्ते से नीचे उतर आया।

"मैं जानता हूँ कि क्या हुआ है, मुझे सब मालूम है," कपड़े बदन पर डालते हुए वह बुदबुदा रहा था।

यह देखने के लिए कि कहीं आकाश में आग की दमक तो नज़र नहीं आयी, मालिक ने मुझे अटारी पर दौड़ा दिया। लपककर मैं ऊपर चढ़ गया और रोशनदान में से बाहर छत पर निकल आया। आकाश में कहीं कोई लाली नहीं दिखाई दे रही थी। गिरजे का बड़ा घण्टा अभी भी उसी गति से स्थिर और पाला मारे वायुमण्डल को गुंजा रहा था। उनींदा नगर धरती से चिपका हुआ था। नज़र की पहुँच से बाहर लोग दौड़ रहे थे और उनके पाँवों के नीचे बर्फ़ के चरमराने की आवाज़ आ रही थी। बर्फ़ पर गाड़ियों के दौड़ने की आवाज़ भी सुनाई दे रही थी। गिरजे के बड़े घण्टे की आवाज़ हृदय को अधिकाधिक कँपा रही थी। मैं नीचे उतर आया। मैंने कहा :

"नहीं, आग तो नहीं लगी है।"

"हे भगवान!" मालिक ने कहा।

वह कोट और टोपी पहने था। उसने अपना कॉलर ऊपर खींच लिया और अनिश्चितता के साथ जूतों में पाँव डालने लगा।

"बाहर न जाओ! मेरी मानो, बाहर न जाओ..." उसकी पत्नी ने मिन्नत की।

"बको नहीं!"

वीक्तर भी कोट और टोपी पहने था और यह कहकर सभी को चिढ़ा रहा था :

"मैं जानता हूँ..."

जब दोनों भाई चले गये तो स्त्रियों ने मुझे समोवार गरम करने में जोत दिया और खुद खिड़कियों पर जम कर बैठ गईं। उसी समय मालिक ने दरवाज़े की घण्टी बजायी, तेज डगों से चुपचाप ऊपर आया बड़े कमरे का दरवाज़ा खोला और भरभरायी-सी आवाज़ में घोषित किया :

"जार का कत्ल हो गया!"

"क्या कहा, ज़ार की हत्या कर दी?" बुढ़िया ने चौंककर कहा।

"हाँ, कत्ल हो गया है। एक अफसर ने मुझे बताया है। अब क्या होगा?"

इसी बीच वीक्तर ने दरवाज़े की घण्टी बजायी और अपना लबादा उतारते हुए झुँझलाहट में बोला :

"मैंने सोचा था कि लड़ाई छिड़ गयी!"

इसके बाद वे सब चाय पीने बैठ गये और चौकन्ने-से होकर दबे और शान्त स्वरों में बातें करने लगे। बाहर अब सन्नाटा छाया हुआ था। घण्टे का बजना बन्द हो गया था। दो दिनों तक वे लोग लगातार रहस्यपूर्ण ढंग से फुसफुसाते रहे, कहीं बाहर जाते और उनके यहाँ भी लोग आते और बारीकी के साथ किसी बात का वर्णन करते। मैंने बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मैं समझ नहीं सका कि आख़िर हुआ क्या है। मालिक समाचारपत्र मुझसे छिपाते थे, और जब सीदोरोव से मैंने यह सवाल किया कि जार को क्यों मार डाल गया, तो वह धीमे स्वर में बोला :

"इस बारे में बातें करना मना है..."

समूची घटना जल्दी ही आयी-गयी हो गयी, आये दिन के जीवन की घिस-घिस ने उसे पीछे डाल दिया, और इसके कुछ बाद ही एक बहुत ही अप्रिय घटना घटी।

रविवार का दिन था। परिवार के लोग सुबह की प्रार्थना में शामिल होने गिरजे गये थे। मैंने समोवार गर्माने के लिए रखा और घर की सफाई करने में जुट गया। इसी बीच बड़ा बच्चा रसोईघर में घुस गया, समोवार की टोंटी खींचकर उसने बाहर निकाल लिया और मेज़ के नीचे रेंगकर उससे खेलने लगा। समोवार के बीच की चिमनी में कोयले दहक रहे थे; जब सारा पानी निकल गया तो समोवार बुरी तरह गरमा गया और उसके जोड़ तड़कने लगे। दूसरे कमरे में मैंने समोवार को गुस्से में भरकर अजीब आवाज़ें करते सुना। लपककर मैं रसोईघर में पहुँचा। यह देखकर मैं काँप उठा कि वह एकदम नीला पड़ गया है, और इस तरह काँप रहा है मानो उसे मिर्गी का दौरा पड़ा हो। जोड़ खुला नलका जिसमें टोंटी लगी थी, निराशा से गरदन लटकाए था, ढक्कन एक ओर खिसक गया था, हत्थों के नीचे टिन पिघल गया था और बूँद-बूँद टपक रहा था, और नीला-काला पड़ा समोवार ऐसा मालूम होता था मानो वह नशे में धुत्त हो। जब मैंने उसपर ठण्डा पानी उंड़ेला तो वह सनसनाया और उदास भाव से फ़र्श पर ढह गया।

दरवाज़े की घण्टी बजी। दरवाज़ा खोलते ही बूढ़ी ने पहला सवाल समोवार के बारे में किया :

"समोवार तो तैयार है न?"

"हाँ, तैयार है," संक्षेप में जवाब देकर मैं चुप हो गया।

भय और शर्म से कटकर ही मैंने शायद यह संक्षिप्त-सा उत्तर दिया था : लेकिन

यह भी मेरी गुस्ताख़ी में शुमार हो गया और उसी हिसाब से मेरी सज़ा भी दुगनी कर दी गयी। मेरी पिटायी की गयी। बुढ़िया ने देवदार की छिपटियों का इस्तेमाल किया। इनसे मुझे बहुत दर्द नहीं हुआ लेकिन पीठ पर त्वचा में अनगिनत फाँसें खूब गहरी घुस गईं। साँझ तक मेरी पीठ सूजकर तकिये की भाँति हो गयी, और अगले दिन दोपहर तक मेरे मालिक को मुझे लेकर अस्पताल जाना पड़ा।

डाक्टर इतना लम्बा और इतना पतला था कि देखकर हँसी छूटती थी। उसने मेरी जाँच की, और फिर गहरी, स्थिर आवाज़ में बोला :

"इस जुल्म की मैं सरकारी हैसियत से रिपोर्ट करूँगा।"

मालिक का चेहरा लाल हो उठा, वह पाँव घसीटने लगा, फिर बुदबुदाकर उसने डाक्टर से कुछ कहा, लेकिन डाक्टर ने अपनी नज़र से उसका सिर लाँघकर कहीं दूर देखते हुए दो टूक शब्दों में कहा :

"नहीं, यह नहीं हो सकता।"

फिर मेरी ओर मुड़ा। पूछा :

"क्या तुम शिकायत दर्ज़ कराना चाहते हो?"

मुझे बेहद दर्द हो रहा था लेकिन मैंने कहा :

"नहीं। जल्दी से मेरा इलाज करिए।"

मुझे दूसरे कमरे में ले जाया गया, मेज़ पर मुझे लिटाकर डाक्टर ने चिमटी से फाँसों को निकालना शुरू किया। चिमटी का ठण्डा स्पर्श गुदगुदाता-सा मालूम होता था। डाक्टर अपना काम भी करता जाता था, और बोलता भी जाता था :

"तुम्हारी चमड़ी को अच्छा सँवारा है इन लोगों ने, दोस्त। इसके बाद तुम वाटरप्रूफ हो जाओगे..."

डाक्टर असह्य रूप से मुझे गुदगुदाते हुए जब अपना काम खत्म कर चुका तो बोला :

"चालीस फाँसे निकाली हैं, दोस्त, मैंने। याद रख लो, कभी शेखी बघारोगे। कल इसी समय आकर अपनी पट्टी बदलवा जाना। क्या तुम्हारी अक्सर मरम्मत करते हैं?"

"पहले अक्सर किया करते थे," मैंने एक क्षण सोचकर कहा।

डाक्टर ने अपनी गहरी आवाज़ में ठहाका मारा।

"सब कुछ अच्छा हो रहा है, दोस्त, सब कुछ!"

जब वह मुझे मालिक के पास वापस ले गया तो उससे कहा :

"सम्भालो इसे, बिल्कुल नया बना दिया है। कल इसे फिर भेज देना पट्टी करवाने के लिए। तुम्हारी खुशकिस्मती है कि लड़का हँसोड़ है..."

गाड़ी में बैठकर जब हम घर लौट रहे थे तो मालिक ने कहा :

"पेशकोव, मैं भी खूब पिटता था। क्या किया जाये? और कितनी बुरी तरह से

मुझे मारते थे! तुम्हारे साथ कम से कम इतना तो है कि मैं थोड़ी-बहुत सहानुभूति दिखा सकता हूँ, लेकिन मेरे साथ तो कभी कोई सहानुभूति नहीं दिखाता था, कोई नहीं। लोगों की यों कमी नहीं थी, लेकिन सहानुभूति के दो शब्द कहने के लिए कोई पास तक न फटकता... ओह, कुड़क मुर्ग़ियो!"

रास्ते भर वह बुरा-भला कहता रहा। मुझे उस पर तरस आया, और कृतज्ञता का भी मैंने अनुभव किया कि वह मेरे साथ इंसानों की तरह बातें कर रहा है।

जब हम घर पहुँचे तो सबने इस तरह मेरा स्वागत किया मानो वह मेरा जन्मदिन हो। स्त्रियों ने मुझे बैठाकर सारा हाल सुना कि डाक्टर ने किस तरह फाँसों को निकला और क्या-क्या कहा। वे सुनतीं और बीच-बीच में आह-आह की ध्वनि करती जातीं, अपने होंठों पर जीभ फेरकर चटकारा लेतीं और इस या उस बात पर भौंहें चढ़ातीं। बीमारी-ईकारी में, दुःख और दर्द में, हर उस चीज़ में जो आदमी को परेशान कर सकती है, उनकी विकृत दिलचस्पी ने मुझे चकित कर दिया।

मैंने देखा कि वे इस बात से खुश थीं कि मैंने उनके खिलाफ़ शिकायत दर्ज कराने से इंकार कर दिया। इससे उत्साहित होकर मैंने उनसे कहा कि अगर इजाज़त हो तो कटर की पत्नी से पुस्तकें माँग लाया करूँ। उनसे अब इंकार करते न बना, सिर्फ बुढ़िया ने चकित होकर कहा :

"बड़ा शैतान है तू!"

अगले ही दिन मैं कटर की पत्नी के सामने खड़ा था, और वह प्यार के साथ मुझसे कह रही थी :

"मैंने सुना था कि तुम बीमार पड़ गये हो और तुम्हें अस्पताल पहुँचा दिया गया है। देखो न, लोग भी कैसी-कैसी अफ़वाह उड़ाते हैं?"

मैंने उसकी बात को काटा नहीं। उसे सच बात बताते मुझे शर्म मालूम हुई—ऐसी औघड़ और जी भारी करनेवाली बातें कहकर आख़िर उसे क्यों परेशान किया जाये? मेरे लिए यही क्या कम खुशी की बात थी कि वह अन्य लोगों जैसी नहीं थी।

मैंने अब बड़े ड्यूमा, पोनसोन-द-तेरेल, मोन्तेपिन, जाकोन्ने, गाबेरिओ, एमर और बुआगोबे की मोटी-मोटी जिल्दों को पढ़ना शुरू किया। मैं इन पुस्तकों को, एक के बाद एक, तेजी से पढ़ गया, और इन्हें पढ़कर मेरा हृदय खुशी से नाच उठा। मुझे लगा कि जैसे मैं उनके असाधारण जीवन का एक हिस्सा बन गया हूँ। मधुर भावों का मुझमें संचार हुआ और स्फूर्ति का मैंने अनुभव किया। एक बार फिर हाथ का बना मेरा लैम्प चेतन होकर धुआँ छोड़ने लगा, मैं रात भर, पौ फटने तक पढ़ता ही रहता। मेरी आँखें दुखने लगीं और बूढ़ी मालकिन मीठी आवाज़ में बोली :

"जरा ठहर, क़िताबचाटू! तेरे दीदे फूट जायेंगे, अंधा हो जायेगा!"

शीघ्र ही मैंने देखा कि ये तमाम दिलचस्प पुस्तकें, कथानकों में विविधता और

मौके-महल में विभिन्नता के बावजूद, एक-सी बातें कहती है। वह यह कि जो भले लोग हैं, वे हमेशा दुःख उठाते हैं और बुरे लोगों के हाथों उन्हें अनेक मुसीबतों का शिकार होना पड़ता है। बुरे लोग, भलों के मुकाबले में ज़्यादा मजे से रहते हैं और उनसे ज़्यादा चतुर होते हैं। और अन्त में, किसी चमत्कार के सहारे बुराई की सदा हार होती है और भलाई की सदा जीत। "प्रेम" से भी, जिसके बारे में पुस्तकों के सभी पुरुष और स्त्रियाँ सदा एक-सी भाषा में बातें करते थे, मेरा जी उकता गया। इससे मन तो ऊबता ही, साथ ही अनेक धुँधले सन्देहों को वह जन्म देता।

कभी-कभी, कुछ पन्ने पढ़ने के बाद ही यह साफ़ हो जाता कि अन्त में किसकी जीत होगी और किसकी हार। कथानक की गुत्थी का एकाध सिरा हाथ में आते ही मैं खुद उसे खोलना शुरू कर देता। पुस्तक को मैं अलग रख देता, गणित के सवाल की भाँति मैं उस पर दिमाग लड़ाने लगता, और मेरे हल अधिकाधिक सही निकलते,—यह कि किस पात्र को हर तरह के सुखों का स्वर्ग नसीब होगा, और किसको जहन्नुम रसीद किया जायेगा।

लेकिन इस सब के पीछे मुझे सजीव और मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण स़च्चाई की झलक मिलती थी, अन्य जीवन, अन्य सम्बन्धों के दृश्य नज़र आते थे। मैं अब साफ़-साफ़ देखता कि पेरिस के गाड़ीवान, मेहनत-मज़दूरी करनेवाले, सैनिक और अन्य सब "निम्न" लोग नीज़्नी नोव्गोरोद, कज़ान और पेर्म की ऐसी ही तलछट से भिन्न हैं, साहबों के सामने उनकी बोलती बन्द नहीं होती, उनके सहज भाव और स्वतन्त्र चेतना को पाला नहीं मारता, खुलकर और साहस से वे बातें करते हैं। इस एक सैनिक को ही लीजिये जो उन सभी सैनिकों से भिन्न था जिनसे कि मेरा वास्ता पड़ चुका था—न वह सीदोरोव से मिलता था, न उस सैनिक से जिसे मैंने जहाज़ पर देखा था, न येर्मोख़िन से। उसमें कहीं ज़्यादा आदमियत थी। स्मूरी से वह कुछ-कुछ मिलता था, लेकिन उसमें स्मूरी जितना भोंडापन और पाशविक़्ता नहीं थी। या फिर इस दुकानदार को लीजिये। वह भी उन सभी दुकानदारों से अच्छा था जिन्हें कि मैं जानता था। यही बात पादरियों के बारे में थी। वे भी मेरे जाने-पहचाने पादरियों से भिन्न थे। लोगों के साथ वे अधिक प्रेम और सहानुभूति का बरताव करते थे। कुल मिलाकर यह कि पुस्तकों के पन्नों में चित्रित दूसरे देशों का जीवन उस जीवन से ज़्यादा अच्छा, ज़्यादा सहज और ज़्यादा दिलचस्प मालूम होता था जिसे कि मैं अपने चारों ओर देखता था। दूसरे देशों में लोग इतना अधिक और इतनी बर्बरता से नहीं लड़ते थे, आदमी के साथ उस तरह का कुत्सित खिलवाड़ नहीं करते थे जैसा कि जहाज़ के यात्रियों ने उस सैनिक के साथ किया था, और भगवान से प्रार्थना करते समय उस तरह की कुढ़न और जलन का परिचय नहीं देते थे जो बूढ़ी मालकिन में दिखाई देती थी।

पुस्तकों में खल-पात्रों की, कमीने और कफन खसोटने वाले लोगों की कमी नहीं थी। और इस बात की ओर ख़ास तौर से मेरा ध्यान गया कि पुस्तकों के इन खल-पात्रों में भी समझ में न आनेवाली वह क्रूरता, और दूसरों को सताने की वह धुन नहीं दिखाई देती जिससे कि मैं इतना परिचित था। पुस्तकों के खल-पात्र क्रूरता का परिचय देते थे, लेकिन तभी जब उन्हें कोई मतलब साधना होता था। उनकी क्रूरता, बहुत कर ऐसी नहीं होती थी कि समझ में न आये। लेकिन मैं जिस क्रूरता से परिचित था, उसमें कोई तुक नहीं दिखाई देती थी, बिल्कुल बेमानी और बेमतलब, मनबहलाव के सिवा जिसका और कोई लक्ष्य नहीं था और जिससे किसी फायदे की आशा नहीं थी।

हर नई पुस्तक रूस और दूसरे देशों के जीवन के बीच इस अन्तर और उनके भेद को उभारकर रखती, धुँधला असन्तोष मेरे हृदय में उमड़ता, और मेरा यह सन्देह ज़ोर पकड़ने लगता कि इन पीले पड़े तथा गन्दे कोनों वाले पन्नों में जो कुछ लिखा है, वह एकदम सच नहीं है।

अचानक गौनकोर्ट का उपन्यास 'जेम्गान्नो बन्धु' मेरे हाथों में पड़ा। मैंने उसे फौरन पढ़ डाला और एक नई अनुभूति से विस्मित-सा, जिसका मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था, मैं इस सीधी-सादी दुःख भरी कहानी को दुबारा पढ़ने लगा। इसमें न तो कोई पेचीदा कथानक था, न ही फालतू बनाव-सिंगार की चकाचौंध थी। यहाँ तक कि शुरू में यह कुछ रूखा और सन्तों की जीवनियों की भाँति गम्भीर मालूम हुआ। इसकी भाषा इतनी नपी-तुली और सिंगार से इतनी कोरी थी कि पहले-पहल बड़ी निराशा हुई, लेकिन कुछ देर बाद ही उसके संक्षिप्त-से शब्दों और सबल वाक्यों ने तीर की भाँति सीधे मेरे हृदय में प्रवेश करना शुरू किया और इसने नटबन्धुओं के जीवन-संघर्ष का इतना सजीव और सच्चा चित्र मेरी आँखों के सामने खड़ा कर दिया कि मेरे हाथ यह क़िताब पढ़ने के आनन्द से काँपते थे। और उस समय जब मुसीबतों का मारा नट टूटी टाँगें लिये बड़ी मुश्किल से रेंगकर ऊपर अपने भाई के पास पहुँचा जो अटारी में छिपकर जान से भी प्यारी अपनी नट-कला का अभ्यास कर रहा था, तो मैं फूट-फूटकर रोने लगा।

इस अद्भुत पुस्तक को कटर की पत्नी को लौटाते हुए मैंने इस जैसी ही एक और पुस्तक देने का अनुरोध किया।

"इस जैसी ही का क्या मतलब, भला?" उसने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ कहा।

उसकी इस व्यंग्यपूर्ण मुस्कान से मैं सहम गया और उसे यह समझा नहीं सका कि "इस जैसी ही" से मेरा क्या मतलब है। वह बोली :

"यह कोई मजेदार पुस्तक नहीं है। जरा ठहरो, मैं तुम्हें एक और पुस्तक ला दूँगी, जो इससे कहीं दिलचस्प..."

कुछ ही दिन बाद उसने मुझे ग्रीनवुड कृत 'एक आवारा लड़के की सच्ची कहानी'

दी। पुस्तक का नाम मुझे कुछ चुभा, लेकिन पहला पन्ना पढ़ते न पढ़ते मेरे हृदय में आनन्द की मुस्कान खिल गयी और इस मुस्कान के साथ ही मैंने पूरी पुस्तक अन्त तक पढ़ डाली। कितने ही अंशों को तो दो-दो, तीन-तीन बार तक पढ़ गया।

सो दूसरे देशों में भी छोटे लड़कों को कुछ कम मुसीबतें नहीं उठानी पड़ती हैं! मेरी तो इतनी बुरी बिल्कुल नहीं है, सो हिम्मत खोने की कोई बात नहीं है!

ग्रीनवुड ने मुझे बड़ा सहारा दिया और इसके शीघ्र बाद ही एक ऐसी पुस्तक मेरे हाथ लगी जो सचमुच में "सही ढंग" की थी—'यूजेनी ग्राण्डे'।

बूढ़े ग्राण्डे की कहानी पढ़कर मेरी आँखों के सामने अपने नाना का सजीव चित्र खड़ा हो गया। मुझे खेद हुआ कि पुस्तक इतनी छोटी है और साथ ही अचरज भी हुआ कि इसमें कितनी सचाई भरी है। यह एक ऐसी सचाई थी, जो मेरे लिए जानी-पहचानी थी तथा जिससे जीवन में मैं ऊब चुका था। लेकिन पुस्तक ने इसे एक नई रोशनी में—शान्त, कटुतारहित ढंग से प्रस्तुत किया। गौनकोर्ट को छोड़कर अन्य जितने भी लेखक मैंने पढ़े थे, मेरे मालिकों की भाँति वे सब भी उतने ही निर्मम और चिड़चिड़े ढंग से लोगों की निन्दा करते, अक्सर पाठक खल-नायक से सहानुभूति करने लगता और भले पात्रों की "भलमनसाहत" से तंग आ जाता। यह देखकर मैं हमेशा परेशान हो उठता कि लाख सिर खपाने और हाथ-पाँव मारने के बाद भी आदमी अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता, आगे नहीं बढ़ पाता—शुरू से लेकर आख़िर के पन्ने तक, कदम-कदम पर, यह भलमनसाहत ही उसके मार्ग में आड़े आती। पत्थर की दीवार की तरह वह उसके प्रयत्नों को विफल करती। माना कि खल-नायक की सारी चालें और सारे इरादे इस दीवार से टकराकर चकनाचूर हो जाते, लेकिन दीवार कोई ऐसी चीज़ नहीं होती कि उसके लिए हृदय में प्यार जगे, हृदय उसके साथ कुछ लगाव अनुभव करे। पत्थर की दीवार अपने आप में चाहे जितनी सुन्दर और मजबूत क्यों न हो, लेकिन उस आदमी को जिसके हृदय में दीवार के दूसरी ओर उगे सेबों को पाने की ललक है, न तो दीवार की सुन्दरता भली लगेगी, न उसके पत्थरों की मजबूती। और मुझे यह लगने लगा था कि जीवन में अधिकाधिक मूल्यवान और सजीव जो कुछ भी है, वह कहीं भलमनसाहत के पीछे छिपा हुआ है...

गौनकोर्ट, ग्रीनवुड और बालूजाक के उपन्यासों में न तो खल-नायक थे और न भले नायक। केवल सीधे-सादे लोग थे, इतने सजीव कि देखकर अचरज होता। वे इस बात में कोई सन्देह नहीं छोड़ते कि उन्होंने जो कुछ कहा या किया वह सब सचमुच इसी रूप में उसे कहा या किया जा सकता है, अन्य किसी रूप में नहीं।

अब मेरे लिए वह सुख कोई बेगानी चीज़ नहीं रहा जो किसी अच्छी पुस्तक, "सही ढंग" की पुस्तक को पढ़ने से प्राप्त होता है। लेकिन ऐसी पुस्तकें पाना भी एक समस्या थी। कटर की पत्नी इसमें मेरी कोई मदद नहीं कर सकी।

"लो, यह कुछ अच्छी पुस्तकें हैं," वह कहती और मुझे आर्सेन हौस्साये कृत 'गुलाब, स्वर्ण और रक्त रंजित हाथ' या बैलयू , पाल द-कॉक अथवा पाल फेवाल के उपन्यास थमा देती। लेकिन ऐसी पुस्तकों को पढ़ना अब मुझे काफ़ी भारी मालूम होता।

मरियाट और बर्नर के उपन्यास उसे पसन्द थे। लेकिन मैं उन्हें पढ़कर ऊब गया। न ही मुझे श्पीलूहागेन के उपन्यास पसन्द आये। लेकिन अवरबाख की कहानियाँ मुझे खूब अच्छी लगीं। स्यू और ह्यूगो मुझे इतने पसन्द नहीं आये जितने कि वाल्टर स्काट। मैं ऐसी पुस्तकें चाहता जिन्हें पढ़कर मेरे हृदय के तार झनझना उठें, मेरा रोम-रोम खुशी से नाच उठे, जो लेखनी के जादूगर बाल्ज़ाक की पुस्तकों की भाँति हों। चीनी की गुड़िया के समान सुन्दर कटर की पत्नी भी अब मुझे कम अच्छी लगने लगी।

उसके यहाँ जाने से पहले मैं साफ़-सी क़मीज़ पहनता, बालों में कंघी करता और हर वह उपाय करने में कोई कसर न छोड़ता जिससे कि मैं कुछ भला दिख सकूं। इसमें कितनी सफलता मुझे मिलती थी, यह तो पता नहीं, लेकिन इतनी उम्मीद मैं अवश्य करता था कि भले आदमियों जैसी मेरी इस सज-धज को देखकर वह मुझसे अधिक सहज और मित्रतापूर्ण भाव से बातें करेंगी, और अपने साफ़-सुथरे चेहरे को बिल्लौरी मुस्कान से मुक्त रखेंगी। लेकिन वह मुस्कराए बिना न रहती और थकी हुई-सी मधुर आवाज़ में पूछती :

"तुमने पढ़ लिया है इसे? पसन्द तो आयी है?"

"नहीं।"

वह अपनी बारीक भौंहों को हल्का-सा बल देती, और उसाँस भरकर अपने उसी परिचित स्वर में गुनगुनाती :

"लेकिन क्यों?"

"यह सब तो मैं पहले ही पढ़ चुका हूँ।"

"यह सब क्या?"

"यही प्रेम-व्रेम की बातें..."

आँखें सिकोड़कर वह मीठी हँसी हँसती।

"अच्छा! पर प्रेम की बातें तो सभी पुस्तकों में लिखी होती हैं!"

बड़ी-सी आरामकुर्सी पर बैठी वह अपने छोटे-छोटे पाँवों को झुलाती, जिनमें वह रोंयेदार स्लीपर पहने होती, जम्हाई लेती, आसमानी लबादे को खींचकर अपने कन्धों से जरा और सटा लेती तथा गोद में पड़ी पुस्तक को अपनी गुलाबी उँगलियों के छोरों से ठकठकाती।

मेरा जी चाहता कि उससे पूछूँ :

"आप यहाँ से किसी दूसरी जगह क्यों नहीं चली जातीं? अफसर अभी भी आपके पास चिट्ठियाँ भेजते हैं और आपका मज़ाक उड़ाते हैं..."

लेकिन मेरा साहस साथ न देता और मैं, हाथ में "प्रेम" सम्बन्धी मोटी पुस्तक और हृदय में निराशा लिये वहाँ से चला आता।

अहाते में अब उसका और भी कुत्सित तथा मज़ाक उड़ाया जाता, दुनिया भर की उलटी-सीधी बातें उसके बारे में की जातीं। इन गन्दी और शायद झूठी बातों को सुनकर मेरा हृदय कचोट उठता। जब मैं उसके सामने न होता तो मुझे उस पर तरस आता, और उसे लेकर अनेक आशंकाएँ मेरे हृदय को कुरेदने लगती। लेकिन जब मैं उसके सामने होता और उसकी पैनी आँखों, बिल्ली की भाँति लचीले शरीर और हमेशा उल्लास भरे उसके चेहरे पर नज़र डालता तो मेरी सारी हमदर्दी और आशंकाएँ कोहरे की भाँति गायब हो जातीं।

वसन्त में वह एकाएक कहीं चली गयी और इसके कुछ ही दिन बाद उसके पति ने भी घर छोड़ दिया।

उनके कमरों में अभी कोई नया किराएदार नहीं आया था, वे खाली पड़े थे। मैंने उनका चक्कर लगाया। सूनी दीवारों पर तुड़ी-मुड़ी कीलों या उनके छेदों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता। दीवार के वे स्थल जहाँ तस्वीरें लटकी थीं, साफ़ उभरे हुए दिखाई देते थे। रोगनदार फ़र्श पर रंग-बिरंगे कपड़ों के चिथड़े, क़ागज़ के टुकड़े दवाइयों की टूटी-फूटी डिबिया, इत्र की शीशियाँ और उनके बीच पीतल की एक बड़ी पिन दिखाई पड़ रही थी।

यह सब देखकर मेरा जी उदास हो गया और कटर की पत्नी को एक बार और देखने तथा उसके सामने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरा मन ललकने लगा...

10

कटर की पत्नी के चले जाने से भी पहले से हमारे घर की निचली मंजिल में काली आँखोंवाली एक युवा महिला आ बसी थी। साथ में एक छोटी बच्ची और महिला की माँ भी थी। माँ बुढ़िया थी। उसके बाल सफ़ेद हो गये थे और वह कहरुबे के सिगरेट-होल्डर को मुँह में दबाए चौबीसों घण्टे सिगरेट का धुआँ उड़ाते रहती थी। युवा महिला बेहद खूबसूरत, गर्वीली और सबको अँगूठे से नीचे रखने वाली थी। आवाज़ गहरी और मधुर, लोगों से बोलते समय वह कुछ इस अन्दाज़ से अपना सिर पीछे की ओर फेंकती तथा आँखों को सिकोड़ लेती मानो वे इतनी दूर हों कि साफ़-साफ़ न दिखाई पड़ते हों। क़रीब-क़रीब हर रोज उसका सैनिक नौकर जिसका नाम तुफ़ायेव

था पतली टाँगों वाले सुरंग घोड़े को लेकर उसके घर के सामने आ खड़ा होता और महिला इस्पाती रंग की घुड़सवारी की लम्बी मखमली पोशाक पहने, हाथों में कटोरीदार सफ़ेद दस्ताने डाले और पाँव में पीले ऊँचे बूट कसे बाहर निकल आती। एक हाथ से अपनी पोशाक का छोर थामे और बैंगनी पत्थर की मूठवाला हण्टर पकड़े दूसरे हाथ से वह घोड़े के नथुने थपथपाती। घोड़े की बत्तीसी चमक उठती, अपनी आँखों को वह घुमाता तथा कड़ी ज़मीन को खुरखुराता और उसके समूचे बदन में एक सिहरन-सी दौड़ जाती।

"रोबेर! रोबेर!" वह धीमे स्वरे में गुनगुनाती और घोड़े की बहुत ही सुन्दर खमदार गरदन को ज़ोर-ज़ोर से थपथपाती।

फिर तूफ़ायेव के घुटनों पर अपना पैर रखती, हल्के से उचककर फुरती से घोड़े पर सवार हो जाती और घोड़ा गर्व के साथ इठलाता-नाचता बाँध के किनारे-किनारे चलने लगता। घोड़े पर वह कुछ इतने सहज भाव से बैठती मानो जन्म से ही घुड़सवारी करती आ रही हो।

वह उन विरल सुन्दर स्त्रियों में से थी जिनका सौंदर्य सदा नया और निराला प्रतीत होता है, जिन्हें देखकर हृदय में एक नशा-सा छा जाता है, और रोम-रोम ख़ुशी से नाचने लगता है। जब मैं उसकी ओर देखता तो ऐसा लगता कि डायना द-पोयतिये, रानी मार्गो, ल-वैलियेर तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की अन्य नायिकाओं का सौंदर्य भी बिला शक ऐसा ही रहा होगा।

छावनी के फौजी अफसर उसे बराबर घेरे रहते। साँझ के समय उसके यहाँ बेला, पियानो और गिटार बजाये जाते, नाच होते और गीत गाये जाते। अपनी ठिंगनी टाँगों पर उसके सामने फुदकने में ओलेसोव नाम का एक मेज़र अन्य सभी को मात कर देता। मोटा-ताजा बदन, सफ़ेद बाल और लाल चेहरा जिसकी चिकनाहट देखकर जहाज़ के किसी मैकेनिक के चेहरे का गुमान होता। वह गिटार बजाने में माहिर था, और युवा महिला के सामने इस तरह बिछ जाता था मानो वह उसका बहुत ही वफादार और ज़मीन चूमनेवाला चाकर हो।

घुँघराले बालों वाली उसकी पाँच वर्षीय बच्ची भी उतनी ही उज्ज्वल और सुन्दर थी जितनी कि वह खुद। अपनी बड़ी-बड़ी नीली-सी आँखों से वह बड़े ही शान्त, गम्भीर और आशा भरे अन्दाज़ में देखती। उसकी इस गम्भीरता से बचपन से अधिक बड़प्पन का पुट दिखाई देता।

बच्ची की नानी पौ फटते ही उठ बैठती और गयी रात तक घर के धंधों में जुटी रहती। भौंहें चढ़ा, मुँह बन्द तुफायेव और थलथल तथा ऐंचीतानी महरी काम में बुढ़िया का हाथ बँटाते। बच्ची के लिए कोई आया नहीं थी और वह लगभग बिना किसी देखभाल और निगरानी के पल और बढ़ रही थी। ओसारे में या उसके सामने जमा

कुन्दों के ढेर में वह दिन भर खेलती रहती। साँझ होते ही मैं बहुधा उसके पास पहुँच जाता और उसके साथ खेला करता और वह मुझे बहुत प्यारी मालूम होती। शीघ्र ही वह मुझसे इतनी घुल-मिल गयी कि परियों की कहानियाँ सुनते-सुनते वह मेरी गोद में ही सो जाती। जब वह सो जाती तब मैं उठता और अपनी बाँहों में सम्भाले उसके बिस्तर पर सुला आता। देखते-देखते वह इतनी हिल गयी कि जब तक मैं उसके पास जाकर उससे शुभ रात्रि न कहता, वह सोने से इंकार कर देती। मैं उसके कमरे में पैर रखता, रोब के साथ वह अपना छोटा-सा गुलाबी हाथ फैलाती और कहती :

"ख़ुदा हाफ़िज कल तक के लिए। कैसे कहना चाहिए, नानी?"

"ख़ुदा तुम्हें ख़ैरियत से रखे," मुँह और पतली नाक में से धुएँ की नीली धारें छोड़ते हुए उसकी नानी जवाब देती।

"ख़ुदा तुम्हें खैलियत से लखे कल तक, औल अब मैं सोऊँगी।"

वह दोहराती और लेस लगी अपनी रजाई में लपेटती।

"कल तक नहीं, बल्कि हमेशा खैरियत से रखे," उसकी नानी उसे ठीक करती।

"कल क्या हमेशा नहीं होता?"

"कल" शब्द से उसका ख़ास लगाव था और जो भी चीज़ उसके मन को भाती उसे ही वह कल के खाने में डाल देती। फूलों या टहनियों को वह मिट्टी में गाड़ देती और कहती :

"कल यह बाग़ बन जायेगा..."

"एक दिन कल में एक घोला ख़रीदूँगी और मम्मी की तरह उसपर सवाल होकर घूमने जाया कलूँगी..."

वह बहुत ही समझदार थी, लेकिन उत्साह और उछाह उसमें अधिक नहीं था। बहुधा खेलते-खेलते वह कुछ सोचने लगती और एकाएक पूछ बैठती :

"पादलियों के बाल औलतों जैसे कों होते हैं?"

एक दिन बिच्छूबूटी उसको चुभ गयी। वह उँगली से उसे धमकाते हुए कहने लगी :

"देखो, मैं भगवान पलालथना कलूँगी औल वे तुम्हें बली सजा देंगे। भगवान सभी को सजा दे सकते हैं—मम्मी को भी..."

कभी-कभी एक शान्त, गम्भीर उदासी उस पर छा जाती, अपने बदन को वह मुझसे सटा लेती। नीली, आशा भरी आँखों से आकाश की ओर देखती :

"नानी कभी-कभी गुस्सा होती हैं, पल मम्मी कभी गुस्सा नहीं कलतीं, वो तो बस हँसती लहती हैं। मम्मी को शब पाल कलते हैं, क्योंकि उनके मेहमान आते लहते हैं, आते लहते हैं औल मम्मी को देखते हैं, कोंकि वो बली सुन्दल हैं। वो—पाली मम्मी हैं। ओलेसोव भी कहते हैं—पाली मम्मी!"

बचपन की भाषा में एक अनजानी दुनिया के बारे में जब वह मुझे बताती तो बड़ा अच्छा लगता। अपनी माँ का ज़िक्र करते समय उसके उछाह और तत्परता का वार-पार न रहता, एक नये जीवन की मुझे झाँकी मिलती और रानी मार्गो की कहानी मुझे याद हो आती। इससे पुस्तकों में मेरा विश्वास और भी बढ़ता, अपने चारों ओर के जीवन में मैं और भी अधिक दिलचस्पी लेता।

एक दिन की बात है। साँझ का समय था। मेरे मालिक घूमने गये थे और मैं, बच्ची को अपनी गोद में लिये, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। बच्ची की आँखें झपक गयी थीं। तभी उसकी माँ घोड़े पर सवार बाहर से लौटी, लचक के साथ वह जीन से नीचे उतरी और झटके से सिर ऊँचा करके पूछा :

"क्या सो गयी है?"

"हाँ।"

"यह बात है..."

सैनिक तुफ़ायेव लपककर आया और घोड़े को अपने साथ ले गया। हण्टर को अपनी पेटी में खोंसते हुए महिला ने अपनी बाँहें फैलायीं और मुझसे कहा :

"इसे मुझे दे दो।"

"मैं खुद इसे पहुँचा दूँगा।"

"ऐं!.." पाँव पटककर वह इस तरह चिल्लाई मानो मैं घोड़ा हूँ।

लड़की चौंक उठी, आँखें मिचमिचाकर उसने देखा, माँ पर उसकी नज़र पड़ी, और उसने भी अपनी बाँहें फैला दीं। दोनों भीतर चली गयी।

डाँट-डपट का मैं आदी था। लेकिन इस महिला का चिल्लाना मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ। वह अगर हल्का-सा इशारा भी करती तो सब उसकी आँखों के आगे बिछ जाते।

कुछ ही क्षण बाद ऐंचीतानी महरी ने मुझे आवाज़ दी। बच्ची ने हठ पकड़ ली थी और बिना मुझसे विदा लिये बिस्तर पर सोने से इंकार कर दिया था।

कुछ गर्व के साथ मैंने ड्राइंगरूम में पाँव रखा। महिला लड़की को गोद में लिये बैठी थी और फुर्ती से उसके कपड़े उतार रही थी।

"लो, यह आ गया तुम्हारा अवदूत!" उसने कहा।

"यह अवदूत नहीं, यह तो मेला साथी है!"

"यह बात है? बहुत अच्छा। चलो, तुम्हारे इस साथी को कोई चीज़ भेंट करते हैं। करें?"

"हाँ-हाँ, जलूल भेंट कलो, माँ!"

"अच्छा, तो तुम अब झटपट से अपने बिस्तरे पर चली जाओ। मैं अभी उसे कोई चीज़ देती हूँ।"

"कल तक के लिए ख़ुदा हाफ़िज!" हाथ फैलाते हुए लड़की ने कहा। "ख़ुदा तुम्हें खैलियत से लखे, कल तक..."

"अरे, यह तुमने कहाँ से सीखा?" उसकी माँ ने अचरज से पूछा। "क्या नानी ने सिखाया है?"

"हाँ..."

जब लड़की सोने के लिए चली गयी तो महिला ने मुझे अपने पास बुलाया :

"तुम क्या लेना पसन्द करोगे?"

मैंने कहा कि मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, अगर पढ़ने के लिए कोई क़िताब मिल जाये तो अच्छा हो।

उसने अपनी सुहावनी, महकती हुई उँगलियों से मेरी ठोड़ी को ऊपर उठाया और प्रसन्न भाव से मुस्कराते हुए कहा :

"अच्छा, यह बात है, तुम्हें क़िताबें पढ़ने का शौक है, है न? कौन-कौन-सी क़िताबें पढ़ चुके हो?"

जब वह मुस्कराती तो और भी सुन्दर लगती। मैं सकपका गया और हड़बड़ाहट में जो दो-चार नाम याद आये, गिना दिए।

"इन पुस्तकों में क्या चीज़ तुम्हें अच्छी लगी?" उसने मेज़ पर हाथ रखकर और हल्के से उँगलियों को हिलाते हुए पूछा।

उसके बदन से फूलों की तेज और मीठी महक आ रही थी जिसमें घोड़े के पसीने की गन्ध भी कुछ अजीब ढंग से मिली हुई थी। अपनी लम्बी बरौनियों की ओट में से वह मुझे बड़े ध्यान से परख रही थी। यह पहला अवसर था जब किसी ने इस तरह मेरी ओर देखा था।

कमरा किसी पंछी का घोंसला मालूम होता था—इस हद तक यह सुन्दर गद्देदार मेज़-कुर्सियों से भरा था। खिड़कियाँ पौधों की घनी हरियाली में छिपी थीं। साँझ की धुँधली रोशनी में अलावघर के बर्फ़ की भाँति सफ़ेद टाइल चमक रहे थे। पास ही में काला प्यानो रखा था। दीवारों पर गिलट के धुँधले चौखटों में जड़ी सनदें लटक रही थीं। सनदों का कागज मटमैला पड़ गया था और उन पर स्लाव लिखावट में कुछ लिखा था। प्रत्येक चौखटे से एक डोरी लटकी हुई थी जिसके छोर में एक बड़ी-सी मोहर झूल रही थी। ये सभी चीज़ें, मेरी ही भाँति, विनीत और श्रद्धा भाव से उसकी ओर देख रही थीं।

मुझसे जितना बन सका, मैंने बताया कि मुसीबतों ने मेरे जीवन को कितना बोझिल और रसहीन बना दिया है, और यह कि पुस्तकें पढ़ने से कुछ देर के लिए जी जरा हल्का हो जाता है।

"अच्छा-आ, यह बात है?" उठते हुए उसने कहा। "बात तो बुरी नहीं है, बल्कि

ठीक ही है... अच्छा, तो क़िताबें मैं तुम्हें दूँगी, लेकिन इस वक़्त मेरे पास कोई नहीं है... हाँ, याद आया, अगर चाहो तो अभी इसे ले जा सकते हो...”

काउच पर पीली जिल्द की एक पुरानी-सी पुस्तक पड़ी थी। उसे उठाकर उसने मुझे दे दिया।

“जब इसे पढ़ चुको तो इसका दूसरा भाग ले जाना—इसके चार भाग हैं...”

मेश्चेर्स्की लिखित ‘पीटर्सबर्ग के रहस्य’ बगल में दबाये मैं वहाँ से लौट आया, और बड़े ध्यान से उसे पढ़ने बैठ गया। लेकिन पहले ही पन्नों से मुझे यह स्पष्ट हो गया कि मेड्रिड, लन्दन अथवा पेरिस के ‘रहस्यों’ के मुकाबले में पीटर्सबर्ग के ‘रहस्यों’ में कहीं अधिक बोरियत भरी है। ले-देकर पुस्तक में मुझे एक ही चीज़ पसन्द आयी। वह चीज़ थी लाठी और आज़ादी के बीच संवाद :

“मैं तुमसे बढ़कर हूँ,” आज़ादी बोली, “क्योंकि मेरे पास बुद्धि है।”

“ओह नहीं, मैं तुमसे बढ़कर हूँ, क्योंकि मैं सबल हूँ,” लाठी ने जवाब दिया।

कुछ देर तक दोनों बहस करती रहीं और फिर गरमाकर लड़ने पर उतर आयी। लाठी ने आज़ादी की खूब मरम्मत की, और जहाँ तक मुझे याद है घायल हो जाने के कारण उसे अस्पताल ले जाया गया जहाँ उसने दम तोड़ दिया।

पुस्तक में एक निहिलिस्ट* की बात हो रही थी। मुझे याद है कि पुस्तक के लेखक प्रिंस मेश्चेर्स्की ने इस पात्र को एक ऐसा विषैला हौवा बनाकर पेश किया था जिसकी नज़र पड़ने से मुर्ग़ियाँ वहीं की वहीं ढेर हो जाती हैं। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो निहिलिस्ट शब्द अपमानजनक तथा अशिष्ट है। इसके अलावा और कुछ मेरे पल्ले नहीं पड़ा और इस बात से मेरा जी भारी हो गया। मुझे लगा कि अच्छी पुस्तकों को समझना मेरे बूते से बाहर है। पुस्तक के अच्छी होने में मुझे रत्ती भर भी सन्देह नहीं था। मैं यह सोच तक नहीं सकता था कि इतनी सुन्दर और रोबदार महिला का बुरी पुस्तकों से कभी कोई लगाव हो सकता है।

“क्यों, पसन्द आयी?” जब मैं मेश्चेर्स्की का पीला उपन्यास लौटाने गया तो उसने पूछा।

मुझसे यह स्वीकार करते नहीं बना कि पुस्तक अच्छी नहीं लगी। डर था कि कहीं वह बुरा न मान जाये।

वह केवल हँस दी और परदे के पीछे अपने सोनेवाले कमरे में गायब हो गयी। कमरे में से वह लौटकर आयी तो उसके हाथ में चमड़े की नीली जिल्द बँधी एक पुस्तक थी।

---

* निहिलिज़्म (सर्वखण्डनवाद)—19वीं सदी के सातवें दशक में रूस में इस विचारधारा ने जन्म लिया। इसके अनुयायी, स्वतन्त्र विचारों के मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी कुलीन-बुर्जुआ रीतियों-परम्पराओं और भू-दासता की विचारधारा का ज़ोरदार खण्डन करते थे।—सं.

"यह तुम्हें अच्छी लगेगी। लेकिन इसे गन्दा न कर लाना, समझे!"

इसमें पुश्किन की कविताएँ थीं। एक ही बैठक में मैं सारी कविताएँ पढ़ गया। मैं एक ऐसी अनबुझ अनुभूति से ओतप्रोत था, जिसका अनुभव अनदेखे सुन्दर स्थल पर पहुँच जाने पर होता है—सदा यह इच्छा होती है कि तुरन्त ही सारी जगह भाग-भागकर देख ली जाये। ऐसी अनुभूति तब होती है, जब बड़ी देर तक दरंदली जंगल के काईदार चप्पों पर चलने के बाद, यक़ायक़ आँखों के सामने फूलों से भरा, धूप में नहाता सूखा मैदान खुलता है। एक क्षण के लिए हम उसे मन्त्रमुग्ध से देखते रहते हैं, फिर आनन्दमग्न भागकर उसका पूरा चक्कर लगाते हैं और पैरों पर उर्वरा धरती की नरम घास के प्रत्येक स्पर्श से हृदय में खुशी की लहर दौड़ जाती है।

पुश्किन की कविताओं ने, उनकी सादगी और संगीत ने, मुझ पर कुछ ऐसा जादू किया कि इसके बाद बहुत देर तक गद्य मुझे अस्वाभाविक लगने लगा और उसे पढ़ना अटपटा लगता। 'रूस्लान और ल्युद्मीला' का कथा-प्रवेश तो मानो नानी की श्रेष्ठतम कहानियों का निचोड़ था और कुछ पंक्तियों ने अपनी सच्चाई से मुझे मुग्ध कर दिया :

वहाँ, उन अनजानी पगडण्डियों पर,
अनदेखे जन्तुओं के पद-चिह्न...

इन अद्भुत पंक्तियों को मैं बार-बार गुनगुनाता और मेरी आँखों के सामने हर डग पर ओझल हो जानेवाले उन पथों का चित्र मूर्त हो उठता जिनसे मैं खूब परिचित था, वे पगडण्डियाँ मेरी आँखों के सामने उभर आतीं जिनकी दबी-दबी घास किसी के अभी-अभी उधर से गुजरने की कहानी कहती और घास की दबी-कुचली पत्तियों पर ओस के कण पारे की भारी बूँदों की भाँति अभी भी चमकते होते। भरी-पूरी ध्वनि से युक्त पंक्तियाँ सहज ही ज़बान पर चढ़ जातीं। हर बात में एक अज़ीब निखार दिखाई देता। मेरा रोम-रोम खुशी से भर जाता, जीवन अधिक आसान और सुहावना मालूम होता। कविताएँ क्या थीं नये जीवन का हर्षनाद थीं। कितनी अच्छी बात है कि मुझे पढ़ना आता है!

पुश्किन की पद्यमय गाथाएँ मेरे हृदय और समझ के लिए सबसे निकट थीं। कुछेक बार पढ़ने पर मुझे ज़बानी याद हो गईं। जब मैं सोने के लिए जाता तो चुपचाप लेटकर अपनी आँखें बन्द कर लेता, उन्हें मन ही मन दोहराता और मुझे पता भी न चलता कि कब नींद आ गयी। कभी-कभी मैं अफ़सरों के साईसों-अरदलियों को भी उन्हें सुनाता। वे सुनते, उनके चेहरे खिल जाते, वे हँसते और गालियाँ प्रशंसा के उद्गार बनकर उनके मुँह से प्रकट होतीं। सीदोरोव मेरा सिर सहलाता और धीमे स्वर में कहता :

"वाह, कितनी सुन्दर है, है ना?"

मालिकों से यह छिपा न रहा कि आजकल मैं किस रंग में डूबा हूँ। बुढ़िया मुझे डाँटना-झिड़कना शुरू करती :

"देखो तो, क़िताबों में मस्त हो गया है, शैतान की दुम, और समोवार तो चार दिन से साफ़ नहीं किया। दो-चार बेलने पड़े, तो पता चलेगा..."

लेकिन पुश्किन की कविताओं के सामने बेलने की भला क्या बिसात? जवाब में मैं पुश्किन की पंक्तियाँ गुनगुना उठता :

बदी से उसे प्यार,
काले दिल की चुड़ैल खुर्राट...

महिला मेरी नज़रों में और भी ऊँची उठ गयी। वह इतनी बढ़िया पुस्तकें जो पढ़ती थी! वह चीनी की गुड़िया नहीं थी।...

पुस्तक को लौटाते समय मेरा जी भारी हो गया। उसने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और विश्वास के साथ बोली :

"यह तो तुम्हें पसन्द आयी है न! क्या तुमने कभी पुश्किन के बारे में सुना है?"

पुश्किन के बारे में एक पत्रिका में मैं कुछ पढ़ चुका था। लेकिन मैंने इसका ज़िक्र तक नहीं किया। मैं खुद उसके मुँह से सुनना चाहता था कि वह क्या कहती है।

पुश्किन के जीवन और मृत्यु का थोड़े में कुछ हाल बताने के बाद वसन्ती दिन की भाँति मुस्कराकर उसने पूछा :

"देखा तुमने, स्त्री से प्रेम करना कितना खतरनाक होता है?"

अब तक जितनी भी पुस्तकें मैं पढ़ चुका था, उनके हिसाब से तो निश्चय ही यह ख़तरनाक था—ख़तरनाक, लेकिन साथ ही अच्छा भी। मैंने कहा :

"ख़तरनाक है, फिर भी सब प्रेम करते हैं! और स्त्रियाँ भी इससे तड़पती हैं..."

बरौनियों के पीछे से उसने मेरी ओर देखा, जैसे कि वह हर चीज़ को देखती थी। फिर गम्भीर स्वर में बोली :

"अच्छा, यह बात है? तुम यह समझते हो? तो मैं तुम्हें यही कहूँगी कि इस सत्य को कभी आँखों की ओट न होने देना!"

इसके बाद उसने पूछना शुरू किया कि कौन-कौन-सी कविताएँ मुझे ख़ास तौर से अच्छी लगीं।

मैं उसे बताने लगा। कई कविताएँ मैं जबानी सुना गया। सुनाते समय उछाह के साथ मैं हाथ भी हिलाता जाता। वह चुपचाप, सन्नाटा खींचे, सुनती रही। फिर वह उठी और कमरे में टहलने लगी। गम्भीर स्वर में बोली :

"मेरे बेशक़ीमती नन्हे बन्दर, तुम्हें स्कूल में जाना चाहिए। मैं इस बारे में

सोचूँगी... जिनके यहाँ तुम काम करते हो, क्या वे तुम्हारे रिश्तेदार हैं?"

जब मैंने बताया कि हाँ, रिश्तेदार हैं, तो उसने कुछ इस अन्दाज़ से "ओहो" कहा मानो मेरी निन्दा कर रही हो।

इसके बाद उसने मुझे 'बेरांजे के गीतों' का एक संग्रह दिया। यह बहुत ही बढ़िया सुनहरी कोर और चमड़े की लाल जिल्द वाला संस्करण था। गीतों के साथ चित्र भी थे। इन गीतों में तीखी, झुलसा देने वाली कड़वाहट भी थी और सभी बाधा-बंधनों को तोड़कर बहने वाली खुशी की लहर भी। इन दोनों का हृदय पर छा जाने वाला अद्‌भुत मेल था।

'बूढ़े भिखारी' के तीखे शब्दों से मेरी रगों में रक्त की रवानी रुक गयी :

दुष्ट कीड़ा—करता परेशान है तुम्हें?
कुचल दो पैरों तले घिनौने कीड़े को!
तरस क्या, रौंद डालो फौरन!
क्यों मुझे पढ़ाया नहीं,
प्रचण्ड शक्ति को नहीं दिया निकास?
जाता कीड़ा भी चींटी बन!
मरता मैं भी भाइयों की बाँहों में।
किन्तु बूढ़ा मैं अकेला मरता हूँ
मिले तुम्हें बदला
पुकार यह करता हूँ।

'रोता हुआ पति' नाम का एक दूसरा गीत पढ़कर मैं इतना हँसा कि आँखों से पानी निकलने लगा। उसकी यह पंक्ति मुझे ख़ास तौर से याद है :

हैं जो सीधे-सादे लोग
नहीं मन में जिनके कुछ खोट
सीख लेते वे ही जल्दी,
कला हँसने और हँसाने की!

बेरांजे के गीत मेरी भावनाओं को मुँहज़ोर बनाते, शैतानी करने, चुटकियाँ लेने तथा फब्तियाँ कसने के लिए उकसाते तथा अटपटी तथा बुरी लगने वाली बातें करने के लिए मेरा जी ललकता और शीघ्र ही मैंने यह सब शुरू कर दिया। उसकी पंक्तियाँ भी मुझे जबानी याद हो गईं और जब भी अरदलियों के रसोईघर में जाने का मौका मिलता, बेहद उत्साह के साथ मैं उन्हें सुनाता।

लेकिन, निम्न पंक्तियों की वजह से, मुझे जल्दी ही यह सब छोड़ देना पड़ा :

बरस सत्रह की छोकरी का,
कौन न पकड़े छोर!

इन पंक्तियों के बाद स्त्रियों को लेकर अत्यन्त घिनौनी चर्चा चल पड़ी। अपमान की भावना से मेरा दिमाग भन्ना गया, गुस्से के मारे मैंने पतीला उठाया और उसे सैनिक येर्मोख़िन के सिर पर दे मारा। सीदोरोव और दूसरे अरदलियों ने लपककर उसके बेडौल पंजों से मुझे छुड़ाया। इसके बाद अफ़सरों के रसोईघरों में जाने का मैंने नाम नहीं लिया।

बाहर घूमने-फिरने की मुझे मनाही थी, और सच तो यह है कि मटरगश्ती के लिए समय भी नहीं मिलता था। पहले से कहीं ज़्यादा काम मुझे अब करना पड़ता था। अब बरतन माँजने, झाड़ू-बुहारी देने और बाज़ार का सौदा-सुलफ़ लाने के अलावा मैं हर रोज चौड़े तख़्तों पर कालीन से कपड़ा जमाता, फिर मालिक के खींचे हुए डिज़ाईन उस पर चिपकाता, इमारती तख़्मीनों की नक़लें उतारता और ठेकेदारों के बिलों की जाँच-पड़ताल करता—मेरा मालिक मशीन की भाँति सुबह से लेकर शाम तक काम में जुटा रहता।

मेले की सार्वजनिक इमारतें इन दिनों सौदागरों के निजी हाथ में जा रही थीं। बाज़ारों को फिर से बनाने के काम में खूब आपाधापी चल रही थी। मेरे मालिक ने पुरानी दुकानों के मरम्मत करने और नयीं दुकानें बनाने का ठेका लिया था। सीधी मेहराबों के पुनर्निमाण, रोशनदानों को बनाने और इसी तरह की अन्य चीज़ों के नक़्शे वह बनाता था। इन नक़्शों तथा इसके साथ लिफ़ाफ़े में पचीस रूबल का एक नोट रखकर मैं बूढ़े वास्तुकार के पास पहुँचता। वह लिफाफा सम्भालकर रख लेता और नक़्शों पर लिख देता :

"नक़्शे सही हैं। सारा काम इनके मुताबिक मेरी निजी निगरानी में हुआ है।" अन्त में अपने दस्तख़त बना देता। कहने की आवश्यकता नहीं कि निर्माणाधीन इमारतें उसने देखी तक नहीं थीं तथा जाँच और निगरानी करने का तो सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि बीमारी ने उसे बेकार कर दिया था, और वह हमेशा घर के भीतर ही बन्द रहता था।

मेले के इंस्पेक्टर तथा अन्य कई ज़रूरी लोगों को भी मैं घूस का पैसा देने जाता और उनसे, अपने मालिक के शब्दों में, "विभिन्न क़ानूनों को ताक पर रखने का परमिट" ले आता। मेरे इन सब कामों से खुश होकर मालिक ने मुझे यह इजाज़त दे दी कि साँझ के समय जब कभी वे बाहर घूमने जायें तो अहाते में बैठकर मैं उनका इन्तज़ार कर सकता हूँ। ऐसा विरले ही होता, लेकिन जब भी वे आते तो आधी रात के बाद लौटते। इस तरह मुझे कई घण्टे मिल जाते, ओसारे या उनके सामने पड़े कुन्दों

के ढेर पर मैं अड्डा जमाता और रानी मार्गो के घर की खिड़कियों पर नज़र जमाए वहाँ से छनछनकर आते संगीत, चुहल की आवाज़ों को अवाक सुनता रहता।

खिड़कियाँ खुली होतीं। पर्दों और फूलों की बेलों की झिर्रियों में से मुझे अफसरों की सुन्दर आकृतियों की झलक दिखाई देती। जो कमरे में इधर से उधर मँडराते रहते। अद्‌भुत सादगी और सौन्दर्य से सदा सज्ज़ित वह मानो कमरे में तैरती मालूम होती और गोल-मटोल थलथल मेज़र उसके दामन से चिपका लुढ़कता-पुढ़कता रहता।

मन ही मन मैंने उसका नाम रानी मार्गो रख छोड़ा था। खिड़कियों पर मेरी आँखें जमी रहती और मन ही मन मैं सोचता :

"सो यह है वह इन्द्रधनुषी जीवन जिससे फ़्रांसीसी उपन्यासों के पन्ने रंगे रहते हैं!" जब मैं रानी मार्गो के चारों ओर पुरुषों को इस तरह मँडराते-भनभनाते देखता जैसे फूलों पर भँवरे मँडराते हैं, तो मेरा जी अदबदाकर भारी हो जाता, और मेरा छोटा-सा हृदय ईर्ष्या से बल खाने लगता।

कभी-कभी, लम्बे क़द और गम्भीर चेहरेवाले एक अफसर पर मेरी नज़र पड़ती। अन्य लोगों के मुकाबले में वह बहुत कम आता था। उसके माथे पर घाव का निशान था, और उसकी आँखें खूब गहरी धँसी हुई थीं। वह हमेशा अपनी वायलिन साथ लेकर आता। वायलिन बजाने में उसे कमाल हासिल था। तारों को जब वह छेड़ता तो राह चलते लोग ठिठककर सुनने लगते, मोहल्ले के लोग कुन्दों के ढेर पर आकर बैठ जाते, जहाँ तक मेरे मालिक भी—अगर वे उस समय घर पर होते—खिड़कियाँ खोलकर मुग्ध भाव से सुनते, वायलिन बजाने वाले की सराहना करते। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उनके मुँह से किसी की तारीफ सुनी हो,—केवल गिरजे के पादरी को छोड़कर, और मैं जानता था कि मछली की मज़ेदार कचौरियों पर उसकी राल जितनी टपकती थी, उतनी किसी भी संगीत पर नहीं!

कभी-कभी भरभरी-सी आवाज़ में अफ़सर गाता या कविता सुनाता। गाते समय वह ज़ोरों से साँस भरता, हथेली को माथे से सटा लेता। एक दिन, उस समय जब मैं खिड़की के नीचे बच्ची से खेल रहा था, रानी मार्गो ने उससे गाने के लिए अनुरोध किया। कुछ देर तक तो वह टालता रहा, फिर बहुत ही सुनिश्चत अन्दाज़ में उसके मुँह से निकला :

> है केवल गीत को आवश्यकता सौन्दर्य की—
> सौंदर्य को नहीं चाहिए गीत भी...

मुझे ये पंक्तियाँ बेहद पसन्द आयी और न जाने क्यों, इस अफ़सर पर मुझे तरस आया।

उस समय तो मैं निहाल हो जाता जब मेरी रानी पियानो पर अकेली बैठी होती,

कमरे में उसके सिवा जब और कोई न होता। मेरे मस्तिष्क और हृदय पर संगीत का नशा-सा छा जाता, खिड़की के सिवा और कुछ न दिखाई देता, लैम्प की सुनहरी रोशनी में उसके कमनीय शरीर की रेखाएँ और भी उभर आतीं; उसका गर्वीला चेहरा बहुत ही कोमल और सुन्दर मालूम होता और उसकी श्वेत उँगलियाँ पक्षियों की भाँति पियानो के परदों पर फड़फड़ाती रहतीं।

मैं उसे देखता रहता, संगीत की उदास स्वर लहरियाँ मेरे कानों का स्पर्श करतीं और मैं अजीब-अजीब सपनों का ताना-बाना बुनने लगता : कहीं ज़मीन में गड़ा खज़ाना मेरे हाथ लग जाता है और मैं वह सब उसे ही सौंप देता हूँ—वह धनवान हो! कल्पना में नये स्कोबेलेव का रूप धारण कर मैं तुर्कों के खिलाफ़ युद्ध करता, उनसे भारी हर्ज़ाना लेकर नगर के सबसे अच्छे हिस्से में उसके लिए एक घर बनवाता, ताकि उसे हमारे इस मकान में न रहना पड़े, हमारे इस मोहल्ले से वह दूर चली जाये जहाँ सब एक स्वर से उसके बारे में गन्दी बातें करते और उस पर कीचड़ उछालते हैं।

हमारे अहाते में काम करनेवाले सभी नौकर-चाकर और उसमें आबाद सभी लोग, ख़ास तौर से मेरे मालिक, रानी मार्गो के बारे में भी वैसी ही कुत्सित बातें करते थे जैसी कि वे कटर की पत्नी के बारे में करते थे, अन्तर इतना ही था कि इसका ज़िक्र करते समय वे कुछ अधिक चौकन्ने हो जाते थे, धीमे स्वर में चारों ओर देख-देखकर बोलते थे।

शायद वे उससे डरते थे। कारण कि वह किसी ऊँचे कुल के व्यक्ति की विधवा थी। तुफ़ायेव ने एक बार मुझे बताया था,—और वह निरक्षर नहीं था, बल्कि पढ़ना जानता था और सदा इंजील का पाठ करता रहता था,—कि उसकी दीवारों पर लटकी सनदें रूस के प्राचीन ज़ारों ने—गोदुनोव, अलेक्सेई और प्योत्र महान ने—उसके पति के दादा-परदादाओं को दी थीं। लोग शायद इसलिये भी उससे डरते थे कि कहीं वह बैंगनी पत्थर की मूठवाले अपने हण्टर से उनकी खबर न लेने लगे। कहा जाता था कि एक बार इस हण्टर से उसने किसी बड़े अफ़सर की खूब मरम्मत की थी।

लेकिन फुसफुसाकर और धीमें स्वरों में कहे गये शब्द केवल इसलिये अच्छे नहीं हो जाते कि वे ज़ोरों से नहीं कहे गये। मेरी रानी के चारों ओर ऐसी दुश्मनी के बादल मँडराते जो मेरी समझ में नहीं आते थे और मुझे सताते थे। वीक्तर दून की हाँकता कि एक बार आधी रात के बाद लौटते समय उसने रानी मार्गो के शयनकक्ष की खिड़की में झाँककर देखा। वह काउच पर सिर्फ सोने का लबादा पहने बैठी थी और मेज़र घुटनों के बल झुका हुआ उसके पाँव के नाखून काट रहा था और स्पंज से उसके पाँव पखार रहा था।

यह सुनकर बूढ़ी मालकिन ने ज़मीन पर थूका और उसे झिड़क दिया। छोटी मालकिन के गाल बुरी तरह लाल हो गये।

"ओह वीक्तर!" वह चीख उठी। "तुझे जरा भी शर्म-लिहाज नहीं है? और इन बड़े लोगों की चाल-ढाल भी निराली है—सौ घाट का पानी पिए बिना उन्हें चैन नहीं आता!"

मालिक केवल मुस्कराकर रह गया, बोला कुछ नहीं। इसके लिए मन ही मन मैंने उसका भारी अहसान माना। लेकिन यह डर बराबर बना रहा कि अपनी ज़बान खोलकर इस नक़्क़ारख़ाने में किसी भी क्षण हमदर्दी के साथ वह अपना स्वर भी मिला सकता है। स्त्रियों ने खूब सिसकारियाँ भरीं, आह और ओह का अम्बार लगा दिया और खोद-खोदकर एक-एक बात उन्होंने वीक्तर से पूछी : महिला ठीक किस तरह से बैठी थी, और मेज़र ठीक किस प्रकार उसके सामने झुका हुआ था, और वीक्तर चुने हुए निवाले उनके सामने फेंकता रहा :

"मेज़र का थूथा एकदम चुकन्दर जैसा लाल था और जीभ बाहर निकल आयी थी..."

मुझे इसमें शर्मिन्दगी की ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी कि मेज़र महिला के पाँव के नाखून काट रहा था। लेकिन यह बात मेरे मन में नहीं जमी कि उसकी जीभ बाहर निकली हुई थी। मुझे लगा कि यह घिनौना झूठ उसका मनगढ़ंत है।

"अगर यह ठीक नहीं था तो आप खिड़की के भीतर नज़र गड़ाए देखते कैसे रहे?" मैंने कहा। "आप कोई बच्चे तो हैं नहीं..."

झिड़कियों की उन्होंने मुझ पर बौछार की, लेकिन उनकी झिड़कियों की मुझे चिन्ता नहीं थी। मेरे मन में एक ही लगन थी—लपककर जीने से नीचे उतर जाऊँ और मेज़र की भाँति महिला के सामने घुटनों के बल झुककर कहूँ :

"आप यहाँ से चली जाइये, इस घर को छोड़ दीजिए, मेरी बात मानिये!"

अब, जब मैं जान चुका था कि दुनिया में दूसरी तरह का जीवन और दूसरी तरह के लोग, दूसरी तरह के विचार और भावनाएँ भी हैं, तो वह अहाता और इस अहाते में बसने वाले मुझे और भी ज़्यादा घिनौने मालूम होते। कुत्सा का ऐसा जाल यहाँ फैला था कि उसमें सभी फँसे थे,— एक भी माई का लाल ऐसा न था जो उससे बचा हो। फौज का पादरी जो फटे हाल और सदा रोगी-सा आदमी था, उसे भी इन लोगों ने नहीं छोड़ा था—चरित्रहीन पियक्कड़ के रूप में उसे बदनाम कर रखा था। मेरे मालिकों की ज़बान जब चलती तो वे सभी अफ़सरों और उनकी पत्नियों को एक सिरे से पाप के कुण्ड में डुबो देते। स्त्रियों के बारे में सैनिकों की आये दिन एक-सी बातों से मुझे उबकाई आने लगी थी और सबसे ज़्यादा उबकाई मालिकों पर आती थी—उनके फतवों की असलियत, जिन्हें वे दूसरों पर करते थे, मैं खूब अच्छी तरह पहचानता था। दूसरों की छीछालेदार कसना, उनके नुक़्स निकालकर रखना, एक ऐसा मनोरंजन है जिस पर कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, और बे-पैसे का यह मनोरंजन ही उनका एकमात्र

मनबहलाव था। ऐसा मालूम होता मानो ऐसा करके वे खुद अपने जीवन की ऊब, नेकचलनी और घिसघिस का बदला चुका रहे हों।

रानी मार्गो के बारे में जब वे एक से एक गन्दे क़िस्से बघारने लगते तो मेरा हृदय बुरी तरह उमड़ता-घुमड़ता और ऐसी-ऐसी बातें मुझे झँझोड़ डालतीं जिनसे कि उस आयु में मेरा कोई वास्ता नहीं होना चाहिए था। कुत्सा फैलाने वालों के खिलाफ़ मेरे हृदय में ज़ोरों से घृणा सिर उठाती, जी करता कि सबको चिढ़ाऊँ, उनके लिए जीना हराम कर दूँ। लेकिन कभी-कभी अपने पर और अन्य सब लोगों पर तरस की भावना मुझे घेर लेती। तरस की यह गुमसुम भावना मुझे घृणा से ज़्यादा असह्य मालूम होती।

रानी मार्गो के बारे में मैं जितना जानता था, उतना वे नहीं, और मैं मन ही मन डरता कि कहीं उन्हें भी यह सब न मालूम हो जाये जो मैं जानता हूँ।

त्योहारों के दिन सुबह के समय जब घर के लोग गिरजे चले जाते तो मैं अपनी रानी मार्गो के पास पहुँच जाता। वह मुझे अपने शयनकक्ष में ही बुला लेती, और मैं सुनहरी गद्दियों से सुसज्जित एक छोटी-सी आरामकुर्सी पर बैठ जाता, बच्ची उचककर मेरी गोदी में सवार हो जाती और मैं उसकी माँ से उन क़िताबों के बारे में बातें करता जिन्हें मैं पढ़ चुका था। अपनी छोटी-छोटी हथेलियों पर गालों को टिकाए वह एक चौड़े पलंग पर लेटी रहती, कमरे की अन्य सभी चीज़ों की भाँति उसके बदन पर भी सुनहरे रंग की चादर पड़ी होती, चोटी में गुँथे हुए काले बाल उसके गेहुवाँ कन्धे पर लटके उसके सामने बिखरे होते और कभी पलंग की पट्टी से खिसककर फ़र्श तक झूलने लगते।

मेरी बातें सुनते समय कोमल नज़रों से वह मुझे देखती और हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कहती :

"अच्छा यह बात है?"

मुझे ऐसा मालूम होता जैसे सचमुच की रानी की भाँति किसी ऊँचे सिंहासन से वह अपनी मुस्कान का दान कर रही है। गहरी और कोमल आवाज़ में जब वह बोलती तो मुझे लगता वह सदा यही कहती है :

"मैं जानती हूँ कि मैं अन्य लोगों से ऊँची, उत्कृष्ट हूँ, और यह कि वे मेरे लिए किसी मसरफ़ के नहीं हैं।"

कभी-कभी मैं उसे आईने के सामने एक नीची-सी कुर्सी पर बैठे हुए बाल सँवारते देखता। उसके बाल भी उतने ही घने और लंबे थे जितने कि नानी के। वे उसके घुटनों और कुर्सी की बाँहों पर छा जाते, उसकी पीठ पर से झूमते हुए फ़र्श को छूने लगते। आयीने में मुझे उसकी गदराई हुई छातियाँ दिखाई देतीं। मेरी मौजूदगी में ही वह अपनी चोली कसती और मोजे पहनती, लेकिन उसका नंगा बदन मेरे हृदय में शर्मनाक भावनाएँ नहीं जगाता था, बल्कि उसका सौन्दर्य एक आह्लादपूर्ण गौरव का मुझमें संचार

करता था। उसके बदन से सदा फूलों की महक निकलती जो वासना में डूबे विचारों और भावनाओं से कवच की भाँति उसकी रक्षा करती।

मैं मज़बूत बदन का और खूब भला-चंगा था। स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के भेद मुझसे छिपे नहीं थे। लेकिन इन सम्बन्धों के बारे में लोगों को मैं इतने गन्दे और हृदयहीन ढंग से तथा इस हद तक कुत्सित रूप में रस लेते हुए बातें करते सुन चुका था कि इस स्त्री के साथ किसी पुरुष के आलिंगन की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था, मेरे मन में यह बात खूब गहरी पैठ गयी थी कि उसके शरीर को अपने निर्लज्ज और दुस्साहसी हाथों से छूने का किसी को अधिकार नहीं है। मुझे पक्का यकीन था कि रसोईघरों और ओने-कोने वाले प्रेम से रानी मार्गो का कोई वास्ता नहीं हो सकता। वह ज़रूर ही किसी अन्य, ज़्यादा ऊँचे और भले आनन्द का, एक दूसरे ही प्रकार के प्रेम का भेद जानती होगी।

लेकिन एक दिन काफ़ी दोपहर बीते जब मैंने उसके बैठने के कमरे में पाँव रखा तो शयनकक्ष वाले दरवाज़े पर पड़े परदे के पीछे से मेरी रानी के खिलखिलाकर हँसने और किसी पुरुष के बोलने की आवाज़ सुनकर मैं ठिठक गया।

"अरे, जरा ठहरो तो!" वह कह रहा था। "तुम भी गजब करती हो... कोई विश्वास ही नहीं होता..."

मैं समझता था कि मुझे उलटे पाँव लौट जाना चाहिए, लेकिन मेरे पाँवों ने मानो हिलने से इंकार कर दिया।

"कौन है?" उसने पूछा। "अरे, तुम हो? भीतर चले आओ!"

कमरा फूलों की महक में डूबा था। खिड़कियों पर परदे खिंचे हुए थे। कमरे में अँधेरा-सा छाया था... रानी मार्गो ठोड़ी तक अपने बदन पर रजाई खींचे पलंग पर लेटी थी। उसके पास ही, दीवार से टिककर, वह वायलिन-वादक अफसर बैठा था। वह केवल एक कमीज पहने था। कमीज का गला खुला था और दाहिने कन्धे से लेकर सीने तक घाव का एक निशान था—इस हद तक चटक लाल कि इस अध-उजियाले कमरे में भी साफ़ नज़र आता था। उसके बाल कुछ अटपटे ढंग से बिखरे हुए थे। उसके उदास तथा घाव-लगे चेहरे को मैंने पहली बार मुस्कराते हुए देखा। वह अजीब ढंग से मुस्करा रहा था और अपनी बड़ी-बड़ी स्त्रैण आँखों से मेरी रानी की ओर इस तरह से देख रहा था मानो उसके सौन्दर्य को उसने पहली बार देखा हो।

"यह मेरा मित्र है," रानी मार्गो ने कहा, और मैं समझ नहीं पाया कि किसके लिए उसने इन शब्दों का इस्तेमाल किया था : मेरे लिए अथवा उस अफसर के लिए।

"अरे, तुम तो वहीं ठिठककर क्यों खड़े-खड़े रह गये?" उसकी आवाज़ जैसे कहीं बहुत दूर से आती मालूम हुई। "इधर आओ..."

जब मैं निकट पहुँचा तो उसने अपनी उघरी हुई गर्म बाँहें मेरे गले में डाल दीं

और बोली :

"बड़े होने पर तुम भी जीवन के सुख का आनन्द ले सकोगे... जाओ!"

क़िताब को मैंने ताक पर रख दिया, एक दूसरी पुस्तक उठाई और वहाँ से चला आया।

मेरे हृदय में कोई चीज़ कचर गयी। स्पष्ट ही, एक क्षण के लिए भी मैं यह नहीं सोच सकता था कि मेरी रानी भी अन्य साधारण लोगों की भाँति प्रेम करती होगी, न ही उस अफसर के बारे में ऐसी कोई बात मेरे दिमाग में आती थी। मैं उसकी मुस्कान देख रहा था—वह खुशी के साथ मुस्करा रहा था, जैसे कोई बच्चा सहसा विस्मित होकर मुस्कराता है, उसके उदास चेहरे का जैसे एकदम कायापलट हो गया था। उसका हृदय, निश्चय ही, उसके प्रेम से डगमगा रहा था। और यह कोई अनहोनी बात नहीं थी—ऐसा भला कौन था जो उसे प्रेम करने से अपने आपको रोक सकता? और एक ऐसे आदमी पर जो इतनी सुन्दर वायलिन बजाता था और भावों में खूब गहरे डूबकर कविताएँ सुनाता था, उसका प्रेम न्योछावर करना भी कोई अनहोनी घटना नहीं था...

इन दिलासों को पाने की ज़रूरत इस बात का स्पष्ट सूचक थी कि जो कुछ मैंने देखा है उसके प्रति और खुद रानी मार्गो के प्रति मेरे रवैये में ज़रूर कहीं न कहीं कोई खोट है। मुझे ऐसा लगा जैसे कहीं कोई चीज़ खो गयी हो। कई दिन गहरी उदासी ने मुझे घेरे रखा।

...एक दिन मेरे दिमाग पर जैसे शैतान सवार हो गया और मैंने जमकर उत्पात मचाया। पुस्तक लेने जब मैं महिला के पास पहुँचा तो उसने कड़ी आवाज़ में कहा :

"मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि तुम इतना जंगलीपन करोगे... शैतानी की भी एक हद होती है!"

मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सका, मेरा हृदय भर आया और मैंने उसे बताना शुरू किया कि मेरे लिए जीना कितना कठिन है, कि उस समय जब लोग उसके बारे में वाही-तवाही बकते हैं तो मेरे हृदय पर क्या गुजरती है। वह मेरे सामने खड़ी थी, उसका हाथ मेरे कन्धों पर रखा था। पहले तो वह सन्नाटा खींचे चुपचाप सुनती रही, फिर एकाएक खिलखिलाकर हँसी और मुझे हल्के हाथ से धकेलते हुए बोली :

"बस-बस, मैं यह जानती हूँ। समझे, मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है!"

इसके बाद मेरे दोनों हाथ उसने अपने हाथों मे ले लिये और बहुत ही कोमल आवाज़ में बोली :

"इन गन्दी बातों पर जितना कम ध्यान तुम दोगे, तुम्हारे लिए उतना ही अच्छा होगा... पर तुम हाथ तो अपने ठीक से नहीं धोते..."

भला यह भी कोई कहने की बात थी, मेरी तरह अगर उसे भी बरतन माँजने, कमरों में फ़र्श धोने और गन्दे पोतड़े धोने पड़ते तो मैं समझता हूँ, उसके हाथ भी मुझसे

कोई ख़ास अच्छे दिखाई न देते।

"जब कोई अच्छी तरह से रहना और जीवन बिताना जानता है तो लोग उससे कुढ़ते और जलते हैं, और अगर वह नहीं जानता है तो उसके मुँह पर थूकते हैं," उसने गम्भीर स्वर में कहा। फिर, मेरे गले में बाँह डालकर अपनी ओर खींचते हुए उसने गहरी नज़रों से मेरी आँखों में देखा और मुस्कराते हुए बोली :

"क्या तुम मुझे चाहते हो?"

"हाँ।"

"बहुत?"

"हाँ, बहुत।"

"कैसे चाहते हो?"

"पता नहीं..."

"शुक्रिया तुम बहुत ही प्यारे लड़के हो। बड़ा अच्छा लगता है जब कोई मुझे चाहता है..."

वह एक छोटी-सी हँसी हँसी और ऐसा मालूम हुआ मानो वह कुछ कहने जा रही हो, लेकिन एक उसाँस भरकर चुप हो गयी। मेरे हाथों को वह अभी भी अपने हाथों में थामे थी। "तुम्हें यहाँ आने की पूरी छूट है। जब भी मौका मिले, चले आया करो..."

उसके इस बुलावे का मैंने पूरा फायदा उठाया और उसकी मित्रता से मुझे भारी लाभ हुआ। दोपहर का भोजन करने के बाद मेरे मालिक जब झपकी लेते तो मैं तुरंत खिसक जाता और अगर वह घर पर होती तो उसके साथ एकाध घण्टा या इससे भी अधिक समय बिताता।

"तुम्हें रूसी क़िताबें पढ़नी चाहिए, हमारे रूसी जीवन को जानना-समझना चाहिए।" वह मुझे सीख देती और अपनी चपल गुलाबी उँगलियों से महकते हुए बालों में पिन खोंसती रहती।

इसके बाद वह रूसी लेखकों के नाम बताती और फिर पूछती :

"इन्हें भूलोगे तो नहीं?"

बहुधा ऐसा होता है कि सोच में डूबी-सी वह एकाएक मानो अपने आप को झिड़की देते हुए, कह उठती :

"मैं भी कैसी हूँ? तुम यों ही घूमते हो, और मुझे याद तक नहीं रहता कि तुम्हारी पढ़ाई के लिए कुछ करना है। उफ..."

कुछ देर उसके पास बैठे रहने के बाद, हाथों में कोई क़िताब लिये जब मैं लपककर वापस लौटता तो हृदय में एक नए निखार का अनुभव करता।

अक्साकोव की लिखी हुई पुस्तक 'जीवनवृत्त', बढ़िया रूसी उपन्यास 'जंगलों में', चकित कर देनेवाले 'शिकारी के संस्मरण'* मैं पढ़ चुका था। ग्रेबेन्को और सोल्लोगूब

की कितनी ही पुस्तकें और वेनेवितीनोव, ओदोयेव्स्की तथा त्युच्चेव की कविताएँ भी मैं पढ़ गया था। इन पुस्तकों ने मेरे हृदय को निखारा और उन खरोंचों तथा दाग धब्बों को साफ़ कर दिया जो कटु और मैली-कुचैली वास्तविकता से रगड़ खाने के कारण मेरे हृदय पड़ गये थे। अच्छी क़िताबों का महत्व अब मैं समझता था और जानता था कि मेरे लिए उनका होना कितना ज़रूरी है। उन्हें मैं पढ़ता और एक अडिग विश्वास से मेरा हृदय भर जाता—मुझे लगता कि दुनिया में मैं अकेला नहीं हूँ और, देर या सवेर, मैं अपना रास्ता खोज ही लूँगा!

नानी मुझसे मिलने आती। मैं उसे रानी मार्गो के बारे में बताता। मुग्ध कर देनेवाले शब्द मेरे मुँह से निकलते। नानी सुनती और चुटकी में भरपूर नास लेकर सूँघते हुए कहती :

"जी खुश हो गया सुनकर। भले लोगों की इस दुनिया में कमी नहीं। आँखें उठाकर देखने भर की ज़रूरत है, यह नहीं हो सकता कि वे न मिलें।"

एक बार उसने कहा :

"कहो तो मैं भी उससे मिलती जाऊँ। तुम्हारे लिए उसका शुक्रिया ही अदा कर दूँगी।"

"नहीं जाओ..."

"अच्छी बात है, नहीं जाऊँगी... यह दुनिया भी कितनी सुन्दर है, ऐ मेरे भगवान! मैं तो इससे कभी विदा न लेने को राज़ी हूँ!"

मुझे स्कूल भेजने की अपनी इच्छा को रानी मार्गो पूरा होते नहीं देख सकी। ईस्टर के बाद सातवें रविवार को, त्योहार के दिन, एक ऐसी दुःखद घटना घटी कि उसने मेरा बण्टाधार ही कर दिया होता।

त्योहार से कुछ समय पहले ही मेरी पलकें बुरी तरह सूज गयी थीं और मेरी आँखें क़रीब-क़रीब पूरी पट हो गयी थीं। मेरे मालिक घबराए कि कहीं मेरी आँखें न जाती रहें। खुद मेरे हृदय में भी यही डर समाया था। वे मुझे जान-पहचान के एक जच्चा डाक्टर के पास ले गये। हेइनूरिख रोद्ज़ेविच उसका नाम था। मेरी पलकों को उलटकर उसने उनमें रोहों को चीरा और आँखों पर पट्टी बाँधे निपट अंधकार में अंधा बना कई दिन तक मैं दुःख से कराहता रहा। त्योहार से एक दिन पहले पट्टी खुली और बिस्तर से उठते समय ऐसा मालूम हुआ मानो मैं क़ब्र से उठ रहा हूँ जिसमें मुझे जिन्दा ही दफना दिया गया था। अंधा होने से बढ़कर भयानक और कुछ नहीं। जिसके सिर यह मुसीबत पड़ती है, उसके लिए दस में से नौ हिस्से दुनिया चौपट हो जाती है।

त्योहार का उल्लास भरा दिन था। आँखों की वजह से दोपहर में ही मुझे सब

---

* महान रूसी लेखक इवान तुर्गेनेव का एक कहानी संग्रह।—सं.

कामों से छुट्टी मिल गयी और अरदलियों से मिलने के लिए मैं एक के बाद एक सभी रसोईघरों के चक्कर लगाने लगा। गम्भीर तुफ़ायेव को छोड़कर अन्य सब नशे में धुत्त थे। साँझ के समय येर्मोखिन ने सीदोरोव के सिर पर लकड़ी का ऐसा कुन्दा जमाया कि वह दरवाज़े पर ही ढेर हो गया। येर्मोखिन की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी और वह खड्ड में कहीं छिप गया।

सारे अहाते में सीदोरोव की हत्या की घबराहट भरी खबर फैल गयी। ओसारे के पास भीड़ जमा हो गयी जहाँ, रसोई और दरवाज़े के बीच, सीदोरोव निश्चल पड़ा हुआ था। लोग दबे स्वरों में कानाफूसी कर रहे थे कि पुलिस को बुलाना चाहिए, लेकिन न तो कोई पुलिस बुलाने गया और न ही किसी ने उसके बदन को हाथ लगाने का साहस किया।

तभी धोबिन नताल्या कोज़्लोव्स्काया वहाँ आयी। वह बैंगनी रंग का नया फ़्राक पहने थी और अपने कन्धों पर एक सफ़ेद रुमाल डाले थी। तमतमाकर लोगों को इधर-उधर करती और भीड़ को चीरती वह ड्योढ़ी में चली आयी, लाश के पास पहुँची और झुककर उसे देखने लगी।

"काठ के उल्लुओ, यह ज़िन्दा है!" उसने ज़ोरों से चिल्लाकर कहा। "पानी लाओ!"

"अरी, तू क्यों बीच में टाँग अड़ाती?" लोग चेतावनी देने लगे। "कहीं ऐसा न हो कि लेने के देने पड़ जायें!"

"बको नहीं, पानी लाओ, पानी!" उसने इस तरह चिल्लाकर कहा मानो उसे आग बुझाने के लिए पानी की ज़रूरत हो। इसके बाद, बहुत ही कामकाजी ढंग से उसने अपना नया फ़्राक खींचकर घुटनों पर चढ़ा लिया, झपटकर अपना पेटीकोट नीचे खिसका लिया और सैनिक का खून से लथपथ सिर अपने घुटने पर रख लिया।

डरपोक लोग जो वहाँ खड़े तमाशा देख रहे थे, भुनभुनाते और भला-बुरा कहते धीरे-धीरे छँट गये। ड्योढ़ी के अध-उजियाले में धोबिन की छलछलाती हुई आँखों पर मेरी नज़र पड़ी जो उसके गोल-मटोल चिट्टे चेहरे पर तमतमाती चमक रही थीं। लपककर मैं एक डोल पानी ले आया। वह मुझसे बोली कि इसे सीदोरोव के सिर और छाती पर उंडेल दूँ।

"लेकिन मुझे तर न कर देना, मैं मिलने जा रही हूँ," चेताते हुए उसने कहा।

सैनिक को होश आ गया, उसने अपनी आँखें खोलीं और कराह उठा।

"इसे जरा उठा तो," नताल्या ने कहा और अपने हाथ आगे फैलाकर उसकी बगल में डाले जिससे कपड़े खराब न हों, और उसे थाम लिया। हम दोनों उसे उठाकर रसोईघर में ले गये और बिस्तर पर लिटा दिया। फिर एक गीले कपड़े से उसने उसका मुँह साफ़ किया, और बाहर जाते हुए बोली :

"कपड़ा गीला करके इसके माथे पर रखता रह। मैं बाहर जाती हूँ और उस दूसरे उल्लू को अभी खोजकर लाती हूँ। शैतान कहीं के! अभी क्या है, जब जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी, तब सारा नशा उड़ जायेगा!"

खून के दाग लगा अपना पेटीकोट खिसकाकर उसने नीचे उतार दिया और एक कोने में फेंक दिया। फिर सावधानी से थपथपाकर कलफ़ लगे अपने नए फ़्राक को ठीक किया। इसके बाद वह बाहर चली गयी।

सीदोरोव ने अपना बदन लम्बा फैला लिया, हिचकियाँ लेने और आहें भरने लगा। उसके सिर से काले रंग का खून टपक-टपककर मेरे नंगे पाँव पर गिर रहा था। मुझे बड़ी घिन आयी, लेकिन डर के मारे मुझसे अपना पाँव हटाते नहीं बना।

मुझे बड़ी उदासी मालूम हुई। बाहर हर चीज़ त्योहार के रंग में रंगी थी और खुशी से छलछला रही थी, घर का ओसारा और फाटक नवजात भोज-वृक्षों से सजे थे, हर खम्भे पर मेपल और रोवन वृक्ष की टहनियों का सिंगार था, मोहल्ले में सब कुछ हरा-भरा दिख रहा था और ऐसा मालूम हो रहा था मानो वसन्त का यह उल्लास जल्दी ही विदा न होगा और जीवन अब और अधिक उजला, कूड़े-करकट से साफ़ और खुशी से छलछलाता बीतेगा।

सैनिक ने उबकाई लेकर उल्टी कर दी। गर्म वोद्का और हरे प्याज की दमघोट गन्ध से रसोईघर भर गया। जब-तब धुँधले तथा चपटे चेहरे और चिपकी नाकें खिड़की के शीशों से सटी हुई दिखाई देतीं, और चेहरे के दोनों ओर फैली हुई हथेलियाँ बेढंगे कानों की भाँति मालूम होतीं।

सैनिक यह याद करते हुए कि कैसे क्या हुआ बड़बड़ा रहा था :

"यह क्या? क्या मैं गिर पड़ा था? येर्मोख़िन? अच्छा दोस्त निकला..."

वह खाँसा, खुमारी में उसने आँसू बहाए और रोने-झींकने लगा :

"मेरी बहिना... ओ बहिना..."

पानी में भीगा, कीच में सना और गन्धाता, वह उठा और अपने पाँवों पर खड़े होने का उसने प्रयत्न किया, लेकिन चकराकर फिर बिस्तर पर ही ढह गया और भय से आँखों को टेरते हुए बोला :

"बिल्कुल ही मार डाला रे..."

यह सुनकर मुझे हँसी आ गयी।

"कौन शैतान हँसता है?" धुँधली आँखों से मेरी ओर देखते हुए उसने कहा। "तू हँसता कैसे है? अरे, मैं तो हमेशा के लिए मारा गया..."

और बड़बड़ाते हुए वह मुझे अपने दोनों हाथों से धकेलने लगा :

"पहली मुसीबत में पैगम्बर इल्या, दूसरे में आड़े वक़्त में घोड़े पर सवार सन्त जार्ज, और तीसरे—हट जा, भेड़िये, मेरे रास्ते से!.."

"पागल मत बन!" मैंने कहा।

वह बेमतलब गुस्सा हो गया, दहाड़ने लगा, पैर रगड़ने लगा।

"मैं मारा गया, और तू..."

उसने अपने भारी, गन्दे और ढीले हाथ से मेरी आँखों पर ज़ोरों से प्रहार किया। मैं चिल्लाकर अंधा-सा बना, जैसे-तैसे बाहर अहाते में भागा जहाँ नताल्या येर्‌मोख़िन की बांहें पकड़े उसे खींचते हुए ला रही थी और चिल्लाकर कह रही थी :

"चलता है कि नहीं, लद्दू घोड़े? यह क्या हुआ?" मुझे सम्भालते हुए उसने पूछा।

"लड़ता है..."

"लड़ता है?" नताल्या ने अचरज से कहा। फिर येर्‌मोख़िन को झटकाकर बोली :

"शुक्राना भेज भगवान को, उसने तुझे एक बार बचा लिया!"

मैंने आँखों को पानी से धोया और ड्योढ़ी से ही भीतर झाँककर देखा : दोनों सैनिक गले से लिपटे हुए नशीले मेल-मिलौवल में एक-दूसरे का मुँह चूम-चाट रहे थे और उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। इसके बाद नताल्या को गले से लगाने के लिए लपके, लेकिन थप्पड़ से खबर लेते हुए वह चिल्लायी :

"कुत्ते कहीं के, खबरदार जो मेरी ओर जरा भी अपने पंजे फैलाये! मुझे भी क्या तुमने बबुआइन समझा है? खैर इसी में है कि अपने मालिकों के आने से पहले एकाध झपकी लेकर भले आदमी बन जाओ। नहीं तो तुम्हारी जान पर आफत आयेगी!"

छोटे बच्चों की भाँति उसने दोनों को लिटा दिया, एक को पलंग पर, दूसरे को फ़र्श पर। जब दोनों खर्राटें भरने लगे तो वह ड्योढ़ी में निकल आयी।

"मेरी फ़्राक सारी गन्दी हो गयी, और मैं थी कि लोगों से मिलने-जुलने के लिए घर से निकली थी। उसने तुझे मारा?... बेवकूफ़ कहीं का! वोद्‌का जो न कराये थोड़ा है। तू कभी न पीना, मेरे बच्चे, इसकी लत कभी न डालना..."

फाटक के पास एक बेंच पर उसके पास ही बैठते हुए मैंने पूछा :

"तुम्हें शराबियों से डर नहीं लगता?"

"मैं किसी से नहीं डरती—कोई नशे में हो या न हो। मैं सभी को इससे क़ाबू में रखती हूँ!" कसकर बँधी अपनी लाल मुट्ठी दिखाते हुए उसने कहा। "ख़सम मेरा, भगवान को प्यारा हो गया, वह भी कसकर पीता था। मैं तो, जब वो ज़्यादा नशे में होता, उसके हाथ-पाँव रस्सी से जकड़ देती। और वो सो उठता, नशा उसका उतर जाता तो उसका पतलून खींचकर मोटी-ताजी और मजबूत संटियों से उसकी मरम्मत करती, 'खबरदार जो फिर कभी मुँह से लगाई, ब्याह किया तो फिर पीने का कोई काम नहीं, दिल बहलाने को बीवी है, वोद्‌का नहीं।' हाँ, बस खूब खबर लेती और जब तक मेरे हाथ जवाब न देते, तड़ातड़ संटियाँ जड़ती रहती। संटियों की मार से वह मोम जैसा नर्म हो जाता।"

"तुम ताक़तवर हो," मैं कहता, और मुझे हौवा का ध्यान हो आता जिसने ख़ुदा को भी चकमा दिया था।

नताल्या ने साँस खींचते हुए कहा :

"औरत को मर्द से भी ज़्यादा ताक़त की ज़रूरत है,— उसके पास दो मर्दों के बराबर ताक़त होनी चाहिए, लेकिन भगवान ने मर्दों को ज़्यादा बलवान बना दिया। लेकिन मर्दों पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।"

वह बहुत ही इत्मीनान से, बिना किसी जलन या कुढ़न के बोल रही थी। उसके हाथ उसकी भरी-पूरी छातियों पर बँधे हुए थे। उसकी पीठ बाड़े से सटी थी और उसकी आँखें कूड़ा-करकट छितरे रोड़ी से भरे बाँध पर उदास भाव से जमी थीं। उसकी सयानी बातों में कितना समय निकल गया, कितना नहीं मुझे कुछ ध्यान न रहा। सहसा, बाँध से दूसरे छोर पर, अपने मालिक पर मेरी नज़र पड़ी। पत्नी के साथ, उसे अपनी बाँह का सहारा दिए, वह इधर ही आ रहा था। धीमे डगों से, रोब के साथ, मुर्ग़े-मुर्ग़ियों के जोड़े की भाँति तिरछी गरदन किये वे चले आ रहे थे। वे हमारी ही ओर ताक रहे थे और आपस में कुछ बातें कर रहे थे।

मैं लपककर ओसारे का दरवाज़ा खोलने भागा। जीने पर चढ़ते हुए मेरी मालकिन ने तीखी आवाज़ में कहा :

"क्यों, धोबिनों से चुहल करने लगा? सीख लिया नीचेवाली से यह सब?"

बात इतनी बेसिर पैर की थी कि उसने मेरे हृदय को छुआ तक नहीं। मुझे अधिक दुःख इस बात से हुआ कि मालिक भी हल्की हँसी हँसते हुए बोला :

"हुआ क्या—इसका भी वक़्त आ गया है!..."

अगले दिन सुबह के समय जब मैं लकड़ी लेने के लिए सायबान में गया तो दरवाज़ें में बल्लियों के लिए बने छेद के पास, मुझे एक खाली बटुवा पड़ा हुआ मिला। इस बटुवे को सीदोरोव के हाथों में मैं बीसियों बार देख चुका था। सो मैं उसे लेकर तुरन्त सीदोरोव के पास पहुँचा।

"और पैसे कहाँ हैं?" अपनी उँगलियों से बटुवे के भीतर टटोलते हुए उसने पूछा। "एक रूबल और तीस कोपेक थे। निकाल इधर!"

उसने अपने सिर पर एक तौलिया लपेट रखा था। उसका चेहरा पीला और खिंचा हुआ-सा था। अपनी सूजी हुई आँखों को मिचमिचाकर उसने मेरी ओर देखा और इस बात पर विश्वास करने से इंकार कर दिया कि मुझे जब बटुवा मिला तो वह खाली था।

तभी येर्मोख़िन भी आ गया और उस पर अपना रंग चढ़ाते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश करने लगा कि मैं चोर हूँ।

"इसी ने बटुवा खाली किया है," मेरी ओर सिर हिलाकर इशारा करते हुए उसने

कहा, “कान पकड़कर इसे इसके मालिक के पास ले चल! कोई भी सिपाही किसी दूसरे सिपाही भाई की चोरी नहीं करेगा!”

उसके शब्दों से साफ़ मालूम होता था कि यह सब उसकी ही करतूत है, पैसा निकालकर उसने बटुवा हमारे सायबान में डाल दिया। मैंने आव देखा न ताव, उसके मुँह पर ही कहा :

“झूठा कहीं का, पैसे खुद तूने चुराए हैं!”

मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मेरा यह अन्दाज़ सही है, क्योंकि मेरी बात सुनते ही डर और झुँझलाहट से उसका चेहरा तिकोनिया बन गया वह चीखा :

“है कोई सबूत?”

लेकिन मैं सबूत कहाँ से देता? येर्मोख़िन ने चीखकर मुझे पकड़ा और खींचता हुआ बाहर अहाते में ले गया। सीदोरोव भी चीखता हुआ पीछे-पीछे लपका। शोर सुनकर पड़ोसियों के सिर खिड़कियों से बाहर आये। रानी मार्गो की माँ भी दम साधे, निश्चल भाव से सिगरेट पीते हुए देख रही थी। यह सोचकर कि अपनी रानी की नज़रों में मेरी अब कोई साख न रहेगी, मेरा सिर एकदम चकरा गया।

मुझे याद है कि सैनिकों ने मेरे हाथ जकड़ रखे थे। मेरे मालिक लोग उनके सामने खड़े थे, एक-दूसरे के स्वर से स्वर मिलाकर शिकायतें सुन रहे थे। छोटी मालकिन चिहुँक उठी :

“इसी की करतूत है। कल रात, फाटक के पास, यह धोबिन से चुहल कर रहा था इसकी जेब न खनखनाती होती, तो वह इसे हाथ तक न धरने देती...”

“ज़रूर यही बात है!” येर्मोख़िन चिल्लाया।

मेरे पावों के नीचे फ़र्श मानो हिल गया। सारे बदन में मानो आग लग गयी। झल्लाकर मैं मालिकन पर चिल्लाया और इसके बाद बुरी तरह मार खाई।

लेकिन पिटायी से मेरा हृदय इतना घायल नहीं हुआ जितना कि इस बात से कि रानी मार्गो मेरे बारे में क्या सोचेगी। उसकी नज़रों में अपने को अब मैं कैसे ऊँचा उठा सकूँगा? बहुत बुरा था मेरा हाल उस समय।

सौभाग्य से देखते-देखते सारे अहाते और मोहल्ले के समूचे ओर-छोर में सैनिकों ने चोरी की यह घटना तेजी से फैला दी। साँझ होते न होते, उस समय जबकि मैं अटारी में मुँह छिपाए पड़ा था, मुझे नताल्या कोज़्लोव्स्काया के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी :

“बड़ा नवाबज़ादा है जो मैं अपना मुँह बन्द रखूँ? बस, सीधी तरह से चला आ, मैं कहती हूँ कि चला आ, ज़्यादा ना-नुकर न कर। नहीं तो तेरे अफ़सर के सामने सारा भण्डाफोड़ कर दूँगी और तू खिंचा-खिंचा फिरेगा!”

मैं फौरन भाँप गया कि हो न हो, यह तड़प-झड़प मुझसे ही सम्बन्ध रखती है।

वह हमारे ओसारे के पास ही खड़ी थी और चिल्ला रही थी और उसकी आवाज़ तेज और ज़ोर पकड़ती जा रही थी।

"कल तूने मुझे कितने पैसे दिखाए थे? कहाँ से आये वे तेरे पास, बता तो जरा?"

खुशी के मारे मेरा गला रुँध-सा गया। सीदोरोव का मिनमिनाना भी सुनायी पड़ रहा था :

"ओह, येर्मोखिन्, येर्मोख़िन..."

नताल्या कह रही थी :

"और सिर पर पड़ी इस लड़के के—चोर भी बना, मार भी खाई?" मेरा मन हुआ कि लपककर फौरन नीचे पहुँच जाऊँ और खुशी से झूमकर धोबिन को चूम लूँ, लेकिन तभी, मुझे अपनी मालकिन के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी :

"चुप रह छिनाल! लड़के को चोर किसी ने नहीं समझा, न ही उसके लिए वह पिटा। उसने मार खाई अपनी बदतमीज़ी के लिए!"

"छिनाल तुम खुद हो, मेमसाहिबा, और ऊपर से मोटी गाय भी!" उनकी यह तड़प-झड़प मेरे लिए मधुर संगीत थी। दिल पर लगी चोट और नताल्या के प्रति कृतज्ञता के आँसू मेरे हृदय में उमड़-घुमड़ आये और उन्हें रोकने के प्रयत्न में दम घुटने लगा।

फिर मेरा मालिक, धीमे डगों से, अटारी में आ गया और मेरे पास ही बैठ गया।

"क्यों, भाई, पेशकोव, तेरी क़िस्मत ही खराब है?" अपने बालों को ठीक करते हुए उसने कहा।

कोई जवाब दिए बिना ही मैंने मुँह फेर लिया।

कुछ रुककर उसने फिर कहा :

"लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि तू बेहद मुँहफट है!"

"ठीक होने पर मैं आपके यहाँ से चला जाऊँगा..." मैंने धीमी आवाज़ में कहा।

कुछ देर तक उसने कुछ नहीं कहा, चुपचाप बैठा सिगरेट का धुआँ उड़ाता रहा। इसके बाद, सिगरेट के छोर पर अपनी नज़र गड़ाए बोला :

"जैसा तू ठीक समझे। तू कोई बच्चा तो है नहीं, अपना भला-बुरा खुद सोच सकता है..."

और वह चला गया। सदा की भाँति मुझे उस पर तरस आया।

चार दिन बाद मैंने वह जगह छोड़ दी। मेरे मन में गहरी इच्छा थी कि रानी मार्गो के पास जाकर उससे विदा ले आऊँ, लेकिन उस तक पहुँचने का साहस न बटोर सका और, सच बात तो यह है कि, मन ही मन मैं यह उम्मीद बाँधे था कि वह खुद मुझे बुलायेगी।

बच्ची से विदा लेते समय मैंने कहा :

“अपनी माँ से कहना कि मैं उनका कृतज्ञ हूँ और उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। कहोगी न?”

“हाँ,” बहुत ही कोमल और प्यारी मुस्कान के साथ उसने वचन दिया। फिर बोली, “विदा, कल तक के लिए, है न!”

बीस वर्ष बाद उससे फिर मेरी भेंट हुई। तब वह राजनीतिक पुलिस के एक अफसर की पत्नी थी...

11

एक बार फिर मैंने जहाज़ में बरतन धोने का काम सम्भाला। इस जहाज़ का नाम था ‘पेर्म’, बड़ा और तेज रफ़्तार, हँस की भाँति एकदम सफ़ेद। इस बार मेरा ओहदा था—किचन ब्वाय। मेरा काम बावर्चियों का हाथ बँटाना था। वेतन सात रूबल महीना।

जहाज़ का बारमैन एक गोल-मटोल गावदुम और बददिमागी से बफरा हुआ, गेंद-सा गंजा आदमी था। हाथों को कमर के पीछे बाँधे सुबह से साँझ तक वह डेक पर चक्कर लगाता, उस सुअर की भाँति जो गर्मी और धूप से बौखलाकर किसी छायादार कोने की खोज में भटक रहा हो। उसकी पत्नी बार की शोभा बढ़ाती। उम्र चालीस के ऊपर, सुन्दर लेकिन मुरझायी हुई सी। पाउडर इतना थोपती कि गालों पर से झड़ने लगता और सफ़ेद चिपचिपी धूल की भाँति उसके भड़कीले कपड़ों पर जमा होता रहता। रसोईघर की बागडोर भारी वेतन पानेवाले बावर्ची इवान इवानोविच के हाथों में थी जिसे सब “नाटा भालू” कहते। नाटा कद, स्थूल शरीर, तोते जैसी नाक और सबको ठेंगे पर रखनेवाली आँखें। तबियत का शौकीन, हमेशा कलफ़दार कालर लगाता, रोज दाढ़ी छिलता, इस हद कि उसके गालों की खाल में नीलापन झलकता था। उसकी बलदार काली मूँछें ऊपर को खड़ी रहतीं; जब भी खाली हाथ होता अपनी तपी हुई लाल उँगलियों से उन्हें बराबर ऐंठता और एक छोटे-से गोल दस्ती शीशे में देखकर गर्व से तन जाता।

जहाज़ी याकोव शूमोव, जो भट्टी में कोयला झोंकने का काम करता था, जहाज़ के लोगों में सबसे ज़्यादा दिलचस्प था। चौकोर काठी, चौड़े कन्धे। नाक की नोक ऊपर को उठी हुई, चेहरा फावड़े की भाँति चपटा, घनी भौंहों में छिपी भालू जैसी आँखें, दलदल की काई की भाँति झल्लेदार दाढ़ी गालों को घेरे हुए, सिर पर इन घुँघराले बालों के गुथने से टोपी-सी बन गयी थी—अपनी टेढ़ी-मेढ़ी उँगलियों को वह मुश्किल से उनके बीच से गुजार पाता। वह ताश खेलने में बहुत तेज़ था, बाज़ी पर पैसे लगाता था और खाने पर इस बुरी तरह टूटता कि देखकर अचरज होता। भूखे कुत्ते की भाँति

वह रसोईघर के आस-पास ही लटकता रहता। कभी बोटी के लिए हाथ फैलाता और कभी हड्डियों के लिए। साँझ को वह "नाटे भालू" के साथ चाय पीता और अपने जीवन के अजीबोगरीब क़िस्से सुनाता।

बचपन में वह रियाज़ान नगर के गड़रिये के साथ गुजर करता था। एक दिन कोई ईसाई साधु उधर से गुजरा और उसके कहने-फुसलाने से वह मठ में भर्ती हो गया। नए साधु के रूप में वह चार साल तक मठ में रहा।

"आज दिन भी मैं साधु ही होता,— ख़ुदा का एक काला सितारा," वह सरपट बोलता जाता, "पर एक तीर्थ यात्रिनी ने हमारे मठ में आकर सब गड़बड़ कर दिया। वह पेंजा की रहने वाली थी। क्या बताऊँ, इस नन्हीं-सी औरत ने मेरा दिमाग ही पलट दिया। ओह, कितना अच्छा, ओह, कितना मज़बूत! मुझे देखकर वह चहकी। फिर बोली, 'एक मैं हूँ, बेदाग़ विधवा, एकदम अकेली। चलो न मेरे साथ? घर-बाहर का काम करना। मेरा अपना घर है, मुर्ग़े-मुर्ग़ियों के परों का धन्धा करती हूँ। बोलो, क्या कहते हो?'"

"मुझे भला क्या उज़्र होता? मैं उसके साथ हो लिया। वह मुझे अपना सेवक बनाना चाहती थी, पर मैं उसका प्रेमी भी बन गया। तीन साल तक उसके साथ मौज की और..."

"नाटा भालू" अपनी नाक पर निकले मस्सों को व्यग्र भाव से देखते हुए उसकी बातें सुन रहा था। आख़िर वह झुँझला उठा :

"सफ़ेद झूठ बोलना कोई तुझसे सीखे!" बीच में ही उसने कहा। "झूठ बोलने से अगर सोना बरसता तो कारूँ का खजाना बटोर लेता!"

याकोव जुगाली-सी करता मुँह चला रहा था। उसकी छल्लेदार सफ़ेद दाढ़ी जबड़े के साथ ऊपर-नीचे हरकत कर रही थी और उसके छाज-से कान फड़फड़ा रहे थे। बावर्ची के चुप हो जाने पर उसकी जबान फिर से समगति से कैंची की भाँति चलने लगी :

"उम्र में वह मुझसे बड़ी थी। जल्दी ही मैं उससे उकता गया। सच जानो, मैं उससे तंग आ गया और उसे छोड़ उसकी भतीजी पर मैंने डोरे डाले। एक दिन उसे इसका पता चल गया। फिर क्या था, उसने मुझे घर से बाहर निकाल दिया..."

"यानी बाक़ायदा हिसाब चुकता करके उसने तुझे विदा कर दिया!" बावर्ची ने भी याकोव की ही भाँति सहज भाव से कहा।

जहाज़ी याकोव ने चीनी की एक डली अपने मुँह में डाली और फिर कहना जारी रखा :

"इसके बाद सूखे पत्ते की तरह हवा के साथ मैं इधर-उधर उड़ता और भटकता रहा। फिर व्लादीमिर शहर के एक बूढ़े फेरीवाले के साथ मेरा गठबन्धन हुआ। उसके

साथ मैंने आधी दुनिया नाप डाली—बाल्कन पहाड़ों तक हम गये। सभी तरह के रंग-बिरंगे लोगों को देखा—तुर्कों और रूमानियाइयों, यूनानियों और आस्ट्रियाइयों, दुनिया भर के लोगों से वास्ता पड़ा। एक से ख़रीदा, दूसरे को बेचा...”

“चोरी भी की?” बावर्ची ने पूरी गम्भीरता से पूछा।

“बूढ़े फेरीवाले ने किसी पर कभी हाथ साफ़ नहीं किया,— नहीं, कभी नहीं। और उसने मुझे भी कहा था, ‘पराये देशों में किसी चीज़ पर हाथ न डालना, यहाँ तो अगर कोई मामूली-से मामूली चीज़ भी चुराई तो सिर साफ़ धड़ से अलग कर देंगे।’ लेकिन यह न समझना कि मैंने चोरी करने की कोशिश नहीं की। कोशिश तो मैंने की, लेकिन कुछ बना नहीं। एक दिन मैं व्यापारी के अस्तबल से घोड़ा खोलकर भागा। लेकिन भाग नहीं सका, पकड़ा गया, और यह समझ लो कि खूब पिटा। मारने से जब उनका जी भर गया तो मुझे खींचते हुए थाने में ले गये। थानेवालों ने मुझे बन्द कर दिया। सचमुच तो हम दो थे—एक असली और खूब खरा घोड़ा-चोर था, दूसरा मैं जिसे घोड़ा चुराने का केवल शौक़ चर्राया था कि देखो, इसमें क्या मज़ा आता है। हाँ तो उसी व्यापारी ने उन दिनों एक नया हम्माम बनवाया था और मैं उसमें अलावघर बना रहा था। अब हुआ यह कि वह बीमार पड़ गया और बुरे-बुरे सपनों में वह मुझे देखता और बस उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम। घबराकर वह बड़े अफसर के पास गया और उससे भिनभिनाकर बोला, ‘उसे छोड़ दो। सपनों में भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। अगर मैं उसे माफ नहीं करूँगा तो कौन जाने, वह मेरी जान ही ले ले। कम्बख्त जादू जानता है, मुझे सपनों में परेशान करता है।’ हाँ तो अफसर ने उसकी बात मान ली। मानता क्यों नहीं, वह बहुत बड़ा व्यापारी जो था। सो मैं थाने से बाहर निकल आया...”

“वे चूक गये। तुझे हरगिज़ नहीं छोड़ना चाहिए था। तू इस लायक़ है कि गले में पत्थर लटकाकर तीन दिन तक तुझे पानी में छोड़ दिया जाये, ताकि भेजे में जो भूसा भरा हुआ है, वह बह जाये,” बावर्ची ने कहा।

याकोव तुरन्त सुर में सुर मिलाते हुए बोला :

“सच कही, भूसा तो मुझमें कम नहीं है। सच पूछो तो इतना भूसा मुझमें भरा है कि सारे गाँव के लिए काफ़ी है...”

बावर्ची ने अपने कालर में उँगली गड़ाई, गुस्से से उसे खींचा और सिर हिलाकर झुँझलाहट भरे आवाज़ में शिकायत की :

“क्या बकवास है! ऐसा डंगर ज़मीन पर चरता-पीता घूम रहा है पर किसलिये? जरा बता तो, तेरे जीने का मकसद क्या है?..”

चटखारे भरते हुए याकोव ने जवाब दिया :

“यह मैं नहीं जानता। बस जीता हूँ, क्यों जीता हूँ। कोई लेटा रहता है, कोई चलता रहता है और बाबू कुर्सी ही तोड़ता ही रहता है—लेकिन अपना दोजख भरे बिना

किसी को चैन नहीं पड़ता।”

बावर्ची और भी झुँझला उठा :

“तू इतना सुअर है कि कुछ कहते नहीं बनता। जानता है, सुअर क्या खाते हैं? तू बस वही है!..”

याकोव अचरज के साथ बोला :

“अरे, डाँटते क्यों हो? सभी देहाती एक ही पेड़ की गुठलियाँ हैं। तुम मत डाँटो? इससे मैं बेहतर तो हो ही नहीं चला...”

इस आदमी ने मुझे फौरन ही और काफ़ी मज़बूती से अपने आकर्षण में बाँध लिया। चकित भाव से मैं उसकी ओर देखता और मुँह बाए उसकी बातें सुनता। मेरा जी उससे कभी न उकताता। मुझे लगता था कि उसे जीवन का कोई अपना ठोस ज्ञान है। वह हरेक से, बिना किसी बनावट के खुलकर बातें करता और उतना ही खुलकर अपनी फरफराती हुई भौंहों के नीचे से सबकी ओर देखता। उसके लिए कोई नीचा नहीं था—कप्तान, बारमैन, और फ़र्स्ट क्लास के बड़े-बड़े मुसाफ़िर भी उसके लिए वैसे ही थे जैसे अन्य जहाज़ी, बार के बैरे, तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर और वह खुद।

कभी-कभी बनमानुष जैसी अपनी लम्बी बाँहों को कमर के पीछे किये, कप्तान या मशीनये के सामने खड़ा वह उनकी झिड़कियाँ सुनता। काहिली अथवा ताश के खेल में बेरहमी से किसी की जेब खाली करने पर वे उसे डाँटते-डपटते और वह चुपचाप सुनता रहता। साफ़ मालूम होता कि डाँट-डपट का उसपर कोई असर नहीं पड़ रहा है और अगले ही घाट पर उसे जहाज़ से उतार देने की उनकी धमकियाँ उसके कानों से टकराकर हवा में छितर रही है।

‘बहुत खूब’ की भाँति याकोव में भी एक अपना निरालापन था। वह अन्य लोगों से कुछ भिन्न—उनसे कुछ अलग कोटि का मालूम होता था। और जैसे खुद उसे भी इस बात का विश्वास था कि वह औरों से अलग, उनकी पहुँच और समझ से बाहर है।

इस आदमी को मैंने कभी उदास होते या मुँह फुलाते देखा। न ही वह मुझे कभी एक लम्बे अर्से तक चुप्पी साधे दिखाई दिया। शब्दों की एक अन्तहीन धारा, मानो उसकी इच्छा न होने पर भी उसके दाढ़ी-मूँछ से घिरे मुँह से निकलती रहती। जब भी उसपर डाँट-डपट पड़ती, या वह कोई दिलचस्प किस्सा सुनाता, तो उसके होंठ इस तरह हिलते मानो वह सुनी हुई बात को दोहरा रहा हो या अपनी बात कहता जा रहा हो। हर रोज अपना काम खत्म करने के बाद जब वह बाहर निकलता तो उसका सारा शरीर पसीने और तेल से लिथड़ा होता। नंगे पाँव और बिना पेटी की गीली कमीज वह पहने होता जिसका गला खुला रहता और घने घुँघराले बालों से घिरा उसका सीना उसके भीतर से झाँकता दिखाई देता। फिर मुँह से गहरी और एकरस आवाज़ निकलती और

वर्षा की बूँदों की भाँति डेक पर शब्दों की बौछार होने लगती।

"कहो, अम्मा, कहाँ जा रही हो? क्या कहा, चिस्तोपोल? मैं भी वहाँ रह चुका हूँ। एक अमीर तातार किसान के यहाँ काम करता था। हाँ, अहसान गुबेदुलिन उसका नाम था। खुर्राट कहीं का, तीन-तीन बीवीयाँ रखता था। मजबूत काठी और चुकन्दर-सा लाल चेहरा। उसकी एक बीवी बस गुड़िया जैसी थी। मैंने भी उसके साथ मजे किये..."

कोई जगह ऐसी नहीं थी जहाँ वह न गया हो, और रास्ते में मिली कोई स्त्री ऐसी नहीं थी जिसके साथ उसने मजे न किये हों। बड़ी शान्ति और स्थिरता के साथ वह यह सब बातें बताता, मानो कड़वाहट और मान-अपमान को उसने अपने जीवन में कभी अनुभव न किये हो। पलक झपकते जहाज़ के दबूसे से उसकी सुनाई देती :

"है कोई ताश का खिलाड़ी? पत्ता-पटक, छक्का, पंजा,—चले आओ जिसे ताश खेलना हो! ताश से बढ़िया चीज़ इस दुनिया में कोई नहीं है। मजे से बैठकर पत्ते फटकारो और बड़े सौदागर की तरह आराम से धन बटोर लो!.."

भला, बुरा, या कमीना—ऐसे शब्द उसके मुँह से शायद ही कभी निकलते थे। उसके लिए हमेशा हर चीज़ लुभावनी या आरामदेह अथवा अजीब होती थी। जब वह किसी सुन्दर स्त्री का ज़िक्र करता तो उसे गुड़िया-सी सुन्दर कहता, धूप निकला रूपहला दिन उसे आरामदेह दिन मालूम होता। उसका सबसे प्रिय सम्बोधन था :

"गोली मार!"

सब उसे काहिल समझते, लेकिन मुझे लगता कि दमघोट और दुर्गन्ध भरे भट्टीघर में वह भी उतनी ही लगन से जी तोड़ मेहनत करता था जितना कि दूसरे। यह बात और थी कि कोयला झोंकने वाले दूसरे जहाजियों की भाँति न तो कभी वह रोता-झींकता था न ही वह काम के बोझ को लेकर कभी तौबा-तिल्ला मचाता था।

एक दिन मुसाफिरों में से किसी बूढ़ी स्त्री का बटुवा चोरी चला गया। शान्त और साफ़ साँझ थी। सभी उमंग से भरे थे। कप्तान ने बुढ़िया को पाँच रूबल दिए और मुसाफ़िरों ने भी उसके लिए चन्दा जमा किया। जब उसे पैसे दिए गये तो उसने सलीब का चिह्न बनाया और कमर तक झुकते हुए बोली :

"मेरे बेटे, मुझे तीन रूबल ज़्यादा दे दिए। मेरे बटुवे में तो इतने रूबल थे भी नहीं!"

कोई प्रसन्न भाव से चिल्लाया :

"ले लो, दादी अम्मा! यह अच्छा ही है कि पास में कुछ पड़ा रहे। वक़्त पर काम देगा..."

किसी ने एक बढ़िया फब्ती कसी :

"पैसा आदमियों से बढ़कर है। उसे कोई नहीं ठुकराता!"

लेकिन याकोव ने बुढ़िया के सामने एक निराला ही सुझाव रखा :

"फालतू पैसा मुझे दे दो। मैं इससे ताश खेलूँगा!"

सब हँसने लगे। समझे कि वह मजाक कर रहा है। लेकिन वह पूरी गम्भीरता से बुढ़िया के पीछे पड़ा था :

"लाओ, दादी अम्मा! एक पाँव तो तुम्हारा क़ब्र में लटका है, तुम पैसों का क्या करोगी?"

यह देख सब उस पर बमक पड़े और उसे बुढ़िया के पास से दूर खदेड़ दिया। अचरज में आँखें फाड़ते हुए उसने मुझसे कहा :

"अजीब लोग हैं ये भी! भला ये क्यों बीच में टाँग अड़ाते हैं? वह खुद कहती थी कि उसे फालतू पैसे नहीं चाहिए। ओह, तीन रूबल पाकर मेरी तबियत हरी हो जाती..."

ऐसा मालूम होता मानो उसे धन की, सिक्कों की शक्ल-सूरत से प्रेम हो। बातें करते समय उसे अपने पतलून पर सिक्का रगड़ना अच्छा लगता और फिर जब सिक्का खूब चमक जाता तो उसे अपनी टेढ़ी-मेढ़ी उँगलियों में पकड़े अपनी ऊपर को मुड़ी नाक के पास ले जाता और भौंहें हिला-हिलाकर उसे देखता। लेकिन वह लालची नहीं था।

एक बार उसने पत्ता-पटक खेलने के लिए मुझे बुलाया। लेकिन मैं खेलना नहीं जानता था।

"अरे, यह क्या—तू क़िताबें पढ़ लेता है," उसने अचरज से कहा, "लेकिन पत्ता-पटक खेल नहीं जानता। अच्छी बात है, मैं तुझे सिखाऊँगा। चल, पहले ऐसे ही खेलें, चीनी की डली की बाज़ी लगाकर..."

उसने आधा पौंड चीनी मुझसे जीती। वह जीतता जाता और चीनी की डली मुँह में रखता जाता। जब उसने समझा कि मैं अब खेलना सीख गया तो बोला :

"अब हम सचमुच का खेल खेलेंगे, पैसों की बाज़ी लगाकर। जेब में कुछ है?"

"पाँच रूबल हैं।"

"मेरे पास भी ऐसे ही दो-एक रूबल होंगे।"

देखते-देखते मैं सभी कुछ हार गया। उसे वापस लौटाने की धुन में पाँच रूबल के बदले मैंने अपने लम्बे गर्म कोट की बाज़ी लगा दी, और उसे भी गँवा बैठा। फिर अपने नए ऊँचे जूतों को दाँव पर रखा और उन्हें भी खो दिया। इसके बाद याकोव ने चिड़चिड़ाकर क़रीब-क़रीब गुस्से में कहा :

"नहीं, तू खेल नहीं सकता, जल्दी गरमा जाता है—फ़ौरन कोट भी बाज़ी पर और जूते भी बाज़ी पर! इसकी मुझे कोई ज़रूरत नहीं। यह ले अपने कपड़े वापस और पैसे भी? चार रूबल, एक रूबल मेरा, तुझे अक़्ल देने का... ठीक है?"

मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया।

"गोली मार!" मेरी कृतज्ञता के जवाब में उसने कहा। "खेल खेल है—मतलब मनबहलाव। लेकिन तू तो बकायदा कुश्ती करने लगा। और यह गर्मदिमागी तो लड़ाई में काम नहीं देगी,—खूबी इस बात में है कि विरोधी को ठण्डे दिमाग से चित करो। फिर, गरम होने की बात भी क्या है? तू जवान है, और तुझे अपने को काबू में रखना चाहिए। एक बार चूका, पाँच बार चूका, सात बार—फिर गोली मार! एक डग पीछे हट जा, दिमाग को ठण्डा कर, और फिर जूझ पड़। समझा, खेल इस तरह खेला जाता है!"

वह मुझे बराबर अच्छा लगता और साथ ही बुरा भी। कभी-कभी जब वह बोलता तो मुझे अपनी नानी की याद हो आती। उसमें बहुत कुछ था जो मुझे अपनी ओर खींचता, लेकिन लोगों के प्रति उसकी स्थिर, गहन उदासीनता, जो लगता था अन्त तक उससे चिपकी रहेगी, मुझे उससे विमुख करती।

एक दिन सूरज छिपे दूसरे दर्जे के मुसाफिर, पेर्म के निवासी एक मोटे सौदागर ने इतनी पी ली कि लड़खड़ाकर जहाज़ से नीचे पानी में जा गिरा। वह बुरी तरह हाथ-पाँव पटक रहा था और जहाज़ से कटी लाल-सुनहरे पानी की लीक में बहा जा रहा था। जहाज़ के ईंजन तुरन्त बन्द कर दिए गये और वह पहियेनुमा चप्पुओं के नीचे से झाग का बादल छोड़कर एकदम स्थिर हो गया। छिपे सूरज की लाली से झाग खून की भाँति लाल हो रहा था। रक्तिम लाली के इस उमड़ते सागर में एक काला शरीर जो अब काफ़ी पीछे छूट गया था, छटपटा रहा था और पानी में से हृदयबेधी चीखें उठ रही थी। मुसाफिर भी चिल्लाते और एक-दूसरे को धकियाते हुए जहाज़ के दबूसे पर जमा हो रहे थे। डूबने वाले आदमी के गंजे सिर और ताँबे जैसे रंग वाले चेहरे वाला एक साथी जो खुद भी नशे में धुत्त था, भीड़ को चीरता आगे बढ़ने के लिए चिल्ला रहा था :

"रास्ता छोड़ दो! मैं अभी उसे पकड़ लाऊँगा!"

दो जहाज़ी पानी में पहुँच चुके थे और तैरकर डूबते हुए आदमी की ओर बढ़ रहे थे। जान बचाने वाली एक नाव नीचे उतारी जा रही थी। जहाजियों की चिल्लाहट और स्त्रियों की चिल्ल-पों को बेधकर याकोव की शान्त और गदराई हुई आवाज़ सुनाई दे रही थी :

"वह कोट पहने है, डूबने से भला कैसे बचेगा! अगर बदन पर भारी लबादा हो तो डूबना तय है। औरतों को लो,—आदमियों के मुकाबले वे क्यों इतनी जल्दी पानी की तह में बैठ जाती है? यह उनके घाघरों की करामात है। औरत पानी में गिरी नहीं कि ढाई मन के पत्थर की भाँति सीधी तल को छूकर ही दम लेती है। देखो, वह डूब भी चुका है, मैं यों ही थोड़े ही कहता हूँ..."

वह सचमुच डूब चुका था। क़रीब दो घण्टे तक वे उसकी लाश की खोज करते रहे लेकिन बेकार, लाश नहीं मिली। उसका साथी जो अब होश में था, जहाज़ के दबूसे पर उदास बैठा बुदबुदा रहा था :

"देखो न, यह क्या हो गया? अब क्या होगा? उसके घर वालों के सामने क्या मुँह लेकर जाऊँगा, उनसे क्या कहूँगा? उसके घर वाले जो हैं..."

पीठ के पीछे अपने हाथ बाँधे याकोव उसके सामने खड़ा हो गया और ढाढ़स बँधाने लगा :

"रोओ मत सौदागर! कोई नहीं जानता कि मौत से किस भेष में मुठभेड़ होगी। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक आदमी अच्छा-भला खुमी खाता है और सीधे क़ब्र की राह लेता है। हज़ारों आदमी खुमियाँ खाकर मोटे-ताजे बन जाते हैं, लेकिन वह है कि उसे मौत दबोच लेती है। और यह खुमी भी आख़िर है क्या?..."

वह सौदागर के सामने खड़ा था—चौड़ा-चकला, चक्की के पत्थर की भाँति ठोस, भूसे की भाँति अपने शब्दों को बिखेरता हुआ। पहले सौदागर धीमे-धीमे रो रहा था और अपनी चौड़ी हथेली से दाढ़ी पर ढुरक आये आँसुओं को पोंछता जाता था। लेकिन याकोव के शब्दों के अर्थ ने जब उसके हृदय को छूना शुरू किया तो वह फुक्का मारकर चीख़ उठा :

"चले जाओ यहाँ से, शैतान के पूत! मेरा हृदय पहले ही दुःख रहा है, तुमने आकर उसे और कुरेदना शुरू कर दिया। भले लोगो, इसे ले जाओ यहाँ से! नहीं तो जाने मैं क्या कर बैठूँ!"

याकोव शान्त भाव से हटते हुए बोला :

"लोग सचमुच में अजीब हैं। उन्हें भली बात कहो, तो मारने को दौड़ते हैं..."

कभी-कभी याकोव मुझे भोले दिमाग का आदमी लगता था, लेकिन बहुधा मैं यह सोचता था कि वह केवल बनता है। मेरा जी बुरी तरह ललकता कि उसके मुँह से उन जगहों का हाल सुनूँ, जहाँ वह हो आया है, उन चीज़ों के बारे में जानूँ जिन्हें वह देख चुका है। लेकिन इससे कुछ नहीं बनता। वह अपना सिर पीछे की ओर तान लेता, भालू जैसी काली आँखों को मूँछ लेता, अपने थलथल चेहरे को सहलाता और आपबीती याद करते हुए धीरे-धीरे बातों की लड़ियाँ खोलने लगता :

"आदमी ही आदमी, जहाँ भी जाओ, चींटियों के दल की तरह आदमी ही आदमी दिखाई देते हैं। यहाँ भी आदमी, वहाँ भी आदमी—ढेर से ढेर। उनमें भी ज़्यादातर किसान, पतझड़ के पत्तों की तरह सारी दुनिया में बिखरे हुए। बुल्गार? सच, बुल्गारिया के लोगों को मैंने देखा, यूनानियों को भी, और सर्बिया, रूमानिया के लोगों और सभी तरह के जिप्सी भी देखने को मिले। लोग कैसे थे? ऊँह, कैसे भला होते? शहरों में शहरी लोग थे, और देहातों में देहाती, ठीक हमारी ही तरह एकदम मिलते-जुलते। उनमें

से कुछ तो हमारी बोली भी जानते हैं। हाँ, ठीक से नहीं बोल पाते हैं। जैसे तातार और मोर्दोविया वाले। यूनानी हमारी बोली नहीं बोल सकते, पता नहीं वे क्या उल-जलूल बोलते हैं। सुनने में तो लगता है कि शब्द मुँह से निकल रहे हैं, लेकिन मतलब समझना चाहो तो कुछ पल्ले नहीं पड़ता। उनसे हाथ के इशारों से बात करनी पड़ती है। और वह बूढ़ा खुर्राट जिसके साथ मैं दुनिया घूमा था, यह दिखाने के लिए कि वह यूनानियों की बोली समझता है, हर घड़ी 'कारामारा कालिमेरा' बड़बड़ाता रहता। वह सचमुच में खुर्राट था, बड़ा ही चलता पुर्ज़ा। उलटे उस्तरे से उनकी हज़ामत बनाता। क्या कहा तूने? वे लोग कैसे थे? बार-बार यही सवाल दोहराता है? मेरे बुद्धू, यह भी कोई जानने की बात है? ज़रूर उनका रंग काला होता है, और ऐसे ही रूमानियों का भी—ये सब एक ही मज़हब मानते हैं। बुल्गार भी काले होते हैं, लेकिन उनक मज़हब हमारे जैसा है। और यूनानी—वे तुर्कों जैसे होते हैं...”

मुझे लगता कि वह सब कुछ नहीं बता रहा है, कोई चीज़ है जिसे वह छिपा रहा है।

पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों से मैं जानता था कि यूनान की राजधानी एथेंस है, जो एक प्राचीन और सुन्दर नगर है। लेकिन याकोव ने अविश्वास से सिर हिलाया और एथेंस के अस्तित्व से इंकार करते हुए बोला :

“यह तो तुझे झूठ बताया गया है, भाई मेरे! एथेंस नाम की कोई चीज़ नहीं है, केवल एथोन है, और वह भी नगर न होकर एक पहाड़ है जिस पर एक मठ बना है। बस, इसके सिवा और सब झूठ है। इसे लोग पवित्र एथोन परबत कहते हैं। मेरा बूढ़ा इस परबत की तस्वीरें भी बेचता था। डेन्यूब नदी के किनारे बेल्गोरोद नाम का एक नगर ज़रूर है, हमारे यारोस्लाव्ल या नीज़्नी से मिलता-जुलता। उनके नगर किसी काम के नहीं हैं—लेकिन उनके गाँव—उनकी तो बात ही दूसरी है और उनकी औरतें भी,—बस, कुछ न पूछो। ऐसे ही एक औरत के चक्कर में मैं वहाँ फँस गया। भला क्या नाम था उसका?”

उसने अपनी हथेलियों को गालों पर कसके रगड़ा और उसकी दाढ़ी के बाल धीमे से चरचरा उठे। फिर, उसके गले की गहराई से फूटी हुई घण्टी की भाँति हँसी सुनाई दी :

“वाह भाई, आदमी भी कितनी जल्दी भूल जाता है। वह मेरे पीछे पागल थी और मैं उसके... जब मैं वहाँ से चला तो वह फूट-फूटकर रोई। और सच मान चाहे झूठ, मेरी आँखों से भी आँसू बहने लगे...”

इसके बाद, पूरी बेशर्मी से उसने मुझे सिखाना शुरू किया कि स्त्रियों के साथ कैसे क्या करना चाहिए, किस तरह उनके साथ पेश आना चाहिए।

जहाज़ के दबूसे पर हम बैठे थे। सुहावनी और चाँदनी खिली रात बाहें पसारे

हमारी ओर बढ़ रही थी। बाँयी ओर रूपहले पानी के उस पार चरागाहों की भूमि आँखों से लगभग ओझल हो चली थी, दाहिनी ओर पहाड़ियों पर जहाँ-तहाँ पीली रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वी के आकाश के तारों को यहाँ लाकर बन्दी बना दिया गया हो। हर चीज़ गतिमान, सजग और स्पन्दनशील थी, शान्त किन्तु जीवन की गहराई से भरपूर। और उसके भरभराते हुए शब्द मधुर और निस्तब्धता से छनकर गिर रहे थे :

"हाथ-पैर फैलाकर लम्बी हो जाती..."

याकोव के किस्सों में नंगापन होता, लेकिन घिनौनापन नहीं, उसमें न शेखी पुट होता, न क्रूरता का। वे सीधे-सरल और कुछ हद तक उदासी में डूबे होते। ऊपर आकाश में चाँद तैरता होता, बिना किसी आवरण के, उतना ही उघड़ापन लिये, और हृदय में उतने ही उदास भावों का संचार करने वाला। मुझे केवल उन्हीं चीज़ों की याद आती जो अच्छी थी; सबसे अच्छी : रानी मार्गो और सच्चाई से भरी ये पंक्तियाँ जिन्हें कभी नहीं भूला जा सकता :

है केवल गीत को आवश्यकता सौन्दर्य की—
सौन्दर्य को नहीं चाहिए गीत भी...

सोच-विचार के अपने मूड को मैं हल्की नींद की तरह झटककर फिर उस पर दबाव डालता कि वह अपने जीवन और जो कुछ उसने देखा-सुना है, उसके बारे में बताए। वह कहता :

"तू भी अजीब जानवर है! तुझे मैं क्या-क्या बताऊँ? सभी कुछ तो मैंने देखा है। मठ?—हाँ, मैंने मठ देखा है। और भटियारख़ाना?—हाँ, भटियारख़ाना भी। साहब लोगों का जीवन भी मैंने देखा है और देहातियों का भी। भूख भी देखी और छककर खाया भी..."

फिर धीरे-धीरे, मानो वह किसी गहरी नदी के चर्र-मर्र करते पुल पर से गुजर रहा हो, वह अपना अतीत याद करता :

"मिसाल के लिए एक यही बात लो, खाने वाली बात, घोड़ा चुराने के बाद जब मैं हवालात में बन्द था। मुझे लगा कि अब जान नहीं बचेगी, ज़रूर काले कोसों साईबेरिया के लिए बिस्तर गोल करना पड़ेगा। तभी पुलिस अफ़सर पर मेरी नज़र पड़ी। वह अपने नये घर के अलावघरों को कोस रहा था जो खूब धुआँ देते थे। मैंने उससे कहा, 'सरकार, अगर हुक्म हो तो मैं उन्हें ठीक कर सकता हूँ।' पंजे पैने कर वह मुझ पर झपटा। बोला, 'तेरी यह हिमाकत? नगर का सबसे अच्छा अलावघर बनाने वाला तो उन्हें ठीक नहीं कर सका, और तू डींग मारता है कि ठीक कर देगा!' लेकिन मैं भी डटा रहा। कहा, 'कभी-कभी निरा बुद्धू भी काजी को पछाड़ देता है।' काले कोसों साईबेरिया मेरे सिर पर मण्डरा रहा था। सो मैं जरा भी नहीं डरा। आख़िर उसने कहा,

‘अच्छी बात है। तू भी कोशिश कर देख। लेकिन तेरे हाथ लगाने के बाद अगर उन्होंने ज़्यादा धुआँ देना शुरू किया तो समझ ले कि तेरा कचूमर ही निकाल दूँगा।’ झटपट दो दिनों के भीतर मैंने अलावघरों को ठीक कर दिया। अफ़सर अचरज में पड़ गया, ‘अरे काठ के उल्लू, छछूँदर की दुम, तू इतना बड़ा कारीगर, और घोड़े चुराता फिरता है? आख़िर क्यों?’ मैंने कहा, ‘यही तो मेरी बेवकूफ़ी है, सरकार!’ वह बोला, ‘ठीक कहता है, यह बेवकूफ़ी है। कितने दुःख की बात है, मुझे तुझ पर तरस आता है।’ सुना तूने? एक पुलिस अफ़सर जिसके पेशे में तरस और रहम के लिए कोई जगह नहीं होती, लेकिन वह मुझ पर तरस खा रहा है!..”

“हाँ तो फिर क्या हुआ?” मैंने पूछा।

“कुछ भी नहीं। बस, उसका दिल पिघला, उसने मुझ पर तरस खाया। अब तुझे क्या चाहिए?..”

“लेकिन तुम तो चट्टान जैसे मजबूत और हट्टे-कट्टे हो। तुम्हें देखकर क्या कोई तरस खा सकता है?..”

याकोव बहुत ही भली हँसी हँसा।

“तू भी अजीब जानवर है। क्या कहा तूने—चट्टान जैसा? लेकिन चट्टान भी मान रखने की चीज़ है। वह भी अपना काम करती है। चट्टान के पत्थरों से सड़के बनती है। हर चीज़ का एक अपना मान है, उसका अपना उपयोग है। रेत को ही लो। रेत आख़िर होती क्या है? लेकिन उसमें भी घास उगती है...”

याकोव जब ऐसी बातें करता तो मुझे ख़ास तौर से अनुभव होता कि उसके ज्ञान की पहुँच मेरी समझ से बाहर है।

“बावर्ची के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है?” मैंने उससे पूछा।

“कौन, ‘नाटा भालू’?” याकोव ने उपेक्षा से कहा। “उसके बारे में भला मेरा क्या ख़याल हो सकता है? ख़याल करने की उसमें कोई बात भी तो हो!”

उसका कहना ठीक था। इवान इवानोविच इतना सपाट और चिकना, और कुछ इतना ठीकोंठीक था कि ख़्याल नाम की चीज़ लटकाने लायक़ खूबियाँ उसमें नहीं थी। उसमें केवल एक ही दिलचस्प चीज़ थी : वह याकोव से घृणा करता था और जब देखो तब उसे डाँटता रहता था, लेकिन चाय फिर भी सदा उसके साथ ही पीता था।

एक दिन उसने याकोव से कहा :

“अगर तू मेरा दास और मैं तेरा मालिक होता तो हफ़्ते में सात बार तेरी चमड़ी रंगता! लोफ़रों के सरदार!”

“हफ़्ते में सात बार तो कुछ ज़्यादा है,” याकोव ने पूरी गम्भीरता से ज़वाब दिया।

इस निरन्तर डाँट-डपट के बावजूद, न जाने क्यों, बावर्ची बराबर उसके पेट का कुआँ भरता रहता। खाने की कोई न कोई चीज़ वह उसे थमाता और कहता :

"यह ले, पेटू की दुम!"

"तुम्हारी दया से खूब ताकत बटोर लूँगा, इवान इवानोविच!" खाने की चीज़ को अलस भाव से चबाते हुए याकोव कहता।

"लेकिन अपनी इस ताक़त का करेगा क्या, काहिलों के सिरताज!"

"क्यों, लम्बी उम्र जीऊँगा, और क्या..."

"जीकर करेगा क्या, बेताल?"

"बेताल भी जीना चाहता है। या फिर तुम्हें जीवन बेरस मालूम होता है? जीवन बहुत ही मज़ेदार चीज़ है, इवान इवानोविच..."

"वाह मूर्खाधिराज!"

"क्या कहा?"

"मू-र्खा-धि-रा-ज!"

"क्या शब्द है यह भी!" याकोव अचरज से कहता, और 'नाटा भालू' मुझसे कहता :

"जरा इसे देख, तो। तू और मैं इन भट्टियों में सिर दिए अपना खून-पसीना एक करते हैं, लेकिन यह है कि सुअर की तरह जबड़ा चला रहा है!"

"हरेक का अपना-अपना भाग होता है," याकोव अपना जबड़ा चलाते हुए कहता।

मैं जानता था कि बावर्चीख़ाने की भट्टियों के पास खड़े होने के मुक़ाबले भट्टियों में कोयला झोंकना कहीं अधिक जानलेवा और हाड़ झुलसा देने वाला काम है, एक दो बार रात को मैं खुद याकोव के साथ काम करके यह देख चुका था, लेकिन इस बात को वह कभी पलटकर नहीं कहता था। यह मेरी समझ में न आता और मेरा यह विश्वास और भी ज़्यादा दृढ़ होता जाता कि उसके पास कोई विशेष ज्ञान है...

उसे सभी डाँटते-डपटते थे—कप्तान भी, मशीनिये भी, मल्लाहों का मुखिया भी—वे सब जिनका उससे कुछ भी वास्ता पड़ता। मुझे अचरज होता कि लात मारकर वे उसे निकाल क्यों नहीं देते? कोयला झोंकने वाले जहाज़ी उसके साथ कुछ अधिक नरमी से पेश आते, हालाँकि बेसिर-पैर की उसकी बकवास और उसकी पत्तेबाज़ी का वे भी खूब मज़ाक उड़ाते थे। एक दिन मैंने उससे पूछा :

"क्या याकोव अच्छा आदमी है?"

"याकोव बिल्कुल ठिकाने का आदमी है। कभी नाराज़ नहीं होता। कितना ही उसे उलटो-पलटो, चाहे उसके क़मीज़ के भीतर जलते हुए कोयले ही क्यों न छोड़ दो, उसका दिमाग़ कभी नहीं गड़बड़ाता..."

कोयला झोंकने का थकाकर चूर कर देने वाला जानलेवा काम करने और अपने पेट का कुआँ ठसाठस भर लेने के बाद भी याकोव बहुत कम सोता। अपनी पाली का

काम खत्म होते ही वह दबूसे पर आ जाता, गन्दा और पसीने में बुरी तरह तर, बहुधा वही काम के काले-चीकट कपड़े पहने और सारी रात बैठा रहता, मुसाफ़िरों के साथ बतियाता या ताश खेलता।

मेरे लिए वह ताले बन्द सन्दूक़ के समान था। मुझे लगता कि उसके भीतर अवश्य कोई ऐसी चीज़ बन्द है जिसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता और इस ताले को खोलने वाली कुंजी पाने के लिए मैं बेहद बेचैन हो उठता।

भौंहों की ओट में अदृश्य आँखों से वह मुझे देखता। फिर कहता :

"तेरे सिर पर तो भूत सवार है, भाई मेरे! मेरी समझ में नहीं आता कि तू चाहता क्या है? दुनिया के बारे में जानना चाहता है? यह सच है कि मैंने दुनिया छानी है। लेकिन इससे क्या? तू भी अजीब पंछी है। अच्छा तो सुन, एक दिन की बात मैं तुझे बताता हूँ।"

अरे जो किस्सा उसने मुझे सुनाया, वह इस प्रकार है : बहुत दिन हुए किसी सूबाई शहर में एक नौजवान जज़ रहता था। वह तपेदिक का मरीज़ था। किसी जर्मन लड़की से उसने शादी की थी : हट्टी-कट्टी, न कोई बाल, न बच्चा। उसका दिल एक सौदागर के लिए कुढ़मुड़ाने लगा जो तीन बच्चों का बाप था—और जिसकी खूबसूरत पत्नी थी। सौदागर ने जब यह देखा कि जर्मन औरत उस पर न्यौछावर होने के लिए तैयार है तो उसने उसके साथ एक मजाक करने की सोची। कहा कि बाग में रात को आकर मुझसे मिलो और अपने दो साथियों को झुरमुटों में छिपा दिया।

"ठीक है! जर्मन औरत आयी, गरमागरम और उबक-चबक करती, इशारा पाते ही उसके सामने बिछ जाने को तैयार। लेकिन उसने कहा, 'नहीं, श्रीमती जी, मैं तुम्हें गले से नहीं लगा सकता। मैं शादी-शुदा हूँ। लेकिन तुम्हारे लिए मेरे दो साथी मौजूद है—एक कुँवारा है और दूसरा रंडुवा है। इसपर औरत ने आह भरी और सौदागर के एक ऐसा धौल जमाया कि वह कलाबाज़ी खाकर बेंच पर से उलट गया और उसने ठोकरें मार-मारकर उसका तोबड़ा ठीक कर दिया। मैं जज़ के यहाँ काम करता था और उस औरत को मैं ही बाग़ में पहुँचाने आया था। बाड़े के पीछे झिर्रियों में से मैंने यह सारा तमाशा देखा। उसके दोनों साथी उछलकर झुरमुटों में से निकल आये और औरत की ओर झपटे और उसके बाल पकड़कर खींचते हुए ले चले। अब क्या था, बाड़े को फाँदकर मैं उनसे भिड़ गया। 'यह भी कोई तरीका है' मैंने कहा, 'औरत ने उसका विश्वास किया और यहाँ चली आयी, लेकिन वह उसकी मिट्टी पलीत करने पर उतर आया।' उसको उनके चंगुल से छुड़ाकर मैं उसे अपने साथ ले चला। पीछे से उन्होंने मेरी खोपड़ी का निशाना साधा और एक ईंट फेंककर मारी... औरत का बुरा हाल था। अहाते में बेचैनी से टहलती रहती। मुझसे कहती, 'मैं चली जाऊँगी यहाँ से, मैं जर्मनी, अपने लोगों के पास चली जाऊँगी, याकोव! मेरा पति दो दिन का मेहमान है, उसके

मरते ही मैं यहाँ से चल दूँगी।' मैं बोला, 'यह ठीक है। यहाँ रहकर तुम करोगी भी क्या?' और हुआ भी ऐसा ही। जज़ मर गया और वह चली गयी। वह बहुत ही भली थी और समझदार भी। और जज़ भी बहुत भला था, भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे...”

उसकी इस कहानी का मतलब मेरी समझ में नहीं आया। मैंने उसे सुना और चुपचाप बैठा रहा। उसमें मुझे कुछ वैसी ही क्रूरता और निरर्थकता दिखाई दी जिससे कि मैं परिचित था। बस इतना ही, और कुछ नहीं।

“क्यों, कहानी पसन्द आयी?” याकोव ने पूछा।

झुँझलाहट से मैं कुछ बड़बड़ाया, लेकिन वह शान्त भाव से मुझे समझाते हुए बोला :

“वह खाते-पीते लोग हैं, हर ओर से निश्चिन्त; बस कभी हँसी-मजाक को जी करता है, पर मजाक उनसे बनता नहीं, समझो, मज़ाक करना आता नहीं उन्हें। वैसे तो बेशक वे व्यापारी लोग हैं, काम-काजवाले। व्यापार में तो दिमाग लगता है और दिमागी काम करते-करते आदमी ऊब ही जाता है तो बस चुस्की लेना चाहते हैं।”

जहाज़ पानी को चीरता और मथता, पानी में बल डालता और झागों के बादल उड़ाता, आगे बढ़ रहा था। पानी के उबलने-उफनने की आवाज़ आ रही थी और काले नदी-तट धीरे-धीरे दूर होते जा रहे थे। डेक पर से मुसाफ़िरों के खर्राटों की आवाज़ आ रही थी। काले कपड़े पहने एक लम्बी और दुबली-पतली स्त्री बेंचों और सोते हुए लोगों के बीच से सपक सुई-सी गुजर रही थी। उसका सिर अनढका था और उसके सफ़ेद बाल चमक रहे थे। याकोव ने मुझे कन्धा मारा और बोला :

“इसे देख, मालूम होता है, उदास है...”

मुझे लगा कि दूसरों को उदास देखने में उसे मजा आता है।

वह हमेशा कोई न कोई किस्सा सुनाता और मैं बड़े चाव से सुनता। मुझे उसके सभी किस्से याद थे, लेकिन उनमें ऐसा एक भी नहीं था जो खुशी से सराबोर हो। क़िताबों के मुक़ाबले वह कहीं ज़्यादा असंलग्न और तटस्थ मालूम होता था। क़िताबें पढ़ते समय बहुधा साफ़ पता चल जाता था कि लेखक की भावनाएँ क्या हैं—न उसकी खुशी छिपी रहती, न उसका गुस्सा। साफ़ झलक जाता कि यहाँ वह दुःख प्रकट कर रहा है, और यहाँ हँसी उड़ा रहा है। लेकिन याकोव न कभी मजाक उड़ाता था, न किसी पर भले या बुरे का लेबुल लगाता था। वह कोई ऐसी बात न प्रकट करता जिससे उसकी नाराज़गी या खुशी का पता चलता। वह अदालत में एक तटस्थ गवाह की भाँति बोलता, उस आदमी की भाँति जिसके लिए अपराधी, सरकारी वकील और जज सभी एक समान हों। उसकी यह तटस्थ असंलग्नता मुझे अधिकाधिक बुरी और बोझिल मालूम होती, और याकोव के प्रति झुँझलाहट भरी दुश्मनी का वह मुझमें संचार करती।

बॉयलरों की भट्टी में उठने वाली लपटों की भाँति जीवन उसकी आँखों के सामने नाचता रहता और वह भालू जैसे अपने पंजे में लकड़ी की हथौड़ी दबोचे बॉयलर के पास खड़ा हुआ बर्नर के बम्बे को चुपचाप ठकठकाता रहता और कोयला घटाता या बढ़ाता रहता।

"क्या तुम्हें किसी ने चोट पहुँचाई है?"

"मुझे भला कौन चोट पहुँचा सकता है। मेरा यह शरीर नहीं देखा, एक ही घूसे में काम तमाम कर दूँ..."

"मेरा यह मतलब नहीं था। मेरा मतलब भीतर की, दिल और आत्मा की, चोट से था।"

"आत्मा को भला कोई कैसे चोट पहुँचा सकता है," उसने कहा, "वह अपमान से परे है। उसे कोई चीज़ नहीं छू सकती—नहीं, कोई भी नहीं..."

डेक के मुसाफिर, जहाज़ी और अन्य सभी लोग, आत्मा के बारे में भी उसी तरह बातें करते नहीं अघाते थे जिस तरह कि वे अपनी ज़मीन और धन्धे, रोटी-पानी अथवा स्त्रियों के बारे में बातें करते नहीं अघाते। आम लोगों के शब्द भण्डार में आत्मा शब्द एक चलता हुआ सिक्का था। पाँच कोपेक के सिक्के की भाँति उसका व्यापक प्रचार और चलन था। मुझे यह देखकर बड़ा बुरा मालूम होता कि यह शब्द लोगों को चिकनी जबानों से इस हद तक चिपककर रह गया है, और जब कोई किसान गन्दे शब्दों की बौछार करते-करते प्यार और द्वेष के साथ आत्मा की दुहाई देने या उसे कोसने लगता तो मुझे ऐसा मालूम होता मानो किसी ने मेरे सीने पर सीधा आघात किया हो।

मुझे अच्छी तरह से याद था मेरी नानी जब भी आत्मा का, प्रेम और आह्लाद तथा सौन्दर्य के इस रहस्यमय पात्र का ज़िक्र करती तो श्रद्धा से उसका माथा झुक जाता, और मुझे पक्का विश्वास था कि जब कोई भला आदमी मरता है तो सफ़ेद फ़रिश्ते उसकी आत्मा को नीले आसमान में नानी के दयालु भगवान के पास ले जाते हैं और वह बड़े ही प्यार और दुलार से उसका स्वागत करता है।

"आ मेरी प्यारी, मेरे पवित्र—बड़े कष्ट भोगे, बड़े दुःख झेले?"

और वह आत्मा को फ़रिश्तों जैसे छः सफ़ेद पंख अता कर देता है। याकोव शूमोव भी, नानी की भाँति, उतने ही श्रद्धा से, उतने ही कम मात्रा में और उतने ही अनमने भाव से आत्मा के बारे में बात करता था। वह आत्मा को कभी नहीं कोसता था। और जब कभी वह दूसरों को ऐसा करते सुनता वह चुप हो जाता, अपना सिर नीचे झुका लेता—लाल भभूका और साँड़ की भाँति मजबूत उसकी गर्दन लटक जाती। जब मैं उससे पूछता कि आत्मा क्या है तो वह जवाब देता :

"आत्मा एक हवा है, ईश्वर की साँस..."

मुझे इससे सन्तोष न होता और अन्य सवालों की मैं झड़ी लगा देता। आँख

झुकाकर वह कहता :

"आत्मा का भेद तो पादरी भी नहीं जानते, मेरे भाई। यह एक गुप्त रहस्य है..."

मैं बराबर उसके ही बारे में सोचता रहता, और उसे समझने में अपनी सारी कोशिश लगा देता। लेकिन बेकार। मुझे याकोव के सिवा और कुछ दिखाई न देता, उसके भारी-भरकम शरीर की ओट में मानो सभी कुछ छिप जाता।

बारमैन की पत्नी का इधर मेरी ओर कुछ ज़रूरत से ज़्यादा झुकाव हो गया था। हर रोज सुबह वह मुझसे ही नहाने-धोने के लिए पानी भरवाती, हालाँकि यह काम कायदे से मेरा नहीं, बल्कि दूसरे दर्जे की साफ़-सुथरी, प्रसन्नमुख परिचारिका लूशा का था। छोटे-से सँकरे केबिन में कमर तक नंगी स्त्री के पास जब मैं खड़ा होता तो खट्टे खमीर की भाँति लिजबिज उसके पीले शरीर से मुझे बड़ी घिन मालूम होती और अनजाने ही, रानी मार्गो के पुष्ट और ताँबे की भाँति दमकते बदन से मैं उसकी तुलना करने लगता। बारमैन की पत्नी की ज़बान बराबर चलती रहती, कभी वह कोसती और शिकायत-सी करती, और कभी गुस्से में बड़बड़ाने और धज्जियाँ-सी उधेड़ने लगती।

उसकी बात मेरे पल्ले न पड़ती, हालाँकि मानो कहीं दूर से मैं उसका मतलब भाँपता था जो दयनीय और शर्मनाक मतलब था। लेकिन मेरा मन ज़रा भी नहीं डिगा। मेरे और बारमैन की पत्नी के बीच और उस हर चीज़ के बीच जो जहाज़ पर घटती या होती थी, एक दूरी थी। एक भीमाकार काई चढ़ी चट्टान मुझे अपने चारों ओर की दुनिया से अलग किये थी। और यह दुनिया स्थिर नहीं, गतिशील थी—दिन प्रतिदिन समय के साथ तैरती और हर घड़ी आगे बढ़ती हुई।

"बारमैन की औरत तो तुझ पर बुरी तरह लट्टू है!" खिल्ली उड़ाने वाली लूशा की आवाज़ गूँज उठती और मुझे इस तरह सुनाई देती मानो वह सपने में बोल रही हो। "अब क्या है, मजे से गोते लगा, घर बैठे गंगा बड़े भाग से आती है..."

मेरी खिल्ली उड़ाने वालों में अकेली वही नहीं थी। बार के सभी कर्मचारी इस स्त्री के लगाव से परिचित थे। बावर्ची मुँह बिचकाकर आवाज़ कसता :

"और सब चीज़ों का जायका तो देवी जी ले चुकी, सो अब पेस्ट्री चखने का शौक चर्राया है! सम्हलकर पाँव रखना, पेशकोव, नहीं तो गड़गच्च हो जायेगा!"

याकोव ने भी पिता के अन्दाज़ में कामकाजी सलाह दी :

"अगर तू दो या तीन साल बड़ा होता तो निश्चय ही तब मैं दूसरे अन्दाज़ में बातें करता। लेकिन इस उम्र में—अच्छा है कि अछूता ही रह। लेकिन मैं तुझे रोकूँगा नहीं, जो अच्छा लगे सो कर..."

"मारो गोली," मैंने कहा, "मुझे तो घिन आती है..."

"ठीक, गोली मारो!"

लेकिन, कुछ क्षण बाद ही अपने उलझे हुए बालों को उँगलियों से ठीक करते

हुए अपने गोल-मटोल शब्दों को बीज की भाँति बिखेरना शुरू कर देता :

"लेकिन उसकी बात भी समझनी चाहिए, ढलती उम्र है बेचारी की... कुत्ता तक यह चाहता है कि उसे कोई थपथपाए, इंसान को तो उसकी और भी ज़रूरत है। प्यार-दुलार पर ही तो औरत जीती है, जैसे खुमियाँ नमी पर जीती हैं। शायद वह इससे खुद शरमाती हो, लेकिन वह करे भी क्या? शरीर माँगता है कि उसे दुलारा, थपथपाया जाये, बस बात सारी यही है..."

उसकी रहस्यमयी आँखों में आँखें गाड़कर मैंने पूछा :

"क्या तुम्हें उस पर तरस आता है?"

"मुझे? मेरी क्या यह माँ लगती है? लोग तो अपनी माँ पर भी तरस नहीं खाते। सचमुच, तू भी... अज़ीब पंछी है!"

वह धीमी हँसी हँसता, फूटी हुई घण्टी की आवाज़ जैसी।

कभी-कभी जब मैं उसकी ओर देखता तो ऐसा मालूम होता मानो मैं निःशब्द शून्य में, किसी अतल गढ़े और अँधेरे में डूबा चला जा रहा हूँ।

"और सब लोग शादी करते हैं, याकोव! तुम क्यों नहीं करते?"

"किसलिये? औरत के लिए मुझे कभी तड़पना नहीं पड़ता,—भला हो भगवान का, आसानी से मिल जाती है... विवाह के बाद आदमी घर से बँध जाता है, उसे खेतीबाड़ी करनी पड़ती है। मेरे पास ज़मीन है, लेकिन बहुत ही कम, वो भी मेरे चाचा ने हथिया ली है। मेरा भाई जब फौज से लौटा तो उसने चाचा से झगड़ा शुरू किया, मुकदमा चलाया और उसका सिर फोड़ दिया। खून-ख़राबा किया। इसके लिए पूरे डेढ़ साल की उसे सजा हुई, और इसके बाद—सज़ा काटे आदमी के लिए एक ही रास्ता रह जाता है जो उसे फिर जेल पहुँचा देता है। अच्छी-सी नौजवान घरवाली थी उसकी—छोड़, क्या कहना! शादी कर ली तो बस बैठ जा अपनी मड़ैया की रखवाली करने, पर सिपाही तो अपनी ज़िन्दगी का मालिक नहीं, एक जगह बैठा नहीं जा सकता।"

"क्या तुम ख़ुदा की प्रार्थना करते हो?"

"क्या सवाल किया है पंछी ने! ज़रूर करता हूँ..."

"किस तरह करते हो?"

"कई तरह से।"

"तुम्हें कौन-सी प्रार्थनाएँ याद हैं?"

"मैं कोई प्रार्थना-व्रार्थना नहीं जानता। बस, सीधे कहता हूँ, महाप्रभु ईसा, जीवितों पर तरस खा, मरों को शान्ति दे, बीमारी-चकारी से हमारी रक्षा कर... और ऐसी ही कुछ और बातें कहता हूँ..."

"क्या बातें?"

“ओह, मतलब यह कि जो कुछ भी कहना हो, वह महाप्रभु ईसा के पास पहुँच जाता है!”

वह मेरे साथ बड़ी नर्मी बरतता और एक प्रकार के कौतुक में भरकर मुझे देखता, मानो मैं कोई चतुर पिल्ला हूँ जो मज़ेदार करतब दिखा सकता है। साँझ को मैं उसके पास बैठ जाता, उसके बदन से तेल, आग और प्याज़ की गन्ध आती रहती,—प्याज़ उसे बहुत पसन्द था और वह उसे सेब की भाँति कच्चा ही खा जाता था। बैठे-बैठे उसे न जाने क्या सूझती कि एकाएक कहता :

“हाँ तो, अल्योशा-वल्योशा, अब कोई कविता ही सुना दे!”

मुझे ढेर सारी कविताएँ ज़बानी याद थीं। उनके अलावा मेरे पास एक मोटी कापी भी थी जिसमें मैं वे सभी कविताएँ उतार लेता था जो मुझे अच्छी लगती थीं। मैं उसे पुश्किन की कविता ‘रूस्लान और ल्युद्मीला’ सुनाता और वह निश्चल सुनता रहता—न उसकी आँखें हरकत करतीं, न ज़बान—साँस लेने की अपनी घरघराहट तक को वह रोक लेता। अन्त में धीमे स्वर में कहता :

“कितनी प्यारी कहानी है! क्या खुद तूने इसे गढ़ा है? क्या कहा, पुश्किन ने लिखी थी? एक बड़े कुलीन आदमी को तो मैं भी जानता हूँ। मुसिन-पुश्किन उसका नाम था।”

“वह नहीं, यह दूसरा पुश्किन है। बहुत दिन हुए उसे मार डाला गया था।”

“किसलिये?”

थोड़े में मैंने उसे पुश्किन के जीवन और मौत की कहानी बता दी जो मुझे रानी मार्गो ने सुनाई थी। जब मैं सुना चुका तो उसने शान्त स्वर में कहा :

“औरतों के पीछे न जाने कितने लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं...”

मैं बहुधा उसे क़िताबों में पढ़ी कहानियाँ सुनाया करता। ये कहानियाँ, सब की सब मेरे दिमाग में कुछ इतनी उलट-पुलट और गड्ड-मड्ड हो जातीं कि आपस में गुँथ-गुँथकर एक लम्बी-चौड़ी धारा का रूप धारण कर लेतीं, एक ऐसी धारा का जिसमें गहरी उथल-पुथल होती और सौन्दर्य भी, प्रेम और वासना की लपलपाती लपटें होतीं और गरदन-तोड़ साहसिक कृत्य भी, नेक नायक, चकित कर देनेवाली सौभाग्य की अद्भुत वर्षा, द्वन्द्व-युद्ध और मौत, बढ़िया-बढ़िया शब्द और कुटिलता में सिर से पाँव तक डूबे खलनायक—इसी धारा में गुँथ जाते। रोकाम्बोल को मैं लामोल, हनीबाल कोकोनस का शौर्य प्रदान करता, ग्यारहवें लुई को पिता ग्राण्डे के गुणों से लैस कर देता; और कोरनेट ओत्लेतायेव की मैं ऐसी कायापलट करता कि उसे देखकर हेनरी चतुर्थ का धोखा होता। मुझे नयी से नयी बात सूझती। लोगों के चरित्रों में मैं फेर-फार करता और घटनाओं को नए सिरे से सजा देता,—एक ऐसी दुनिया आबाद करता जिसका मैं एकमात्र शासक होता, अपने नाना के ख़ुदा की भाँति जो लोगों के साथ

मनमाने खेल खेलता। लेकिन इस दुनिया के चारों ओर फैली हुई जीवन की वास्तविकता मेरी आँखों की ओट न होती, न ही जीवित लोगों को समझने की मेरी इच्छा को पाला मारता, बल्कि क़िताबी दुनिया का यह ऊहापोह पारदर्शी और अभेद्य रक्षाकवच बनकर जीवन में व्यापत विषैली गन्दगी और सड़ांध से हर घड़ी ताक में रहनेवाले अनगिनत घातक कीड़ों से मेरी रक्षा करता।

क़िताबों ने मुझे बहुत-सी चीज़ों के लिए अभेद्य बनाया : यह जान लेने के बाद कि प्रेमी किस तरह प्रेम करते और तड़पते हैं, भूलकर भी किसी चकले में पाँव रखना असम्भव था। छिनाल का यह सस्ता रूप देख मुझे तरस आता और मेरा हृदय उन लोगों के प्रति घृणा से भर जाता जो इसमें रस लेते। रोकाम्बोल ने मुझे सिखाया कि परिस्थितियों की ताकत से लोहा लो, उनके सामने कभी न झुको। ड्यूमा के नायकों ने किसी ऊँचे और महत्वपूर्ण लक्ष्य के लिए जीवन अर्पित करने की मुझे सीख दी। और सबसे अधिक मुग्ध किया मुझे बादशाह हेनरी चतुर्थ के मौजी चरित्र ने। मुझे ऐसा लगता मानो उसी को लक्ष्य में रखकर बेरांजे ने अपना यह मस्ती भरा गीत रचा हो :

मिली छूट खूब जनता को उससे,
और था पीने वह भी शौक़ीन!
हाँ, जीती जब जनता सुख से,
तो हो क्यों न राजा भी रंगीन?

उपन्यासों में हेनरी चतुर्थ एक नेक और जनता के हृदय में घर कर लेने वाले आदमी के रूप में चित्रित था। वह मुझे सुनहरी धूप की भाँति उजला लगता था। उसने मेरे दिल में अडिग भाव से यह बात बिठाई कि फ्रांस से बढ़िया देश इस दुनिया में और कोई नहीं है जहाँ किसानों के कपड़े पहने लोग भी उतने ही नेक और अच्छे हैं जितने कि वे जो शाही शानोशौक़त में रहते हैं। आंजे पितोय इतना ही आन-बानवाला था जितना कि द-आर्तन्यान। जब हेनरी मारा गया तो मेरा हृदय भारी हो गया, आँखों से आँसू बहने लगे और गुस्से के मारे रैबेलाक पर मैंने खूब दाँत पीसे। हेनरी क़रीब-क़रीब उन सभी कहानियों का हीरो होता जो मैं याकोव को सुनाता, और मुझे लगता कि उसके हृदय में भी हेनरी और फ्रांस ने अपना स्थान बना लिया है।

“मजे का आदमी है तुम्हारा यह हेनरी बादशाह भी!” उसने कहा।

“एकदम यार बाशा, चाहो तो उसके साथ मछली मारो या सैर-सपाटा करो।”

कहानी सुनते समय न कभी वह वाह-वाही करता, न बीच में टोकता, न सवालों की झड़ी लगाता। वह चुपचाप सुनता रहता—भौंहें तनी हुईं, चेहरे पर वही एक भाव जो कभी नहीं बदलता था : काई जमी पुरानी चट्टान की भाँति। लेकिन अगर किसी

वजह से मैं बीच में रुक जाता तो वह तुरन्त कहता :

"क्या खत्म हो गयी?"

"अभी नहीं।"

"तो रुक नहीं, कहे जा।"

एक दिन फ्रांस के लोगों के बारे में जब हम बातें कर रहे थे तो उसने लम्बी साँस भरी और बोला :

"मजे की ज़िन्दगी है उनकी—बढ़िया और ठण्डी..."

"सो कैसे?"

"हाँ, बढ़िया और ठण्डी," उसने कहा, "एक हम और तुम हैं जो हर वक़्त दहकते रहते हैं, काम की गर्मी एक घड़ी ठण्डा नहीं होने देती। लेकिन वो बस प्याले छनकाते और सैर-सपाटा करते हैं—मज़े की ज़िन्दगी है!"

"लेकिन काम तो वे भी करते हैं।"

"करते होंगे, तेरी कहानियों से तो इसका पता नहीं चलता," याकोव ने ज़वाब दिया। बात सही थी और मैंने एकाएक अनुभव किया कि ढेर की ढेर क़िताबें जो मैं पढ़ चुका था, उनसे यह पता नहीं चलता था कि उनके नेक नायक कैसे काम करते हैं, किस श्रम पर वे जीते हैं।

"अच्छा तो अब जरा नींद ले ली जाये," याकोव कहता और कमर के बल वहीं पसर जाता जहाँ वह बैठा हुआ होता और अगले ही क्षण उसके खर्राटे सुनाई देने लगते।

पतझड़ के दिनों में जब कामा नदी के किनारों पर लाल-कत्थई रंग छाया था, पेड़ों के पत्ते पीले पड़ चुके थे और सूरज की तिरछी किरणें फीकी हो चली थीं, याकोव एकाएक जहाज़ से अलग हो गया। इससे एक ही दिन पहले उसने मुझसे कहा था :

"परसों हम पेर्म पहुँच जायेंगे, अल्योशा-वल्योशा! सबसे पहले किसी हम्माम में जाकर हम दोनों खूब नहायेंगे, फिर सीधे भटियारख़ाने की राह लेंगे जहाँ बाजा भी बजता हो—बड़ा मजा आयेगा। भई, बाजा बजते देखना तो बड़ा ही अच्छा लगता है मुझे।"

लेकिन सारापूल में मोटा गावदुम, दाढ़ी सफ़ाचट और स्त्रियों जैसे फूले चेहरेवाला एक आदमी जहाज़ पर सवार हुआ। लम्बे कोट और लोमड़ी के फ़रवाले कनटोप में उसे देखकर और भी ज़्यादा धोखा होता कि पुरुष न होकर वह स्त्री है। आते ही रसोईघर के पास वह एक मेज़ पर बैठ गया, जहाँ गरमाई अधिक थी, चाय के लिए उसने आर्डर दिया और अपना कोट कनटोप उतारे बिना ही गरम चाय की चुस्कियाँ लेने लगा। देखते-देखते वह पसीने में तर हो गया।

बाहर पतझड़ की महीन बौछारें पड़ रहीं थी। जब वह अपने चौखाने रुमाल से

माथे का पसीना पोंछता तो मानो बौछारें भी साँस लेने के लिए रुक जातीं, इसके बाद जब फिर तेजी से पसीना निकलता तो बौछारें भी उतनी ही तेज हो जातीं।

कुछ ही देर बाद याकोव भी उसके पास नज़र आया और दोनों मिलकर कलैण्डर में एक नक़्शे को बड़े ध्यान से देखने लगे। मुसाफ़िर नक़्शे की रेखाओं पर उँगली फेरकर कुछ बता रहा था। याकोव शान्त स्वर में कुछ कह रहा था :

“ठीक है! कोई बात नहीं। मेरे लिए सब बायें हाथ का खेल है...”

“ठीक,” मुसाफ़िर ने पतली आवाज़ में कहा और कलैण्डर को उठाकर चमड़े के एक खुले थैले में खोंस दिया जो उसके पाँव के पास रखा था। इसके बाद वे चाय पीते और चुपचाप बातें करते रहे।

याकोव की पाली शुरू होने से पहले मैंने उससे पूछा कि यह कौन है। हल्की हँसी के साथ उसने जवाब दिया :

“देखने में तो जनखा मालूम होता है। दूर साईबेरिया का रहने वाला है। अजीब पंछी है—हर चीज़ का नक़्शा बनाकर चलता है...”

इसके बाद, काली और खुर की भाँति अपनी नंगी एड़ियों से डेक को झनझनाता वह मेरे पास से चल दिया। फिर रुका और अपने पहलू को खुजलाता हुआ बोला :

“मैंने उसकी चाकरी मंजूर कर ली है। पेर्म में पहुँचते ही मैं जहाज़ की नौकरी को धता बताऊँगा और तुझसे विदा लूँगा, अल्योशा-वल्योशा। बड़ी दूर है वह जगह, जहाँ उसके साथ मैं जाऊँगा। पहले हम रेलगाड़ी पर सवार होंगे, फिर पानी के जहाज़ पर और उसके बाद घोड़ों पर। वहाँ पहुँचने में पूरे पाँच हफ़्ते लग जायेंगे। लोगों ने भी कितनी दूर-दूर तक अपने घोंसले बना लिये हैं!”

“क्या तुम्हारी उनसे जान-पहचान है?” याकोव के इस आकस्मिक फैसले से चकित होकर मैंने पूछा।

“जान-पहचान कैसी? पहले कभी उसकी और उस जगह की भी जहाँ वह रहता है, शक़्ल तक नहीं देखी...”

अगले दिन सुबह के समय, याकोव भेड़ की खाल का एक चीकट कोट जो उसके लिए काफ़ी लम्बा नहीं था, सिर पर एक ख़स्ताहाल सीकों का हैट जिसके किनारे दग़ा दे चुके थे और जो किसी ज़माने में ‘नाटे भालू’ की सम्पति था और नंगे पाँवों में घिसी-पिटी चप्पलें पहने दिखाई दिया। लोहे जैसी उसकी उँगलियों में मेरा हाथ दबोचते हुए उसने कहा :

“क्यों, तू भी मेरे साथ चल न? अगर मैं उससे कहूँ तो सच वह तुझे भी रख लेगा। बोल, क्या कहता है? चल, बड़ा मजा रहेगा। और अगर तू वह चीज़ कटवाने के लिए तैयार हो गया जिसके बिना भी आदमी ज़िन्दा रह सकता है, तब तो तेरे गहरे हैं। बड़ी धूम-धाम से वे लोगों को ख़स्सी करते हैं, और इसके लिए अच्छी रक़म तक

भी देते हैं...”

जनखा कटहरे के पास खड़ा था और बगल में एक सफ़ेद पोटली दबाये मुर्दा-सी आँखों से याकोव की ओर देख रहा था। उसका बदन उतना ही भारी और फूला हुआ था जितना कि पानी में डूबे हुए आदमी का। मैंने धीमे-से उसे कोसा, याकोव एक बार फिर मेरा हाथ दबोचते हुए बोला :

“गोली मारो! हर आदमी अपने-अपने ख़ुदा की पूजा करता है। हमें इससे क्या लेना-देना है? अच्छा तो मैं अब चलता हूँ। मजे से रहना!”

और बड़े भालू की भाँति झूमता, झकोले खाता याकोव शूमोव विदा हो गया; मेरे हृदय में बोझिल जटिल भावनाएँ छोड़ गया। मुझे उस पर तरस भी आ रहा था और झुँझलाहट भी हो रही थी। मुझे याद है कि उसे इतनी दूर एक अनजानी जगह जाते देख इर्ष्या और चिन्ता का भाव भी मेरे हृदय को मथ रहा था कि उसने अनजानी जगह जाना क्यों तय किया। आख़िर यह याकोव शूमोव आदमी किस कैंड़े का था?

12

पतझड़ के दिन बीत चले और अब जहाज़ों का चलना बन्द हो गया, तो मैंने एक चित्रशाला में काम सीखने के लिए नौकरी शुरू की। यहाँ देव-प्रतिमाओं को रंगा-चुना और उन्हें चित्रशाला की दुकान में बेचा जाता था। काम सीखना शुरू करने के दूसरे ही दिन मेरी मालकिन ने, जो एक छोटे कद की ढीली-ढाली और शराबी-सी बूढ़ी स्त्री थी, ऐलान किया :

“अब दिन छोटे और साँझे बड़ी होने लगी हैं, सो तुम सुबह से तो दुकान पर काम करना और साँझ को चित्रशाला में काम सीखना।”

और उसने मुझे दुकान के कारिन्दे के हवाले कर दिया। वह एक छोटा-सा, तेज क़दम युवक था, सुन्दर चेहरा, जिसपर शहद में डूबी मुस्कान चिपकी रहती थी। दुकान नीज़्नी बाज़ार की बारादरी में दूसरी मंजिल पर थी। अँधेरे-मुँह हम, वह और मैं, उठते और ठण्ड में कलाबत्तू बने नींद में ऊँघते सौदागरों की गली इल्यीन्का के होते हुए सारा शहर पार करके दुकान पहुँचते। दुकान, जो पहले किसी का स्टोर रूम थी, छोटी और अँधेरी थी। लोहे का उसमें दरवाज़ा लगा था और एक छोटी-सी खिड़की थी जो टीन की छतवाली बालकनी की ओर खुलती थी। हमारी दुकान देव-प्रतिमाओं से भरी पड़ी थी। छोटी, बड़ी और मँझोली, सभी आकार-प्रकार और काँट-छाँट की प्रतिमाएँ थीं। साथ ही देव-प्रतिमाओं के चौखटे भी हम बेचते थे, सादे भी और कामदार भी, जो तरह-तरह के बेल-बूटों से सजे हुए थे। चमड़े की पीली ज़िल्द चढ़ी और प्राचीन स्लाव लिखावट की धार्मिक पुस्तकों का स्टाक भी दुकान में मौजूद था। हमारे बगल में ही

देव-प्रतिमाओं और धार्मिक पुस्तकों की एक और भी दुकान थी। इस दुकान का मालिक काली दाढ़ीवाला एक सौदागर था। वोल्गा के उस पार केर्जेन के समूचे इलाके में प्रसिद्ध एक कट्टर पुरातनपंथी* परिवार का वह नातेदार था। मेरी ही उम्र का उसका एक लड़का था—काजू-भोजू, सूखा शरीर और बूढ़ों जैसा बेरंग, छोटा-सा चेहरा, चूहे जैसी चंचल आँखें। दुकान खोलते ही मेरी दौड़ शुरू हो जाती। सबसे पहले मैं निकटतम भटियारख़ाने का रास्ता नापता और चाय के लिए वहाँ से खौलता हुआ पानी लाता। चाय के बाद मैं दुकान लगाता और माल की गर्द झाड़कर उसे साफ़-सुथरा करके रखता। दुकान को खूब चौचक बनाने के बाद मैं बालकनी में जा खड़ा होता। मेरा काम था कि ग्राहकों को अपने हाथ से न निकलने दूँ, यह न हो कि वे हमारी दुकान में न आकर बराबरवाली दुकान में चले जायें।

"ग्राहक तो काठ के उल्लू हैं," कारिन्दा कहता, "दुकान से उन्हें क्या गरज, वे तो वहीं मुँह मारते हैं जहाँ सस्ती चीज़ मिलती है। गधा-घोड़ा उनके लिए सब बराबर हैं!"

उसके हाथ तेजी से चलते रहते। देव-प्रतिमाओं को उठाता और सटा-सटाकर रखता। व्यापार सम्बन्धी अपना ज्ञान बघारने में जरा भी नहीं चूकता और मुझे सबक पढ़ाना शुरू करता :

"म्स्तेरा गाँव का बना माल सस्ता होता है, तीन बाई चार साईज़ का अपना दाम है, छः बाई का सात साईज़ का अपना दाम है... सन्तों को जानता है? याद कर ले : यह सन्त बोनिफाती हैं—पियक्कड़ बनने से बचाते हैं। और यह सन्त वर्वारा की प्रतिमा है—दाँत-दाढ़ के दर्द और अकाल मृत्यु से बचाने के लिए; और यह सिद्ध वसीली हैं—बुखार और सरसाम के दौरों से बचाने के लिए। और मरियमों को जानता है?* देख—यह है शोकाकुल मरियम, यह त्रिभुज मरियम और यह 'मेरा शोक दूर करो' मरियम है, इसके अलावा है कज़ान, पोक्रोव और सेमिस्त्रेलूनाया मरियम..."

बड़ी-छोटी और कारीगरी के हिसाब से किस प्रतिमा के कितने दाम हैं, यह सब

---

* पुरातनपंथ का आरम्भ रूस में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ। रूसी आर्थोडॉक्स चर्च के तत्कालीन सर्वोच्च पादरी नीकोन ने ज़ार अलेक्सेई मिख़ाइलोविच के अनुमोदन से धार्मिक पुस्तकों तथा चर्च की रस्मों में यूनानी आर्थोडॉक्स परम्परा के अनुसार कुछ संशोधन किए। पादरियों के एक बहुत बड़े भाग ने इन संशोधनों का विरोध किया। कालान्तर में संशोधनों विरोधी पुरातनपंथी कहलाये। राजकीय धर्म का विरोध करने के कारण इन्हें सरकार के अत्याचारों का शिकार होना पड़ता था।—सं.

* माता मरियम की विभिन्न शैलियों और विभिन्न मुद्राओं में बनी प्रतिमाओं और साथ ही विभिन्न नगरों, गिरजों में स्थित प्रतिमाओं के अलग-अलग नाम होते थे। कई प्रतिमाएँ अपनी चमत्कारी शक्ति के लिए विशेष नामों से जानी जाती थीं।—सं.

मैंने बड़ी जल्दी याद कर लिया, और विभिन्न मरियमों को पहचानने में भी मुझे अब कोई दिक्कत नहीं होती, लेकिन यह याद रखना मुझे एक अच्छा-ख़ासा जंजाल मालूम होता कि किस सन्त की प्रतिमा किस तरह के शोक-ताप हरती या किस तरह के वरदान देती है।

कारिन्दा अक्सर मेरा इम्तहान लेता। दुकान के दरवाज़े पर खड़ा मैं न जाने किस ख़याली दुनिया में मगन होता कि उसकी आवाज़ आती :

"बोल, बच्चा जनने की पीड़ा कम करना किसके हाथ में है?"

अगर मेरा जवाब ग़लत निकलता तो उसकी भौंहें चढ़ जातीं :

"आख़िर तेरी यह खोपड़ी किस काम आयेगी?"

ग्राहकों को पटाना और भी ज़्यादा मुश्किल मालूम होता। प्रतिमाओं के भोंड़े चेहरे मुझे बुरे मालूम होते और उन्हें बेचने में शर्म आती थी। नानी से कहानियाँ सुन-सुनकर मेरे मन में यह बात बैठ गयी थी कि माता मरियम कम उम्र, भली और सुन्दर थी। पत्रिकाओं में माता मरियम के जो चित्र मैंने देखे थे, वे भी ऐसे ही थे। लेकिन प्रतिमाओं में वह बूढ़ी और कठोर स्वभाव की मालूम होती थी, लम्बी और नोक-नुकीली नाक तथा बेजान हाथ।

बुध और शुक्र के दिन बाज़ार लगता और हमारी अच्छी बिक्री होती। किसानों और बूढ़ी स्त्रियों का हमारी दुकान में ताँता लगा रहता और कभी-कभी तो बच्चों के साथ पूरा परिवार का परिवार आ धमकता—सब के सब पुरातनपंथी, भौंहे चढ़ाए और आँखों में अविश्वास भरे, वोल्गा पार के जंगल में गुजर करने वाले। ऐसा भी हुआ करता था कि कोई भारी-भरकम आदमी भेड़ की खाल का लम्बा कोट पहने और ऊनी कपड़ों में लिपटा, बालकनी पर धीरे-धीरे कदम रखते हुए, मानो वह डर रहा हो कि बालकनी से गिर जायेगा, आ रहा होता। मैं उसे देखता और उसके सामने शर्मिन्दा और अटपटा-सा महसूस करने लगता। आख़िर, भारी उलझन के बाद, मैं उसके रास्ते में जम जाता और उसके भारी-भरकम ऊँचे जूतों वाले पाँवों के पास नाचता हुआ मच्छर की तरह भनभनाने लगता :

"क्या लोगे, बाबा जी? सभी कुछ हमारे यहाँ है—समय-समय विभाजित भजन-संहिता, टीका-टिप्पणी और अर्थ सहित बाईबल के गीत, येफ्रेम सीरिन और किरील की बनाई पुस्तकें। एक बार चलकर जरा देख लीजिए। और सभी तरह की देव-प्रतिमाएँ सस्ती से सस्ती और महंगी से महंगी, अव्वल दर्जे की कारीगरी और गहरे रंग। हम आर्डर पर देव-प्रतिमाएँ तैयार भी करते हैं। जो भी सन्त या माता मरियम आपको पसन्द हों, हमसे बनवाईए। या आप अपने नाम के, अपने परिवार के सन्त की प्रतिमा बनवाना चाहें, तो वे भी बना देंगे। हमारी चित्रशाला समूचे रूस में बेजोड़ है! नगर में इससे बढ़िया दुकान ढूँढ़े नहीं मिलेगी!"

अभेद्य और समझ में न आने वाला ग्राहक देर तक चुप रहता और इस तरह मुझे घूरकर देखता मानो मैं कोई कुत्ता हूँ। एकाएक भारी हाथ से वह मुझे धकियाता और बराबर वाली दुकान में घुस जाता। कारिन्दा अपने बड़े कानों को मलता और गुस्से से भुनभुना उठता :

"क्यों, उसे निकल जाने दिया, अच्छा चौपट दुकानदार है तू..."

और पासवाली दुकान से मुलायम तथा शहद में लिपटे शब्दों की वर्षा होने लगती :

"भगवान भला करे, बाबा जी हम कोई भेड़ों की खाल नहीं बेचते, न ही चमड़े के जूतों का धंधा करते हैं। हमारे यहाँ तो केवल दैवी न्यामते हैं, जिनका न चाँदी से मोल आँका जा सकता है न सोने से, वे अनमोल हैं, दुनिया की हर चीज़ उनके सामने हेच है..."

कारिन्दा सुनता और ईर्ष्या तथा प्रशंसा से कलाबत्तू बन जाता :

"देख न कम्बख़्त को, भोले देहाती के कानों में क्या मीठा ज़हर उंडेल रहा है! ग्राहकों को ऐसे पटाया जाता है, समझा!"

ग्राहकों को पटाने की कला सीखने के लिए मैं जी जान से प्रयत्न करता। सोचता कि जब काम हाथ में लिया है तो उसे अच्छी तरह करना चाहिए। लेकिन ग्राहकों पर डोरे डालने और उनके माथे चीज़ें मढ़ने की दिशा में मेरी प्रतिभा ने मानो उजागर होने से इंकार कर दिया। गुमसुम देहातियों और चूहों की भाँति भय से त्रस्त तथा दीन चेहरे वाली बूढ़ी स्त्रियों को जब भी मैं देखता, मुझे उन पर बड़ा तरस आता, मेरा जी चाहता कि चुपके से उनके कानों में इन प्रतिमाओं की असल कीमत बता दूँ ताकि गाढ़ी कमाई के जो दस-बीस कोपेक उनकी गाँठ में पड़े हैं, वे उनके पास ही बने रहें। वे सब इतने फटेहाल, इतने गरीब और भूखे मालूम होते कि मैं चकरा जाता, और मेरी समझ में न आता कि बाइबल की भजन-संहिता के लिए, जो सबसे ज़्यादा बिकती थी, उनकी गाँठ से साढ़े तीन रूबल कैसे निकल आते थे।

क़िताबों का ज्ञान और देव-प्रतिमाओं के दोष-गुणों की उनकी परख देख कर मैं दंग रह जाता। और एक बार पके बालों वाले एक बूढ़े ने, जिसे मैं अपनी दुकान में फुसला लाने का प्रयत्न कर रहा था, मुझसे कहा :

"नहीं, बेटा, यह ग़लत है कि रूस में सबसे अच्छी प्रतिमाएँ तुम्हारे यहाँ बनती हैं। सबसे अच्छी तो मास्को में रोगोजिन की चित्रशाला है!"

सकपकाकर मैं एक ओर हट गया और वह पड़ोसी की दुकान को भी पार करता हुआ धीमे से आगे बढ़ चला।

"मिल गये लड्डे?" कारिन्दे ने जल-भुनकर कहा।

"तुमने तो रोगोजिन के बारे में कभी कुछ बताया ही नहीं।"

कारिन्दा झुँझलाहट उतारने लगा :

"घूमते-फिरते हैं ऐसे चुप्पे, साले। सभी कुछ जानते हैं, सब समझते हैं, बुड्ढे खूसट..."

खूबसूरत, खाता-पीता और घमण्डी कारिन्दा देहातियों से नफरत करता था और जब मूड में होता तो मेरे सामने अपना रोना रोने लगता :

"मैं अक़्लमन्द हूँ, साफ़-सुथरी चीज़ें और बढ़िया खूशबू मैं पसन्द करता हूँ—लोबान, गुलाबजल, तेल-फुलेल और मेरे जैसे गुणी आदमी को इन बदबू मारते देहातियों के सामने झुकना पड़ता है, ताकि मालकिन की जेब में दो-चार कोपेक मुनाफा जाये। मैं ही जानता हूँ कि मेरे दिल पर कैसी-क्या गुजरती है। आख़िर ये देहातिए हैं क्या? कीड़े पड़ी खाल, जुंएँ कहीं की, और मुझे..."

विक्षुब्ध-सा वह बोलते-बोलते चुप हो जाता।

मुझे देहातिए पसन्द थे। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वे अपने भीतर कोई बहुत बड़ा रहस्य छिपाए हों, ठीक वैसे ही जैसे याकोव को देखकर मुझे अनुभव होता था।

भेड़ की खाल के कोट के ऊपर भारी लबादा लादे कोई देहातिया लस्टम-पस्टम दुकान में चला आता। अपनी बालदार टोपी को वह सिर से उतारता, कोने में जल रहे दिये की लौ पर आँखें जमाए अपनी दो उँगलियों से सलीब का चिह्न बनाता। फिर वह चुपचाप अपने इर्द-गिर्द देखकर कहता :

"जरा बाइबल की भजन-संहिता दिखाओ, टीकावाली।"

अपने लबादे की आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर, मुखपृष्ठ के अक्षरों के साथ वह देर तक सिर खपाता, और उसके फटे हुए मटियाले होंठ बिना कोई आवाज़ निकाले हरकत करते रहते। अन्त में वह कहता :

"इससे पुरानी नहीं है?"

"पुरानी एक हजार रूबल से कम में नहीं मिलती,—तुम तो जानते ही हो..."

"हाँ, पता है।"

फिर थूक से अपनी उँगली को नम कर वह पन्ना पलटता जिससे हाशिए पर मैली-कुचैली उँगलियों का काला धब्बा पड़ जाता। कारिन्दा देहातिए की खोपड़ी की ओर गुस्से से घूरते हुए कहता :

"धर्म ग्रंथों की उम्र में भी क्या कोई भेद-भाव होता है। पुराने हों चाहे नए, सब एक ही उम्र के होते हैं। भगवान ने अपने शब्दों को नहीं बदला है..."

"यह सब हम भी जानते हैं, सुना है। भगवान ने अपने शब्दों को नहीं बदला, लेकिन नीकोन ने तो उन्हें बदल दिया है न?"

और ग्राहक ग्रंथ को बन्द करते हुए चुपचाप दुकान से बाहर हो जाता।

जंगलों के ये निवासी कभी-कभी कारिन्दे से बहस करने लगते और मैं साफ़

देखता कि धर्म पुस्तकों की जितनी जानकारी उन्हें है, उतनी उसे नहीं।

"दलदल के कीड़े, ईंट-पत्थरों को पूजने वाले," कारिंदा बड़बड़ाता।

मैंने यह भी देखा कि यद्यपि नई पुस्तक देहातिए को पसन्द नहीं आती फिर भी वह उसे श्रद्धा के साथ देखता है, उसे सावधानी से छूता है मानो पुस्तक उसके हाथ से पक्षी की भाँति उड़ जा सकती हो। यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द आता, कारण कि पुस्तकें मेरे लिए भी अद्‍भुत चीज़ थीं जिनमें उनके रचयिताओं की आत्माएँ बन्द थीं। पुस्तक खोलकर मैं मानो उनकी आत्माएँ उन्मुक्त करता और वे रहस्यमय ढंग से मेरे साथ बातचीत करने लगतीं।

अक्सर ऐसा होता कि ये बूढ़े पुरुष और स्त्रियाँ नीकोन के समय से भी पहले की पुरानी छपी हुई पुस्तकें या इस तरह की पुस्तकों की हस्तलिखित नकलें बेचने के लिए लाते। ये नकलें पुरातनपंथी इर्‌गीज या केर्जेनेत्स मठों की भिक्षुणियों के हाथों से लिखी बहुत ही सुन्दर होती थीं। वे द्‌मीत्री रोस्तोव्स्की द्वारा असंशोधित सन्तों की जीवनियाँ, प्राचीन देव-प्रतिमाएँ, इनामेल चढ़े, श्वेत सागर के तटवर्ती प्रदेशों के कारीगरों द्वारा बनाए गये पीतल के त्रिपाद और सलीब, मास्को के महाराजों द्वारा शराबख़ानों के मालिकों को भेंट किये गये चाँदी के कलछे आदि लेकर आते। इन सब चीज़ों को वे चोरी के माल की भाँति छिपाकर लाते और अगल-बगल कनखियों से देखते रहते कि कहीं किसी की नज़र तो नहीं पड़ रही है।

हमारा कारिन्दा और पड़ोसी दुकानदार दोनों ही इस तरह के माल के लिए जीभ लपलपाते रहते और उसे कम दामों में हथियाने में एक-दूसरे को मात देने की कोशिश करते। प्राचीन से प्राचीन निधियों की कीमत भी वे इकाइयों में या बहुत हुआ तो दहाइयों में देते और मेले में धनी पुरातनपन्थियों के हाथ उन्हें बेचकर खुद सैंकड़ों रूबल झटकारते।

"देखना, कोई बूढ़ा शैतान या कोई बुढ़िया भुतनी नज़र बचाकर न निकल जाये," वह मुझसे कहता। "ये कम्बख़्त अपने थैलों में नकद हुण्डियाँ लिये घूमते हैं!"

जब भी कोई ऐसा माल बेचनेवाला सामने आता, कारिन्दा मुझे प्राचीन पुस्तकों, देव-प्रतिमाओं और इस तरह की अन्य पुरानी चीज़ों के पारखी प्योत्र वासील्येविच के पास दौड़ाता कि उसे बुला लाओ।

वह एक लम्बे कद का बूढ़ा आदमी था। उसकी आँखों में समझदारी की चमक थी, चेहरा और उसकी लम्बी दाढ़ी देखकर सन्त वसीली का धोखा होता था। उसके एक पाँव का पंजा गायब था और हमेशा लम्बी लकड़ी का सहारा लेकर वह चलता था। गर्मी हो चाहे सर्दी, पादरी के लबादे की भाँति वह हमेशा एक हल्का पतला कोट और सिर पर मखमल की अजीब-सी शक्ल की टोपी पहने रहता था। आम तौर से जब वह चलता तो काफ़ी सीधा-सतर और फुर्तीला मालूम होता, लेकिन दुकान में पाँव

रखते ही अपने कंधे ढीले छोड़ देता, हल्की-सी आह भरता और पुरातनपन्थियों के रिवाज के अनुसार दो उँगलियों से सलीब का चिह्न बनाता, मुँह से प्रार्थनाओं और भजनों के शब्द बुदबुदाता। बुढ़ापे और धार्मिकता की यह नुमाइश दुर्लभ चीज़ें बेचनेवालों के हृदयों में उस के प्रति विश्वास का संचार करती थी।

"कहो, किस काम के लिए बुलाया था मुझे?" बूढ़ा कहता।

"यह आदमी एक देव-प्रतिमा लाया है और कहता है कि यह स्त्रोगानोव की बनाई देव-प्रतिमा है।"

"क्या-आ?"

"स्त्रोगानोव की बनाई।"

"अच्छा-आ... सुनाई कम देता है। शुक्र है भगवान का, मुझे बहरा बनाकर उस झूठ और पाखण्ड को सुनने से बचा लिया जो नीकोन के बाद से फैला हुआ है..."

वह अपनी टोपी उतारकर रख देता, और प्रतिमा को सामने रखकर आँखें सिकोड़े, चित्रकारी को ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, फिर अगल-बगल से और सीधे देखता और बुदबुदाता जाता :

"इन नास्तिक नीकोनियाइयों ने यह देखकर कि लोगों पर प्राचीन देवी-रूप सौन्दर्य का प्रभाव है, और शैतान की सीख में आकर देव-प्रतिमाओं की झूठी और विकृत नकलें उतरवाना शुरू कर दिया। और यह काम अद्‌भुत होशियारी से आजकल किया जा रहा है! पहली नज़र में यही मालूम होता है मानो यह असली स्त्रोगानोव या उस्त्‌युग शैली की प्रतिमा है या फिर सूज़्दाल प्रतिमाओं जैसी है। लेकिन अन्तदृष्टि से देखने पर साफ़ मालूम हो जाता है कि यह झूठी और विकृत नकल है!"

जब वह किसी प्रतिमा को "झूठी और विकृत" कहता तो इसका अर्थ सिवा इसके और कुछ न होता कि वह एक दुर्लभ और कीमती चीज़ है। इस तरह के शब्दों की एक बाक़ायदा फ़ेहरिस्त उन्होंने बना रखी थी जिससे कारिन्दे को पता चल जाता कि किस चीज़ का कितना दाम उसे लगाना चाहिए। मैं जानता था कि "शोक और निराशा" शब्दों का अर्थ है—दस रूबल, "नीकोन शेर"—पच्चीस रूबल। बेचने वालों को इस तरह धोखा देना मुझे बड़ा शर्मनाक मालूम होता, लेकिन बूढ़ा इतनी चालाकी से यह खेल खेलता कि मैं भी इसमें खिंच आता था।

"निकोनियाई, नीकोन शेर के ये चपड़कनाती, शैतान के सिखाए सब कुछ कर सकते हैं। इसे ही देखो, कौन कह सकता है कि इस प्रतिमा का आधार सच्चा नहीं है, अथवा यह कि इसके कपड़ों पर उन्हीं हाथों ने रंग नहीं किया है? मगर जरा देव मुख-मंडल तो देखो—यह दूसरी ही कूची से बनाया गया है। पीमेन उशाकोव जैसे पुराने उस्ताद—ईश्वर द्रोही चाहे वे क्यों न रहे हों—समूची छवि को खुद ही रंगते-चुनते थे। लेकिन हमारे आज के ये टकियल चेले-चाटी तो टें बोल गये हैं। इनके बस का कुछ

नहीं है! एक जमाना था जब प्रतिमाएँ तैयार करना ईश्वर की सेवा करना था। लेकिन आज तो वह पेट भरने का, कोरी रँगाई का धंधा बन गया है!"

अन्त में वह प्रतिमा को काउण्टर पर सावधानी से रख देता और टोपी पहनकर कहता :

"तौबा, कैसा पाप है।"

इसका मतलब था : आँखें बन्द करके ख़रीद लो!

पारखी के मीठे शब्दों से अभिभूत होकर और उसकी जानकारी के रोब में आकर बेचने वाला श्रद्धा से पूछता :

"तो इस प्रतिमा के बारे में क्या कहते हैं, बाबा?"

"यह नीकोनियाइयों के हाथ की बनी है।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। हमारे दादा-परदादा, बल्कि लकड़दादा के जमाने की यह प्रतिमा है। वे सब इसी की पूजा-प्रार्थना किया करते थे..."

"इससे क्या हुआ? नीकोन तुम्हारे लकड़दादा से भी पहले हुआ था।"

इसके बाद बूढ़ा देव-प्रतिमा को फिर अपने हाथों में उठाता और उसे बेचने वाले के मुँह के सामने ले जाते हुए प्रभावशाली आवाज़ में कहता :

"देखते हो, कितनी तड़क-भड़क और रंगीनी है इसमें? क्या देव-प्रतिमाएँ भी कभी इतनी रंगीन होती हैं? यह तो निरी सजावटी चीज़ है, वासना में डूबी कला, नीकोन के चेले-चपाटियों की लालसाओं का मूर्त रूप। इस कृति में आत्मा जैसी कोई चीज़ नहीं है! क्या तुम समझते हो कि मैं झूठ बोल रहा हूँ? मेरे बाल पककर सफ़ेद हो गये हैं। दीन-ईमान के पीछे न जाने कितनी यन्त्रणाएँ मैंने सही हैं। दो दिन बाद भगवान के दरबार में मुझे पेश होना है। तुम्हीं बताओ, ऐसी हालत में अपनी आत्मा को बेचने से मेरे पल्ले क्या पड़ेगा?"

बुढ़ापे के बोझ से डगमगाता, काँखता और कराहता, दुकान से वह बालकनी में आ जाता, और ऐसा दिखाता मानो उसकी बातों पर अविश्वास प्रकट करके उन्होंने उसके हृदय को घायल कर दिया है। कारिन्दा कुछ रूबल देकर प्रतिमा को ख़रीद लेता और बेचने वाला दुकान से विदा लेता, प्योत्र वासील्येविच की ओर मुड़ते हुए खूब झुककर अभिवादन करता और अपना रास्ता पकड़ता। इसके बाद मुझे दौड़ाया जाता कि भटियारख़ाने से चाय के लिए खौलता हुआ पानी ले आओ। लौटने पर मैं देखता कि पारखी फिर प्रसन्नचित्त और फ़ुर्ती भरा नज़र आ रहा है। ख़रीदी हुई प्रतिमा को वह चाव से देखता और कारिन्दे को सिखाता :

"देख, इसके रंगों में कितनी सफाई और सादगी झलकती है, प्रत्येक रेखा में परमात्मा का भय और उसके प्रति सम्मान झलकता है—सांसारिकता का लेश मात्र भी नहीं दिखाई देता..."

कारिन्दे की आँखें चमकने और उसका रोम-रोम थिरकने लगता। खुशी से उछलता हुआ पूछता :

"यह किस कारीगर के हाथों का चमत्कार है?"

"अभी तेरी उम्र नहीं हुई, यह जानने की!"

"कोई क़द्रदान इसके लिए क्या देगा?"

"यह मुझे मालूम नहीं है। दो-चार लोगों को दिखाकर मालूम करूँगा..."

"आह, प्योत्र वासील्येविच..."

"और अगर ख़रीददार मिल गया तो पचास रूबल तेरे और इससे ऊपर के मेरे!"

"आह..."

"ज़्यादा आह-आह मत कर..."

वे चाय पीते, पूरी बेशर्मी से सौदेबाज़ी करते और मक्कारी भरी नज़रों से एक-दूसरे का जायजा लेते। साफ़ मालूम होता कि कारिन्दे का पलड़ा बेहद कमज़ोर है, बूढ़े के सामने उसकी एक नहीं चल सकती। जब बूढ़ा चला जाता तो कारिन्दा कहता :

"देख, मालकिन के कानों में इस सौदे की भनक तक न पड़े, समझा!"

प्रतिमा को बेचने के बारे में जब सब कुछ तय हो जाता तो कारिन्दा कहता :

"और सुनाओ, प्योत्र वासील्येविच, शहर में और क्या कुछ हो रहा है, कोई नई-ताजी खैर-खबर?"

बूढ़ा पीले हाथ से अपनी दाढ़ी सहलाता, तेल-चुपड़े-से उसके होंठ दिखाई देने लगते और वह धनी सौदागरों की ज़िन्दगी, व्यापार करने के उनके कारगर हथकण्डों, बीमारी-चकारियों, ब्याह-शादियों, रासरंग और ऐयाशियों, पति को उल्लू बनाने वाली पत्नियों और पत्नियों को चकमा देनेवाले पतियों के किस्से बयान करता। कुशल बावर्चिन की भाँति वह इन कहानियों में बघार लगाता और बढ़िया पकवान की भाँति, अपनी फुसफुसी हँसी की चाशनी चढ़ाकर, फुर्ती से उन्हें परोसता। कारिन्दे के गोल चेहरे पर रश्क और ईर्ष्या की लाली दौड़ जाती और उसकी आँखों में सपने तैरने लगते। आह भरकर वह कहता :

"कितना रास-रंग है उनके जीवन में, और एक मैं हूँ कि..."

"जैसा जिसका भाग्य," बूढ़ा बमकता, "एक भाग्य वह है जिसे खुद फ़रिश्ते चाँदी की नन्हीं-नन्हीं हथौड़ियों से गढ़ते हैं, और दूसरा वह जिसे शैतान अपनी कुल्हाड़ी के दस्ते से गढ़ता है..."

कड़ियल और चीमड़ वह बूढ़ा हर चीज़ की ख़बर रखता था : समूचे नगर का जीवन, सौदागरों के गुप्त से गुप्त भेद, दफ़्तरों के बाबुओं, पादरियों और मध्यवर्ग के लोगों की छिपी-ढँकी बातें, सभी कुछ उसे मालूम था। उसकी नज़र गिद्ध की भाँति

तेज थी, भेड़िए और लोमड़ी का अंश उसमें मिला हुआ था। उसे कोंचने के लिए मेरा जी सदा ललकता, लेकिन आँखें सिकोड़कर कुछ इस धुँधले अन्दाज़ से वह मेरी ओर देखता कि मैं निरस्त हो जाता। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वह चारों ओर गहरी खाई में घिरा था जो निकट आने का दुस्साहस करनेवाले हर व्यक्ति को निगल जाने के लिए मुँह बाए थी और मुझे लगता कि जहाज़ी याकोव शूमोव और वह मानो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।

कारिन्दा बूढ़े की चतुराई का क़ायल था और मुग्ध भाव से उसे दाद देता था। बूढ़े के मुँह पर ही नहीं, उसकी पीठ पीछे भी वह उसकी तारीफ करता। लेकिन कभी-कभी ऐसे भी क्षण आते जब वह मेरी तरह बूढ़े को कोंचने और उसकी हँसी उड़ाने के लिए ललक उठता।

एक दिन, चित्त कर देनेवाली नज़र से बूढ़े की ओर देखते हुए कहने लगा :

"लोगों की आँखों में धूल झोंकना और उन्हें धोखा देना कोई तुमसे सीखे!"

"केवल भगवान ही ऐसा है जो कभी लोगों को धोखा नहीं देता," अलस भाव से हँसते हुए बूढ़े ने जवाब दिया। "बाकी सब उल्लुओं के बीच जीवन बिताते हैं। अगर उल्लुओं को उल्लू नहीं बनायें तो और क्या उनका अचार डालें?"

कारिन्दा गुस्से का दामन पकड़ता :

"सभी देहातिए उल्लू नहीं होते। व्यापारी लोग क्या आसमान से टपकते हैं? वे भी तो इन्हीं देहातियों के बीच से आते हैं!"

"उन देहातियों की बात छोड़ो जो व्यापारी बन गये हैं। ठगने के लिए जितने बड़े दिमाग की ज़रूरत है, वह उल्लू देहातियों के पास कहाँ से आ गया? वे तो निरे बुद्धू—बिना दिमाग के सन्त—होते हैं..."

शब्दों की वह इतने निश्चल और अलसाए भाव से कुल्लियाँ करता कि तबीयत बुरी तरह झुँझला उठती। मुझे ऐसा मालूम होता मानो वह मिट्टी के एक सूखे ढूह पर खड़ा है और उसके चारों ओर दलदल फैला है। उसे परेशान करना या चिढ़ाना असम्भव था। या तो गुस्सा उसके हृदय को छूता नहीं था, या गुस्सा छिपाने की कला में उसे कमाल हासिल था।

बहुधा वह खुद चिढ़ाना शुरू करता। अपनी थूथनी को मेरे नजदीक लाकर वह अपनी दाढ़ी के भीतर ही भीतर हँसता और कहता :

"हाँ तो फ्रांस के उस लेखक का जाने क्या भला-सा नाम बताया था तुमने—पोसतोन?"

वह कुछ इस अन्दाज़ से नामों को तोड़ता-मरोड़ता कि मैं भन्ना उठता, लेकिन कुछ देर तक मैं अपने को सम्हाले रहता और कहता :

"पौनसोन-द-तैरेल।"

"किधर तैरा?"

"आप बच्चे नहीं हैं। शब्दों को तोड़-मरोड़कर उनके साथ खिलवाड़ क्यों करते हैं?"

"ठीक कहता है। भला मुझे बच्चा कौन कहेगा? तुम्हारे हाथ में यह कौन-सी पुस्तक है?"

"येफ़्रेम सीरिन की पुस्तक है।"

"कौन ज़्यादा अच्छा लिखता है—वह या यह किस्सा-कहानी गढ़ने वाले?"

मैं कोई ज़वाब न देता। वह फिर पूछता :

"ये कहानी-किस्सा गढ़नेवाले ज़्यादातर क्या लिखते हैं?"

"वही सब, जो दुनिया में होता है।"

"कुत्तों और घोड़ों के बारे में? ये भी तो इस दुनिया में होते हैं।"

कारिन्दे के पेट में बल पड़ जाते और मैं भीतर ही भीतर उफ़नता। मेरे लिए वहाँ बैठे रहना बोझिल और अप्रिय हो जाता। लेकिन जैसे ही मैं खिसकना शुरू करता, कारिन्दा चिल्ला उठता :

"किधर चला? बैठ यहीं पर!"

बूढ़ा मुझे कुरेदना जारी रखता :

"तुझे अपने लम्बे दिमाग पर गर्व है। जरा यह पहेली तो बूझ। तेरे सामने एक हजार लोग खड़े हैं, एकदम मादरजात नंगे। पाँच सौ पुरुष और पाँच सौ स्त्रियाँ। और उन्हीं के बीच आदम और हौवा छिपे हैं। बोल, उन्हें कैसे पहचानेगा?"

कुछ देर मेरा सिर चकराने के बाद अन्त में वह विजयी अन्दाज़ से कहता :

"बेवकूफ़ की दुम, उन्हें खुद ख़ुदा ने अपने हाथों से गढ़ा था, किसी स्त्री के पेट से वे पैदा नहीं हुए थे। इसका मतलब यह है कि उनके शरीर में नाभि नहीं हो सकती!"

बूढ़ा इस तरह की अनगिनत पहेलियों की खान था और मुझे परेशान करने के लिए उन्हें पेश करता रहता था।

दुकान पर आने के बाद, शुरू-शुरू में अपनी पढ़ी हुई पुस्तकों के कुछ क़िस्से मैंने कारिन्दे को सुनाए थे। वे क़िस्से अब मेरे जी का जंजाल बन गये। हुआ यह कि अपनी ओर से मनमाना नमक-मिर्च लगाकर तथा खूब गन्दा बनाकर कारिन्दा उन किस्सों को प्योत्र वासिल्येविच को सुनाता। बूढ़ा खोद-खोदकर घिनौने सवाल करता और उसे उकसाता। नतीजा इसका यह होता कि अपनी गन्दी जबान से वे मेरे प्रिय पात्रों—यूजेनी ग्राण्डे, ल्युद्मीला और हेनरी चतुर्थ की खूब छीछालेदर करते।

मैं यह समझता था कि किसी कुत्सित इरादे से नहीं, बल्कि दो घड़ी दिल बहलाने या जीवन की ऊब कम करने के लिए वे ऐसा करते हैं, फिर भी उसका ऐसा करना

मेरे लिए असह्य हो उठता। वे सुअरों की भाँति अपने ही पैदा किये हुए कीचड़ में लोटते और सुन्दर कृतियों को कीचड़ में लथेड़कर खुश होते, क्योंकि सुन्दर चीज़ उन्हें अजीब, समझ में न आनेवाली और इसीलिये हास्यास्पद मालूम होती थी।

अगल-बगल के सभी दुकानदार और व्यापारी निराले ढंग का जीवन बिताते थे। उन्हें बड़ा मजा आता जब वे किसी को बनाते। उनके मजाक बहुत ही बेहूदा, बचकाने और कुत्सापूर्ण होते। अगर कोई देहातिया पहली बार नगर में आता और किसी जगह का रास्ता पूछता तो वे अदबदाकर उसे उल्टा रास्ता बताते। लेकिन यह मजाक इतना घिस-पिट गया था कि उनमें अब उन्हें कोई रस नहीं मिलता था। दो चूहों को पकड़कर सौदागर उनकी दुमों को एक-दूसरे से बाँधकर उन्हें सड़क पर छोड़ देते और अलग खड़े होकर मजे लेते हुए दाँत-पंजे चलाते और विरोधी दिशाओं में एक-दूसरे को खींचते हुए देखते। कभी-कभी वे चूहे पर मिट्टी का तेल उंडेलकर दियासलाई भी दिखा देते। या वे कुत्तों की दुम में टीन बाँध देते, कुत्ता घबराकर जीभ निकाले भागता। पीछे से टीन खड़खड़ करता और लोग हँसी के मारे दोहरे हो जाते।

इस तरह, आये दिन, वे कोई न कोई तमाशा करते रहते। ऐसा मालूम होता कि सभी व्यक्ति—और ख़ास तौर से देहाती—मानो बाज़ारवालों का दिल बहलाव करने के लिए ही पैदा हुए हैं। सौदागर और उनके कर्मचारी इस बात की ताक में रहते कि कोई आये और उनका मजाक बनाया जाये या उसे छेड़ा और कोंचा-खरोंचा जाये,—जैसे भी हो उसे परेशान किया जाये और उसे रुलाकर खुद हँसा जाये। और सबसे अजीब बात तो यह थी कि जो पुस्तकें मैं पढ़ता था उनमें एक-दूसरे की खिल्ली उड़ाने की लोगों की इस इच्छा का कोई ज़िक्र नहीं होता था।

बाज़ार के इन मनबहलावालें में से एक मुझे ख़ास तौर से घिनौना लगता था।

हमारी दुकान के नीचे ऊन और नमदे के जूतों की दुकान थी। इस दुकान का कारिन्दा इतना अधिक खाता था कि समूचे नीज़्नी बाज़ार में प्रसिद्ध था। दुकान का मालिक अपने कारिन्दे की भोजन चट करने की अद्भुत क्षमता का उतनी ही शेखी और गर्व के साथ ऐलान करता जितने गर्व के साथ लोग अपने शिकारी कुत्तों की खूँख़्वारी या अपने घोड़ों की ताकत का बखान करते हैं। अक्सर अपने पड़ोसियों से वह शर्त तक बदता :

“बोलो, हैं कोई दस रूबल लगाने को तैयार? मेरा दावा है कि मीशा पांच सेर मांस दो घण्टे की भीतर चट कर जायेगा।”

सभी जानते थे कि मीशा पाँच सेर मांस चट कर जायेगा। यह उसके लिए मुश्किल नहीं था। बोले :

“शर्त तो हम नहीं बदते। लेकिन मांस हम अपनी जेब से ख़रीद देंगे। वह खाना शुरू करे और हम तमाशा देखेंगे।”

"लेकिन पाँच सेर मांस ही मांस होना चाहिए, कहीं हड्डियाँ न उठा लाना—समझे!"

कुछ देर अलस बहस होती रही, अन्त में अँधेरे गोदाम में से एक दुबला-पतला आदमी प्रकट हुआ। उसका चेहरा सफ़ाचट था, जबड़े की हड्डियाँ उभड़ी हुई थीं। वह एक लम्बा कोट पहने और कमर में लाल पटका कसे हुए था। सारे कोट में ऊन के गुच्छे बुरी तरह लिपटे हुए थे। छोटे-से सिर से सम्मान के साथ टोपी उतारकर उसने मालिक के गोल, लाल सुर्ख़ तथा घास की तरह दाढ़ी उगे चेहरे की ओर धुँधली-सी आँखों से देखा।

मालिक ने पूछा :

"पाँच सेर मांस को हजम कर सकता है?"

"कितनी देर में?" पतली और कामकाजी आवाज़ में मीशा ने सवाल किया।

"दो घण्टे में।"

"मुश्किल है—और तेरे लिए?"

"बीयर के बिना नहीं चलेगा। वह और होनी चाहिए!"

"अच्छी बात है, शुरू कर!" मालिक ने कहा और फिर अपने पड़ोसियों की ओर मुड़कर शेखी बघारते हुए बोला, "यह न समझना कि इसका पेट खाली है! अरे नहीं, एक सेर पावरोटी तो इसने आज सवेरे ही नाश्ते में चट की, इसके बाद खूब छककर दोपहर में भोजन किया!"

मांस लाकर उसके सामने रख दिया गया, दर्शकों की एक भीड़ इर्द-गिर्द जमा हो गयी। ये सबके सब सौदागर और व्यापारी थे। जाड़ों का भारी लबादा कसके पहने हुए वे बड़े-बड़े बटखरे जैसे लगते थे। उनकी तोंदे निकली हुईं थी, बेरस, उनींदी और ऊबभरी छोटी-छोटी आँखें, चुंधी-सी, गालों की चर्बी में धँसी हुई झाँक रही थी।

हाथों को अपनी आस्तीनों में खोसे, कसकर घेरा बनाए, वे मीशा के चारों ओर खड़े थे। हाथ में एक चाकू और रई की डबलरोटी लिये मीशा भी तैयार था। तेज़ी से, जल्दी-जल्दी सलीब का चिह्न बनाने के बाद वह ऊन के एक बोरे पर बैठ गया। मांस के लोथड़े को उसने एक बक्से पर रख दिया और कोरी आँखों से उसे अन्दाज़ने लगा।

डबल रोटी में से उसने एक पतला-सा टुकड़ा तराशा, फिर मांस का मोटा-सा टुकड़ा काटकर बड़ी सफाई से उसके ऊपर रखा और दोनों हाथों से पकड़कर अपने मुँह तक ले गया। कुत्ते की भाँति उसकी लम्बी जीभ बाहर निकली, काँपते हुए अपने होंठों को चाटकर उसने साफ़ किया, उसके छोटे-छोटे तेज दाँतों की एक झलक दिखाई दी। फिर, कुत्ते की ही तरह उसने मांस को अपने जबड़ों में दबोच लिया।

"अरे, इसने थूथनी चलाना शुरू कर दिया!"

"घड़ी देखकर समय नोट कर लो!"

सबकी आँखें उसके चेहरे, चप-चप की आवाज़ करते उसके जबड़ों, कानों के

पास उभर आने वाली गुल्लियों, और सम गति से उठने और गिरने वाली उसकी नुकीली ठोड़ी पर जमा थी। रह-रहकर वे आपस में टिप्पणियाँ भी करते जाते थे :

"मुँह तो देखो, कैसे भालू की तरह चला रहा है!"

"कभी देखा भी है भालू को मुँह चलाते हुए?"

"मैं क्या जंगल में रहता हूँ? यह तो एक कहावत है : भालू की तरह मुँह चलाना।"

"नहीं, कहावत यह नहीं है। कहावत है : सुअर की तरह मुँह मारना।"

"सुअर क्या सुअर का मांस खाते हैं?"

सब अनचाहे हँसने लगे, और तभी कोई लाल बुझक्कड़ बोला :

"सुअर सभी कुछ खा सकता है—चाहे उसके अपने बच्चे-कच्चे या भाई-बहन ही क्यों न हो..."

देखते-देखते मीशा का चेहरा लाल हो गया, कान नीले पड़ गये। उसके दीदे कोटरे से बाहर झाँकने लगे, और उसकी साँस बाजा-सी बजने लगी। लेकिन उसका मुँह था कि लगी-बँधी रफ़्तार से चल रहा था।

"जल्दी कर मीशा, तेरा समय खत्म हुआ जा रहा है!" वे उसे उकसा रहे थे। बाकी मांस को बेचैनी से अन्दाज़ कर उसने बीयर का घूँट चढ़ाया और जबड़े चलाना जारी रखा। दर्शकों की उत्तेजना बढ़ती गयी, उचक-उचककर और लम्बी गरदनें करके वे मीशा के मालिक के हाथ में घड़ी पर नज़र डालते, और एक-दूसरे को चेताते हुए कह रहे थे :

"इस बात का ध्यान रखना की कहीं वह घड़ी की सुई को पीछे न कर ले। अच्छा यह हो कि घड़ी इसके हाथ से ले ली जाये!"

"मीशा पर भी नज़र रखना, नहीं तो आँख बचाकर वह मांस अपनी आस्तीन में छिपा लेगा!"

"देख लेना, समय के भीतर वह कभी इसे खत्म नहीं कर सकता!"

"मैं अब भी पच्चीस रूबल की शर्त बदने के लिए तैयार हूँ!" मीशा का मालिक आवेश में आकर चिल्लाया, "मीशा, मुझे नीचा न दिखाइयो!"

उकसावा और बढ़ावा देने के लिए दर्शक चिल्लाये तो बहुत, लेकिन शर्त बदने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

मीशा का जबड़ा चलता रहा, एक क्षण के लिए नहीं रुका, चला सो बराबर चलता ही रहा। उसका चेहरा भी मांस जैसा ही बन गया, उसकी नुकीली नाक दयनीय सीटी बजाने लगी। उसे देखकर डर मालूम होता, मुझे लगता कि उसके चीख उठने में अब देर नहीं है। किसी भी क्षण उसके मुँह से आवाज़ निकल सकती है :

"मुझपर रहम करो!.."

या फिर, मांस के गले तक अट जाने के कारण वह दर्शकों के सामने ही ढेर हो जायेगा, और उसकी जान निकल जायेगी।

आख़िर उसने सारा मांस खत्म कर दिया। दीदे ऐसे टेरते हुए मानो वह नशे में हो, दर्शकों की ओर उसने देखा, और हाँफता हुआ-सा बोला :

"पीने के लिए कुछ दो..."

उसके मालिक ने घड़ी पर नज़र डाली और बड़बड़ा उठा :

"चार मिनट ऊपर हो गये, कुत्ते की दुम।"

"चूक गये, अगर शर्त बद ली होती, तो बड़ा मजा आता," दर्शकों ने चिढ़ाना शुरू किया। "तुम सोलहों आना चित्त हो जाते।"

"लेकिन इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि है वह पूरा साँड़!"

"इसे तो किसी सकर्स में भर्ती हो जाना चाहिए..."

"भगवान भी कभी-कभी ऐसे बेढब इंसान पैदा करता है, है न?"

"इस वक़्त अगर चाय भी हो जाये तो क्या हर्ज है?"

और वे सब बजरों की तरह तैरते हुए भटियारख़ाने की ओर चल दिए।

मेरी समझ में न आता कि क्या बात है कि भारी-भरकम ये लोग एक बेहाल जीव के चारों ओर इस तरह जमा हो जाते हैं मानो कोई तमाशा हो, और फिर किसी को घिनौनेपन के साथ ठूँस-ठूँसकर खाते हुए देखने में उन्हें क्या मजा मिलता है?

ऊन की गाँठों, भेड़ की खालों, सन, रस्सों, नमदे के जूतों और काठियों से अटी हुई बाज़ार की सँकरी बालकनी उदास और अँधेरी लगती थी। समय की मार से जर्जर और सड़क की धूल-कीचड़ से काले पड़े ईंटों के मोटे-मोटे बदनुमा खम्भे और बालकनी और पक्की पगडण्डी के बीच सीमा-रेखा का काम देते थे। रोज़, हर घड़ी, इन खम्भों पर मेरी नज़र पड़ती और मुझे ऐसा मालूम होता मानो उनकी एक-एक ईंट और एक-एक दरार को हज़ारों बार मैंने गिना और देखा-भाला है, यहाँ तक कि उनका समूचा बदनुमा ढाँचा, भोंड़ी बनावट और दाग-धब्बों का आल-जाल, मेरी स्मृति में खूब गहरे उतरकर नक़्श हो गया है।

पक्की पगडण्डी पर लोग अलस भाव से आते-जाते, और उतने ही अलस भाव से माल से लदी स्लेज और घोड़ा-गाड़ियाँ सड़क पर से गुजरती। सड़क के पास लाल ईंटों की दुमंजिला दुकानों से घिरा एक चौक था जहाँ ज़मीन पर माल भरने की पेटियाँ, भूसा और बण्डल बाँधने के कागज, गन्दगी में रौंदे हुए सब गड्ड-मड्ड पड़े रहते थे।

निरन्तर और हर घड़ी की इस हलचल के बावजूद ऐसा मालूम होता मानो यहाँ सब—मय लोगों और घोड़ों के—निश्चल और स्थिर, किसी अदृश्य जंजीर से बँधे कोल्हू के बैल की भाँति सब एक ही जगह पर चक्कर लगा रहे हैं। एकाएक महसूस होता था कि ध्वनियों की निर्धनता ने जीवन को इतना पस्त बना दिया है

कि इसे गूँगों-बहरों की पाँत में रखा जा सकता है। स्लेजों के दौड़ने की आवाज़ें आतीं, दुकानों के दरवाज़े झनझनाते और खटपट करते, पाव रोटी और गर्म शरबत बेचने वाले चिल्लाते, लेकिन आदमियों की आवाज़ें इतनी बेरस, जीवन शून्य और एक-जैसी होतीं कि कान शीघ्र ही उनकी ओर ध्यान देना बन्द कर देते, उनका होना या न होना बराबर हो जाता।

गिरजों के घण्टे इस तरह बजते मानो मातम मना रहे हों। उनकी उदासी भरी आवाज़ कानों में अटककर रह जाती। लगता था घण्टों की आवाज़ सुबह से लेकर रात तक बाज़ार के वायुमण्डल में मँडराती रहती है, दिल व दिमाग में घुसकर हर विचार और हर भावना से चिपक जाती है और हर अनुभूति पर भारी ताँबे की सी परत की तरह जम जाती है।

जानलेवा ठण्डी ऊब को गहरा बनाने में हर चीज़ हाथ बँटाती—गन्दी बर्फ़ का कम्बल ओढ़े धरती, छतों पर जमी बर्फ़ के भूरे ढेर, इमारतों और दुकानों की मांस जैसी लाल ईंटें। चिमनियों से निकलनेवाला भूरा धुआँ भी इसी ऊब से कसमसाता और नीचे लटक आये भूरे सूने आकाश में रेंगने लगता। घोड़ों की पसलियों और लोगों के नथुने में भी इसी ऊब की धौंकनी चलती और लोग उसी की साँस लेते। एक अजीब गन्ध—पसीने, चर्बी, धुएँ, तेल और चिकनाई में डूबे पकौड़ों की बेरस और बोझिल गन्ध—से यह ऊब सराबोर होती। यह गन्ध एक तंग, गर्म टोपी की तरह सिर को दबाती और छाती में छनकर एक अजीब नशा पैदा करती। जी करता कि आँखें बन्द कर लो, अपनी पूरी ताकत से दहाड़ो और कहीं भागकर सिर को पत्थर की पहली दीवार से टकराकर चकनाचूर कर दो।

सौदागरों के चेहरों को मैं बड़े ध्यान से देखता—अति तृप्त, बढ़िया खून की लाली से दमकते, पाला-काटे, और इस प्रकार निश्चल मानो नींद में डूबे हुए हों। रह-रहकर वे जम्हाइयाँ लेते और सूखे तट पर पड़ी हुई मछली की भाँति उनके मुँह भट्टे-से खुल जाते।

जाड़ों में बाज़ार ठण्डा रहता और वह सजग हिसाब-क़िताबी चमक भी सौदागरों की आँखों से गायब हो जाती जो गर्मियों में उनकी आँखों में दौड़ती रहती है और उन्हें पूरी तरह से अपने रंग में रंग लेती है। भारी लबादा अब हाथ-पाँव हिलाने में बाधक होता और वे धरती के साथ जाम हो जाते। अलसाहट में वे बातें करते, लेकिन जब झुँझला उठते तो एक-दूसरे को खूब लम्बी झाड़ पिलाने से भी न चूकते। मुझे ऐसा मालूम होता कि वे जान-बूझकर इस तरह गुल-गपाड़ा मचाते हैं—एक दूसरे को जताने के लिए कि वे जिन्दा हैं, उनकी रगों का खून ठण्डा नहीं पड़ गया है।

मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि ऊब उन्हें खोखला बना रही है, भीतर और बाहर से उन्हें खत्म कर रही है। और मेरे विचार में हर चीज़ पर समा जानेवाली इस

ऊब से उनका निष्फल संघर्ष ही उनके क्रूर, बेमानी मनबहलावों का एकमात्र कारण था।

कभी-कभी प्योत्र वासील्येविच से मैं इसका ज़िक्र करता। यों ताने-तिशने कसने और मुझे चिढ़ाने में उसे मजा आता था, लेकिन क़िताबें पढ़ने की ओर मेरा झुकाव उसे पसन्द था और भूले-भटके, काफ़ी गम्भीरता और सीख भरे अन्दाज़ में वह मुझसे बातें करता था। एक दिन मैंने उससे कहा :

"ये सौदागर भी क्या जीवन बिताते हैं? मुझे उनका ढर्रा जरा भी अच्छा नहीं लगता।"

दाढ़ी की लट को उसने अपनी उँगली में लपेटा और पूछने लगा :

"तुझे क्या मालूम कि वे कैसा जीवन बिताते हैं? क्या तू उनके घरों में जाता रहता है? यह तो बाज़ार है, मेरे लड़के, और लोग बाज़ार में जीवन नहीं बिताते। बाज़ार में तो वे व्यापार करते हैं, या घर पहुँचने की जल्दी में तेजी से डग उठाते हुए गुजर जाते हैं! बाज़ार में लोग कपड़ों से लदे-फँदे रहते हैं और कुछ पता नहीं चलता कि भीतर से वे कैसे हैं। केवल घर ही एक ऐसी जगह है जहाँ, अपनी चार दीवारों के भीतर, आदमी उन्मुक्त जीवन बिताता है। अब तू ही बता क्या तूने यह जीवन देखा है?"

"लेकिन उनके ख़यालों में तो इससे अन्तर नहीं पड़ता। घर हो चाहे बाहर, वे एक से रहते हैं।"

"यह कोई कैसे बता सकता है कि हमारा पड़ोसी किस समय क्या सोचता है?" बूढ़े ने कड़ी नज़र से मुझे घूरकर देखा और वजनदार आवाज़ में बोला। "विचार जुओं की भाँति हैं, उन्हें गिना नहीं जा सकता—बड़े बूढ़ों ने यों ही यह नहीं कहा है। हो सकता है जब आदमी घर लौटकर देव-प्रतिमा के सामने घुटने टेककर मिनमिनाता या आँसू बहाते हुए प्रार्थना करता हो : 'मुझे माफ़ करना, महाप्रभु, आज तुम्हारे पवित्र दिन मैंने पाप किया है!' सम्भव है कि उसके लिए घर मठ के समान हो। प्रभु के सिवा अन्य किसी चीज़ से उसका लगाव नहीं। समझा! हर मकड़ी को भगवान ने एक कोना दिया है—खूब जाल बुनो, लेकिन अपना वजन पहचानते हुए, ऐसा न हो कि वह तुम्हारा बोझ न सम्भाल सके..."

जब वह गम्भीरता से बातें करता तो उसकी आवाज़ में एक अजीब गहराई पैदा हो जाती, मानो वह किसी महत्वपूर्ण रहस्य का उद्‌घाटन कर रहा हो।

"अब तूने इतनी छोटी उम्र में ही बाल की खाल निकालना शुरू कर दिया है। दिमाग के सहारे नहीं, इस उम्र में तुझे आँखों के सहारे जीना चाहिए! दूसरे शब्दों में यह कि देख और दिमाग में बटोर रख और जबान पर लगाम कसे रख। दिमाग व्यापार के लिए है, विश्वास आत्मा के लिए। क़िताबें पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन हर चीज़ की अपनी एक सीमा होती है। कुछ लोग इतना पढ़ते हैं कि न उनका अपना कोई

दिमाग रहता है, न भगवान रहता है। वे इन दोनों से हाथ धो बैठते हैं...”

मुझे वह अमर लगता था, यह कल्पना करना कठिन था कि वह कभी अधिक बूढ़ा हो सकता है या बदल सकता है। वह बड़े चाव से क़िस्से सुनाता—सौदागरों के, डाकुओं के, नामी जालसाज़ों के, जो बाद में मशहूर बन जाते थे। अपने नाना से मैं इस तरह के बहुत-से किस्से सुन चुका था। केवल कहने के ढंग में फ़र्क था। नाना का ढंग उससे कहीं अच्छा था। परन्तु कहानी का सार वही होता था : भगवान और मानव को रौदें बिना धन नहीं बटोरा जा सकता। प्योत्र वासील्येविच के हृदय में लोगों के लिए कोई दया नहीं थी, लेकिन भगवान का बड़े चाव और लगन से ज़िक्र करता था, उसकी पलकें झुक जातीं और हृदय से उसाँसे निकलने लगतीं।

“देखो न, लोग किस तरह भगवान को धोखा देते नहीं अघाते। लेकिन प्रभु ईसा यह सब देखता है और उनके लिए आँसू बहाता है, ‘आह, मेरे बच्चो, नासमझ बच्चो, तुम्हें नहीं मालूम कि अपने लिए किस नरक की तुम तैयारी कर रहे हो!”

एक दिन साहस बटोर मैंने उससे कहा :

“आप भी तो देहातियों को धोखा देते हैं।”

उसने ज़रा भी बुरा न माना। बोला :

“ऊँह, इससे उन्हें ज़्यादा नुकसान नहीं पहुँचता। मुश्किल से चार या पाँच रूबल तो मैं अपने लिए उनसे झटकता हूँ। बस इतना ही, और कुछ नहीं!”

जब वह मुझे कुछ पढ़ते हुए देखता तो पुस्तक मेरे हाथ से ले लेता, उसमें लिखी बातों के बारे में पूछता-ताछता और सन्देह तथा अचरज में भरकर कारिन्दे की ओर मुड़ते हुए कहता :

“देखा, यह नन्हा बन्दर क़िताबों में लिखी बातें समझ लेता है!”

और नपे-तुले, कभी न भूलनेवाले अन्दाज़ में वह मुझे सीख देता :

“मेरे शब्द ध्यान से सुनना—वक़्त पर तुम्हारे काम आयेंगे। किरील नाम के दो आदमी हुए हैं, दोनों ही पादरी, एक अलेक्सान्द्रिया का रहनेवाला, और दूसरा येरुशलम का। पहले ने ईश्वर-द्रोही नेस्तर को आड़े हाथों लिया जो लोगों में इस तरह की गन्दी बातों का प्रचार करता था कि मरियम हमारी-तुम्हारी भाँति इसी दुनिया की एक स्त्री थी जिसने भगवान को नहीं बल्कि हमारे-तुम्हारे जैसे ही ईसा नाम के एक आदमी को जन्म दिया था। यह आदमी दुनिया का तारनहार बना। इसका मतलब यह कि मरियम को भगवान की माँ न कहकर ईसा की माँ कहना चाहिए। समझा, यही वह चीज़ है जिसे लोग धर्म-द्रोह कहते हैं। इसी प्रकार येरुशलम के किरील ने धर्म-द्रोही की धज्जियाँ उड़ायीं...”

ईसाई धर्म के इतिहास की उसे अद्भुत जानकारी थी। इसका मुझ पर गहरा असर पड़ता। गोरे और मुलायम हाथ से वह अपनी दाढ़ी सहलाता और शेखी बघारता :

"इन विषयों का मैं जनरल हूँ, बड़े मोर्चे मैंने सर किये हैं। त्रिनीती के दिनों में मैं मास्को गया था और नीकोन के क़िताबचाटू चेले-चाटियों, पादरियों और दूसरे सँपोलियों के साथ शास्त्रार्थ किया। प्रोफ़ेसर तक से मैंने वाद-विवाद किया है। एक पादरी को मैंने अपनी जबान के ऐसे कोड़े लगाए कि उसकी नाक से खून तक बहने लगा।"

उसके गाल लाली से दमकने लगे और आँखों में चमक दौड़ गयी।

विरोधी की नकसीर क्या फूटी मानो उसे बहुत बड़ी रियासत मिल गयी, उसके गौरव के सुनहरे ताज में मानो किसी ने चमकता हुआ लाल जड़ दिया। बड़े ही उल्लास और विजय के गर्व के साथ उसने इसके बारे में बताया :

"बहुत ही खूबसूरत और भारी-भरकम पादरी था वह! मंच पर वह खड़ा था और उसकी नाक खून के आँसू रो रही थी—टपाटप-टपाटप—खून नीचे टपक रहा था। और मजा यह कि उसे पता तक नहीं था कि उसकी नाक क्या गुल खिला रही है। बाप रे, वह शेर की भाँति झपटता था और उसकी आवाज़ ऐसे गूँजती थी जैसे कोई बहुत बड़ा घण्टा बज रहा हो। लेकिन मैं भी मोर्चे पर डटा था और उसकी आत्मा को खंजर की भाँति अपने शब्दों से छलनी कर रहा था। शान्ति से, खूब निशाना साधकर, ठीक उसकी पसलियों की सीध में मैं अपने शब्दों की मार कर रहा था... ईश्वर-द्रोही कुत्सित बातों की खिचड़ी पकाते-पकाते वह तन्दूर की भाँति गरमा गया था... क्या दिन थे वे भी!"

हमारी दुकान पर अक्सर दूसरे पारखी भी आते थे—पाख़ोमी, जिसके भारी तोंद और केवल एक आँख थी। वह बोलता क्या था, मानो खर्राटे लेता था। हमेशा वही एक पुराना चीकट कोट पहने रहता। नाटे कद का, चूहे की भाँति चिकना-चुपड़ा, मीठे स्वभाव का और फुर्तीला बूढ़ा लुकियान आता था। वह अपने साथ एक और आदमी को लाता जो देखने में कोचवान-सा मालूम होता—भारी-भरकम, थोबड़ा चढ़ा हुआ, काली दाढ़ी, निश्चल आँखें और खोया-खोया-सा सूना चेहरा जो खूबसूरत होते हुए भी अच्छा नहीं मालूम होता था।

वे कभी खाली हाथ न आते। हमेशा कोई न कोई चीज़ बेचने के लिए लाते : पुरानी पुस्तकें, देव-प्रतिमाएँ, धूपदान, पूजा के बरतन। कभी-कभी, चीज़ें बेचनेवाले—वोल्गा प्रदेश के किसी बूढ़े या बुढ़िया को भी अपने साथ ले आते। जब सौदा पट जाता तो सब दुकान में इस तरह बैठ जाते जैसे मुंडेर पर कौवे। चाय पीते और खाने की चीज़ों पर हाथ साफ़ करते। बातों का सिलसिला चलता और नीकोनपंथी धर्माधिकारियों के जुल्मों का ज़िक्र करते। एक जगह ख़ानातलाशी ली गयी और पुराने धर्मग्रंथ छीने गये; दूसरी जगह पुलिस ने प्रार्थनाघर बन्द कर दिया, उसके मालिकों को पकड़कर अदालत में पेश किया, और धारा 103 का उल्लंघन करने के अपराध में उन पर मुकदमा

चलाया। धारा 103 पर वे खूब बातें करते। लेकिन वे इसका उल्लेख निस्संग भाव से करते, मानो यह कोई अनिवार्य और उनके वश से बाहर की चीज़ हो, ठीक वैसे ही जैसे जाड़ों में पाला।

पुलिस, खानातलाशी, जेल, अदालत, साइबेरिया जैसे शब्दों का वे बार-बार प्रयोग करते, और ये शब्द दहकते अँगारों की तरह मेरे हृदय से आकर टकराते। इन बूढ़े लोगों के प्रति जो अपने विश्वास की वजह से इतनी मुसीबतें झेल रहे थे, मेरे हृदय में सहानुभूति और शुभ कामनाओं की लौ जाग उठती। नैतिक साहस की मैं कद्र करता और उन लोगों के आगे मेरा सिर झुक जाता जो अपने लक्ष्य की पूर्ति में डिगना नहीं जानते। यह मैंने पुस्तकों से सीखा था।

इन जीवन-गुरुओं की व्यक्तिगत त्रुटियाँ मेरी आँखों से ओझल हो जातीं, मुझे केवल उस शान्त दृढ़ता का ध्यान रहता जिसके पीछे—मेरी समझ में—अपने सत्य में इन गुरुओं का अडिग विश्वास और सत्य के लिए सभी मुसीबतें झेलने की उनकी तत्परता छिपी थी।

आगे चलकर बुद्धिजीवियों तथा आम लोगों के बीच पुराने विश्वास के ऐसे ही या इनसे मिलते-जुलते अनेक रक्षकों से मिलने के बाद, मेरे लिए साफ़ हो गया कि जिसे मैं उनकी दृढ़ता समझे था, वह वास्तव में एक तरह की निष्क्रियता थी जो एक नुक्ते पर पहुँचकर रुक गये थे। जिन्हें उस नुक़्ते से आगे और कुछ नहीं दिखाई देता था और जिनमें असंदिग्ध रूप में उससे आगे बढ़ने की कोई इच्छा भी नहीं थी। वे घिसे-पिटे और जड़ शब्दों तथा जर्जर मान्यताओं के जाल में उलझकर रह गये थे। उनकी इच्छाशक्ति इतनी निर्जीव और अक्षम हो गयी थी कि भविष्य की ओर आगे बढ़ना उनके लिए सम्भव नहीं रहा था, इस हद तक कि अगर बाहर से कोई आघात उन्हें उनकी जगह पर से हटाता है तो वे यन्त्रवत नीचे लुढ़कना शुरू कर देते हैं, ठीक वैसे ही जैसे पहाड़ी ढाल पर से पत्थर लुढ़कता है। अतीत के संस्मरणों की जीवनहीन शक्ति और यन्त्रणा तथा दमन सहने का विकृत प्रेम मृत सत्यों की क़ब्रगाहों में उन्हें उनकी चौकियों पर बनाये रखता था। यन्त्रणा सहने का अवसर हाथ से निकलते ही वे खोखले हो जाते और उसी तरह गायब हो जाते जैसे कि तेज़ हवा बादलों के टुकड़ों को उड़ा ले जाती है।

जिस विश्वास के लिए इतनी तत्परता और आत्मगौरव के साथ वे अपने को बलिदान करते थे, उसकी दृढ़ता से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह विश्वास उन पुराने कपड़ों की याद दिलाता था जिन पर धूल और गर्द की इतनी मोटी तह जम गयी है कि समय का विनाशकारी असर उन पर नहीं पड़ता। उनके विचार और भावनाएँ अंधविश्वासों और जड़ सूत्रों के चौखटे में कसे रहने की आदी हो गयी थीं, भले ही इन चौखटों ने उन्हें विकृत और पंगु बना दिया हो, लेकिन इससे उन्हें जरा

भी परेशानी नहीं होती थी।

आदतवश विश्वास करना—यह हमारे जीवन की एक अत्यन्त कुत्सित और दुःखद घटना है। इस विश्वास में दमघोट चौखटे के भीतर, मानो पत्थर की दीवार की छाया में कोई नई चीज़ नहीं पनप पाती—पनपती भी है तो धीरे-धीरे, विकृत और लुंजपुंज रूप में। इस अंधकारमय विश्वास में प्रेम की किरणें बहुत कम चमकती हैं और घृणा की, बदले की भावना, कुत्सा और ईर्ष्या की लपटें उठती हैं। इस विश्वास की अग्नि गलने-सड़ने की, फ़ोस्फ़ोरस की दमक है।

लेकिन इस सत्य तक पहुँचने के लिए मुझे वर्षों तक पापड़ बेलने और मुसीबतें झेलनी पड़ीं, अपनी आत्मा में बहुत-सी तोड़-फोड़ करनी पड़ी, स्मृति-पटल से बहुत कुछ मिटाना पड़ा। इसमें कोई शक नहीं कि बोझिल, बेरस और ग़ैर-ज़िम्मेदारी से भरे जीवन के बीच जो मेरे चारों ओर फैला था, जीवन के इन गुरुओं को जब पहली बार मैंने देखा तो मुझे लगा कि वे अद्‌भुत नैतिक साहस के धनी, बल्कि कहना चाहिए कि इस धरती की जान हैं। सभी, किसी न किसी समय, अदालत में घसीटे जा चुके थे, जेल की चक्की पीस चुके थे, नगरों से बाहर खदेड़े और अन्य अपराधियों के साथ जलावतनी का जानलेवा रास्ता नाप चुके थे। सभी, चौबीसों घण्टे, साँसत से जीवन बिताते, लुक-छिपकर रहते थे।

लेकिन, यह सब होने पर भी, मैंने देखा कि एक ओर जहाँ ये बूढ़े नीकोनियों के अत्याचारों और इस बात का रोना रोते कि वे उनकी आत्मा के पीछे पड़े रहते हैं, वहाँ दूसरी ओर ये खुद भी बड़ी तत्परता और उछाह से एक-दूसरे पर झपटते रहते थे।

काना पाखोमी, जब कभी वह तरंग में होता, बड़े चाव से अपनी अद्‌भुत याददाश्त के करतब दिखाता। कुछ धर्म-ग्रंथ तो उसकी जबान पर चढ़े थे और वह उन्हें उसी तरह पढ़ता था जिस तरह यहूदी पुजारी तालमुद पढ़ते हैं। वह ग्रंथ खोलता, आँख बन्द कर किसी भी शब्द पर अपनी उँगली टिका देता और जो भी शब्द पकड़ में आता, उसके बाद से मुलायम और गुनगुनी आवाज़ में वह जबानी सुनाना शुरू कर देता। उसकी नज़र हमेशा फ़र्श की ओर झुकी होती और उसकी अकेली आँख बड़ी तत्परता से अगल-बगल लपकती-झपकती, मानो वह किसी खोई हुई बहुमूल्य चीज़ की टोह में हो। अपना करतब दिखाने के लिए वह ज़्यादातर प्रिंस मिशेर्स्त्स्की की पुस्तक 'रूस का अँगूर' से काम लेता। 'भारी धीरज और साहस से ओत-प्रोत वीर और निडर शहीदों की कुर्बानियाँ' उसे सबसे अच्छी तरह याद थी। प्योत्र वासील्येविच उसकी गलतियाँ निकालने के लिए हमेशा पंजे फैलाये रहता।

"ग़लत! यह घटना सन्त डेनिस के साथ घटी थी, सन्त किप्रियान के साथ नहीं!"

"डेनिस? डेनिस नहीं, सही नाम है डिओनिसी, समझे?"

"नाम को लेकर मेरे साथ चपोड़बाज़ी न करो!"

"तो तुम भी मुझे सबक़ सिखाने की कोशिश न करो!"

लेकिन यह तो शुरुआत ही होती थी। कुछ क्षण बीतते न बीतते उनके चेहरे गुस्से से तमतमा जाते, वे एक-दूसरे को नीचे गिराने वाली नज़रों से ताकते और चुने हुए शब्दों के गोले दागने लगते :

"गावदुम, बेशर्म, अपनी इस तोंद को तो देख क्या मटके-सी फूलती जा रही है!.."

पाख़ोमी जमा-बाकी का हिसाब लगानेवाले मुनीम की तरह जवाब देता :

"बकरे की दुम, फिसड्डी और नीच, घाघरे के पिस्सू!"

आस्तीनों के भीतर अपने हाथों को खोसे कारिन्दा उन्हें देखता, उसके चेहरे पर कुत्सापूर्ण मुस्कराहट नाचने लगती और प्राचीन धर्म के इन रक्षकों को वह इस तरह उकसाता मानो वे स्कूली बच्चे हों :

"ऐसे, ऐसे! और ज़ोर से, वाह, शाबाश!.."

एक दिन बूढ़े सचमुच में लड़ पड़े। प्योत्र वासील्येविच ने पाख़ोमी के मुँह पर ऐसा थप्पड़ रसीद किया कि वह मैदान छोड़कर भाग निकला। प्योत्र वासील्येविच ने थके हुए भाव से अपने माथे का पसीना पोंछा और भागते हुए पाखोमी को लक्ष्य कर चिल्लाया :

"सुन ले, यह पाप तेरे सिर पर है। तूने ही मेरे इस हाथ को आज यह पाप करने के लिए उत्तेजित किया! थू है तुझ पर!"

वह अपने साथियों पर विश्वास की कमी और 'नकारवाद' के चक्कर में फँसने का आरोप लगाकर ख़ास तौर से खुश होता :

"आख़िर तुमने भी उसी ईश्वर-द्रोही कौवे अलेक्सान्द्र की बोली बोलना शुरू कर दिया न!"

लेकिन जब उससे पूछा जाता कि जिस 'नकारवाद' से वह इतना चिढ़ता और भय खाता है, वह आख़िर है क्या बला, तो उससे कोई साफ़ जवाब देते न बनता।

"नकारवाद सबसे तीखा और घातक धर्म-द्रोह है जो ख़ुदा को जहन्नुम रसीद कर उसकी जगह बुद्धि को बैठाता है। मिसाल के लिए कज्ज़ाकों को लो। वे केवल बाइबल को मानते हैं। और यह बाइबल सारातोव के जर्मनों से—लूथर से—उनके हाथ लगी। और लूथर के बारे में कहा गया है, 'लुटेरा-लूथर, रंगीला लूथर, शैतान लूथर!' यह सारी अलाय-बलाय पश्चिम से, वहाँ के धर्म-द्रोहियों के पास से आयी है।"

अपना विकृत पाँव वह ज़मीन पर पटकता और ठण्डी वज़नदार आवाज़ में कहता :

"असल में ये लोग हैं जिनका इस नये धर्मवालों को हुलिया तंग करना चाहिए,

बीन-बीनकर जिन्हें पकड़ना और जिन्दा जलाना चाहिए। असल में दमन इनका होना चाहिए, न कि हमारा। हम, जो रूसी हैं–पुश्त दर पुश्त से दुनिया बनी है तब से हमारा विश्वास और दीन-ईमान एकदम पूर्वी, सच्चे माने में रूसी है। लेकिन ये लोग और इनकी विकृत आज़ादख़याली–यह सब पश्चिम की देन है, एकदम विदेशी! जर्मनों और फ्रांसीसियों से नुकसान के सिवा और क्या पल्ले पड़ेगा? जरा पीछे मुड़कर देखो, 1812 में...”

जोश में उसे इस बात का भी ध्यान न रहता कि कच्ची उम्र के एक लड़के से वह बातें कर रहा है। अपने मजबूत हाथ में मेरी पेटी दबोचे झटका देकर कभी वह मुझे अपनी ओर खींचता, कभी दूर धकेल देता। उसकी आवाज़ एक अजीब, बिल्कुल युवकों जैसे उत्साह से भरी होती थी। वह कहता :

“आदमी का दिमाग हवाई जंगल में खूंख्वार भेड़िये की भाँति मँडराता है। शैतान के हाथों में उसकी नकेल होती है और उसकी आत्मा, परमात्मा का उच्चतम वरदान, नष्ट हो जाती है। शैतान के इन चेलों के दिमाग ने क्या गढ़ा? नकारवाद के ये कठमुल्ला सीख देते थे : शैतान भी ख़ुदा का बेटा और प्रभु ईसा का बड़ा भाई है! देखा, कहाँ तक पहुँचे? और वे लोगों को यह पाठ भी पढ़ाते थे : अधिकारियों का कहना न मानो, काम-धन्धे न करो, अपने बीवी-बच्चों को धता बताओ। हर व्यवस्था के वे खिलाफ़ हैं। बस, आदमी को छुट्टा छोड़ दो, ताकि वह शैतान के इशारे पर नाचे। अब देखो यह अलेक्सान्द्र आ धमका है, ओह, कीड़े...”

कभी-कभी बीच में ही, कोई काम करने के लिए कारिन्दा मुझे बुला लेता। बालकनी में वह अब अकेला ही रह जाता, लेकिन उसका बोलना फिर भी बन्द न होता, बूढ़े के मुँह से निकले शब्द शून्य में बिखरते रहते :

“ओ, पर-कटी आत्माओ, ओ, अंधे पिल्लो, न जाने कब तुमसे छुटकारा मिलेगा!”

फिर, पीछे की ओर अपने सिर को फेंकता और हथेलियों को अपने घुटनों पर टिकाकर देर तक चुप रहता, जाड़ों के धूसर आकाश पर नज़र गड़ाए वह एकटक देखता रहता।

मेरे साथ उसका बरताव धीरे-धीरे अधिक नरम होता गया और वह मेरा काफ़ी ध्यान रखने लगा। जब वह मुझे कोई पुस्तक पढ़ते देखता तो मेरे कन्धे को थपथपाते हुए कहता :

“यह ठीक है, मेरे लड़के, पढ़ और खूब पढ़। वक़्त पर काम आयेगा। भगवान ने तुझे अच्छा दिमाग़ दिया है। अफ़सोस की बात है कि तू बड़ों का कहना नहीं मानता, और हर किसी के सामने अड़ जाता है। जानता है, यह शैतानी तुझे कहाँ ले जायेगी? जेल में, मेरे लड़के, जेल में। क़िताबें पढ़, खूब पढ़, लेकिन यह न भूल कि क़िताब आख़िर क़िताब ही है। ऐसा न हो कि तेरा अपना दिमाग ठप हो जाये। जानता

है, ख्रिस्ती पंथ का एक गुरु दनीलो था, वह इस विचार पर पहुँच गया कि क़िताबों की कोई ज़रूरत नहीं, वे नयी हों या पुरानी, क़िताबों को बोरे में भरकर उसने उन्हें नदी में डुबा दिया। यह भी ग़लत है। फिर शैतान का गुर्गा वह अलेक्सान्द्र है जो लोगों को उलटा पाठ पढ़ाता है और उनके दिमागों को खराब करता है...”

अलेक्सान्द्र का वह अक्सर ज़िक्र करता और बात-बात में उसका नाम लेता। एक दिन जब वह दुकान में आया तो उसका चेहरा बेहद परेशान था। तेज स्वर में कारिन्दे से बोला :

“कुछ सुना तूने, अलेक्सान्द्र यहाँ, हमारे नगर में ही मौजूद है—कल ही आया है। सुबह से घूम रहा हूँ, कोई जगह नहीं छोड़ी, लेकिन कुछ पता नहीं चला : जाने कहाँ चोर की तरह छिपा है। सोचा कुछ देर तेरी दुकान पर चलकर बैठूँ। शायद यहीं टकरा जाये...”

“रोज ही सैंकड़ों ऐरे-ग़ैरे आते रहते हैं। मेरा उनसे क्या वास्ता!” कारिन्दे ने कुढ़कर कहा। बूढ़े ने सिर हिलाया। बोला :

“ठीक है—तेरे लिए सब लोग या ख़रीदार हैं या बेचने वाले और कोई हैं ही नहीं। चल एक गिलास चाय तो पिला दे...”

खौलते पानी से भरी पीतल की एक बड़ी-सी केतली लेकर जब मैं लौटा तो देखा कि दुकान में कुछ और मेहमान भी मौजूद हैं। इनमें बूढ़ा लुकियान भी था। खुशी के मारे उसकी बत्तीसी खिली हुई थी। दरवाज़े के पीछे अँधेरे कोने में एक अज़नबी बैठा था। वह नमदे के ऊँचे जूते, हरे पटके से कसा गरम कोट और सिर पर टोपी पहने था जिसे नीचे खींचकर उसने अपनी आँखों को ढँक लिया था। उसके चेहरे में कोई ख़ास विशेषता नहीं थी, वह काफ़ी शान्त और विनम्र जीव मालूम होता था। उसका मुँह बुरी तरह लटका हुआ था, दुकान के उस कारिन्दे की भाँति जिसे अभी-अभी नौकरी से निकाल दिया गया हो और इस कारण उसके होश-हवास गुम हो गये हों।

उसकी ओर नज़र तक डालने की चिन्ता न करते हुए प्योत्र वासील्येविच कुछ कह रहा था। उसकी आवाज़ में विरोधी को चित्त कर देनेवाली सख्ती, वजन और ज़ोर था। अजनबी का दाहिना हाथ ऐंठता हुआ अपनी टोपी से खेल करने में जुटा था। वह बाँह उठाता, इस तरह मानो सलीब का चिह्न बनाने जा रहा हो, और हल्का-सा झटका देकर टोपी को पीछे की ओर खिसका देता। एक बार, दो बार, तीन बार, अन्त में टोपी चाँद पर खिसक जाती और वह उसका छोर पकड़कर झटके से उसे खींचता और फिर अपनी आँखों पर जमा लेता। उसकी इन ऐंठन की हरकतों को देखकर मुझे ‘जेब में मौत’ वाले पागल इगोशा की याद हो आयी।

“ये गन्दी मछलियाँ हमारी गन्दली नदी में किलबिला रही हैं और दिन दूनी गन्दगी उछाल रही हैं!” प्योत्र वासील्येविच कह रहा था।

अजनबी ने, जो किसी दुकान का कारिन्दा मालूम होता था, शान्त और निश्चल आवाज़ में पूछा :

"यह सब क्या तुम मेरे बारे में कह रहे थे?"

"तुम्हारे बारे में ही सही..."

अजनबी ने, उतने ही निश्चल अन्दाज़ और आत्मीयता से फिर पूछा :

"और खुद अपने बारे में तुम क्या कहते हो, बन्दे?"

"अपने बारे में मैं भगवान के दरबार में कहूँगा—वह मेरा निजी मामला है..."

"ओह नहीं, बन्दे, अकेले तुम्हारा ही नहीं, वह मेरा मामला भी है," अज़नबी ने ज़ोरदार और गम्भीर आवाज़ में कहा। "सच्चाई से आँखें न चुराना और अपने को जान-बूझकर अंधा न करना। भगवान और इंसान के सामने यह बहुत बड़ा पाप है!"

मुझे यह अच्छा लगा कि प्योत्र वासील्येविच को उसने "बन्दा" कहकर सम्बोधित किया। उसकी शान्त और गम्भीर आवाज़ ने भी मुझ पर गहरा असर किया। वह उसी तरह बोल रहा था जैसे कि कोई अच्छा पादरी धर्म-ग्रंथ का पाठ करता है, "सबका स्वामी, इस दुनिया का सिरजनहार..." वह बोलता जाता था और कुर्सी पर आगे की ओर खिसकता जाता था, अपने हाथ को मुँह के सामने लाकर हिलाते हुए बोला :

"मेरी निंदा मत करो, मैं तुमसे अधिक पापी नहीं हूँ..."

प्योत्र वासील्येविच ने तिरस्कारपूर्वक कहा :

"लगा समोवार खौलने!"

अजनबी ने उसके शब्दों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया, और बोला :

"केवल भगवान ही यह बता सकता है कि पवित्र आत्मा के स्रोतों को कौन अधिक गन्दा कर रहा है। हो सकता है कि यह पाप तुमने ही किया हो,—क़िताबी-कागजी लोगों ने, मैं क़िताबी नहीं, कागजी नहीं, मैं तो एक सीधा-सादा जीव हूँ..."

"जानता हूँ मैं तुम्हारी यह सादगी। बहुत सुन चुका हूँ!"

"यह तो तुम लोगों को भरमाते हो, सीधी बातों को मरोड़ते हो, क़िताबी, गिरगिट... मैं क्या कहता हूँ, बताओ?"

"धर्म-द्रोह!" प्योत्र वासील्येविच ने कहा। उधर अज़नबी अपने हाथ की हथेली को आँखों के सामने लाकर इस तरह देख रहा था मानो उस पर लिखी लिखावट पढ़ रहा हो और व्यग्र भाव से बोलता जा रहा था :

"तुमने लोगों को एक गन्दगी से निकालकर दूसरी गन्दगी में डाल दिया है और सोचते हो कि इससे उनका जीवन सुधर गया? लेकिन मैं कहता हूँ कि तुम धोखे में हो! मैं कहता हूँ ख़ुदा के बन्दो, अपने को उन्मुक्त करो! ख़ुदा के सामने न घर की कुछ हस्ती है, न बीवी-बच्चों और ढेर-डंगरों की! अपने को मुक्त करो, उन सभी चीज़ों

को छोड़ दो जो हिंसा और मार-काट की ओर ले जाती हैं—सोने-चाँदी और धन-दौलत के सारे बन्धनों को तोड़ दो जो सड़ांध और गन्दगी का ही दूसरा नाम है। इस लंबी-चौड़ी धरती पर चाहे जितना भटको, कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्ति तो केवल स्वर्ग की घाटियों में मिलती है! किसी चीज़ का मोह न करो। हर चीज़ से इंकार करो। मैं कहता हूँ, सभी नातों-बन्धनों से इंकार करो। इस दुनिया के जाल को नष्ट करो—जो ख़ुदा के दुश्मनों की रचना है... मेरा रास्ता सीधा है, मेरी आत्मा अडिग है, मैं इस अंधी दुनिया को स्वीकार नहीं करता..."

"लेकिन रोटी, पानी और तन ढकने के लिए कपड़ों को स्वीकार करते हो? ये सब भी तो इसी दुनिया की चीज़ें हैं!" बूढ़े ने ज़हरीली आवाज़ में पूछा।

अलेक्सान्द्र पर इन शब्दों का भी कोई असर नहीं हुआ। वह और भी लगन से बोलता गया। उसकी आवाज़ धीमी थी, लेकिन मालूम ऐसा होता था जैसे पीतल की तुरही गूँज रही हो :

"बन्दे, तेरी असली निधि का स्रोत क्या है? तेरी निधि का स्रोत है ख़ुदा, वही तेरी असली दौलत है। निष्कलंक बनकर उसके सामने जा, अपनी आत्मा को इस दुनिया के बँधनों से मुक्त कर और ख़ुदा देख लेगा—तू अकेला है और वह अकेला है! इसी तरह तुझे ख़ुदा के पास जाना है, इसके सिवा उसके पास पहुँचने का और कोई रास्ता नहीं है! कहा है : मुक्ति के लिए पिता और माँ को छोड़, हर चीज़ का त्याग कर और उस आँख को निकाल डाल जो हृदय को मोहक चीज़ों से उलझाती है! ख़ुदा के लिए इस नश्वर शरीर का नाश और अनश्वर आत्मा का वरण कर, जिससे तेरी अत्मा की जोत कभी मन्द नहीं पड़ेगी..."

प्योत्र वासील्येविच से नहीं रहा गया। उठते हुए झुँझलाकर बोला : "छिः, कुत्ते की दुम! मैं तो समझा था कि पिछले साल के मुक़ाबले अब तुम कुछ ज़्यादा समझदार हो गये होगे, लेकिन लगता है कि तुम्हारा रोग दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है..."

बूढ़ा डगमग करता दुकान से बाहर बालकनी में निकल गया। यह देख अलेक्सान्द्र चौंका। तेजी से और कुछ अचरज में भरकर पूछा :

"अरे, क्या जा रहे हो? भला... यह कैसे?"

शराफ़त के पुतले लुकियान ने आँख के इशारे से लेप चढ़ाते हुए कहा :

"कोई बात नहीं... कोई बात नहीं..."

तब अलेक्सान्द्र ने उसे भी आड़े हाथों लिया :

"और तुम भी हो कि अर्थहीन शब्द बिखेरते जा रहे हो—लेकिन इससे क्या फ़ायदा? क्या फ़र्क पड़ता है?..."

लुकियान ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और खुद भी बालकनी में चला गया। अज़नबी ने अब कारिन्दे की ओर रुख किया और विश्वास भरी आवाज़ में बोला :

"देखा, मेरी आत्मा की शक्ति के सामने न टिक सके। धुआँ उसी समय तक मँडराता है जब तक लपटें नहीं उठतीं!"

कारिन्दे ने पलकों के नीचे से नज़र उठाकर देखा, और रुखे स्वर में बोला :

"मेरे लिए सब बराबर है।"

अलेक्सान्द्र इन शब्दों को सुनकर मानो झेंप गया। अपनी टोपी को आँखों पर खींचते हुए बुदबुदाया :

"यह क्या, बराबर कैसे है?... सब बराबर नहीं हो सकता..."

कुछ क्षण तक वह सिर लटकाए चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद बूढ़ों ने उसे आवाज़ दी और तीनों राम-सलाम कहे बिना चले गये।

अँधेरे में जिस तरह आग धधकती है, ठीक वैसे ही यह अज़नबी मेरी आँखों के सामने प्रकट हुआ, और मुझे लगा कि इस दुनिया से उसके इंकार में कोई सत्य ज़रूर है।

रात को मौका पाकर भारी उत्साह के साथ इवान लारिओनिच से मैंने उसका ज़िक्र किया। वह एक बहुत ही शान्त और भला आदमी था और हमारी चित्रशाला का बड़ा उस्ताद था। मेरी बात सुनने के बाद बोला :

"वह भगोड़ा होगा,– यह भी एक पंथ है जिसे मानने वाले किसी चीज़ को स्वीकार नहीं करते।"

"वे कैसे रहते हैं?"

"वे किसी एक जगह नहीं टिकते, सदा घूमते रहते हैं। इसीलिये उनका नाम भी भगोड़े पड़ गया। उनका मत है कि यह धरती और इसकी हर चीज़ उनके लिए पराई है। पुलिस उन्हें खतरनाक समझती है, और उनके पीछे पड़ी रहती है..."

अपने जीवन में काफ़ी कटुता मैंने देखी थी, फिर भी यह बात मेरे हृदय में नहीं जमी कि कोई जीवन की हर चीज़ को ठुकरा कैसे सकता है? उस समय अपने चारों ओर के जीवन में मुझे अच्छी और दिलचस्प चीज़ें दिखाई देती थीं। नतीजा इसका यह कि कुछ दिन बीतते न बीतते अलेक्सान्द्र का चित्र धुँधला पड़कर मेरी स्मृति से गायब हो गया।

लेकिन, कभी-कभी, बुरे क्षणों में उसकी याद ताजा हो जाती और मुझे लगता जैसे खेतों के बीच से मटमैले पथ को पार करता वह जंगल की ओर बढ़ा जा रहा है। श्रम के दाग-धब्बों से अछूता उसका सफ़ेद और साफ़-सुथरा हाथ ऐंठता हुआ टोपी को धकेल रहा है और वह बुदबुदा रहा है :

"मेरा पथ सीधा और सही है और हर चीज़ से इंकार करने तथा हर बन्धन को तोड़ने का मैं आह्वान करता हूँ..."

और उसके साथ-साथ पिता का चित्र भी मेरी आँखों के सामने मूर्त हो

उठता,—ठीक वैसा ही जैसा कि वह नानी को सपनों में दिखाई देता था : अख़रोट की लकड़ी हाथ में लिये, और एक चित्तीदार कुत्ता, जीभ बाहर निकाले, उनके कदमों के साथ लपकता-झपकता हुआ...

13

देव-प्रतिमाओं की चित्रशाला लकड़ी और ईंट की एक पक्की इमारत के दो कमरों में थी। एक कमरे में तीन खिड़कियाँ सहन की तरफ खुलती थीं और दो बगीचे की तरफ़; दूसरे कमरे में एक खिड़की का रुख बगीचे की ओर था और एक का सड़क की ओर। खिड़कियाँ छोटी और चौकोर थीं, और उनका काँच ज़माने के रंग देखते-देखते खुद भी रंग गया था। जाड़ों की धुँधली और छितरी हुई रोशनी मुश्किल से उसे बेधकर भीतर पहुँच पाती थी।

दोनों कमरों में मेज़ें ही मेज़ें भरी थीं। हर मेज़ पर, कमर दोहरी किये, एक या दो कारीगर काम करते। पानी से भरी काँच की गेंदें छत से लटकतीं, ताकि लैम्पों की रोशनी उनके स्पर्श से और भी अधिक उजली तथा शीतल होकर देव-प्रतिमाओं के चौरस चौखटों को आलोकित करे।

चित्रशाला के गरम वातावरण में दम घुटता। चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध पालेख, खोलुई और म्स्तेरा गाँवों के क़रीब बीस कारीगर—सब यहीं भरे रहते। खुले गले की छींट की कमीजें और मोटे कपड़े के पायजामे वे पहनते, और जूतों के नाम पर बदनुमा चिथड़े होते या एकदम नंगे पाँव ही रहते। तम्बाकू का कड़वा धुआँ उनके सिरों के चारों ओर मँडराता और वार्निश, लाख तथा सड़े अण्डों की गन्ध से हवा भारी हो जाती। व्लादीमिर लोक गीत के स्वर, गर्म तारकोल की तरह तरल और भारी तैरते रहते :

पाप पंक में लथपथ दुनिया
रही न लाज कुलाज
लड़के लड़की सब बेकाबू
नाचें नंगा नाच...

वे अन्य गीत भी गाते, सब इसी कैड़े के, जी भारी बनाने वाले। लेकिन यह उनका प्रिय गीत था। गीत की धुन, उनके विचारों या काम में कोई बाधा दिए बिना गूँजती रहती। अरमाइन के महीन बालों वाले ब्रुश, बिना किसी भूल-चूक के, सहज गति से चलते, प्रतिमा की रेखाओं को उभारते, सन्तों के चोगों की सलवटों में रंग भरते या उनके सूखे हुए चेहरों पर वेदना की झुर्रियाँ बनाते। खिड़कियों के पास से नक्काश गोगोलोव की हथौड़ी की खटखट सुनाई देती जो छेनी से छेदकर बेल-बूटे बनाता।

पकौड़े-सी नीली उसकी नाक थी और नशे में वह धुत्त रहता था। हथौड़ी की तेज खटखट गीत के अलस स्वरों के साथ ताल देती और ऐसा मालूम होता जैसे कोई कीड़ा पेड़ की लकड़ी कुतर रहा है।

देव-प्रतिमाओं की साज-सज्जा के इस काम में किसी का मन न लगता। जाने किस शैतान-दिमाग ने इस काम को अंग-भंग कर अलग-अलग टुकड़ों में बाँट दिया था। नतीजा यह कि अब इस काम में न कोई आकर्षण रहा था, न सौन्दर्य—सभी कुछ खण्डित हेकर बिखर गया था। उससे गहरा लगाव पैदा करना या उसके प्रति हृदय में कोई दिलचस्पी जगाना असम्भव था। ऐंची-तानी आँखों वाला, कमीना और द्वेष भरा बढ़ई पनफ़ील सरो और लिण्डन लकड़ी के रंदे से साफ़ किये हुए, गोंद से जुड़े छोटे-बड़े तरह-तरह के तख़्ते लाता। इसके बाद तपेदिक का मरीज दवीदोव तख़्तों पर ख़ास सफ़ेद रंग चढ़ाकर उन्हें चित्रकारी के लिए तैयार करता। उसका साथी सोरोकिन तख़्तों पर एक ख़ास रंग चढ़ाता; मिल्याशिन पेंसिल से देव-प्रतिमा की तस्वीर बनाता जो किसी मूल चित्र की नकल होती; बूढ़ा गोगोलोव प्रतिमाओं के चौखटों पर सुनहरा रंग चढ़ाता और फिर उन पर नक़्क़ाशी करता; छोटे कारीगर सीनरी बनाते और सन्तों के कपड़ों में रंग भरते। इसके बाद प्रतिमा को, बल्कि कहना चाहिए कि प्रतिमा के धड़ को क्योंकि उसमें अभी सिर न लगा होता और न हाथ, दीवार के सहारे खड़ा कर दिया जाता। चेहरा बनाने का काम दूसरे कारीगर करते।

गिरजे की वेदी या दरवाज़े की शोभा बढ़ाने वाली इन बड़ी-बड़ी प्रतिमाओं को इस तरह बिना चेहरे-मोहरे, हाथ या पाँव के—केवल चोगा, कवच या फरिश्तों की छोटी क़मीज़ें पहने—दीवार के सहारे टिका देखकर बहुत ही अटपटा मालूम होता। उनके शोख और भड़कीले रंग मौत की भावना का संचार करते, वह चीज़ जो जीवन फूँकती है, उनमें नहीं थी, लगता कि वह चीज़ उनमें कभी मौजूद थी, लेकिन रहस्यमय ढंग से विदा हो गयी और अब बोझिल लबादे के सिवा उनके पास और कुछ नहीं बचा है।

जब चेहरा-मोहरा बनानेवाले अपना काम खत्म कर लेते तो एक अन्य कारीगर नक़्क़ाशी पर मीनाकारी का काम करता। परिचय और स्तुति आदि लिखने का काम किसी दूसरे उस्ताद के सुपुर्द था। इन सब के हाथों से गुजरने के बाद तैयार प्रतिमा पर खुद लारिओनिच, चित्रशाला का शान्त स्वभाव का मुखिया, वार्निश चढ़ाता।

उसके धूसर चेहरे पर धूसर दाढ़ी थी—महीन और रेशम की तरह मुलायम। उसकी धूसर आँखों की अतल गहराई में उदासी छायी रहती। वह बहुत ही भले ढंग से मुस्कराता, लेकिन न जाने क्यों उसकी मुस्कराहट के जवाब में मुस्कराना कुछ अटपटा और ग़लत-सा मालूम होता। उसे देखकर खम्भे वाले सन्त सिमयोन की प्रतिमा की याद हो आती—उतना ही दुबला-पतला और क्षीण, और उसी की तरह

उसकी भावहीन आँखें अपने चारों ओर के वातावरण तथा आसपास के लोगों से बेखबर दूर कहीं देखती रहतीं।

चित्रशाला में काम शुरू किये अभी मुझे दो-चार ही दिन हुए थे कि झण्डियाँ बनाने वाला कारीगर नशे की हालत में काम पर चला आया। वह दोन प्रदेश का कज़्ज़ाक था। नाम कापेन्द्यूख़िन, खूबसूरत और खूब हट्टा-कट्टा। दाँतों को भींचकर और बहकी-बहकी लुगाइया आँखों को सिकोड़कर, बिना किसी से कुछ कहे या सुने, सिरे से वह सभी पर घूंसों की बौछार करने लगा। उसका चपल शरीर जो डील-डौल में ज़्यादा बड़ा नहीं था, चित्रशाला में सब पर उसी तरह झपट रहा था जैसे चूहों से आबाद तहख़ाने में बिलाव झपटता है। घबराकर सब ओनों-कोनों की ओर लपके, और वहीं दुबके हुए एक-दूसरे से चिल्लाकर कहने लगे :

"मार साले को!"

आख़िर देव-प्रतिमा का चेहरा-मोहरा बनाने वाले कारीगर येव्गेनी सितानोव ने बेक़ाबू हुए इस साँड़ को सन्न करने में सफलता प्राप्त की। स्टूल उठाकर, उसने कज़्ज़ाक के सिर पर दे मारा, और वह वहीं फ़र्श पर ढह गया। देखते-देखते सबने उसे पकड़ा और चित लिटाकर तौलियों से बाँध दिया। लेकिन अपने दाँतों से वह तौलियों को नोचने और झीर-झीर करने लगा। यह देख येव्गेनी का गुस्सा सीमा पार कर गया। उछलकर वह मेज़ पर चढ़ गया और कज़्ज़ाक की छाती पर कूदने की धुन में दोनों कोहनियों को बाजुओं से सटाकर अपना वज़न तौलने लगा। अपने भारी-भरकम वज़न के साथ अगर वह कापेन्द्यूखिन की छाती पर कूद पड़ता तो उसका कचूमर ही निकल जाता। लेकिन तभी गरम कोट और टोपी पहने लारिओनिच उसके बराबर में आकर खड़ा हो गया। सितानोव को उसने उँगली के इशारे से बस में किया, और शान्त तथा दो टूक स्वर में अन्य सब से बोला :

"इसे ड्योढ़ी में ले जाकर डाल दो। नशा उतरने पर ठीक हो जायेगा..."

कारीग़र कज़्ज़ाक को खींचकर चित्रशाला से बाहर ले गये, फिर मेज़-कुर्सियों को ठिकाने से लगाया और अपने-अपने काम में जुट गये। साथ ही वे टीका-टिप्पणी भी करते जाते—कापेन्द्यूख़िन की ताकत के बारे में। उन्होंने भविष्यवाणी की कि एक न एक दिन वह किसी से लड़ता हुआ मारा जायेगा।

"उसे मारना हँसी-खेल नहीं है," सितानोव ने बहुत ही शान्त स्वर में गहरे जानकार की भाँति अपनी राय जाहिर की।

मैंने लारिओनिच की ओर देखा और अचरज से भरा यह पता लगाने की कोशिश करने लगा कि उसमें ऐसी क्या बात है जो सब लोग, अपने जंगलीपन के बावजूद उसका इतना कहना मानते हैं।

वह हरेक को बिना किसी भेद-भाव के काम करने के गुर सिखाता। पुराने से

पुराने और दक्ष कारीगर भी उससे सलाह लेते। कापेन्द्यूख़िन को सिखाने पर वह अन्य सबसे ज़्यादा समय और शब्द खर्च करता।

"तुम चित्रकार हो, कापेन्द्यूख़िन, चित्रकार, और अच्छा चित्रकार वही है जिसके चित्रों में जान हो, इटली के चित्रकारों की भाँति। सुहावने रंगों का सामंजस्य तेल-चित्रों की जान है, लेकिन देखो न, तुमने यहाँ निरा सफ़ेद पोतकर रख दिया है। यही वजह है जो माता मरियम की आँखें इतनी बेजान और ठिठुरी-सी मालूम होती हैं। इसके गाल गोल हैं, उनमें लाली भी खूब है, लेकिन आँखों का उनसे कोई मेल नहीं है। फिर आँखे यथास्थान भी नहीं हैं—एक नाक के इतनी नजदीक है और दूसरी कनपटी की ओर भागी जा रही है। नतीजा यह कि जिस चेहरे पर दैवी आभा, निश्छलता और पवित्रता झलकनी चाहिए, उससे अब मक्कारी और दुनियादारी टपकती है। असल बात यह है कि तुम मन लगाकर काम नहीं करते, कापेन्द्यूख़िन।"

कज़्ज़ाक पहले तो मुँह सिकोड़े सुनता, स्त्रियों जैसी अपनी सुन्दर आँखों से बेशर्मी के साथ मुस्काराता और फिर अपनी सुहावनी आवाज़ में जो नशे के कारण कुछ भारी पड़ गयी थी, कहता :

"तुम भी क्या बात करते हो, इवान लारिओनिच! भला यह भी कोई काम है? भगवान ने मुझे संगीत के लिए पैदा किया था, लेकिन मुझे मठ में फँसा दिया!"

"मेहनत और लगन से हर काम में दक्ष बना जा सकता है।"

"नहीं, मैं हूँ किस खेत की मूली? होता मैं कोचवान और होती मेरे पास हवा से बातें करनेवाले घोड़े जुती त्रोइका... आह..."

और अपना टेंटुआ बाहर निकालकर हड़कम्पी स्वर में गाने लगता :

त्रोइका मेरी रंग-बिरंगी
सरपट दौड़ी जाये रे
सजनी मेरी सोलह बरस की
सौ-सौ बल खाए रे!

इवान लारिओनिच उसकी ओर देखकर बेबस मुस्कराता, अपनी धूसर नाक पर चश्मे को ठीक से बैठाता और चुपचाप वहाँ से खिसक जाता। फिर, एकसाथ मिलकर, बीसों आवाज़ें गीत के बोल उठतीं और एक बलशाली धारा का रूप धारण कर मानो समूची चित्रशाला को ऊपर हवा में उठा लेती। गीत के स्वरों के साथ चित्रशाला भी हिंडोले की भाँति झूलने लगती :

त्रोइका मेरी रंग-बिरंगी
जोबन की बहार रे...

पाश्का ओदिन्त्सोव, जो अभी काम सीख रहा था, अण्डों की ज़र्दी निकालना बन्द कर देता, और दोनों हाथों में अण्डे के छिलके थामे, बढ़िया तेज आवाज़ में समूहगान के बोल पकड़ता।

गीत की ध्वनि नशा बनकर सब पर छा जाती, अन्य किसी बात की उन्हें सुध न रहती। एकसाथ मिलकर सबके हृदय धड़कते, एक ही रागिनी में सब बहते और कनखियों से उस कज्ज़ाक की ओर देखते जो गाते समय चित्रशाला का एकछत्र स्वामी होता। वह सभी को एक सिरे से, मन्त्रमुग्ध कर लेता और वे एकटक उसके ज़ोर-ज़ोर से झूलते हाथ की हर हरकत का अनुसरण करते। उसकी बाँहें इस तरह लहरातीं मानो वह अभी हवा में उड़ने लगेगा। मुझे पूरा विश्वास था कि अगर वह एकाएक अपने गीत को रोककर बीच में ही चिल्ला उठता, "आओ, साथियो, चित्रशाला की चिन्दियाँ उड़ा दें!" तो सब के सब, मय उन कारीगरों के जो बड़े सधे-सम्भले और भले थे, एकाध मिनट के भीतर समूची चित्रशाला को मलबे का एक ढेर बनाकर रख देते।

वह बिरले ही गाता, लेकिन उसके उन्मुक्त गीतों में सदा इतनी अदम्य शक्ति होती कि उनके सामने कोई टिक न पाता, सभी को वे अपने साथ बहा ले जाते। चाहे हृदय कितना ही बुझा हुआ क्यों न हो, उसके गीत की आवाज़ सुन सभी चेतन हो जाते, एक अजीब जोश और उछाह उनमें लहराने लगता, और उनकी बिखरी हुई ताकतें एक स्वर-लय में गुँथकर किसी बलशाली साज का रूप धारण कर लेतीं।

गीतों को सुनकर मुझे गायक और लोगों को मन्त्रमुग्ध करने की उसकी अद्भुत शक्ति से ज़ोरदार इर्ष्या होती। कम्पनशील आतंक का मुझमें संचार होता, इस हद तक मैं उमड़ता-घुमड़ता कि हृदय दुखने लगता, खूब खुलकर रोने और गाते हुए लोगों के सामने अपना हृदय चीरकर रख देने के लिए जी ललक उठता :

"ओह, तुम सब मुझे कितने प्यारे लगते हो!"

तपेदिक का मरीज़ दवीदोव भी, जिसका रंग पीला पड़ गया था और जिसके शरीर पर बाल ही बाल नज़र आते थे अपना मुँह खोलता और वह अज़ीब-सा, अण्डा फोड़कर अभी-अभी बाहर निकले कौवे की तरह लगने लगता।

केवल कज्ज़ाक ही अकेला ऐसा था जिसके गीत इतने आह्लादपूर्ण, इतने तूफ़ानी होते थे। अन्यथा क़ारीगर, आम तौर से, उदासी में डूबे और बोझिल गीत गाते थे, जैसे—'पाप पंक में लथपथ दुनिया', 'आह, घेर लिया जंगल ने, छोटे जंगल ने', अथवा अलेक्सान्द्र प्रथम की मृत्यु का वर्णन करनेवाला गीत—'फिर आया वह, हमारा अलेक्सान्द्र, और डाली नज़र उसने अपने वीर सैनिकों पर'।

कभी-कभी चित्रशाला के सबसे अच्छे चेहरासाज जिख़रेव के कहने से वे धार्मिक गीत भी गाते, लेकिन उन्हें गाने में वे भूले-भटके ही सफल हो पाते। जिख़रेव हमेशा ऐसी धुनों और रागिनियों के पीछे सिर धुनता जिन्हें सिवा उसके और कोई न समझ

पाता। सभी के गाने में वह आड़े आता था।

वह एक दुबला-पतला आदमी था। आयु पैंतालीस के क़रीब, काले, घुँघराले बालों के अर्द्धचन्द्र से घिरी चाँद, भारी और काली भौंहें जो मूँछों की भाँति मालूम होतीं थीं। ताम्बे से तपे और बढ़िया नाक-नक़्शवाले उसके गैर-रूसी चेहरे पर घनी और नुकीली दाढ़ी खूब फबती थी। लेकिन वह फबन उसकी दाढ़ी में ही थी, तोते जैसी नाक के नीचे उग आयी सख़्त मूँछों में नहीं जो उसकी भौंहों के सामने बिल्कुल फालतू मालूम होती थीं। उसकी नीली आँखें एक-दूसरी से भिन्न थीं—बायीं आँख दाहिनी आँख से बड़ी नज़र आती थी।

"पाश्का!" मेरी ही तरह काम सीखने वाले साथी से ऊँचे स्वर में वह कहता। "जरा शुरू तो करो 'हे दयामय दीनबन्धु!' देखो, सब चुप होकर सुनो!"

कमीज पर गमछे से हाथ पोछते हुए पाश्का शुरू करता :

"हे दयामय..."

"दी-ई-ई-ई-न ब-अ-अ-अ-न्धु..." अनेक आवाज़ें एकसाथ मिलकर 'दीनबन्धु' को ऊपर उठातीं और विचलित जिख़रेव चिल्लाना शुरू करता :

"सितानोव! अपनी आवाज़ नीची करो जिससे मालूम हो कि आत्मा की गहराई में से बाहर निकल रही है..."

सितानोव ऐसी आवाज़ में 'हे दयामय' की खिचड़ी पका रहा था मानो बैरल को उलटकर वह उसे ढपाढप बजा रहा हो...

"हम हैं दास तिहारे..."

"छिः यह भी कोई ढंग है! ऐसी आवाज़ निकलनी चाहिए कि धरती काँपने लगे, दरवाज़े और खिड़कियाँ अपने-आप खुल जायें!"

जिख़रेव का रोम-रोम किसी रहस्यमय आवेश में फड़कने लगता, उसकी अजीब-गरीब मूँछनुमा भौंहें उठती और गिरती, उसकी आवाज़ लड़खड़ाने लगती, और उसकी उँगलियाँ किसी अदृश्य साज़ के तारों को झनझनाती मालूम होती।

"हम हैं दास तिहारे—समझे?" भेदभरे अन्दाज़ में वह कहता।

"यह आत्मा की आवाज़ होनी चाहिए, तन-मन को बींधकर निकलती हुई : 'हम हैं दास तिहारे!' भगवान तुम्हारा भला करे, क्या तुम इतना भी नहीं समझ सकते?"

"यह हमसे कभी नहीं बनता, आप को तो मालूम ही है।" सितानोव बड़े अदब के साथ कहता।

"तो जाने दो!"

जिख़रेव खीजकर कहता और अपने काम में जुट जाता। वह हम सबसे अच्छा कारीगर था। वह हर तर्ज़ के चेहरे बना सकता था—यूनानी, फ्रांसीसी या इतालवी। देव-प्रतिमा का आर्डर मंजूर करते समय लारिओनिच हमेशा उससे सलाह लेता। मूल

देव-प्रतिमाओं का वह बहुत बड़ा पारखी था। चमत्कार दिखाने वाली बहुमूल्य देव-प्रतिमाओं—जैसे फ़ेओदोरोव, स्मोलेन्स्क और कज़ान मरियमों की सभी क़ीमती नक़लें उसके हाथों से गुजरतीं। लेकिन, मूल प्रतिमाओं क ध्यान से अध्ययन करते हुए, वह ज़ोरों से झुँझला उठता :

"मूल क्या हैं, मानो खूँटे हैं जिनमें हम बँधे हैं। देखो न, जरा भी इधर-उधर नहीं हो सकते!..."

चित्रशाला में उसका दर्जा सबसे बड़ा था। फिर भी, अन्य सब की भाँति, वह किसी पर रोब नहीं गाँठता था और काम सीखने वालों के साथ—पावेल और मेरे साथ—बड़ी नरमी से पेश आता था। ले-देकर वही एक ऐसा था जो हमें अपना हुनर सिखाने में आनाकानी नहीं करता था।

वह एक अच्छी-ख़ासी पहेली था। कुल मिलाकर वह कोई मौजी आदमी नहीं था। कभी-कभी पूरे सात दिन तक वह मुँह न खोलता और गूंगे-बहरे की भाँति काम में जुटा रहता। वह नज़र उठाकर हमारी ओर देखता भी तो इस तरह मानो कहीं दूर से किसी अजीब और अनजानी चीज़ को पहली बार देख रहा हो। यों गाने का वह बहुत शौकीन था, लेकिन ऐसे दिनों में न वह खुद गाता, न दूसरों के गाने की आवाज़ उसके कानों को छूती प्रतीत होती। एक-एक कर सभी उस पर अपनी नज़र डालते और कनखियों का आदान-प्रदान करते। लेकिन वह था कि आड़े रखे तख़्ते पर झुका रहता, तख़्ते का एक सिरा उसके घुटनों पर होता और बिचला हिस्सा मेज़ के किनारे से टिका होता। वह अपने काम में डूबा रहता, एक क्षण के लिए भी वह अपना सिर न उठाता और जान खपाकर महीन ब्रुश से प्रतिमा का नाक-नक़्शा उभारता। काम करते समय खुद उसका चेहरा भी उतना ही अज़ीब और अज़नबी मालूम होता जितना कि प्रतिमा का।

सहसा, बहुत ही दो टूक और आहत-से स्वर में, वह बड़बड़ा उठता :

"'प्रेद्तेचा'—क्या मतलब है इसका? प्राचीन स्लाव भाषा में 'तेच' का अर्थ है 'जाना' और 'प्रेद' का 'आगे', तो प्रेद्तेचा का अर्थ हुआ वह जो आगे जाये,— अर्थात आगे जानेवाला, या पूर्वगामी, बस और कुछ नहीं!..."

उसकी बड़बड़ाहट सुन सब चुपचाप हँसते, छिपी हुई नज़रों से उसे अपनी हँसी का निशाना बनाते और उसके मुँह से निकले अज़ीब शब्द खामोशी में गूँजते रहते :

"और उसे भेड़ की खाल के लबादे में नहीं, बल्कि परों के साथ बनाना चाहिए..."

तभी किसी कोने में से आवाज़ आती :

"क्या हवा से बातें कर रहे हो?"

लेकिन वह कुछ जवाब न देता, या तो वह सुनता नहीं या सुनकर भी अनसुना कर देता। उसके बाद प्रतीक्षा भरी निस्तब्धता में उसके शब्द गूँजने लगते :

"सन्तों की जीवनियाँ जाननी चाहिए, लेकिन उन पवित्र पुस्तकों को क्या कोई समझता है? हम क्या जानते हैं? पर कटे पक्षी की भाँति हमारा जीवन बीतता है... चेतनाविहीन, आत्माविहीन... मूल कृतियों के नमूने ही हमारे पास हैं, लेकिन हृदय नहीं..."

इस तरह बड़बड़ाकर जब वह अपने विचार प्रकट करता तो सितानोव को छोड़ अन्य सब के होंठों पर मुस्कराहट दौड़ जाती और उनमें से कोई एक, अदबदाकर फुसफुसाता :

"देख लेना, शनिवार के दिन यह शराब के प्याले में गड़गच्च नज़र आयेगा..."

लम्बा और कड़ियल सितानोव जो बाईस साल का बछेरा था, अपना गोल-मटोल और अभी तक दाढ़ी-मूँछ, बल्कि भौंहों तक से अछूता चेहरा उठाकर उदास और सोच में डूबी नज़र से कोने की ओर देखता।

मुझे याद है कि एक बार फ़ेओदोरोव की शैली में मरियम की प्रतिलिपि तैयार करने के बाद उसे मेज़ पर रखते समय जिख़रेव बुरी तरह विचलित हो उठा था और ज़ोरों से उसने कहा था :

"काम सम्पन्न हुआ, जगत जननी! माँ, तू अतल कटोरे समान है, नदी-जगत के आँसू अब इसमें बहेंगे..."

फिर, जो कोट हाथ लगा उसी को अपने कन्धे पर डाल वह बाहर निकल गया—शराबख़ाने की ओर। नौजवान कारीगर हँसते हुए सीटियाँ बजाने लगे, बूढ़ों ने ईर्ष्या से लम्बी साँसे भरीं लेकिन सितानोव चुपचाप उठकर देव-प्रतिमा के पास पहुँचा, ध्यान से उसे देखा, फिर बोला :

"ज़रूर नशे में गड़गच्च होगा, अपने काम से बिछुड़ने पर दिल जो दुखता है। हर कोई नहीं समझ सकता इस दर्द को..."

जिख़रेव हमेशा शनिवार के दिन अपना रंगपानी शुरू करता। और उसका यह रंगपानी, नशे के आदी अन्य कारीगरों के खुल खेलने जैसा नहीं, बल्कि असाधारण होता। उसके रंगपानी की शुरुआत इस तरह होती : सुबह वह एक पुर्ज़ा लिखता और उसे पावेल के हाथ कहीं रवाना कर देता, उसके बाद ठीक भोजन के समय से कुछ पहले लारिओनिच से कहता :

"आज मुझे हम्माम जाना है।"

"कब तक लौटोगे?"

"सो तो..."

"अच्छी बात है। लेकिन मंगल तक ज़रूर आ जाना!"

जिख़रेव अपनी गंजी खोपड़ी हिलाकर हामी भरता और उसकी भौंहे थिरकने लगतीं।

हम्माम से लौटने के बाद सज-सजाकर वह पूरा बाँका बन जाता—कलफ़चढ़ी बढ़िया क़मीज़, गले में रुमाल और रेशमी जाकेट की जेब से चाँदी की लम्बी चेन लटकती हुई। फिर, चलते समय, पावेल और मुझे डाँट पिलाता :

"देखो, आज रात चित्रशाला की खूब मेहनत से सफाई करना। लम्बी मेज़ को रगड़-रगड़कर धोना!"

देखते न देखते चित्रशाला में छुट्टी का समाँ छा जाता। क़ारीगर अपनी मेज़ों को झाड़-पोंछकर कायदे से लगाते फिर हम्माम जाकर गुसल करते और जल्दी से साँझ का भोजन पेट में डालते। भोजन के बाद बीयर, मदिरा और खाना लेकर जिख़रेव प्रकट होता। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री आती, आकार-प्रकार और डील-डौल में पूरी बावनग़ज़ी, साढ़े छह फट ऊँची। जब वह आती तो उसके अनुपात में हमारी सारी कुर्सियाँ और स्टूल खिलौनों की भाँति मालूम होते, यहाँ तक कि लम्बा सितानोव भी उसके सामने निरा बच्चा-सा दिखाई देता। उसकी काठी मज़बूत और सुघड़ थी, छातियों को छोड़कर जिनका बेतुका उभार उसकी ठोड़ी को छूता था। उसकी चाल-ढाल भोंडी और ढीली-ढाली थी। आयु हालाँकि चालीस की सीमा लाँघ चुकी थी, फिर भी घोड़े जैसी बड़ी-बड़ी आँखोंवाले उसके भावशून्य चेहरे पर अभी तक चिकनाई और ताज़गी मौजूद थी, और उसका छोटा-सा मुँह सस्ती-सी गुड़िया की भाँति रंगा-चुना था। होंठों पर मुस्कराहट लाकर वह सब से अपना चौड़ा और गर्म हाथ मिलाती, और बेमतलब की बातें मुँह से निकालती :

"मजे में तो हो न? आज बहुत ठण्ड है। ओह, तुम्हारा कमरा कितना गन्धाता है! रंग-रोगन की गन्ध मालूम होती है। और सब तो ठीक-ठाक हैं न?"

यों देखने में वह अच्छी लगती—चौड़े पाट में बहने वाली नदी की भाँति सबल और शान्त, लेकिन जब वह बोलती तो उबकाई आने लगती। हमेशा बेरस और बेकार की बातें उसके मुँह से निकलतीं। कुछ कहने से पहले वह अपने गालों को फुलाती जिससे उसका लाल चेहरा और भी गोल-मटोल हो जाता।

नौजवान खिलखिलाते और एक-दूसरे से कानाफूसी करते :

"औरत हो तो ऐसी,—जाने किस साँचे में ढालकर खुदा ने इसे तैयार किया है!"

"किसी गिरजे की अच्छी-ख़ासी मीनार मालूम होती है!"

होठों को भींचकर और हाथों को छातियों के नीचे जोड़कर वह समोवार के नजदीक मेज़ के पास बैठ जाती, और अपनी घोड़े जैसी भली आँखों से एक-एक करके सब पर नज़र डालती।

सभी उसका मान करते, और नौजवानों के हृदय उसे देखकर सहमे-सहमे से हो जाते। ललचाई नज़रों से वे उसके भीमाकार शरीर की टोह लेते, लेकिन उसकी सर्वग्रासी नज़र की लपेट में आते ही उनके गाल लाल हो उठते और वे अपनी गरदन

झुका लेते। जिख़रेव भी उसके साथ अदब से पेश आता, आप कहकर क़ायदे से उसे सम्बोधित करता और मेज़ से उठकर जब कोई चीज़ उसे देता तो झुककर दोहरा हो जाता।

"ओह, इतनी तकलीफ़ क्यों करते हैं?" वह अलस भाव से मीठे अन्दाज़ में कहती। "सच, आप मेरे लिए बहुत परेशान होते हैं!"

उसके हर अन्दाज़ से फुरसत का भाव टपकता। उसके हाथ केवल कोहनियों तक हरकत करते। कोहनियों से ऊपर का हिस्सा वह दोनों बाजू कसकर सटाये रहती। उसके बदन से अलावघर से अभी-अभी निकली ताज़ी पाव रोटी की तेज गन्ध आती।

बूढ़ा गोगोलेव उसे देखकर उलटा हो जाता और उसकी सुन्दरता की तारीफ करता कभी न अघाता मानो किसी पादरी के मुँह से धर्म-पाठ हो रहा हो जिस वह श्रद्धाभाव से मुस्कराते हुए सुनती रहती। जब कभी वह शब्दों में उलझ जाता तो उसकी इस कमी को वह खुद पूरा कर देती :

"अरे नहीं, कुँवारेपन में तो हम इतनी सुन्दर नहीं थीं, यह तो हम बाद में फले-फूले। तीस बरस की होते न होते तो हम इतनी प्यारी हो गयीं कि बड़े-बड़े घरोंवाले भी हमारी खोज-खबर लेते थे। और एक नवाब साहब ने तो हमको दो घोड़ोंवाली गाड़ी देने का वायदा किया था..."

कापेन्द्यूख़िन जो अब तक नशे में धुत्त और हाल-बेहाल हो चुका होता था, तीखी नज़र से उसे देखते हुए पूछता :

"किसलिये?"

"यह भी कोई बताने की बात है?" वह कहती। "निश्चय ही हमारे प्रेम के लिए!"

कापेन्द्यूख़िन कुछ सकपका जाता। भुनभुनाते हुए कहता :

"प्रेम... प्रेम... कैसा प्रेम भला?"

"बहुत बनो नहीं," सहज भाव से जवाब देती, "भला यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारे जैसे खूबसूरत आदमी से प्रेम की बारह खड़ी छिपी रहे?"

चित्रशाला कहकहों की आवाज़ में डोलने लगती और सितानोव कापेन्द्यूख़िन के कान में बुदबुदाता :

"निरी मूर्ख है या उससे भी बेहतर। ऐसी औरत से प्रेम तो वही करेगा, जो ऊब से मरा जा रहा हो, सभी यह जानते हैं..."

नशे से उसका चेहरा फक पड़ गया था, कनपटी पर पसीने की बूँदे उभर आयी थीं और उसकी चतुर-चपल आँखों में आग की लपटें मानो खतरे का सिगनल दे रही थीं। अपनी भोंडी नाक को घुमाते और पनीली आँखों को उँगलियों से पोंछते हुए वृद्ध

गोगोलेव ने पूछा :

"कितने बच्चे हुए हैं तुम्हारे?"

"बच्चा हमारे एक हुआ था..."

एक लैम्प मेज़ के ऊपर लटका था और दूसरा अलावघर के उधर कोने में। उनकी धीमी रोशनी उन्हीं तक सीमित रहती और चित्रशाला के कोनों में गहरा अँधेरा छाया रहता जिनमें चेहरे-मोहरे विहीन आकृतियाँ नज़र आतीं। हाथों और चेहरों की जगह अंधकार के सूने धब्बों को देखकर भूत-प्रेतों की दुनिया का गुमान होता और यह भावना और भी ज़ोरों से सिर उभारती कि सन्तों के शरीर, इस तहख़ाने में अपने रंगीन कपड़ों को छोड़कर, किसी रहस्यमय ढंग से निकल भागे हैं। काँच की गेंदे ऊपर खींचकर छत में लगे हुकों से अटका दी गयी थी और वे धुएँ के बादलों के बीच, नीली-नीली-सी चमक रही थीं।

जिख़रेव को जैसे चैन नहीं था। सबकी ख़ातिर-तवाजा करता वह मेज़ के चारों ओर मँडरा रहा था। उसकी गंजी खोपड़ी कभी एक की ओर झुकती तो कभी दूसरे की ओर। उसकी पतली उँगलियाँ बराबर हरकत कर रही थीं। वह अब और भी दुबला हो गया था और उसकी तोते-सी नाक और भी नुकीली हो गयी। प्रकाश के सामने से आड़ा होकर जब वह गुजरता तो उसके गाल पर नाक की काली लम्बी छाया फैल जाती।

गूँजती हुई आवाज़ में वह कहता :

"साथियो, खूब छककर खाओ और पीओ!"

और स्त्री मालकिन की भाँति गुनगुनाती :

"आपने भी हद कर दी, पड़ोसी! इतना तकल्लुफ़ भी किस काम का? हरेक के पास उसके अपने हाथ और उसका अपना पेट मौजूद है। जिसमें जितनी समाती है, उतना ही तो वह खायेगा!"

"परवाह न करो, साथियो! खूब जी भरकर मौज करो!" जिख़रेव विचलित स्वर में चिल्लाता। "हम सब उसी एक ख़ुदा के बन्दे हैं। आओ, मिलकर उसका गुण-गान करें : 'हे दयामय...'"

लेकिन 'हे दयामय' का स्वर आगे नहीं बढ़ पाया। सब खाने और वोद्का के नशे में ढीले पड़ गये थे। कापेन्द्यूख़िन ने अपना एकार्डियन सम्भाला और नौजवान वीक्तर सलाऊतीन, जो कौवे की भाँति काला और गम्भीर था, तम्बूरिन से गहरी घन्नाटेदार आवाज़ निकालने लगा। जो कसर रह गयी, उसे तम्बूरिन के गिर्द पड़े मंजीरों की आह्लादपूर्ण ध्वनि ने पूरा कर दिया।

"रूसी नाच हो जाये!" जिख़रेव ने आदेश दिया। फिर बोला : "पड़ोसिन! अब आप भी उठने की कृपा कीजिए!"

"ओह!" स्त्री ने एक लम्बी-सी साँस ली और अलस भाव से उठते हुए कहा, "आप भी कितना तकल्लुफ़ करते हैं!"

उठकर वह कमरे के बीचों बीच जाकर ठोस घण्टेघर की भाँति वहाँ खड़ी हो गयी। किशमिशी रंग का चौड़ा घाघरा, पीले रंग की महीन चोली वह पहने थी और सिर पर लाल रंग का रुमाल बाँधे थी।

एकार्डियन की सुरीली आवाज़ आती—छोटी-छोटी घण्टियों की टुनटुन और घुंघरुओं की झुनझुन; तम्बूरिन भारी तथा बेरस उसाँस छोड़ती जो सुनने में बड़ी बुरी मालूम होतीं मानो कोई पागल आदमी सुबकियाँ और आहें भरता हुआ दीवार से सिर टकरा रहा हो।

जिख़रेव नाचना नहीं जानता था। न उसे ताल का कुछ ज्ञान था, न सुर का। बस यूँ ही अपने पाँव उठाता, चमचमाते जूतों की एड़ियों को फ़र्श पर ठकठकाता, छोटे डग भरकर बकरी की भाँति इधर से उधर कूदता। ऐसा मालूम होता मानो उसने किसी दूसरे के पाँव लगा लिये हों या उसके पाँवों ने शरीर का साथ छोड़ देने का इरादा कर लिया हो। मकड़ी के जाले में फँसी मक्खी या मछियारे के जाल में फँसी मछली की भाँति बहुत भद्दे ढंग से उसका बदन बलखाता, तुड़ता और मुड़ता। लेकिन सभी, वे लोग भी जो नशे में धुत्त थे, बड़े ध्यान से उसकी इस उछल-कूद का अनुसरण करते। उनकी आँखें एकटक उसके चेहरे और हाथों पर जमीं रहतीं। जिख़रेव के चेहरे का भाव इतनी तेजी से बदलता कि देखकर अचरज होता : कभी कोमल और लजीला और कभी गर्व से भरा, कभी तेज़ और तीख़ा, कभी चिंगारियाँ-सी छोड़ता। सहसा ऐसा मालूम होता जैसे किसी चीज़ ने उसे आहत कर दिया हो—दर्द से वह चीख़ उठता और अपनी आँखें बन्द कर लेता। जब वह आँखें खोलता तो गहरी उदासी में डूबा दिखाई देता। वह अपनी मुट्ठियाँ भींच लेता और चुपके-चुपके स्त्री के पास पहुँचता। फिर, फ़र्श पर पाँव पटककर घुटनों के बल बैठते हुए वह बाहें फैलाता और भौंहे उठाकर प्रेम में पगी मुस्कराहट का उसे अर्ध्य चढ़ाता। गरदन झुकाकर वह उसकी ओर देखती, मुस्कराकर उसे कृतार्थ करती, और अपने शान्त अन्दाज़ में उसे चेताती :

"नहीं, आप थक जायेंगे!"

वह मीठी मुस्कान के साथ अपनी आँखें बन्द करने का प्रयत्न करती, लेकिन उसकी सिक्काशाही आँखें इतनी बड़ी थीं कि बन्द होने से इंकार कर देती, और इसके फलस्वरूप पड़ी झुर्रियां उसके चेहरे को केवल बदनुमा बनातीं।

नाचने के मामले में वह काफ़ी कच्ची थी। उसका भारी-भरकम शरीर केवल धीरे-धीरे झूमता और बिना आवाज़ किये इधर से उधर थिरकना जानता था। उसके बाँये हाथ में एक रुमाल रहता जिसे वह अनमने भाव से हिलाती। उसका दाहिना हाथ कूल्हे से चिपका रहता और ऐसा मालूम होता मानो वह कोई भीमाकार जग हो।

और जिख़रेव इस बुत-बरोला स्त्री के चारों ओर मँडराता रहता। उसके चेहरे पर विरोधी भाव आते और एक-दूसरे को काटते हुए विलीन हो जाते। ऐसा मालूम होता मानो वह अपने भीतर एकसाथ दस आदमी छिपाये हो और उनमें से प्रत्येक अपना एक अलग स्वभाव रखता हो : एक संकोची और छुई-मुई की भाँति लचीला, दूसरा एकदम जंगली और डरावना, तीसरा खुद डरा और सहमा हुआ, जो इस घिनौनी हिडिम्बा के चंगुल से निकल भागने के लिए हाथ-पाँव पटकता हुआ कराहता प्रतीत होता। सहसा एक दूसरा ही चेहरा नज़र आता—घायल कुत्ते का चेहरा जिसके दाँत निकले होते और बदन रह-रहकर बलखाता होता। यह बदरंग और भद्दा नाच देखकर मेरा हृदय भारी हो जाता और सैनिकों, बावर्चिनों, धोबिनों तथा कुत्ते-कुत्तियों के निहंग घिनौनेपन की मुझे याद आती।

सीदोरोव के धीमे-से शब्द मेरे दिमाग में घूमते :

"इस मामले में सभी झूठ बोलते हैं। ऐसा है यह मामला, सभी को शर्म मालूम होती है न? असलियत यह है कि कोई किसी से प्रेम नहीं करता, केवल मजे के लिए यह सब करते हैं!"

मेरे मन में यह बात नहीं जमती कि ऐसी चीज़ों के बारे में सभी झूठा ढोंग रचते हैं। क्या रानी मार्गो भी झूठा ढोंग रचती थी? और जिख़रेव? निश्चय ही उसे ढोंगियों की पाँत में नहीं रखा जा सकता। और मुझे यह भी मालूम था कि सितानोव राह-चलती किसी हरजाई से प्रेम करता था और इस प्रेम के बदले में वह एक शर्मनाक बीमारी का शिकार भी हो गया था। उसके साथियों ने सलाह दी कि वह उस हरजाई को मार-पीट कर ठिकाने लगा दे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, उलटे उसे एक कमरा किराए पर ले दिया था, डाक्टर से उसका इलाज करा रहा था, और उसके बारे में बातें करते समय वह हमेशा भारी लगाव और कोमलता का परिचय देता था।

लम्बे-चौड़े डील-डौलवाली स्त्री अभी भी भटक रही थी और अपने हाथ में लिये रुमाल को हिला रही थी। उसके चेहरे पर वही एक मरियल मुस्कान जड़ी थी। जिख़रेव भी उसके इर्द-गिर्द उछल रहा था मानो उसका शरीर मरोड़ खा रहा हो। उन्हें देखकर मुझे ख़याल आया : क्या वह हौवा भी, जिसने खुद ख़ुदा तक को चकमा दिया था इस घोड़ी से मिलती-जुलती थी? मेरा हृदय घृणा से भर गया।

मुखविहीन देव-प्रतिमाएँ काली दीवारों पर से ताकती रहती थीं, खिड़कियों से बाहर अँधेरी रात घिरती आ रही थी और चित्रशाला के उमस भरे कमरों के लैम्प अँधेरे को दूर करने के बजाय उसे और भी घना बना रहे थे। पाँवों की थपथपाहट और आवाज़ों की भुनभुनाहट के बीच हाथ-मुँह धोने के ताम्बे के बरतन के नीचे रखी बाल्टी में पानी के गिरने की टपाटप आवाज़ भी सुनाई दे रही थी।

पुस्तकों में चित्रित जीवन से यह सब कितना भिन्न था—भयानक रूप से भिन्न!

शीघ्र ही सब ऊबने लगे। तभी कापेन्द्यूख़िन ने एकार्डियन को सलाऊतीन के हाथों में पटका और चिल्लाकर बोला :

"हो जाओ तैयार साथियों, अब अगिया बैताली नाच होगा!"

वह वान्का त्सिगानोक की तरह नाचता था, ऐसा मालूम होता मानो हवा में उड़ रहा हो। पावेल ओदिन्त्सोव और सोरोकिन के पाँवों की थापों ने भी तेजी पकड़ी। यहाँ तक कि तपेदिक का मारा दावीदोव भी बीच में आ कूदा। धूल और धुएँ, वोद्का और धुएँ में पके सोसेजों की कमाए हुए चमड़े जैसी तीखी गन्ध के मारे खाँसते और खँखारते हुए वह नाच रहा था।

नाचने, गाने और हा-हा, ही-ही का यह सिलसिला चलता रहा। ऐसा मालूम होता मानो वे जीवन की इस घड़ी को आह्लादपूर्ण बनाने पर तुले हों और एक-दूसरे को उकसाते हुए ज़िन्दादिली, चपलता और सहनशक्ति की कसौटी पर कस रहे हों।

सितानोव, नशे में धुत्त, एक-एक के पास जाकर पूछता :

"ज़रा बताओ तो सही, इस घोड़ी के प्रेम में यह कैसे फँस गया?" लगता कि वह अभी रो पड़ेगा।

लारिओनिच अपने हड़ीले कन्धों को बिचकाता। जवाब में कहता :

"क्यों, औरतों सी औरत है, तुझे भला क्या चाहिए?"

और जिनके बारे में वे बातें कर रहे थे, इस बीच न जाने कब वे दोनों गायब हो गये। मैं जानता था कि जिख़रेव दो-तीन दिन से पहले नहीं लौटेगे। लौटने पर हम्माम में जाकर वह गुसल करेगा और फिर क़रीब दो सप्ताह तक अपने कोने में जमकर बैठ जायेगा। न किसी से बोलेगा, न चालेगा, बस चुपचाप और अकेला रोब के साथ अपने काम में जुटा रहेगा।

"चले गये?" उदासी में डूबी अपनी भूरी-नीली आँखों से समूचे कमरे को छानते हुए सितानोव ने पूछा। उसका चेहरा अभी से बूढ़ा हो गया था, और वह जरा भी खूबसूरत नहीं मालूम होता था, लेकिन उसकी आँखें बहुत ही स्वच्छ और भली थी।

वह मेरे साथ मित्रता से पेश आता था। इसका कारण कविताओं से भरी मेरी कापी थी। वह भगवान पर विश्वास नहीं करता था, और सच तो यह है कि एक लारिओनिच को छोड़ यहाँ ऐसा और कोई नहीं था जिसके बारे में यह कहा जा सके कि वह भगवान में विश्वास करता है, भगवान के साथ उसकी लौ लगी है। भगवान के बारे में भी वे सब उसी तरह ताने-तिशनों के लहजे में बातें करते जैसे कि नौकर अपने मालिकों के बारे में बातें करते हैं। लेकिन जब वे दोपहर या साँझ का भोजन करने बैठते तो सलीब का चिह्न बनाना न भूलते, और रात को सोने से पहले बिला नागा भगवान का नाम लेते। रविवार के दिन सब के सब गिरजे जाते।

सितानोव इनमें से एक भी बात नहीं करता था और इसलिये सब उसे नास्तिक

कहते थे।

“भगवान जैसी कोई चीज़ नहीं है,” वह अपनी बात पर बल देते हुए कहता।

“भगवान नहीं है तो यह सारी दुनिया पैदा कैसे हुई?”

“मुझे नहीं मालूम...”

एक दिन मैंने उससे पूछा :

“यह तुम कैसे कहते हो कि भगवान नहीं है?”

“देख न, भगवान का मतलब है ऊँचाई,” अपनी लम्बी बाँह को सिर से ऊँचा उठाते हुए उसने कहा और फिर फ़र्श की ओर इशारा करते हुए बोला,

“और इंसान का मतलब है निचाई। क्यों, ठीक है न? लेकिन बाइबिल में लिखा है कि भगवान ने इंसान को अपनी छवि के अनुरूप बनाया है। अब तू ही बता कि गोगोलेव में किसकी छवि दिखाई देती है।”

मुझसे कोई जवाब देते न बना। गन्दा और पियक्कड़ गोगोलेव, इतना बूढ़ा हो जाने के बाद भी, हस्तलाघव की आदत नहीं छोड़ता था। नानी की बहन, येर्मोखिन और व्यात्का निवासी वह सैनिक—एक-एक कर सभी मेरी आँखों के सामने घूम गये। इन लोगों में भगवान की छवि का भला कौन-सा अंश देखा जा सकता था?

“सभी इंसान सुअर हैं!” सितानोव कहता और फिर तुरन्त ही मुझे सम्भालता :

“लेकिन चिन्ता न कर मक्सीमिच, अच्छे लोग हैं, ज़रूर हैं!”

सितानोव के साथ मुझे जरा भी परेशानी न मालूम होती। जब कोई ऐसी बात आती जिसके बारे में उसे कुछ पता न होता तो खुले हृदय से उसे स्वीकार करता।

“मैं नहीं जानता,” वह कहता, “मैंने कभी इस बारे में नहीं सोचा!”

यह भी उसकी एक असाधारण विशेषता थी। जिन लोगों से मैं अब तक मिल चुका था, वे सब हर चीज़ की जानकारी रखते थे, हर चीज़ के बारे में राय देते थे।

उसके पास भी एक कापी थी जिसमें हृदय को मथने वाली अत्यन्त प्रभावशील कविताओं के साथ-साथ ऐसी तुकबन्दिया भी दर्ज़ थी जिन्हें पढ़कर गाल जलने लगते और आँखें शर्म से नीची हो जाती। यह देखकर मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। जब मैं उससे पुश्किन के बारे में बातें करता तो वह ‘गाव्रीलियादा’ की ओर इशारा करता जिसे उसने अपनी कापी में उतार रखा था...

“पुश्किन? वह तो हल्का-फुल्का कवि है। लेकिन वेनेदीक्तोव,— ओह, मक्सीमिच, उसे आँखों की ओट नहीं किया जा सकता,—वह बरबस ध्यान खींचता है! देख...”

वह अपनी आँखें बन्द कर लेता और धीमे स्वर में गुनगुनाता :

देखो तो तुम, यह रमणी कैसी सुन्दर
क्या उरोज है, उठे हुए ऊपर तनकर...

न जाने क्यों निम्न पंक्तियों को वह बड़े ही प्रेम और गर्वपूर्ण आह्लाद से ज़ोर देते हुए बार-बार दोहराता :

डपर उक़ाब की नज़रें भी तो
इन तालों के पार न जायें।
झलक न दिल की वे तो पायें...

"क्यों कुछ समझ में आया?"

मुझे यह स्वीकार करते बड़ा शर्म मालूम होता कि मैं नहीं समझता वह क्यों इतना खुश हो रहा है।

14

चित्रशाला में मेरे ज़िम्मे कोई बहुत उलझन पैदा करनेवाला काम नहीं था। तड़के ही, उस समय जब कि सब सोते होते, कारीगरों की चाय के लिए मैं समोवार गर्म करता। जागने पर रसोई में जाकर सब चाय पीते और मैं तथा पावेल चित्रशाला को झाड़ते-बुहारते, अण्डों की सफ़ेदी से ज़र्दी अलग करते जो रंग में मिलाने के काम आती, और इसके बाद मैं दुकान के लिए रवाना हो जाता। साँझ को मैं रंग घोलकर रोगन तैयार करता और उस्तादों के पास बैठ काम करने के ढंग का अध्ययन करता। शुरू-शुरू में तो इस अध्ययन में मेरा बड़ा जी लगता, लेकिन शीघ्र ही मैंने अनुभव किया कि क़रीब-क़रीब सभी कारीगर टुकड़ों में काम करना पसन्द नहीं करते, और यह कि एक असह्य ऊब उन्हें भीतर ही भीतर खाये जा रही है।

मेरा काम जल्दी ही निबट जाता और साँझ के खाली समय में मैं कारीगरों को अपने जहाज़ी जीवन के किस्से या पुस्तकों में पढ़ी कहानियाँ सुनाता। इस प्रकार, एकदम अनजाने में ही मैंने एक विशेष स्थान ग्रहण कर लिया,—एक तरह से मैं चित्रशाला का किस्सागो और पुस्तकें पढ़कर सुनानेवाला बन गया।

मुझे यह मालूम करने में देर न लगी कि मैंने जितना कुछ देखा और जाना है, उतना इन लोगों ने नहीं। इनमें से अधिकांश एकदम कच्ची उम्र में ही अपने धन्धों के तंग पिंजरों में बन्द हो गये थे और तब से उसी में बन्द चले आ रहे थे। चित्रशाला में जितने भी लोग थे, उनमें केवल जिख़रेव ही एक अकेला ऐसा था जो मास्को हो आया था और बड़े रोब के साथ, भौंहों में बल देकर, वह इसका ज़िक्र करता था :

"मास्को पर आँसुओं का कोई असर नहीं होता। वहाँ एकदम चौकस रहना पड़ता है!"

अन्य किसी को शूया या व्लादीमिर से आगे पाँव रखने का कभी मौका नहीं मिला

था। कज़ान का ज़िक्र आता तो वे पूछते :

"वहाँ काफ़ी रूसी आबाद हैं? और गिरजे भी हैं या नहीं?"

वे पेर्म को साइबेरिया समझते और उनके लिए यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि साइबेरिया उराल पर्वतों के उस पार है।

"उराल की पर्च और स्टर्जन मछलियाँ वहीं—कास्पियन सागर से ही—तो आती हैं? इसका मतलब यह कि उराल कास्पियन सागर पर ही कहीं होगा!"

कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि वे मुझे जान-बूझकर चिढ़ा रहे हैं। मिसाल के लिए ऐसे मौकों पर जब वे कहते कि इंगलैण्ड समुद्र के उस पार है, और यह कि नेपोलियन का जन्म कलूगा के किसी कुलीन घराने में हुआ था। जब मैं उन्हें खुद अपनी आँखों देखी सच्ची चीज़ों के बारे में बताता तो वे विरले ही यकीन करते, लेकिन रोंगटे खड़े कर देनेवाले किस्से और पेचीदा कहानियाँ वे बड़े चाव से सुनते। यहाँ तक कि बड़े-बड़े लोग भी सत्य के बजाय काल्पनिक कहानियाँ ज़्यादा पसन्द करते। मैं साफ़ देखता कि कहानी जितनी ही अधिक अनहोनी तथा अघट घटनाओं से भरी होती, उतना ही अधिक ध्यान से वे उसे सुनते। मोटे तौर से यह कि वास्तविकता में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। सब भविष्य के रंगीन सपने देखना और वर्तमान के भोंडेपन तथा गरीबी पर भविष्य की सुनहरी चादर डालकर उसे आँखों की ओट करना चाहते।

उनका यह रवैया मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। इसलिये और भी अधिक कि सत्य और कल्पना को एक-दूसरे से अलग करके देखने की भावना मुझमें तेज से घर करती जा रही थी। मैं उस भेद को अब तेज़ी से पकड़ने लगा था जो मुझे आये दिन के जीवन और क़िताबी जीवन के बीच दिखाई देता था। मेरी आँखों के सामने असली, जीते-जागते लोग मौजूद थे, लेकिन क़िताबों के पन्नों में वे कहीं नहीं दिखाई देते थे,—क़िताबों में न कहीं स्मूरी नज़र आता था, न जहाज़ी याकोव, न अलेक्सान्द्र, न जिख़रेव, न नताल्या जैसी धोबिनें...

दवीदोव के ट्रंक में गोलीत्सिन्स्की की कहानियों का एक फटा हुआ सा संग्रह, बुल्गारिन कृत 'इवान विजीगिन' और बैरन ब्राम्बियस की रचनाओं का एक संग्रह पड़ा था। ये सब पुस्तकें मैंने कारीगरों को पढ़कर सुनायीं और वे सुनकर बहुत खुश हुए। लारिओनिच ने कहा :

"क़िताबें पढ़ने से तू-तू मैं-मैं का शोर और आपस में लड़ना-झगड़ना सब साफ़ हो जाता है, और यह एक अच्छी बात है।"

मैं अब क़िताबों की टोह में घूमता, और जो भी पुस्तकें मेरे हाथ लगतीं उन्हें पढ़कर सुनाता। साँझ की वे बैठकें कभी नहीं भूलतीं। चित्रशाला में आधी रात का सन्नाटा छाया रहता, छत से लटकी काँच की गेंदें सफ़ेद शीतल सितारों की तरह चमकतीं और उनकी किरणें मेज़ पर झुके हुए गंजे या बिखरे हुए बालों वाले सिरों

पर पड़ती रहतीं। शान्त और गम्भीर भाव से वे पुस्तक सुनते, बीच-बीच में लेखक या पुस्तक के नायक की तारीफ़ में एकाध शब्द कहते जाते। पुस्तक सुनते समय वे एकदम बदल जाते, उनके ध्यान-मग्न चेहरे बहुत ही भोले और भले मालूम होते। मैं उनसे और वे मुझसे पूर्ण अपनत्व का अनुभव करते। मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मैंने अपनी जगह पा ली हो।

एक दिन सितानोव बोला :

"पुस्तकें वसंती हवा के उस पहले झोंके के समान हैं जो बन्द कमरे की खिड़की खोलने पर शरीर के रोम-रोम में समा जाता है।"

पुस्तकें पाना कठिन काम था। पुस्तकालय से पुस्तकें मिल सकती थीं, लेकिन यह चीज़ हमारी कल्पना से बाहर थी। ऐसी हालत में एक ही रास्ता था। वह यह कि जो भी मिलता, उसी से भिखारी की भाँति पुस्तकें माँगकर मैं काम चलाता। एक बार दमकल के मुखिया ने मुझे लेर्मोन्तोव की कविताओं की एक पुस्तक दी। कविता भी कितनी शक्तिशाली चीज़ होती है और किस हद तक वह लोगों को प्रभावित कर सकती है यह मैंने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद बहुत ही सजीव रूप में जाना।

मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय जब मैंने लेर्मोन्तोव की 'दानव' शीर्षक वाली लम्बी कविता पढ़नी शुरू की तो सितानोव ने उचककर पहले पहल क़िताब पर नज़र डाली फिर मेरे चेहरे की ओर देखा। इसके बाद उसने अपना बर्फ़श उठाकर नीचे रख दिया और अपनी लम्बी बाँहों को घुटनों के बीच खोंसकर चेहरे पर मुस्कराहट लिये हिंडोले की भाँति आगे-पीछे झूलने लगा। झकोलों के साथ-साथ उसकी कुर्सी भी चरचराती जाती।

"सुनो भाइयो, चुप होकर सुनो!" लारिओनिच ने कहा और अपने हाथ का काम अलग रखकर वह भी सितानोव की मेज़ के पास आ गया जहाँ मैं पुस्तक पढ़कर सुना रहा था।

कविता मेरे हृदय के तार झनझना रही थी, मेरी आवाज़ भर्रा गयी और आँखों में आँसू आ जाने की वजह से अक्षरों को साफ़-साफ़ देखना मुश्किल हो रहा था। लेकिन कविता से भी अधिक प्रभावित कर रही थी मुझे कमरे में अस्पष्ट, सावधान हलचल। सारी चित्रशाला मानो मेरी करवट ले रही थी, जैसे कि कोई शक्शिाली चुम्बक लोगों को मेरी ओर खींच रहा हो। जब मैंने पहला भाग समाप्त किया तो सभी कारीगर अपनी जगह से उठकर मेज़ पर आ सटे। मुस्कराते हुए और भौंहे ताने, अपनी बांहों को एक-दूसरे के गले में डाले खड़े थे।

"पढ़े जा, पढ़े जा," पुस्तक के पन्ने पर मेरा सिर धकेलते हुए जिख़रेव ने कहा।

जब मैंने पढ़ना समाप्त किया तो उसने पुस्तक को अपने हाथ में उठा लिया, आँखों के पास ले जाकर उसका नाम पढ़ा और फिर उसे अपनी बगल में खोंसते हुए

कहा :

"इसे एक बार फिर पढ़ना होगा। कल सुनाना। तब तक पुस्तक को मैं अपने पास चौकस रखूँगा।"

यह कहकर वह खिसक गया, अपनी मेज़ का दराज खोला, लेर्मोन्तोव को उसमें बन्द किया और फिर अपने काम में जुट गया। चित्रशाला में एक अजीब निस्तब्धता छायी हुई थी। सब चुपचाप अपनी-अपनी जगहों पर जा रहे थे। सितानोव खिड़की के पास जाकर निश्चल खड़ा हो गया। उसका सिर खिड़की के शीशे से सटा हुआ था। जिख़रेव ने एक बार फिर अपना ब्रुश नीचे रखा और कठोर स्वर में कहा :

"ख़ुदा के बन्दो, यही है वह चीज़ जिसे मैं जीवन कहता हूँ... हाँ, जीवन इसी को कहते हैं!"

उसने अपने कन्धे बिचकाए, सिर नीचे झुका लिया और फिर बोला :

"दानव की तस्वीर क्या मैं नहीं बना सकता? तवा-सा काला रंग, बेडौल झबरीला बदन, आग की लपटों जैसे पंख—एकदम सिन्दूरी, और चेहरा, हाथ और पाँव नीले, कुछ पीलापन लिये हुए, ठीक वैसे ही जैसे चांदनी रात में बर्फ़ होती है।"

साँझ के भोजन के समय तक, बेचैनी से बलखाता वह मेरे स्टूल से बँधा रहा। उँगलियों से मेज़ बजाते हुए वह दानव के बारे में, हौवा और स्त्रियों के बारे में, और स्वर्ग तथा सन्तों के गुनाहों में फँसने के बारे में न जाने क्या-क्या बुदबुदाता रहता।

"इसमें जरा भी झूठ नहीं!" वह बल देकर कहता। "जब सन्त तक पाप में डूबी स्त्रियों के साथ मुँह काला करने में नहीं चूकते तो दानव का तो काम ही रंगीन डोरे डालकर अछूती आत्मा को अपने जाल में फँसाना है..."

जवाब में किसी ने कुछ न कहा। शायद अन्य भी मेरी ही भाँति अभी तक इतने मन्त्र-मुग्ध थे कि उन्हें बोलना अखरता था। वे काम कर रहे थे, लेकिन बेमन से घड़ी पर एक आँख जमाये; और नौ का घण्टा बजते ही सबने तुरन्त काम बन्द किया।

सितानोव और जिख़रेव बाहर सहन में निकल आये। मैं भी उनके साथ पहुँचा। सितानोव ने सिर ऊँचा उठाकर तारों की ओर देखा और फिर गुनगुनाने लगा :

चलते जाते कारवाँ
बिखराए नभ दीपों के विस्तार में...

"जरा सोचो, कैसी-कैसी पंक्तियाँ लिखते हैं!"

और तेज सर्दी में कुड़मुड़ाते हुए जिख़रेव बोला :

"नहीं, मुझे तो कुछ याद नहीं पड़ता—कुछ याद नहीं। लेकिन दिखाई सब कुछ पड़ता है। कितनी अजीब बात है कि इंसान शैतान पर भी तरस खाने के लिए बाध्य कर देता है। क्यों, ठीक कहता हूँ न?"

"हाँ," सितानोव सहमति प्रकट करता।

"इसे कहते हैं इंसान!" जिख़रेव ने कभी न भूलने वाले अन्दाज़ में कहा।

लौटकर ड्योढ़ी में उसने मुझे चेताया :

"देख, दुकान पर इस क़िताब का किसी से ज़िक्र न करना। ज़रूर यह उन क़िताबों में से है जिन्हें पढ़ने की मनाही है!"

यह सुनकर मेरी खुशी का पारावार न रहा। सो ऐसी होती हैं वे वर्जित पुस्तकें जिनके बारे में पापस्वीकारोक्ति में पादरी ने मुझसे पूछा था!

साँझ के भोजन के समय भी सब खोये-खोये-से थे। वह चहल-पहल और नोंक-झोंक गायब हो गयी जो नित्य दिखाई देती। ऐसा मालूम होता जैसे किसी गम्भीर बात ने सबके दिमागों को उलझा लिया हो। भोजन के बाद जब अन्य सब सोने के लिए चले गये तो जिख़रेव ने पुस्तक निकाली और मुझसे बोला :

"यह ले, इसे फिर पढ़कर सुना। लेकिन धीरे-धीरे पढ़ना, बिना किसी उतावली के..."

कुछ और लोग अपने बिस्तरों से चुपचाप उठे और मेज़ के पास आकर उसके इर्द-गिर्द बैठ गये। उनके बदन अधनंगे थे।

और जब मैंने पढ़ना खत्म किया तो जिख़रेव अपनी उँगलियों से मेज़ को बजाते हुए, एक बार फिर कह उठा :

"इसे कहते हैं जीवन! ओह, दानव, दानव... तेरे साथ भी बहुत बुरी बीती मेरे भाई!"

सितानोव ने मेरे कन्धों पर से उचककर कुछ पंक्तियों को पढ़ा, हँसा और बोला :

"इन्हें मैं अपनी कापी में उतार लूँगा..."

पुस्तक अपने हाथ में लेकर जिख़रेव उठा और अपनी मेज़ की ओर चल दिया। लेकिन एकाएक रुककर आहत और विचलित स्वर में बोला :

"जीवन की दलदल में हम उन पिल्लों की भाँति घिसटते हैं जिनकी आँखें कभी नहीं खुलतीं। क्यों और किसलिये, यह कोई नहीं जानता। न ख़ुदा को हमारी ज़रूरत है, न शैतान को। और कहा यह जाता है कि हम ख़ुदा के बन्दे हैं। जोव ख़ुदा का बन्दा था, और ख़ुदा उससे बातें करता था। यही बात मूसा के बारे में भी थी। लेकिन हम... जरा बताओ तो सही कि हम किस खेत की मूली हैं?..."

क़िताब को उसने मेज़ के दराज़ में बन्द कर दिया और कपड़े पहनते हुए सितानोव से बोला :

"भटियारख़ाने चलेगा?"

"नहीं, मैं अपनी के पास जा रहा हूँ," निश्चल आवाज़ में उसने जवाब दिया।

उनके चले जाने के बाद मैं दरवाज़े के निकट पावेल ओदिन्त्सोव के पास ही

फ़र्श पर लेट गया। कुछ देर तक तो वह काँखता-कराहता और करवटें बदलता रहा फिर एकाएक दबे स्वर में उसने रोना शुरू कर दिया।

"क्यों क्या बात है?"

"अब नहीं सहा जाता," वह बोला, "मुझे इन सब पर रोना आता है। चार साल से मैं इनके साथ जी रहा हूँ। सभी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ..."

मुझे भी इन लोगों पर तरस आ रहा था। काफ़ी रात बीत गयी, लेकिन हमारी आँख नहीं लगी। देर तक फुसफुसाकर हम उनके बारे में बातें करते रहे। उनमें से हरेक के हृदय में छिपी भलमनसाहत और अच्छाइयों की हम याद कर रहे थे जिससे दया के हमारे बचकाने आवेश में और भी तेजी आ रही थी।

पावेल ओदिन्त्सोव और मैं गहरे मित्र बन गये। आगे चलकर वह बहुत ही बढ़िया कारीगर सिद्ध हुआ लेकिन इस धन्धे में वह ज़्यादा दिनों तक नहीं टिका। तीस वर्ष का होते न होते वह पक्का पियक्कड़ बन गया। इसके कुछ समय बाद मास्को की खीत्रोव मार्केट में वह मुझे दिखाई दिया, एक आवारा के रूप में। फिर कुछ ही दिन बीते होंगे कि सुनने में आया, मियादी बुखार ने उसकी जान ले ली। कितने अच्छे लोगों से इस जीवन में मेरा वास्ता पड़ा और उनके जीवन को, बिला किसी मकसद के, धूल में मिलते हुए मैंने देखा! उनकी जब याद आती है तो रूह काँप उठती है। यूँ मरने-खपने को तो लोग सभी जगह मरते-खपते हैं। और यह स्वाभाविक ही है। लेकिन जिस तेजी और बेतुके ढंग से रूस में मरते-खपते और बरबाद होते हैं, उतने अन्य कहीं नहीं...

उन दिनों पावेल गोल-मटोल चेहरे वाला लड़का था। मुझसे कोई दो साल बड़ा होगा। चुस्त, चतुर और ईमानदार कलाकार की प्रतिभा से सम्पन्न और बिल्ली, कुत्ते और पक्षियों के चित्र बनाना तो जैसे वह माँ के पेट में ही सीखकर आया था। साथ ही कारीगरों के व्यंग्य-चित्र बनाने में वह कमाल करता और हमेशा पक्षियों के रूप में वह उन्हें चित्रित करता। सितानोव को वह उदासी में डूबा कठफोड़वा बनाता जो एक टाँग पर खड़ा होता, ज़िख़रेव को वह एक ऐसा मुर्गा समझता जिसकी कलगी छितरा गयी थी और खोपड़ी के बाल झड़ गये थे, और मरियल दावीदोव को वह डरावने पीबिट पक्षी के रूप में चित्रित करता। लेकिन सबसे बढ़िया व्यंग्य-चित्र बूढ़े गोगोलेव का होता जो ख़ुदाई के बेल-बूटे बनाता था। उसे वह चमगादड़ के रूप में चित्रित करता—खूब बड़े-बड़े कान, व्यंग्यपूर्ण नाक और छोटे-छोटे पाँव जिनमें छः-छः नुकीले नाखून निकले होते। और उनके गोल चेहरे में जिसे वह काला पोत देता, आँखों के सफ़ेद घेरे दूर से दिखाई देते। घेरों के भीतर पुतलियाँ मटर के दानों की तरह आँखों में चमकती थीं, जिससे उसका चेहरा और भी उच्चका तथा शैतानी से भरा दिखाई देता।

कारीगरों को जब वह अपने व्यंग्य-चित्र दिखाता तो वे बुरा न मानते, लेकिन गोगोलेव का चित्र उन सभी को घिनौना मालूम होता। उसे देखकर वे कहते :

"अच्छा यही है कि इसे फाड़ डाल। अगर बूढ़े ने इसे देख लिया तो तेरी जान खा जायेगा!"

यह बूढ़ा जो ऊपर से नीचे तक गन्दगी और कमीनेपन में डूबा था और चौबीसों घण्टे नशे में धुत्त रहता था, काला नाग होते हुए धर्मात्मा होने का ढोंग रचता, कारिन्दे से हर किसी की चुग़ली खाता। मालकिन अपनी भतीजी को कारिन्दे से ब्याहना चाहती थी और इसलिये वह अभी से अपने आपको चित्रशाला और उनमें काम करने वाले सभी लोगों का मालिक समझने लगा था। सभी उससे डरते थे और घृणा भी करते थे, और इसी वजह से उसके गुर्गे गोगोलेव से भी सब दूर से ही कन्नी काटते थे।

पावेल ने तो जैसे इस बूढ़े को परेशान करने का इरादा ही कर लिया था। एक क्षण के लिए भी वह गोगोलेव का पीछा न छोड़ता, और उसे जरा भी चैन से न बैठने देता। इस काम में मैं भी उसका खूब हाथ बटाता। जब भी हम कोई हरकत करते जो लगभग हमेशा बेरहमी की हद तक भद्दी होती, चित्रशाला के कारीगर मन ही मन खुश होते, और चेतावनी देते :

"सम्भलकर रहना! कुज़्मा तिलचट्टा तुझे छोड़ेगा नहीं!"

कारिन्दे को चित्रशाला में सब कुज़्मा तिलचट्टा कहते थे।

इन चेतावनियों को हम सुना-अनसुना कर देते। बूढ़ा गोगोलेव जब सोता होता तो हम अक्सर उसका मुँह रंग देते। एक बार उस समय जब कि वह नशे में धुत्त पड़ा था, हमने उसकी पकौड़े-सी नाक पर सुनहरी रोगन कर दिया जो पूरे तीन दिन तक नाक के रोमों में समाया रहा। लेकिन हमारी शैतानी हरकतों से जब उसके सिर पर गुस्से का भूत सवार होता तो मुझे जहाज़ और व्याल्का के टुईंयाँ सैनिक की याद हो आती, मेरी आत्मा मुझे कचोटती और एक घड़ी चैन न लेने देती। बूढ़ा होने के बावजूद गोगोलेव दम-खम में हमसे बढ़कर था। वह अक्सर औचक में हमें पकड़ लेता और इतनी मरम्मत करता कि तबियत हरी हो जाती। इतना ही नहीं, बल्कि पीटने के बाद मालकिन के पास जाकर वह हर बात की शिकायत भी करता।

मालकिन को भी नशे की लत थी, और नशे की तरंग में हमेशा खिलखिलाती और मग्न रहती थी। अपने सूजे हुए से हाथ मेज़ पर पटककर और चिल्लाकर वह हमें डराने का प्रयत्न करती। कहती :

"शैतान के बच्चो, तुम अपनी शरारत से बाज नहीं आओगे? इतना भी नहीं देखते कि वह बूढ़ा आदमी है और तुम्हें उसकी इज्जत करनी चाहिए। बोलो, उसके शराब के गिलास में मिट्टी का तेल किसने उंड़ेला?"

"हमने!.."

मालकिन ने आँखें मिचमिचाकर देखा।

"हाय भगवान, कैसे शैतानों से पाला पड़ा है! देखो न, किस तपाक से कहते हैं कि हमने!.. क्यों, ऐसा कहते तुम्हारी जीभ कटकर नहीं गिर जाती? क्या तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि बड़े-बूढ़ों की इज़्ज़त करनी चाहिए?"

उस समय तो वह हमें धता बताती और रात को कारिन्दे से हमारी शिकायत करती। कारिन्दा कठोर स्वर में मुझे डाँटता :

"यह क्या हरकत है? क़िताबें पढ़ता है, बाइबिल तक पढ़ लेता है, फिर भी इस तरह हरकतें करने से बाज़ नहीं आता? सम्भल के, बच्चू!"

मालकिन का न कोई संगी था न साथी, अकेले सूना जीवन बिताती और उसे देखकर बड़ी दया आती। अक्सर वह नशे में धुत्त होकर खिड़की के पास बैठ जाती और उदास तथा उम्र की मार से डाँवाडोल स्वर में गुनगुनाती :

नहीं कोई ऐसा जो पूछे
अपनी बात,
नहीं कोई ऐसा जो खोले
दिल की गाँठ!

एक दिन मैंने देखा कि दूध से भरा मटका हाथ में लिये वह जीने पर आयी और भारी कदमों से थपथप करती एक-एक सीढ़ी नीचे उतरने लगी। अपने फैले हुए हाथों में वह मटके को मजबूती से पकड़े थी, दूध छलक-छलककर उसके कपड़ों पर गिर रहा था और वह मटके को बाकायदा डाँट पिला रही थी :

"देखता नहीं शैतान, किस बुरी तरह छलक रहा है?"

वह मोटी नहीं थी, किन्तु मुलायम और फुसफुसी थी, वह बूढ़ी बिल्ली की भाँति जिसके लिए चूहे पकड़ना बीते दिन की एक यादगार मात्र रह गया हो, जो खा-खाकर भारी हो गयी हो और अब अलस भाव से एक जगह पड़कर केवल अतीत के सुहावने रास-रंगों का ताना-बाना बुन सकती थी।

भौंहों में बल डालकर सितानोव पुराने दिनों की याद करता :

"ऊँह, उस जमाने में यहाँ का रंग देखते तो दंग रह जाते। यह एक बहुत ही बड़ा कारोबार था। चित्रशाला भी खूब बढ़ी-चढ़ी थी और उसकी देख-भाल का काम एक बहुत ही कुशल कारीगर के जिम्मे था। लेकिन अब वह बात कहाँ। अब तो सबकुछ कुज़्मा तिलचट्टे के हाथों में चला गया! हम चाहे जितना सिर खपायें, चाहे जितना खून-पसीना एक करें, घूम-फिरकर अकेले उसी की चाँदी गरम होती है। सोचकर कलेजा बल खाने लगता है, जी करता है कि काम को धता बताकर छत पर चढ़ जाओ और समूची गर्मियाँ आकाश की ओर ताकते हुए बिता दो..."

सितानोव के विचारों ने पावेल ओदिन्त्सोव को भी ग्रस लिया। बड़ों की तरह सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए वह भी ख़ुदा, शराबखोरी, स्त्रियों की और श्रम की व्यर्थता के बारे में लम्बी-चौड़ी बातें करता, "कुछ लोग दिन-रात खून-पसीना एक करके चीज़ें बनाते हैं और दूसरे बिना कुछ सोचे-समझे उन्हें नष्ट करने की ताक में रहते हैं। काम करना या न करना सब बराबर हो जाता है।"

ऐसे क्षणों में उसके बच्चों जैसे चपल, सुन्दर और तेज चेहरे पर झुर्रियाँ उभर आतीं और ऐसा मालूम होता मानो वह बूढ़ा हो गया हो। फ़र्श पर बिछे अपने बिस्तर पर वह बैठ जाता, घुटनों को अपनी बाँहों में दबोच लेता और उसकी आँखें खिड़की के नीले चौखटों को पारकर शीतकालीन आकाश में छितरे तारों और सायबान की छत की टोह लेती जो अब बर्फ़ के बोझ से दबी रहती थी।

कारीगर खर्राटें भरते और नींद में बड़बड़ाते रहते। कोई इस तरह चिल्ला उठता मानो दुःस्वप्न देख रहा हो। सबसे ऊपरवाले तख़्ते में से दवीदोव अपनी ज़िन्दगी का बचा-खुचा अंश ख़ासी और बलगम के रूप में थूकता रहता। उधर सामनेवाले कोने में "ख़ुदा के बन्दे" कापेन्द्यूख़िन, सोरोकिन और पेर्शिन नशे तथा नींद में निढाल बोरों की भाँति एक दूसरे से सटे पड़े रहते। बेसिर, बेहाथ और बेपाँववाली देव-प्रतिमाएँ दीवारों के साथ टिकी ताकती रहतीं। तेल, सड़े अण्डों और फ़र्श की दरारों में भरे कूड़े-कचरे की गन्ध साँस तक लेना दूभर कर देती।

पावेल बुदबुदाकर कहता, "हे भगवान, इनकी हालत पर मुझे इतना तरस आता है!"

तरस की इस भावना से मेरा हृदय भी भारी और उदास रहता। हम दोनों को, जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ, ये लोग अच्छे मालूम होते, लेकिन जिस तरह का जीवन वे बिताते थे वह बुरा, उनके लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा कठोर, बेहद बेरस और बोझिल था। जब महान व्रत के लिए गिरजे के घण्टे बजते, बर्फ़ीली आंधियाँ सनसनातीं और घर, पेड़ तथा धरती की हर चीज़ काँपने, कराहने और सुबकने लगती, तब सीसे की भारी चादर की तरह चित्रशाला पर गहरी ऊब छा जाती, जो कारीगरों का दम घोटती और ऐसा मालूम होता मानो जीवन का कोई चिह्न उनमें शेष नहीं छोड़ेगी, सभी कुछ पाले में झुलस और मुरझा जायेगा। घबराकर वे बाहर निकलते, शराबख़ाने की ओर लपकते, या औरतों की बाँहों में दुबक जाना चाहते जो, वोद्का की बोतल की तरह, ऊब को भूलने में उनका हाथ बँटातीं।

इस तरह के क्षणों में पुस्तकों का जादू कुछ काम न करता और मैं तथा पावेल जी बहलाने के अन्य साधनों का सहारा लेते। रंग-रोगन और काजल से हम अपने चेहरों को पोतते, सन की दाढ़ी और मूँछें लगाते, अपनी सूझ-बूझ के अनुसार तरह-तरह का हास्याभिनय करते और ऊब के विरुद्ध वीरतापूर्ण संघर्ष करते हुए लोगों को हँसने

के लिए बाध्य करते। 'एक सैनिक ने किस प्रकार प्योत्र महान की जान बचाई' वाली कहानी मुझे याद थी। इस कहानी को मैंने कथनोपकथन के रूप में ढाल लिया। जिस तख़्ते पर दवीदोव सोता था, उसे हम अपना मंच बनाते और बड़े उछाह के साथ कल्पित स्वीडनों के सिर कलम करते। दर्शक हँसते-हँसते दोहरे हो जाते।

चीनी शैतान त्सिंगी-यु-तोंग की कहानी कारीगर बेहद पसन्द करते। पाश्का अभागे शैतान का अभिनय करता जिसके मन में, बावजूद इसके कि वह शैतान था, भलाई करने की धुन समा गयी थी। बाकी सारा अभिनय मैं खुद करता। मुझे स्त्री भी बनना पड़ता और पुरुष भी, कभी मैं किसी पेड़ का तना बनकर खड़ा होता और कभी भली रूह, यहाँ तक कि मुझे वह पत्थर भी बनना पड़ता जिस पर कि शैतान, भलाई करने के अपने हर प्रयत्न की विफलता के बाद निराश होकर बैठता था।

देखने वाले खूब हँसते और उन्हें इतनी आसानी से खुश होते देख मुझे अचरज भी होता और दुःख भी। वे चीखते और चिल्लाते :

"वाह, मुँह मटकाने में तुम कमाल करते हो! मजा आ गया!"

लेकिन इस सब के बातजूद रह-रहकर यह बात आँखों के सामने उभरे बिन रहती कि इन लोगों का रंज से जितना वास्ता था, उतना खुशी से नहीं।

हमारे यहाँ हँसी-खुशी या रंग-रेलियाँ अधिक दिनों तक कभी न टिकती, न ही अपने आप में उनका कोई मूल्य होता। रंज में डूबे रहने के आदी रूसी हृदय को भरमाने के लिए एक कठिन प्रयास के रूप में, उनका जान-बूझकर उपयोग किया जाता। उस हँसी-खुशी का क्या भरोसा जिसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न हो, अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने की जिसमें कोई कामना तक न हो, और केवल जीवन की भयानकता को आँखों की ओट करने के लिए ही जिसकी याद की जाती हो!

और इसलिये रूसियों की हँसी-खुशी और उनकी रंग-रेलियाँ, आशा के प्रतिकूल और एकदम अनजाने में ही, अक्सर क्रूर और निर्मम नाटक का रूप धारण कर लेतीं। नाचते-नाचते, ठीक उस समय जब कि नृत्यकार अपने बन्धनों को तोड़कर उन्मुक्त भाव से हवा में तैरता और लहराता मालूम होता, एकाएक उसके भीतर का पशु जाग उठता और रस्सा तुड़ाकर हर व्यक्ति और हर चीज़ पर टूट पड़ता—गरजता, उबलता-उफनता, सभी कुछ मटियामेट करता हुआ...

जबरदस्ती के और एकदम बाहरी अवलम्बनों पर टिकी इस हँसी-खुशी से मैं इतना भन्ना जाता और इस बुरी तरह झुंझला उठता कि धुन में आकर सभी कुछ को ताक पर रख देता, और उसी क्षण जो भी उलटा-सीधा मन में आता, उसका अभिनय करने में पूरी मनमानी का परिचय देता। उन्मुक्त और स्वतःस्फूर्त खुशी का उनमें संचार करने के लिए मैं पागल-सा हो उठता! मेरी कोशिशें पूर्णतया बेकार भी न जातीं। कारीगर चकित हो जाते, मुग्ध भाव से प्रशंसा करते; लेकिन वह निराशा और उदासी

जो मैं समझता कि गायब हो गयी है, वापस लौट आती, और घनी तथा गहरी होती हुई पहले की भाँति फिर उन्हें दबोच लेती।

धूसर लारिओनिच कोमल स्वर में कहता :

"सच, तू भी एक क़यामत है, ख़ुदा तुझे लम्बी उम्र दे!"

"जी हल्का हो जाता है," जिख़रेव स्वर में स्वर मिलाता। "तू किसी सरकस या नाटक-कम्पनी में क्यों नहीं भर्ती हो जाता? तुझसे बढ़िया जोकर उन्हें ढूँढ़े न मिलेगा!"

चित्रशाला में काम करनेवालों में केवल कापेन्द्यूख़िन और सितानोव ही ऐसे थे जो बड़े दिन या श्रोबटाइड के अवसर पर नाटक देखने जाते थे। बूढ़े कारीगर इस पाप का प्रायश्चित करने पर ज़ोर देते। कहते कि बर्फ़ में गड्ढा खोदकर जब तक नदी में डुबकी नहीं लगाओगे, ख़ुदा तुम्हें माफ़ नहीं करेगा। लेकिन सितानोव था कि बार-बार मुझसे कहता :

"तू भी कहाँ आ फँसा? छोड़ यह सब, और नाटक-कम्पनी में भर्ती हो जा!"

और विचलित होकर मुझे 'अभिनेता याकोव्लेव के जीवन' की दर्द भरी कहानी सुनाने लगता तथा अन्त में कहता :

"देखो, दुनिया में क्या-क्या हो सकता है!"

रानी मेरी स्टुअर्ट का जिसे वह "लोमड़ी" कहता था, बड़े चाव से ज़िक्र करता और 'स्पेन का बाँका वीर' का ज़िक्र करते समय तो उसके उछाह का पारावार न रहता। कहता :

"दोन सिज़ार द-बज़ान बाँके खानदान का एक बाँका वीर था, मक्सीमिच! सचमुच में असाधारण!"

अपने आप में वह खुद भी कुछ कम बाँका बीर नहीं था। एक दिन चौक में दमकल की मीनार के सामने, तीन आग बुझाने वाले मिलकर किसी देहातिये पर टूट पड़े। चारों ओर क़रीब चालीस लोगों की भीड़ जमा हो गयी। देहातिए को बचाना तो दूर, भीड़ ने पीटनेवालों की पीठ थपथपाना और उन्हें खूब उकसाना शुरू कर दिया। सितानोव ने आव देखा न ताव लपककर वहाँ पहुँचा और अपनी लम्बी बाँहों से हमलावरों को मार भगाया। इसके बाद देहातिए को उठाकर उसे भीड़ की ओर धकेल दिया और चिल्लाकर बोला :

"ले जाओ इसे!"

अकेला ही वह डटा रहा, तीन-तीन से उसने लोहा लिया। आग बुझाने का स्टेशन पास ही था, केवल बीस-एक कदम पर। आग बुझानेवाले अगर मदद के लिए चिल्लाते तो उन्हें साथी मिलने में जरा भी कठिनाई न होती, और वे सितानोव को ऐसी मार पिलाते कि वह भी याद रखता। गनीमत यही थी कि उनके औसान खता हो गये और वे उलटे पाँव भागते नज़र आये।

"हरामी कुत्ते!" उन्हें भागता हुआ देख सितानोव चिल्लाया।

रविवार के दिन युवा कारीगर पेत्रापाव्लोव्स्क क़ब्रिस्तान के उस पार इमारती लकड़ी के टालों की ओर जाते और सफाई दल के लोगों और आस-पास के गाँवों के किसानों से घूँसेबाज़ी का खेल खेलते। सफाई दल में एक प्रसिद्ध मोर्‌दोविआई घूँसेबाज था—देव की भाँति डील-डौल, छोटा-सा सिर, और चिपचिपी आँखें। उसे ही वे सबसे आगे खड़ा करते और वह, फैली हुई अपनी टाँगों को मजबूती से धरती पर जमाए, गन्दे कोट की आस्तीन से अपनी रिसती हुई आँखों को पोंछता और सहज भाव से शहरी भाइयों को ललकारता :

"चले आओ जिसे आना हो! जल्दी करो, ठण्ड हो रही है!"

कापेन्द्‌यूख़िन आगे बढ़ता। हमारी ओर से एक वही उससे भिड़ता और मोर्‌दोविआई हर बार उसके जर-पंजर ढीले कर देता। खून में वह रंग जाता और हाँफता हुआ चिल्लाकर कहता :

"देख लेना, एक दिन मैं भी ऐसे दाँत खट्टे करूँगा कि मोर्‌दोविआई सारी उम्र याद रखेगा!"

और अन्त में मोर्‌दोविआई के दाँत खट्टे करना ही उसके जीवन का लक्ष्य हो गया। इसके लिए, पूरी शक्ति से वह अपने को साधता और तैयार करता। वह अब शराब न पीता, ज़्यादातर मांस ही खाता और हर साँझ को सोने से पहले, बर्फ़ से अपना बदन रगड़ता, बाँहों की मछलियाँ निकालने के लिए दोहरा होकर मन भर पक्का बटखरा उठाता। लेकिन मोर्‌दोविआई को वह फिर भी नहीं पछाड़ सका। अन्त में अपने दस्तानों में उसने शीशे के टुकड़े भर लिये, और सितानोव से शेखी बघारते हुए बोला :

"अब इसका अन्त ही समझो!"

सितानोव की भौंहों में बल पड़ गये। कड़े स्वर में बोला :

"सीसे के टुकड़े निकाल डाल, नहीं तो मैं भिड़न्त से पहले ही सारा भण्डा फोड़ कर दूँगा।"

कापेन्द्‌यूखिन को विश्वास नहीं हुआ कि वह ऐसा करेगा। लेकिन ठीक भिड़न्त से पहले सितानोव ने एकाएक मोर्‌दोविआई से कहा :

"जरा ठहरो, वासीली इवानोविच। कापेन्द्‌यूख़िन से पहले मेरी भिड़न्त होगी!"

कज़्ज़ाक का चेहरा लाल पड़ गया। चिल्लाकर बोला :

"मैं तुझसे नहीं लड़ूँगा! चला जा यहाँ से!"

"लड़ेगा कैसे नहीं?" कज़्ज़ाक के चेहरे को ताकते हुए सितानोव ने कहा और बढ़ चला।

एक क्षण के लिए कापेन्द्‌यूख़िन सकपकाया, फिर तेज़ी से उसने अपने दस्ताने

उतार डाले और उन्हें अपने कोट के भीतरवाली जेब में खोंसता हुआ वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया।

दोनों पक्षों में से एक भी इस तरह की घटना के लिए तैयार नहीं था। उन्हें अचरज भी हुआ और दुःख भी। भिड़न्त का सारा मजा किरकिरा हो गया। भली-सी शक्ल के एक आदमी ने झुँझलाकर सितानोव से कहा :

"यह कायदे के खिलाफ़ है। खेल में तुम निजी झगड़ों का भुगतान नहीं कर सकते!"

सितानोव पर चारो ओर से बौछार होने लगी। काफ़ी देर तक तो वह चुप रहा। फिर भली-सी शक्लवाले आदमी से बोला :

"तुम्हारा मतलब यह कि खेल में खून-ख़राबा हो तो उसे भी होने दिया जाये,—क्यों?"

भली-सी शक्लवाला आदमी तुरन्त सारा मामला समझ गया, और टोपी उतारकर मुस्कराते हुए बोला :

"अगर ऐसी बात है तो अपने पक्ष की ओर से हम तुम्हें धन्यवाद देते हैं!"

"लेकिन इस बात का ढोल पीटने की ज़रूरत नहीं। अपनी जुबान बन्द ही रखना!"

"मैं जुबान का ढीला नहीं हूँ। कापेन्द्यूख़िन पहुँचा हुआ घूँसेबाज है, पर बार-बार की हार से आदमी खुंदक खाने लगता है, हम यह समझते हैं। लेकिन अब हम, भिड़न्त से पहले, उसके दस्तानों को ज़रूर देख लिया करेंगे।"

"यह तुम जानो, जो ठीक समझो, करो!"

भली-सी शक्लवाला आदमी जब चला गया तो हमारे पक्ष के लोगों ने सितानोव को आड़े हाथों लेना शुरू किया :

"तू भी निरा चुगद है! आख़िर तुझे बीच में टाँग अड़ाने की क्या ज़रूरत थी? कापेन्द्यूख़िन ने आज सारी कसर निकाल ली होती! लेकिन अब... तूने हम सब के मुँह पर कालिख पोत दी..."

देर तक और बिना दम लिये रस ले-लेकर सब सितानोव को कोंचते रहे।

सितानोव केवल लम्बी साँस खींचकर रह गया और बोला :

"आह, कमीने..."

इसके बाद एकाएक मोर्दोविआई को ललकारकर उसने सभी को चकित कर दिया। चुनौती सुनते ही मोर्दोविआई आगे आकर जम गया और घूँसा हिलाते हुए हँसकर बोला :

"अच्छी बात है। आओ, आज तुम्हारे साथ ही बदन को थोड़ा गरमा लिया

जाये!...”

पास खड़े लोगों में कई ने हाथ में हाथ डालकर एक बड़ा-सा घेरा बना लिया। भीड़ घेरे से बाहर हो गयी, और लड़नेवाले उसके भीतर।

इसके बाद घूँसेबाज़ी शुरू हो गयी। एक-दूसरे के चेहरे पर नज़र गड़ाये, बायें हाथ की बँधी मुट्ठी सीने पर रखे और दाहिने हाथ का घूँसा ताने, भँवर की भाँति वे घेरे के भीतर चक्कर काटने लगे। पारखी दर्शकों ने तुरन्त भाँप लिया कि सितानोव की बाँहें मोर्दोविआई की बाँहों से ज़्यादा लम्बी हैं। सभी पर सन्नाटा-सा छा गया। लड़नेवालों के पाँवों के नीचे बर्फ़ कचरने के सिवा और कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। तभी किसी ने सन्नाटे के तनाव से उकताकर शिकायती स्वर में बड़बड़ाते हुए कहा :

“इतनी देर से खाली चक्कर लगा रहे हैं...”

सितानोव का दाहिना हाथ घूम गया, मोर्दोवियाई ने अपने बचाव में बायाँ घूँसा उठाया और तभी एकाएक सितानोव ने बायें घूँसे से सीधे उसके पेट पर प्रहार किया। कराहता हुआ मोर्दोवियाई पीछे हटा और मुग्ध भाव से बोला :

“मैं तुम्हें कच्ची उम्र का ही समझता था, लेकिन तुम तो छिपे रुस्तम निकले!”

इसके बाद अखाड़ा गरमा गया। घूँसे ज़ोर से हवा में झूलते और एक-दूसरे की पसलियाँ चूर-चूर करने के लिए लपलपाते। देखते-देखते दोनों पक्षों के दर्शकों में एक हलचल-सी मच गयी। जोश और उछाह में भरकर वे चिल्लाते और लड़नेवालों को बढ़ावा देते :

“देखता क्या है, मूरतसाज़! बना दे ऐसी तस्वीर कि वह भी याद रखे!”

मोर्दावियाई सितानोव से कहीं अधिक तगड़ा था, लेकिन चपल नहीं था। वह उतनी ही फुर्ती और तेजी से वार नहीं बचा पाता और हर प्रहार के बदले में दो या तीन प्रहार का उसे भुगतान करना पड़ता। लेकिन प्रहारों का उस पर कोई ख़ास प्रभाव न होता। अपने प्रतिद्वन्द्वी पर वह उसी तरह गरजता और मुस्कराता रहा। अन्त में एकाएक उछलकर उसने इतने ज़ोरों से घूँसा जमाया कि सितानोव की दाहिनी बांह चूल से बाहर निकल आयी।

“अरे, इन्हें छुड़ाकर एक-दूसरे से अलग करो! बराबर का जोड़ रहा, न कोई हारा न जीता!” एक साथ कई आवाज़ें चिल्ला उठीं। दर्शक लपककर आगे बढ़े, और लड़नेवालों को छुड़ाकर अलग कर दिया।

“मूरतसाज़ में ताकत तो इतनी नहीं है, लेकिन चपल खूब है!” मोर्दोविआई ने हँसते हुए कहा। “सच, एक दिन यह अच्छा घूँसेबाज बन जायेगा। मैं खुले आम यह ऐलान करता हूँ।”

युवकों ने जो अब तक दर्शक बने हुए थे, एक-दूसरे को खुलकर चपतियाने का खेल शुरू कर दिया। सितानोव को लेकर मैं हड्डी बैठानेवाले के पास पहुँचा। जिस

साहस का उसने परिचय दिया था, उससे मेरे हृदय में उसकी इज्ज़त और भी बढ़ गयी। वह मुझे अब और भी ज़्यादा अच्छा लगता, और मैं उसका और भी ज़्यादा सम्मान करता।

वह सदा न्याय और ईमानदारी का पक्ष लेता, और ऐसा मालूम होता मानो यह सब करना वह अपना कर्त्तव्य मानता था। लेकिन कापेन्द्यूख़िन जब भी मौका मिलता उसका मज़ाक उड़ाता :

“वाह सितानोव, तू तो बस लोगों को दिखाने के लिए जीता है। और अपनी आत्मा को रगड़-रगड़कर तूने इतना चमका लिया है कि क्या कोई समोवार को चमकाएगा। इस तरह सब जगह घूमता है, मानो इस दुनिया में तुझी से उजाला हो। लेकिन सच बात यह है कि तेरी आत्मा पीतल की है और तेरे साथ ऊब आती है...”

सितानोव जरा भी टस से मस न होता। वह सीधे अपना काम करता या कापी में लेर्मोन्तोव की कविताएँ उतारता। अपना सारा खाली समय वह कविताएँ उतारने में ही बिताता। एक दिन मैंने उससे पूछा :

“तुम्हारे पास पैसे की कमी नहीं। अपने लिए पुस्तक क्यों नहीं ख़रीद लाते?”

“नहीं, अपने हाथ की लिखावट में नकल उतारना कहीं ज़्यादा अच्छा है!” वह जवाब देता।

वह छोटे-छोटे और सुन्दर अक्षर बनाता। पन्ना भर जाने पर वह स्याही सूखने का इन्तजार करता, और धीमे स्वर में गुनगुनाता हुआ पढ़ता :

पश्चाताप, बिना दुःख के तुम
ताकोगी भू की जड़ता,
जहाँ नहीं सुख, सुषमा सच्ची
जहाँ न शाश्वत सुन्दरता...

और आँखों को सिकोड़ता हुए कहता, “यही सचाई है! वाह, क्या गूढ़ ज्ञान है सच्चाई का!”

कापेन्द्यूख़िन की सभी हरकतों के बावजूद सितानोव उसके साथ इतनी भलमानसी से पेश आता कि देखकर अचरज होता। नशे में बेसुध होकर जब वह सितानोव से लड़ने के लिए झपटता तो सितानोव बहुत ही ठण्डे हृदय से उसे रोकने की कोशिश करता :

“भले आदमी, ऊपर क्यों गिरे पड़ता है! जरा दूर रह!..”

लेकिन वह बाज़ न आता, और अन्त में सितानोव बड़ी बेरहमी से उसकी मरम्मत करता, यहाँ तक कि अन्य कारीगर झड़प देखने का प्रबल मोह होने पर भी आगे बढ़कर दोनों को खींचकर एक-दूसरे से अलग कर देते।

"यह तो कहो कि हमने ऐन मौके पर उसे छुड़ा लिया," वे कहते, "नहीं तो सितानोव उसे मार ही डालता और इस बात की जरा भी परवाह नहीं करता कि बाद में उसका क्या होता है।"

होश-हवाश ठीक होने पर कापेन्द्यूख़िन भी सितानोव को एक घड़ी चैन न लेने देता, उसके कविता प्रेम तथा हरजाई स्त्री से उसके लगाव की दुःखद घटना की खिल्ली उड़ाता, और ईर्ष्या की आग में उसे झुलसाने के लिए गन्दी से गन्दी, मगर बेकार हरकतें करने से न चूकता। उसके चिढ़ाने और खिल्ली उड़ाने का सितानोव कभी जवाब न देता, न ही कभी उत्तेजित होता, बल्कि कभी-कभी तो कापेन्द्यूख़िन के साथ-साथ खुद भी अपनी खिल्ली उड़ाने में शामिल हो जाता और खूब हँसता।

वे पास-पास ही सोते और गयी रात तक न जाने क्या-क्या फुसफुसाते रहते थे।

रात के सन्नाटे में उन्हें इस तरह फुसफुसाकर बातें करते देख मुझे बड़ा अजीब मालूम होता। मेरी समझ में न आता कि एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकृति के ये दो आदमी, आख़िर किस चीज़ के बारे में इतना घुल-मिलकर बातें कर रहे हैं! जब कभी भी मैं उनके निकट पहुँचने की कोशिश करता, कापेन्द्यूख़िन तुरन्त टोकता :

"यहाँ क्यों आया?"

और सितानोव तो मेरी ओर नज़र तक उठाकर न देखता।

लेकिन एक बार खुद उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया।

"मक्सीमिच," कापेन्द्यूख़िन ने कहा, "अगर तेरे पास ढेर सारे पैसे हों तो तू क्या करेगा?"

"पुस्तकें ख़रीदूँगा।"

"और क्या करेगा?"

"और क्या करूँगा, यह तो मैं भी नहीं जानता।"

कापेन्द्यूख़िन ने एक लम्बी साँस खींची और निराशा से मुँह फेर लिया।

"देखा तूने!" अब सितानोव का शान्त स्वर सुनाई दिया। "यह कोई नहीं बता सकता—चाहे किसी बूढ़े आदमी से पूछ देख, चाहे जवान से! मैं तुझसे यह कहता न था कि धन का अपने आप में कोई महत्व नहीं है। अपने आप में यह बेकार है! महत्व की चीज़ धन नहीं, बल्कि यह है जो धन से पैदा होती है, या जिसके लिए धन का उपयोग किया जाता है..."

"तुम लोग किस चीज़ के बारे में बातें कर रहे थे?" मैंने पूछा।

"किसी ख़ास चीज़ के बारे में नहीं। नींद नहीं आ रही थी, इसलिये समय काट रहे थे!" कापेन्द्यूख़िन ने कहा।

बाद में उनकी बातें सुनकर मैंने देखा कि रात में भी वे उन्हीं चीज़ों के बारे में बातें करते थे, जिनके बारे में लोग दिन में बातें करते रहते हैं : ख़ुदा, न्याय, खुशहाली,

स्त्रियों की मूर्खता और उनकी चालाकी, धनी लोगों की लालसा और लोलुपता, और यह कि जीवन ने मोटे तौर से एक ऐसे गड़बड़झाले का रूप धारण कर लिया है, जिससे कोई पार नहीं पा सकता।

मैं बड़े चाव से सुनता और उनकी बातचीत मेरे हृदय में गहरी हलचल का संचार करती। मुझे यह देखकर खुशी होती कि लगभग सभी लोग इस जीवन को बुरा मानते और उसे बदलने की इच्छा रखते हैं। लेकिन इसी के साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि जीवन को बदलने की यह इच्छा निरी इच्छा ही थी, और इस इच्छा के फलस्वरूप किसी पर कोई ज़िम्मेदारी आयद नहीं होती थी, और न ही इस इच्छा से चित्रशाला के जीवन में तथा कारीगरों के बीच उनके आपसी सम्बन्धों में कोई अन्तर पड़ता था। यह सारी बातचीत मेरे सामने जीवन को आलोकित करते हुए उसके पीछे छिपे एक प्रकार के भयावह शून्य और खोखलेपन को प्रकट करती जिसमें वे ही लोग, पोखर की सतह पर पड़े सूखे पत्तों की भाँति, बिना किसी लक्ष्य-उद्देश्य के, तेज हवा के झोंके खाकर इधर से उधर तैरते, घूमते तथा चक्कर खाते हैं, जो खुद अपने ही मुँह से जीवन की इस लक्ष्य तथा उद्देश्यहीनता की शिकायत करते, उसे लेकर रोते और झींकते रहते हैं।

गप-शप करते समय कारीगर हमेशा या तो शेखी बघारते दिखायी देते, या पश्चाताप करते अथवा किसी के सिर दोष मढ़ते आते। जरा-जरा-सी बातों को लेकर वे बुरी तरह झगड़ते, एक-दूसरे का दिल दुखाने से भी बाज न आते। उन्हें चिन्ता थी तो यह कि मर जाने के बाद उनका क्या होगा। और यहाँ, दरवाज़े के पास रखे गन्दे पानी के डोल के नीचे, फ़र्श का एक तख़्ता गल-सड़कर खत्म हो गया था और उसकी जगह एक भंभा खुल गया था जिससे सीलन और सड़ी हुई मिट्टी की गन्ध से भरी ठण्डी हवा आती थी और हमारे पाँव सुन्न हो जाते थे। पावेल और मैंने घासफूस और चिथड़ों से उसे बन्द कर दिया। नया तख़्ता लगाने की बात तो सब करते, लेकिन नतीजा कुछ न निकता, और भंभा दिन-दिन बड़ा होता जाता। बर्फ़ीली आंधियों के दिनों में ठण्डी हवा का जैसे नलका-सा खुल जाता और सब खाँसी-जुकाम में जकड़ जाते। रोशनदान की पंखी इतने बेहूदा ढंग से चीं-चीं करती कि लोग गन्दी से गन्दी गालियों की उस पर बौछार करते। लेकिन जब मैंने उसमें तेल लगा दिया तो जिख़रेव के कान चौकन्ने हो गये, और मुँह बिचकाकर वह बोला :

“चीं-चीं बन्द होने से ते यहाँ ऊब और भी बढ़ गयी है!”

हम्माम से लौटकर वे अपने गन्दे बिस्तरों पर पड़े रहते। गन्दगी और सड़ांध की ओर किसी का ध्यान न जाता। इसी तरह अन्य कितनी ही छोटी-मोटी चीज़ें थीं जो जीवन की कटुता को बढ़ाती थीं और जिन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता था। लेकिन कोई हाथ न हिलाता।

वे अक्सर कहते :

"लोगों के लिए किसी के दिल में तरस नहीं है। न भगवान उन पर तरस खाता है, न वे खुद अपने पर..."

लेकिन जब पावेल और मैंने गन्दगी तथा जुओं से परेशान दम तोड़ते दवीदोव की सफाई-धुलाई की तो वे हमारा मजाक उड़ाने लगे, तेल मालिश की आवाज़ लगाकर हमें चिढ़ाने लगे, जुएँ मारने के लिए अपनी गन्दी कमीजें उतारकर हमारे सामने डाल दीं और मोटे तौर से इस तरह हमें उल्लू बनाया मानो हमने कोई शर्मनाक और बहुत ही हास्यास्पद काम कर डाला हो।

बड़े दिन से लेकर चालीस दिन तक के व्रत तक अपने तख़्ते पर लेटा दवीदोव बराबर खाँसता और खून की कुल्लियाँ करता रहा। कूड़े की बाल्टी का निशाना साधकर वह थूकता, लेकिन अक्सर चूक जाता और खून के थक्के फ़र्श पर आ गिरते। रात को जब वह चीखता-चिल्लाता तो हमारी आँखें खुल जातीं।

क़रीब-क़रीब हर रोज़, बिला नागा, वे कहते :

"इसे अस्पताल ले जाये बिना काम नहीं चलेगा!"

लेकिन वह कभी अस्पताल नहीं पहुँच सका। सबसे पहले तो यह हुआ कि उसके पासपोर्ट की तारीख बीत चुकी थी। इसके बाद उसकी तबीयत कुछ ठीक मालूम हुई, और अस्पताल जाने की बात फिर टल गयी। अन्त में उन्होंने कहा :

"दो दिन का यह मेहमान है।"

"हाँ भाई, टिकट कटने में अब देर नहीं है," खुद मरीज भी उनकी बात की पुष्टि करता।

वह एक बहुत ही खामोश किस्म का हँसोड़ व्यक्ति था, और चित्रशाला की उदासी को तितर-बितर करने में अपनी ओर से कोई कसर नहीं छोड़ता था। अपने काले और अत्यन्त क्षीण चेहरे को तख़्ते से नीचे लटकाकर भरभरी आवाज़ में वह घोषणा करता :

"भले लोगो, अब इस आदमी की भी आवाज़ सुनो जिसे ख़ुदा ने इतने ऊँचे सिंहासन पर पहुँचा दिया है..."

इसके बाद, भारी-भरकम अन्दाज़ में, वह इस तरह की कोई उदासी भरी बकवास तुकबन्दी सुनाना शुरू करता :

पड़ा मैं अपने तख़्ते पर
सारा-सारा दिन,
रात-रात भर,
रेंगते तिलचट्टे मुझ पर।

"यह कभी अपना दिल छोटा नहीं करता," उसके श्रोता मुग्ध भाव से कहते।

कभी-कभी पावेल और मैं उसके तख़्ते पर चढ़ जाते, और वह जबरन ख़ुशी से कहता :

"तुम्हारी क्या खातिर करूँ, मेरे भले दोस्तो! अगर पसन्द हो तो बढ़िया, एकदम तर व ताजी, मकड़ी पेश कर सकता हूँ।"

बहुत ही धीरे-धीरे, तिल-तिल करके, मृत्यु उसे दबोच रही थी, और इससे वह और भी उकता गया था।

"मौत भी मेरे पास फटकना नहीं चाहती!" तंग आकर वह कहता।

मौत के प्रति उसके इस निडर रवैये से पावेल का हृदय दहल जाता। रात को वह चौंक उठता और मुझे जगाते हुए फुसफुसाकर कहता :

"मक्सीमिच, कहीं वह मर तो नहीं गया... मुझे लगता है कि ऐसे ही कभी रात में वह मर जायेगा, और हम उसके तख़्ते के नीचे सोते रहेंगे। हे भगवान, मरे हुए आदमियों से मुझे कितना डर लगता है!.."

या फिर कहता :

"आख़िर इसने जन्म ही क्यों लिया? बीस बर्ष का भी न हो पाया कि अब विदा ले रहा है!.."

एक रात, जब कि चाँदनी खिली हुई थी, उसने मुझे जगाया। उसकी आँखें भय से फटी हुई थीं। फुसफुसाकर बोला :

"कुछ सुनाई देता है?"

ऊपर तख़्ते पर दवीदोव की साँस भरभरा रही थी, और जल्दी-जल्दी, साफ़ सुन पड़नेवाले शब्दों में वह बड़बड़ा रहा था :

"इधर, यहाँ ले आओ, यह देखो इधर..."

इसके बाद हिचकी का दौरा शुरू हो गया।

"मर रहा है। सच कहता हूँ, वह मर रहा है!" पावेल ने विचलित स्वर में फुसफुसाकर कहा।

दिन भर मुझे बर्फ़ की लदाई-ढुवाई करनी पड़ी थी। मैं बुरी तरह थक गया था, और आँखों में नींद उमड़ी आ रही थी।

"तुझे मेरी कसम, सो नहीं," पावेल ने अनुरोध किया, "मुझ पर दया कर, सो नहीं!"

सहसा वह उछलकर घुटनों के बल खड़ा हो गया, और वहशियाना अन्दाज़ में चिल्ला उठा :

"उठो, उठो, दवीदोव मर गया!"

उसकी आवाज़ सुनकर कुछ कारीगरों की नींद उचट गयी। कुछ बिस्तर छोड़कर खड़े हो गये, और चिड़चिड़ाकर पूछने लगे कि बात क्या है।

कापेन्द्यूख़िन तख़्तों पर चढ़ गया, और चकित स्वर में बोला :

"सचमुच, लगता तो ऐसा है कि मर गया,—हालाँकि बदन में अभी भी कुछ गरमाई मालूम होती है..."

सब पर एक सन्नाटा-सा छा गया। जिख़रेव ने सलीब का चिह्न बनाया, और कम्बल को और भी कसकर तानते हुए बोला :

"भगवान इसकी आत्मा को शान्ति दे!"

"अच्छा हो कि इसे यहाँ उठा कर ड्योढ़ी में ले जायें..." किसी ने सुझाव दिया।

कापेन्द्यूख़िन नीचे उतर आया, और खिड़की में से झाँकते हुए बोला :

"नहीं, सुबह तक इसे यहीं रहने दो, जीते-जी भी इसने किसी का रास्ता नहीं छेका..."

पावेल तकिये के नीचे सिर छिपाकर सुबकियाँ भरने लगा।

सितानोव बेसुध सोता रहा, वह मसका तक नहीं।

15

नीचे खेतों में जमी बर्फ़ और ऊपर आकाश में सर्दी के बादल गल रहे थे, और भीगी हुई बर्फ़ तथा बारिश के छींटे धरती पर गिर रहे थे। सूरज की गति धीमी हो गयी थी, और दिन की यात्रा पूरी करने में अब उसे काफ़ी समय लगता था। हवा में उतनी ठिठुरन नहीं रही थी। ऐसा मालूम होता था मानो वसन्त आ तो गया है, लेकिन अभी नगर से बाहर खेतों में छिपा हुआ आँख-मिचौनी का खेल खेल रहा है। किलकारियाँ मारता और चौकड़ियाँ भरता किसी समय भी वह नगर में दाखिल हो जायेगा। सड़कों पर लाल मटियाला कीचड़ फैला हुआ था। फुटपाथों पर पानी की छोटी-छोटी धाराएँ छलछल करती बह रही थीं। आरेस्तानूस्काया चौक में बर्फ़ के पिघलने से साफ़ जगहों पर चिड़े-चिड़ियाँ खुशी से चहक और फुदक रहे थे। चिड़े-चिड़ियों की भाँति लोग भी उमंग से भरे थे। चारों ओर वसन्त की सुहावनी भनभनाहट सुनाई देती, महान चलीसा व्रत पर गिरजे के घण्टे, सुबह से साँझ तक क़रीब-क़रीब हर घड़ी बजते रहते और हृदय को हल्के-हल्के झकोले देते। उनकी टनटनाहट में, बूढ़े लोगों की आवाज़ की भाँति, टींस छिपी होती। उनकी ठण्डी उदास ध्वनि में उन दिनों की गूँज सुनाई देती जो पीछे, बहुत पीछे, छूट गये थे और जिनके लौटने की अब कोई उम्मीद न थी।

मेरे जन्म दिन के अवसर पर कारीगरों ने मुझे ख़ुदा के प्यारे सन्त अलेक्सेई की एक छोटी-सी और बहुत ही सुन्दर रंगी-चुनी प्रतिमा भेंट की। जिख़रेव ने, गम्भीर मुद्रा में, एक लम्बा भाषण दिया जिसके शब्द सदा के लिए मेरी स्मृति में अंकित हो गये।

"अभी तू क्या है," भौंहों को चढ़ाते और अपनी उँगलियों को हिलाते हुए उसने

कहा, "कुल तेरह बरस की तेरी उम्र है, न तेरे माँ है और न बाप। फिर भी मैं, उम्र में तुझसे चार गुना बड़ा होने पर भी, तेरी तारीफ़ करता हूँ। जानता है क्यों? इसलिये कि इतनी कच्ची उम्र होते हुए भी तूने जीवन से मुँह नहीं मोड़ा, सीधे तनकर उसका सामना किया। और ऐसा ही होना चाहिए,—हमेशा आँखें खोलकर जीवन का सामना करो!"

उसने ख़ुदा के दासों और ख़ुदा के बन्दों का ज़िक्र किया, लेकिन दासों और बन्दों में क्या भेद है, यह मेरी समझ में कभी नहीं आया, और मेरा ख़्याल है कि इस भेद को वह खुद भी नहीं समझता होगा। उसका भाषण बोझिल और उबा देनेवाला था और सब उस पर हँस रहे थे। प्रतिमा हाथ में लिये मैं गुम-सुम खड़ा था, मेरे हृदय में उथल-पुथल मची थी और परेशानी में कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था क्या करूँ। आख़िर कापेन्द्यूख़िन से न रहा गया। झुँझलाकर चिल्ला उठा :

"मालूम पड़ता है किसी मुर्दे के सिरहाने फ़ातिहा पढ़ा जा रहा है! देखो तो, बेचारे के कान भी नीले पड़ गये!"

इसके बाद मेरी पीठ थपथपाते हुए उसने भी राग अलापना शुरू कर दिया।

"तुझमें सबसे अच्छी बात यह है कि तू सभी से घुल-मिलकर रहता है! तेरी यह बात मुझे पसन्द है, इसकी वजह से तुझे पीटना या डाँटना मुश्किल हो जाता है—भले ही तूने सचमुच कसूर किया हो!"

सब के सब, आँखों में चमक भरे, मेरी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे खिले हुए थे और मुझे गुम-सुम खड़ा देख मुस्करा रहे थे। मेरा हृदय, भीतर ही भीतर, उमड़-घुमड़ रहा था। अगर यह सिलसिला कुछ देर और चलता तो मैं अपने को रोक न पाता, मेरी आँखों से आँसू बहने लगते—निरे आनन्द के आँसू। इस भावना से कि ये लोग इस हद तक मुझे अपना समझते हैं, मेरा हृदय भर आया था। ठीक उस दिन सबेरे ही, मेरी ओर सिर हिलाते हुए कारिंदे ने प्योत्र वासील्येविच से कहा था :

"बड़ा बेहूदा छोकरा है, एकदम निकम्मा!"

सदा की ही तरह उस दिन भी, तड़के ही मैं दुकान पर काम करने गया था। लेकिन अभी दोपहर हो भी न पाई थी कि कारिंदे ने कहा :

"घर जा और भण्डार की छत पर से बर्फ़ गिराकर कोल्ड-स्टोरेजवाले तहख़ाने में जमा दे..."

उसे मालूम नहीं था कि आज मेरा जन्म दिन है, और मेरा ख़्याल था कि अन्य सब भी यह नहीं जानते। चित्रशाला में जब बधाइयों का सिलसिला खत्म हो गया तो मैंने कपड़े बदले, भागकर अहाते में पहुँचा, और बर्फ़ गिराने के लिए भण्डार की छत पर चढ़ गया। इस बार जाड़ों में खूब जमकर बर्फ़ पड़ी थी। लेकिन उतावली में मैं तहख़ाने का दरवाज़ा खोलना भूल गया और फावड़े से बर्फ़ गिराता रहा। नतीजा यह

कि तहख़ाने का दरवाज़ा बर्फ़ के ढेर के नीचे छिप गया। जब मुझे अपनी ग़लती मालूम हुई तो मैं तुरन्त दरवाज़े के इस ढेर को हटाने में जुट गया। लेकिन बर्फ़ नम थी और खूब कड़ी जम गयी थी, और फावड़ा लोहे का न होकर लकड़ी का था, जैसे ही ज़्यादा दबाव पड़ा, वह टूट गया। इसी समय फाटक पर कारिंदा दिखायी दिया और मुझे यह रूसी कहावत याद हो आयी कि खुशी के साथ हमेशा दुःख का पुछल्ला लगा रहता है।

“यह बात है!” कारिंदा मेरे निकट आया और गुस्से में भनभनाते हुए बोला। “क्या इस तरह काम किया जाता है, शैतान के पिल्ले! खोपड़ी पर ऐसा हाथ जमाऊँगा कि भेजा बाहर निकल आयेगा...”

उसने फावड़े का टूटा हुआ हत्था उठा लिया और कसकर हाथ घुमाया। लेकिन मैं एक ओर को हट गया और गुस्से में उफनकर बोला :

“अहाता साफ़ करना मेरी नौकरी में कतई शामिल नहीं है, समझे!”

लकड़ी का हत्था उसने मेरे पाँव में फेंककर मारा। लपककर मैंने बर्फ़ का एक ढेला उठाया और पूरे ज़ोर से ऐन उसके मुँह पर दे मारा। सिटपिटाकर वह भाग खड़ा हुआ। मैं भी अधबीच में ही काम को छोड़कर चित्रशाला में लौट आया। इसके कुछ मिनट बाद कारिंदे की मंगेतर सीढ़ियों से उतरकर भागती हुई आयी। वह एक काजूबाजू छोकरी थी और उसका बेरंग मुँह मुँहासों से भरा था। आते ही बोली :

“मक्सीमिच, ऊपर जा!”

“मैं नहीं जाऊँगा,” मैंने कहा।

लारिओनिच ने धीमी आवाज़ में, चकित भाव से पूछा :

“यह क्या, जायेगा क्यों नहीं?”

मैंने उसे सारा क़िस्सा बता दिया। मेरी जगह वह खुद ऊपर गया। उसकी भौंहें परेशानी में कुछ तन गयी थीं। जाते समय दबे स्वर में बोला :

“बड़ा तेज हो गया तू, भैया...”

चित्रशाला कारिंदे के खिलाफ़ ताने-तिशनों से गूँज उठी।

“अब तो तुझे निकालकर ही छोड़ेंगे!” कापेन्द्यूख़िन ने कहा।

लेकिन इसका मुझे डर नहीं था। कारिंदे से मेरी तनातनी काफ़ी दिनों से चल रही थी और सभी सीमाएँ पार कर चुकी थी। उसकी घृणा ने जिद्द का रूप धारण कर लिया था जो दिनोंदिन बढ़ती जाती थी। मेरी घृणा भी उतनी ही हठीली और ज़ोरदार थी जो कम होने का नाम न लेती थी। परन्तु मैं यह समझता था कि वह मेरे साथ ऐसा बेतुका व्यवहार क्यों करता है।

वह जान-बूझकर कुछ रेजगारी फ़र्श पर गिरा देता जिससे फ़र्श साफ़ करते समय उस पर मेरी नज़र पड़े। मैं उसे उठाता और हमेशा काउण्टर पर रखे भिखारियोंवाले

प्याले में डाल देता। अन्त में इस तरह रेजगारी बिखरने का रहस्य जब मेरी समझ में आया तो मैंने उससे कहा :

"रेजगारी का जाल बिछाकर तुम मुझे नहीं फाँस सकते। तुम्हारी सारी कोशिशें बेकार जायेंगी!"

उसका चेहरा लाल हो गया और एकाएक चिल्लाते हुए बोला :

"मुझे ज़्यादा सबक पढ़ाने की कोशिश न कर! मैं क्या करता हूँ और क्या नहीं, यह मैं तुझसे ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ!"

फिर कुछ सम्भलकर बोला :

"तू समझता है मैं रेजगारी जान-बूझकर फ़र्श पर गिराता हूँ? वो तो अनजाने ही गिर जाती है..."

उसने मुझ पर रोक लगा दी कि दुकान में पुस्तकें न पढ़ूँ। कहने लगा :

"ये पुस्तकें तेरे लिए नहीं है। क्या पारखी बनने का शौक चर्राया है, हरामख़ोर कहीं का!"

मुझे रेजगारी-चोर बनाने की अपनी कोशिशों में उसने ढील नहीं डाली। मुझे लगा कि अगर किसी दिन बुहारते समय कोई सिक्का लुढ़ककर किसी दराज में चला गया तो उसे चोरी का इलज़ाम लगाते जरा भी देर नहीं लगेगी। एक बार फिर मैंने उसे टोका कि मेरे साथ इस तरह का खेल न खेले। लेकिन उसी दिन जब मैं ढाबे से उबलते हुए पानी से भरी केतली लेकर लौट रहा था तो मेरे कानों में उसकी आवाज़ की भनक पड़ी। पड़ोसी दुकानदार के नए कारिंदे से वह कह रहा था :

"तू उससे साँठ-गाँठ करके भजन संहिता चोरी करने के लिए कह। आजकल ही एकदम नई तीन पेटी पुस्तकें हमारे यहाँ आनेवाली हैं..."

मुझे यह भाँपने में देर न लगी कि वे मेरे ही बारे में बात कर रहे थे। कारण कि मेरे आते ही दोनों सकपका-से गये। परन्तु केवल यही नहीं, और कुछ बातों से भी मुझे यह शुबह था कि वे मेरे खिलाफ़ मिलकर साज़िश कर रहे हैं।

पड़ोसी दुकानदार का कारिंदा एक चालाकी भरी आँखोंवाला और दुबले-पतले तथा सूखे हुए कमज़ोर शरीर का जीव था। वह ऐसे ही, थोड़े-थोड़े दिनों के लिए काम करता था। दुकान के काम में वह होशियार था। लेकिन पूरा पियक्कड़ था, कभी पीने का भूत उसके सिर पर सवार होता तो मालिक उसे नौकरी से अलग कर देता, और इसके बाद वह फिर रख लेता। यों देखने में वह काफ़ी विनम्र और अपने मालिक के हल्के-से इशारे को भी माननेवाला मालूम होता था, लेकिन अपने मुँह के कोने में सदा एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट छिपाये रहता और तीखे छींटे कसने में रस लेता। उसके मुँह से गन्ध आती, ठीक वैसी ही जैसे कि गन्दे दाँत वाले लोगों के मुँह से आती है, हालाँकि उसके दाँत भले-चंगे और सफ़ेद थे।

एक दिन उसने मुझे बड़े अचरज में डाला : बहुत ही प्यार भरी मुस्कराहट के साथ वह मेरे पास आया और इसके बाद, एकाएक, उसने मेरी टोपी उतारकर दूर फेंक दी और मेरे बालों को अपने हाथों में दबोच लिया। फिर क्या था हम दोनों गुत्थम-गुत्था हो गये। बालकनी से धकेलता हुआ वह मुझे दुकान में ले आया और धक्का देकर मुझे कुछ बड़ी देव-प्रतिमाओं पर गिराने की कोशिश करने लगा जो फ़र्श पर रखी थीं। अगर वह सफल हो जाता तो इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिमाओं का काँच टूट जाता, उनके बेल-बूटे झड़ जाते और कीमती चित्रकारी चौपट हो जाती। लेकिन वह कुछ ताकतवर नहीं था। शीघ्र ही मैंने उसे अपने काबू में कर लिया। इसके बाद फ़र्श पर वह पसर गया और अपनी आहत नाक को सहलाते हुए फुक्का मारकर रोने लगा। इस दाढ़ीवाले आदमी को रोता देख मैं हक्का-बक्का-सा रह गया।

अगले दिन, सुबह के समय जब हमारे मालिक कहीं चले गये थे और हम दोनों अकेले थे, एक आँख के नीचे के और नाक के सूजे हुए हिस्से को सहलाते हुए उसने बड़े ही मित्रभाव से कहा :

“तू सोचता है मैं अपनी मर्जी से तेरे ऊपर झपटा था? नहीं, इतना मूर्ख नहीं हूँ। मुझे पता था कि तू मुझसे ज़बर है और जल्दी ही मुझे दबोच लेगा। मुझमें ताकत कहाँ है, नशे की लत ने मुझे खोखला बना दिया है। असल में खुद मालिक के कहने पर मैंने यह हरकत की थी। मालिक ने कहा : ‘जाकर उससे लिपट जा और इस तरह लड़ कि उनकी दुकान में ज़्यादा से ज़्यादा तोड़-फोड़ हो जाये और भारी नुकसान पहुँचे।’ अगर मालिक ने मुझे मजबूर न किया होता तो अपने आप मैं कभी ऐसी हरकत न करता। देख, तूने मेरे थोबड़े का क्या हाल बना दिया है...”

मुझे उसकी बात सच मालूम हुई और मेरा हृदय तरस की भावना से भर गया। यह मैं जानता था कि उसे बहुत कम पैसा मिलता है जिसमें उसका गुजर नहीं होता। तिस पर उसकी पत्नी बराबर उसे पीटती रहती थी। फिर भी मैंने उससे पूछा :

“अगर वो तुमसे किसी को ज़हर देने के लिए कहे, तो क्या सचमुच तुम ज़हर दे दोगे?”

“वो कुछ भी करा सकता है,” उसने दयनीय मुस्कराहट के साथ धीमे स्वर में कहा, “वो मुझसे कुछ भी करा सकता है...”

ऐसे ही एक दिन, मौका देखकर, वह मुझसे कहने लगा :

“मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं है, घर का चूल्हा ठण्डा पड़ा है—खाने के लिए एक दाना तक नहीं है, और मेरी औरत घड़ी भर के लिए चैन नहीं लेने देगी। अगर तू अपने स्टोर में से एक देव-प्रतिमा चुपचाप उठाकर दे दे तो मैं उसे बेचकर कुछ पैसा खड़े कर लूँगा। बोल मुझपर इतनी दया करेगा न? देव-प्रतिमा न ला सके तो फिर भजन संहिता सही।”

मुझे जूतों की दुकान और गिरजे की चौकीदार की बात याद हो आयी और ऐसा लगा कि निश्चय ही यह आदमी भेदिया है। लेकिन मुझसे इंकार करते न बना। मैंने उसे एक देव-प्रतिमा उठाकर दे दी। भजन संहिता कुछेक रूबल की थी और मुझे लगा कि उसे उठाकर देना ज़्यादा बड़ा पाप होगा। क्या किया जाये? नैतिकता में सदा अंकगणित छिपा होता है। हमारे समूचे 'दण्ड-विधान' का वट वृक्ष, न्याय और धर्म की चादर में लिपटा होने पर भी, अपने हृदय में इसी गणना का नन्हा बीज छिपाए है,—व्यक्तिगत सम्पत्ति का दानव उसके पीछे अट्टहास कर रहा है।

पड़ोस की दुकान के इस दयनीय कारिंदे से जब मैंने अपनी दुकान के कारिंदे को यह कहते सुना कि वह मुझे भजन संहिता चुराने के लिए बहकाये तो मेरा हृदय सहम गया। यह साफ़ था कि हमारी दुकान के कारिंदे से मेरी उस उदारता की बात भी नहीं छिपी है जिससे प्रेरित होकर मैंने दुकान से प्रतिमा की चोरी की थी। दूसरे शब्दों में यह कि पड़ोसी दुकान का कारिंदा सचमुच में भेदिया था।

दूसरों की जेब काटकर उदारता दिखाने में सस्तेपन तथा उसके षड्यन्त्र के कमीनेपन ने मेरे हृदय को कचोटना शुरू किया और विक्षोभ तथा घृणा के भावों से मैं भर गया मुझे अपने पर भी गुस्सा आया और दूसरों पर भी। कई दिनों तक मैं एक अजीब झुँझलाहट में फँसा रहा। नई पुस्तकों के आने तक मेरी बुरी हालत हो गयी। आख़िर पुस्तकें आयी। स्टोर में जाकर मैंने उन्हें खोलना शुरू किया। तभी पड़ोस की दुकान का कारिंदा मेरे पास आया और भजन संहिता माँगने लगा।

"क्या तुमने देव-प्रतिमा चुराने की बात मालिक से कही थी?" मैंने उससे पूछा।

"हाँ," गरदन लटकाते हुए उसने स्वीकार किया, "क्या करूँ, मेरे पेट में बात पचती नहीं..."

यह सुनकर मैं सन्न रह गया। पुस्तकों की पेटी खोलना छोड़ मैं फ़र्श पर बैठ गया और उसके चेहरे की ओर ताकने लगा। अस्तव्यस्त और अत्यन्त दयनीय मुद्रा में वह जल्दी-जल्दी बड़बड़ा रहा था :

"तेरे मालिक ने भाँप लिया, या यह कहो कि मेरे मालिक ने भाँप लिया, और तेरे मालिक से..."

मुझे लगा कि अब खैर नहीं है। इन लोगों के जाल में मैं फँस गया हूँ और अब, निश्चय ही, बाल-अपराधियों की किसी जेल में मुझे बन्द कर दिया जायेगा! लेकिन जहाँ सेर, वहाँ सेर, जब यही सब होना है तो फिर अन्य किसी चीज़ की चिन्ता क्यों की जाये! चुल्लू भर पानी में डूबकर मरने से तो कहीं अच्छा है कि गहरे पानी में डूबकर मरा जाये। सो मैंने भजन संहिता उठाई और कारिंदे को दे दी। उसने उसे कोट के भीतर छिपा लिया और वहाँ से चल दिया। कुछ भी देर न हुई होगी कि वह फिर लौट आया और पुस्तक मेरे पाँवों के पास आ गिरी।

"मैं इसे नहीं ले सकता। तेरे साथ तो कहीं का न रहूँगा..." कहते हुए वह चला गया।

मैं उसकी बात नहीं समझ सका। यह क्या बात हुई कि मेरे साथ वह कहीं का नहीं रहेगा? जो हो, यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि उसने पुस्तक लौटा दी। इसके बाद हमारी दुकान का कोताह कारिंदा मुझे और भी ज़्यादा दुश्मनी तथा सन्देह की नज़र से देखने लगा।

मालकिन के बुलाने पर भी जब मैं नहीं गया और मेरी जगह लारिओनिच गया तो ये सब बातें मेरे दिमाग में घूम गईं। वह जल्दी ही ऊपर से लौट आया, पहले से भी ज़्यादा उदास और एकदम गुम-सुम। साँझ के भोजन से ठीक पहले, उस समय जब कि मैं और वह अकेले थे, वह मुझसे बोला :

"मैंने बहुत कोशिश की कि दुकान के काम से छुड़ाकर तुझे केवल चित्रशाला में काम करने दें। लेकिन बात नहीं बनी! कुज़्मा तिलचट्टा कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं था। न जाने तुझसे क्या खार खाए बैठा है..."

इस घर में मेरा एक दुश्मन और था—कारिंदे की मंगेतर, एक बहुत चुलबुली लड़की। चित्रशाला के सभी नौजवान उससे खेलते और छेड़छाड़ करते थे। वे ड्योढ़ी में खड़े होकर उसका इन्तजार करते और जब वह आती तो खूब छीना-झपटी करते। वह जरा भी बुरा न मानती, पिल्ले की भाँति दबे स्वर में केवल कू-काँ करती रहती। सुबह से लेकर सोने के समय तक उसका मुँह चलता रहता—मिठाई, शहद की रोटियाँ, केक आदि के टुकड़े उसकी जेबों में सदा भरे रहते। भूरी आँखों से युक्त उसका बेरंग चेहरा देखने में बड़ा बुरा मालूम होता। अपनी आँखों को वह बराबर टेरती रहती। जब भी वह आती, पावेल और मुझसे ऐसी पहेलियाँ बूझती जिनके जवाब गन्दे होते या ऐसी ध्वनियों और शब्दों का जल्दी-जल्दी एक साँस में उच्चारण करने के लिए कहती जिनके मिलने से कोई न कोई गन्दा अर्थ निकलता।

बूढ़े कारीगरों में से एक ने उससे कहा :

"क्या, तुम्हें लाज नहीं आती?"

वह खिलखिलाकर हँसी और जवाब में एक गन्दे गीत की ये पंक्तियाँ गुनगुनाने लगी :

> रंगीली शरमा जायेगी,
> तो हाथ मलती रह जायेगी!

इस तरह की लड़की मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह मुझे बड़ी घिनौनी मालूम होती, और उसके भोंड़े तौर-तरीक़ों को देखकर मैं सहम जाता। जब उसने देखा कि मैं उससे कतराता और बचता हूँ तो वह और भी ज़ोरों से मेरे पीछे पड़ गयी।

एक दिन नीचे तहखाने में वह अचार के पीपों को भाप दे रही थी। पावेल और मैं भी उसकी मदद के लिए वहाँ मौजूद थे। तभी उसने कहा :

"लौंडो, आओ, तुम्हें चुम्मा लेना सिखाऊँ।"

"तू क्या सिखायेगी, मैं तुझसे ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ।" हल्की हँसी हँसते हुए पावेल ने कहा और शराफ़त को थोड़ा ताक पर रख मैंने उसे सलाह दी कि वह अपने मंगेतर को सिखाये। मेरी बात सुन वह झुँझला उठी। गुस्से से बोली :

"तू निरा सुअर है यह तक नहीं जानता कि एक लड़की से किस तरह पेश आना चाहिए। मैं तो तेरे साथ इतने प्यार से पेश आती हूँ और तू नाक चढ़ाता है!"

इसके बाद उँगली हिलाते हुए बोली :

"तुझे इसका भुगतान करना पड़ेगा। मैं आसानी से छोड़ने वाली नहीं हूँ!"

पावेल ने मेरा पक्ष लिया। बोला :

"अगर तेरे मंगेतर को इन हरकतों का पता चल गया तो फिर देखना किस तरह तेरे गाल लाल करता है।"

मुँहासे भरे अपने मुँह को उसने तिरस्कार से सिकोड़ा और फनफनाते हुए बोली :

"मुझे उसका जरा भी डर नहीं है। इतने भारी दहेज के साथ एक नहीं बीस मंगेतर मुझे मिल जायेंगे, उससे लाख दर्जे अच्छे! जब तक विवाह का जुआ गरदन पर नहीं डलता तभी तक तो लड़की को दो घड़ी मौज करने का मौका मिलता है।"

इसके बाद वह पावेल से खेल करने लगी और मुझसे ऐसी कुढ़ी कि फिर सीधी न हुई। जब भी मौका मिलता, मेरे खिलाफ़ इधर की उधर लगाती।

दुकान पर काम करना मेरे लिए एक मुसीबत हो गया और जैसे-तैसे दिन बीतते गये मेरी मुसीबत बढ़ती गयी। मैं बुरी तरह ऊब चला। जितने भी धर्मग्रंथ वहाँ थे, सभी मैंने पढ़ डाले और पारखियों के तर्क-कुतर्क सुनते-सुनते मैं तंग आ गया। उनकी बातों में कभी कोई नवीनता न होती, हमेशा और हर बार उन्हीं घिसी-पिटी बातों को दोहराते। केवल प्योत्र वासील्येविच ही एक ऐसा था जो अभी भी मुझे कुछ आकर्षक मालूम होता था। मानव-जीवन के काले पक्ष का उसे गहरा अनुभव था और बहुत ही दिलचस्प तथा उत्साहपूर्ण ढंग से वह अपनी बातों को व्यक्त करता था। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो पैगम्बर येलिसेई ने भी, इसी प्रकार एकदम एकाकी, हृदय में गहरी जलन और बदले की भावना लिये, इस धरती का चप्पा-चप्पा छाना होगा।

लेकिन जब कभी मैं उसे लोगों के बारे में अपने अनुभव या विचार बताता तो वह बड़ी तत्परता से सुनता और इसके बाद सारी बातें कारिंदे के सामने दोहरा देता जो या तो मुझे झिड़कता या मेरा मज़ाक उड़ता।

एक दिन वृद्ध के सामने मैंने अपना यह भेद प्रकट कर दिया कि उसकी कही हुई बातों को भी मैं अपनी उसी कापी में दर्ज करता जाता हूँ जिसमें कि मैंने कविताएँ

और पुस्तकों के अंश उतार रखे हैं। यह सुनकर उसकी सिट्टी गुम हो गयी, तेजी से वह मेरी ओर झुका और भयभीत-सा होकर मुझसे पूछने लगा :

"तू ऐसा क्यों करता है! यह ठीक नहीं है, बच्चे! तू क्या मेरी बातों को याद रखना चाहता है! नहीं, नहीं, ऐसा नहीं चलेगा। देखो तो, कैसा छोकरा है! ज़रा मुझे अपनी वह कापी तो दिखा!"

बहुत देर तक और जमकर वह इस बात पर ज़ोर देता रहा कि मैं कापी उसके हवाले कर दूँ, या कम से कम उसे जला दूँ। इसके बाद, विचलित स्वर में, वह कारिंदे से फुसफुसाता रहा।

घर लौटते समय कारिंदे ने कड़े स्वर में मुझसे कहा :

"मुझे पता चला है कि तू कोई रोज़नामचा रखता है। मैं तुझसे कहे देता हूँ कि अपनी यह हरकत बन्द कर। सुन लिया? केवल खुफ़िया पुलिस के लोग ऐसा काम करते हैं!"

"और सितानोव?" अनायास ही मेरे मुँह से निकल गया, "उसके बारे में तुम क्या कहोगे वह भी तो रोज़नामचा रखता है।"

"क्या वह भी रखता है? बेवकूफ़ नहीं तो!"

कुछ देर वह चुप रहा। फिर कुत्सित नरमाई से दोहरा हो भेद भरे अन्दाज़ में बोला :

"एक बात सुन। मुझे अपनी कापी दिखा दे, और सितानोव की भी। मैं तुझे आधा रूबल दूँगा। लेकिन देख, यह काम चुपचाप करना। किसी के कान में भनक तक न पड़े, सितानोव के भी नहीं!..."

उसे जैसे पक्का विश्वास था कि उसकी बात मैं टालूँगा नहीं। उसने अपना सुझाव रखा और इसके बाद, बिना किसी दुविधा या झिझक के, अपनी छोटी टाँगों से दुलकी चाल चलता हुआ मेरे आगे निकल गया।

घर पहुँचते ही कारिंदे ने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सितानोव को बता दिया। सुनकर उसकी भौंहों में बल पड़ गये।

"तूने उससे कहा ही क्यों? अब वह किसी न किसी तरह हमारी कापियाँ उड़ा लेगा, मेरी भी और तेरी भी। लेकिन ठहर, अपनी कापी तू मुझे दे दे। मैं उसे कहीं छिपा दूँगा। वह तेरे पीछे पड़ा है। देख लेना, वह तुझे निकालकर ही दम लेगा!"

मुझे भी इसमें सन्देह नहीं था, और मैंने निश्चय कर लिया कि नानी के घर लौटते ही मैं यह नौकरी छोड़ दूँगा। नानी बलाख़ना में थी। सारे जाड़े वहीं रही, किसी ने अपनी लड़कियों को लेस बुनना सिखाने के लिए बुला लिया था। नाना अब फिर कुनाविनो में ही आ बसे थे। मैं कभी उनसे मिलने नहीं जाता था और भूले-भटके अगर कभी उनका नगर आना होता तो वह खुद भी मुझसे नहीं मिलते थे। एक दिन

अनायास ही बाज़ार में उनसे मुलाकात हो गयी। रैकून का भारी-भरकम कोट पहने रोब के साथ सामने से वह आ रहे थे, मानो कोई पादरी चला आ रहा हो। जब मैंने नमस्ते की तो ठिठक गये, एक हाथ उठाकर अपनी आँखों पर साया किया और खोये हुए से अन्दाज़ में बोले :

"ओह, तू है... सुना है कि आजकल देव-प्रतिमाएँ बनाता है। ठीक है, ठीक है... अच्छा जा!"

इसके बाद, मुझे एक ओर धकियाते हुए, अपने उसी रोबीले अन्दाज़ में और ठाठ के साथ आगे बढ़ गये।

नानी से भी इन दिनों विरले ही भेंट होती। वह दिन-रात, बिना साँस लिये, काम करती थी। नाना का बोझ भी अब वही सम्भालती थी। आयु के साथ नाना सठिया गये थे। नाना के अलावे अपने बेटों के बच्चों का लालन-पालन भी नानी के ही जिम्मे था। मिख़ाईल मामा के लड़के साशा के लिए जो एक खूबसूरत, सपनों में खोया और पुस्तकों का प्रेमी युवक था, नानी ख़ास तौर से परेशान रहती। वह रंगसाज़ी का काम जानता था और किसी एक जगह जमकर काम नहीं करता था। जब-तब नौकरी छोड़कर घर पर बैठ जाता और नानी उसका दोज़ख ही नहीं भरती, बल्कि उसके लिए अगली नौकरी भी खोजती। साशा की बहन का बोझ भी कुछ कम नहीं था। ग़लत विवाह करके उसने एक मुसीबत और मोल ले ली थी। कारीगर शराबी था, वह उसे बुरी तरह मारता और घर से निकाल देता था।

नानी से जब भी मैं मिलता, उनकी आत्मा के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता। लेकिन मुझे ऐसा लगता कि नानी की अद्भुत आत्मा परियों की दुनिया में निवास करती है। नतीजा यह कि वह चारों ओर की कटु वास्तविकता को नहीं देख पाती। उन आशंकाओं और दुश्चिन्ताओं से जो मुझे घेरे रहतीं, नानी सर्वथा मुक्त और परे थी।

"सहने की क्षमता होनी चाहिए।"

जीवन की कुरूपता और दमघोट भयानकता का, लोगों की मुसीबतों और हर उस चीज़ का जिसके विरुद्ध मेरा हृदय इतने ज़ोरों से उबाल खाता था, जब में नानी से ज़िक्र करता तो उसके मुँह से सिवा इसके और कुछ न निकलता कि हममें सहने की क्षमता होनी चाहिए।

लेकिन सहना मेरी प्रकृति के विरुद्ध था और अगर ढोर-डंगरों, काठ और पत्थरों के इस गुण का कभी-कभी मैं प्रदर्शन करता भी था तो केवल अपने आपको जाँचने-परखने के लिए, अपनी उस शक्ति और दृढ़ता का अन्दाज़ लगाने के लिए जिसके सहारे इस धरती पर मेरे पाँव जमे थे। ठीक वैसे ही जैसे कि अपनी बचकानी मूर्खता के जोश अथवा अपने से बड़ों की शक्ति से ईर्ष्या के चक्कर में पड़कर युवक

अपने हाड़-मांस और पुट्ठों की सकत से भी भारी बोझा उठाने की कोशिश करते और कभी-कभी इसमें सफल भी हो जाते हैं, जेसे कि शेखी में वे नामी पहलवानों की भाँति मन-मन भर का वजन उठाने की कोशिश करते हैं।

मैं भी ऐसा ही करता—शाब्दिक अर्थ में भी, और भावनात्मक अर्थ में भी। शारीरिक और आत्मिक दोनों रूपों में मैं अपनी शक्ति की जाँच करता और इसे मेरा सौभाग्य ही समझिए कि इस जाँच के दौरान मैं घातक चोट खाने या जन्म भर के लिए पंगु होने से बच गया। और अगर सच पूछो तो दुनिया में अन्य कोई चीज़ आदमी को इतने भयानक रूप में पंगु नहीं बनाती जितना कि सहना और परिस्थितियों की बाध्यता स्वीकार कर उनके सामने सिर झुकाना।

अन्त में पंगु होकर अगर मुझे धरती माता की शरण लेनी ही पड़ेगी तो, जायज गर्व के साथ, कम से कम यह तो मेरे पास कहने के लिए होगा कि क़रीब चालीस वर्ष तक मैंने परिस्थितियों के खिलाफ़ अडिग संघर्ष किया जो सहन करने की जंजीरों से बरबस मुझे जकड़कर मेरी आत्मा को कुंठित कर देना चाहते थे।

कोई न कोई शरारत करने, लोगों का जी बहलाने और उन्हें हँसाने की मेरी इच्छा रह-रहकर ज़ोर पकड़ती। और यह काम भी मैं पूरी सफलता के साथ करता। नीज्नी बाज़ार के सौदागरों का वर्णन करने और उनकी नकल उतारने में मैं बेजोड़ था। मैं दिखाता कि देहातिए और उनकी औरतें किस तरह देव-प्रतिमाएँ ख़रीदते और बेचते हैं, किस सफाई से कारिंदा उन्हें ठगता और धोखा देता है, और किस तरह पारखी बहसें करते हैं।

कारीगर हँसते-हँसते दोहरे हो जाते, हाथ का काम छोड़कर मुझे नकलें उतारता हुआ देखते। जब तमाशा खत्म हो जाता तो लारिओनिच कहता :

"यह सब तमाशा साँझ के भोजन के बाद किया कर, जिससे काम में हर्ज न हो..."

इस तरह के तमाशे के बाद मैं सदा बहुत हल्का अनुभव करता, ऐसा मालूम होता मानो मेरे सीने पर से कोई भारी बोझ उतर गया हो। घण्टे-डेढ़ घण्टे तक मेरा दिमाग इतने अद्‌भुत रूप में रीता और स्वच्छ मालूम होता जैसे उसका सारा कूड़ा-कबाड़ साफ़ हो गया हो, लेकिन कुछ देर बाद वह फिर मानो कील-काँटों से भर जाता और उनकी दुःखद चुभन का मैं अनुभव करता।

मुझे ऐसा मालूम होता जैसे मेरे चारों ओर कुछ सड़ा सड़ांध, धीरे-धीरे, मुझे भी अपने चंगुल में दबोच रही हो।

"क्या समूचा जीवन इसी तरह का होता है?" मैं सोचता। "और क्या मैं भी, इन्हीं लोगों की भाँति, कुछ देखे और जाने बिना, अच्छे जीवन की झलक पाये बिना, इसी तरह शेष हो जाऊँगा?"

जिख़रेव जो मुझे ध्यान से देख रहा था, बोला :

"क्या बात है, मक्सीमिच, इधर कुछ चिड़चिड़ा होता जा रहा है?"

सितानोव भी अक्सर पूछता :

"क्यों, क्या हुआ है तुझे?"

मेरी समझ में न आता कि उन्हें क्या ज़वाब दूँ।

जीवन के औघड़पन ने, हठीली बेरहमी के साथ, अपने ही डाले हुए श्रेष्ठतम चिह्नों को मेरे हृदय से मिटा दिया और उनकी जगह, मानो खीजकर, कुत्सित और निक्कमे कीरम-कांटे डाल दिए। गुस्से में भरकर मैं हाथ-पाँव पटकता, अडिग रूप से जीवन की हिंसा का विरोध करता। अन्य सब की भाँति मैं भी उसी नदी में बह रहा था, लेकिन उसका पानी मुझे अधिक सुन्न करता, मेरी सारी स्फूर्ति हर लेता और कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता मानो मैं उसकी अतल गहराई में डूबा जा रहा हूँ।

लोगों का मेरे साथ अच्छा बरताव था। वे मुझ पर कभी नहीं चिल्लाते थे, जैसा कि वे पावेल के साथ करते थे, न ही वे मुझ पर रोब झाड़ते या मनमाना हुक्म चलाते। अपना सम्मान दिखाने के लिए वे पूरा नाम लेकर मुझे पुकारते। यह सब मुझे अच्छा लगता, लेकिन यह देखकर मुझे दुःख होता कि किस हद तक और कितनी बड़ी मात्रा में वे वोद्का पीते हैं, पीने के बाद वे कितने घिनौने हो जाते हैं, और स्त्रियों के साथ कितने गिरे हुए तथा विकृत सम्बन्ध रखते हैं। यह जानते हुए भी कि वोद्का और स्त्री के सिवा मन बहलाने का अन्य कोई साधन इस जीवन ने उनके पास नहीं छोड़ा है, मेरा जी भारी हो जाता।

उदास भाव से नताल्या कोज़्लोव्स्काया को मैं याद करता। अपने आप में वह काफ़ी समझदार और साहसी स्त्री थी। लेकिन वह भी स्त्रियों को निरे मनबहलाव की चीज़ समझती थी।

फिर नानी का मुझे ख़याल आता, रानी मार्गो को मैं याद करता।

रानी मार्गो को याद करते समय मेरा हृदय सहम-सा जाता। अन्य सबसे चारों ओर की हर चीज़ से वह इतनी भिन्न और अलग थी कि लगता जैसे मैंने उसे सपने में देखा हो।

स्त्रियों के बारे में मैं ज़रूरत से ज़्यादा सोचने और मंसूबे तक बाँधने लगा कि अन्य सब की भाँति अगली छुट्टी का दिन मैं भी किसी स्त्री के साथ आनन्द से बिताऊँगा। किसी शारीरिक आकांक्षा से प्रेरित होकर मैं ऐसा नहीं सोचता था। मैं स्वस्थ और बेहद स्वच्छता पसन्द था। लेकिन कभी-कभी किसी कोमल और सहानुभूतिशील स्त्री को हृदय से लगाने और उसके सामने अपनी समूची वेदना उड़ेलने के लिए मैं बुरी तरह बेचैन हो उठता। यह कामना बहुत कुछ वैसी ही थी जैसे कि एक बच्चा अपनी माँ की गोद में जाकर कुनमुनाने के लिए ललक उठता है।

पावेल पर मुझे इर्ष्या होती। रात को जब कि हम दोनों पास-पास लेटे होते, वह मुझसे अपने उस प्रेम का ज़िक्र किया करता जो कि सड़क के उस पार रहनेवाली नौकरानी से चल रहा था।

"क्या बताऊँ, भाई, महीना भर पहले तक मैं उसे बर्फ़ की गेंद से मार-मारकर दूर भगा देता था और उसकी ओर आँख तक उठाकर नहीं देखता था, लेकिन अब जब वह बाहरवाले बेंच पर मुझसे सटकर बैठती है तो उसके स्पर्श से ऐसा लगता है मानो दुनिया में उससे बढ़कर और कोई नहीं है!"

"तू उससे क्या बातें करता है?"

"सभी तरह की बातें होती हैं। वह मुझे अपने बारे में बताती है, और मैं उसे अपने बारे में बताता हूँ। फिर हम चुम्बन करते हैं... केवल वह... बस, हाथ नहीं रखने देती... वह इतनी भली है कि तू सोच तक नहीं सकता... तू आदमी है या इंजन, हर वक़्त धुआँ उड़ाता रहता है!"

धुआँ तो मैं बेहद उड़ाता था। तम्बाकू का नशा मेरे दिमाग पर छा जाता, और मेरी परेशानी को कुछ कम कर देता। सौभाग्यवश वोद्का के ज़ायके और गन्ध से मैं दूर भागता था। पावेल अलबत्ता खूब पीता था। नशे में धुत्त होने के बाद सुबकियाँ-सी भरता और रोनी आवाज़ में रट लगा देता :

"मैं घर जाना चाहता हूँ! मुझे घर भेज दो..."

वह अनाथ था। उसके माँ-बाप एक मुद्दत हुई मर गये थे। उसके न कोई बहन थी, और न भाई। आठ वर्ष की आयु से ही वह अज़नबियों के बीच जीवन बिताने लगा था।

मेरा हृदय रह-रहकर ऊब उठता और कहीं भाग जाने को जी चाहता। वसन्त के आगमन ने मेरी इस भावना को और भी मुँहज़ोर बना दिया। आख़िर मैंने एक बार फिर जहाज़ पर काम करने का निश्चय किया जिससे, आस्त्राखान पहुँचने के बाद वहाँ से फारस के लिए तिड़ी हो जाऊँ।

याद नहीं पड़ता कि फारस जाने की यह बात मेरे मन में कैसे समा गयी। इसका कारण शायद यह था कि नीज़्नी नोवगोरोद के मेले में फारस के सौदागरों को मैंने देखा था और वे मुझे बहुत अच्छे लगे थे। धूप में बैठे हुए वे हुक्का गुड़गुड़ाते रहते—पत्थर के बुतों की भाँति। उनकी दाढ़ियाँ रंगी होतीं, और ऐसा मालूम होता मानो उनकी बड़ी-बड़ी काली आँखें सभी कुछ जानती हैं, उनसे कुछ भी छिपा नहीं है।

भागने का मैंने सचमुच निश्चय कर लिया था और शायद मैं भाग भी जाता, अगर बीच में एक घटना न हो जाती। ईस्टर सप्ताह के दौरान जब कुछ कारीगर अपने-अपने गाँव चले गये थे और बाकी पीने-पिलाने में मगन थे, अपने भूतपूर्व मालिक—नानी की बहन के लड़के से मेरी भेंट हो गयी। ओका नदी के चढ़ाव की

ओर एक खेत में वह घूमने निकला था।

धूप खिली हुई थी और वह सामने से चला आ रहा था : धूसर रंग का हल्का कोट पहने, हाथ पतलून की जेबों में डाले, दाँतों में सिगरेट दबाए और अपनी टोपी को, बाँके अन्दाज़ से, पीछे खिसकाकर गुद्दी पर जमाए। निकट पहुँचने पर मित्रतापूर्ण मुस्कराहट से उसने मेरा अभिवादन किया। उसका यह मौजी और आज़ादीपसन्द रूप देखकर मैं मुग्ध हो गया। खेत में उसके और मेरे सिवा अन्य कोई नहीं था।

"ओह पेशकोव! प्रभु ईसा तुझे खुश रखे!"

ईस्टर के उपलक्ष्य में एक-दूसरे का मुँह चूमने के बाद उसने मुझसे पूछा कि कैसी गुजर रही है। मैंने उसे साफ़-साफ़ बता दिया कि चित्रशाला से, इस नगर से, और हर चीज़ से मैं बुरी तरह ऊब उठा हूँ और मैंने फारस जाने का निश्चय कर लिया है।

"अपने इस निश्चय को धता बता!" उसने गम्भीर स्वर में कहा। "फ़ारस जाकर कौन स्वर्ग में पहुँच जायेगा। मैं कहता हूँ, उसे जहन्नुम रसीद कर। तेरी उम्र में मैं खुद भी इसी तरह भागने के लिए बेचैन रहता था, जिधर भी शैतान खींच ले जाये!..."

शैतान को वह बेफिक्री के साथ उछालता था और उसका यह अन्दाज़ मुझे बड़ा अच्छा लगा—बहुत ही उन्मुक्त और वसन्त की उमंग में पगा हुआ। उसकी हर चीज़ से एक अजीब उमंग और बेफ़िक्री फूटी पड़ती थी।

"सिगरेट पियेगा?" मोटी सिगरेटों से भरा चाँदी का केस मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने पूछा।

उसकी इस बात ने मुझे अब पूरी तरह वश में कर लिया!

"सुन, पेशकोव, मेरे साथ फिर काम करने के बारे में तेरी क्या राय है? इस साल मेले के लिए मैंने कोई चालीस हज़ार के ठेके लिए हैं। मैं तुझे बाहर, मेले के मैदान में ही, काम दूँगा। एक तरह से तू ओवरसीयर का काम करेगा। जो निर्माण-सामग्री आये उसे सम्भालना, इस बात की निगरानी रखना कि हर चीज़ ठीक समय पर सही जगह पहुँच जाये, और यह कि मज़दूर चोरी-चकारी न करें। क्यों, यह ठीक रहेगा न? वेतन—पाँच रूबल महीना, और पाँच कोपेक भोजन के लिए। घर की स्त्रियों से तेरा कोई वास्ता नहीं पड़ेगा। सुबह ही तू काम पर निकल जायेगा और रात को लौटेगा। स्त्रियों से कोई मतलब नहीं। लेकिन इतना करना कि इस भेंट के बारे में उनसे भूलकर भी ज़िक्र न करना। बस रविवार के दिन चुपचाप चला आना, मानो तू आकाश से टपक पड़ा हो। क्यों, ठीक है न?"

गहरे मित्रों की भाँति हमने एक-दूसरे से विदा ली। उसने मुझसे हाथ मिलाया और दूर पहुँच जाने के बाद भी काफ़ी देर तक टोपी हिलाता रहा।

जब मैंने कारीगरों के सामने नौकरी छोड़ने का ऐलान किया तो क़रीब-क़रीब

सभी ने दुःख प्रकट किया। अपने प्रति उनका यह लगाव मुझे बड़ा प्रिय मालूम हुआ और मैं ख़ुशी से फूल गया। पावेल ख़ास तौर से व्याकुल हो उठा। शिकायत के स्वर में बोला :

"भला सोच तो, हम लोगों को छोड़कर उन देहातियों के बीच तू रहेगा? वहाँ बढ़ई होंगे, रंगसाज़ होंगे... छिः, इसी को कहते हैं आसमान से गिरकर ताड़ पर अटक जाना..."

जिख़रेव बड़बड़ाया :

"जवानी में आदमी वैसे ही मुसीबत खोजता है जैसे मछली पानी में गहराई खोजती है..."

कारीगरों ने मुझे विदाई दी जो बहुत ही बेरस और बुरी तरह उबा देने वाली थी।

नशे में धुत्त जिख़रेव ने कहा :

"निश्चय ही जीवन में कभी तू यह करेगा और कभी वह, लेकिन अच्छा यही है कि एक चीज़ को पकड़ ले और शुरू से आख़िर तक उसी से चिपका रह..."

"मतलब यह कि सब कुछ भूलकर उसी के साथ दफ़न हो जा!" शान्त से लारिओनिच ने अपना स्वर छेड़ा।

मुझे लगा कि इस तरह की बातें वे बेमन से कर रहे हैं, मानो किसी रिवाज की पूर्ति कर रहे हों। वह धागा जो हमें बाँधे था, चाहे जैसे भी हो, गल चुका था और उसे टूटने में देर नहीं लगी।

नशे में धुत्त गोगोलेव ऊपर तख़्ते पर पड़ा हाथ-पाँव पटक रहा था। बैठे हुए गले से वह बड़बड़ा उठा :

"अगर मैं चाहूँ तो तुम सबको जेल में बन्द करा सकता हूँ। मुझे एक भेद मालूम है! यहाँ ईश्वर में कौन विश्वास करता है? अहा-हा-हा..."

आकृतिविहीन अधूरी देव-प्रतिमाएँ अभी भी दीवार के सहारे टिकी हुई थीं और काँच की गेंदें छत से चिपकी हुई थीं। इधर कुछ दिनों से बिना कृत्रिम रोशनी के हम काम कर रहे थे, इसलिये गेंदों की ज़रूरत नहीं होती थी और उन पर धूल तथा कालिख की मटमैली तह चढ़ गयी थी। हर चीज़ मेरे स्मृति-पटल पर इतनी गहराई से नक़्श थी कि आज दिन भी, आँख बन्द करते ही, वह अँधेरा कमरा और उसकी मेज़ें, खिड़कियों की ओटक पर रखे रंगों के डब्बे, रंग करने के ब्रुश, देव-प्रतिमाएँ, हाथ-मुँह धोने का पीतल का बरतन जो आग बुझानेवालों की टोपी की तरह दिखता था, उसके नीचे कोने में रखी गन्दे पानी की बाल्टी, और तख़्ते के ऊपर से नीचे लटकी गोगोलेव की टाँग जो लाश की भाँति नीली पड़ गयी थी—सब कुछ मेरी कल्पना में मूर्त हो उठता है।

मेरा बस चलता तो विदाई के बीच में ही उठकर मैं भाग जाता। लेकिन यह

सम्भव नहीं था—उदास क्षणों को लम्बा खींचने का रूसियों को कुछ चाव होता है। नतीजा यह कि विदाई का जलसा बाकायदा मातम का रूप धारण कर लेता है।

जिख़रेव ने, भौंहें चढ़ाकर मुझसे कहा :

"मैं तुझे वह पुस्तक—'दानव'—नहीं लौटा सकता। अगर तू चाहे तो इसके लिए बीस कोपेक ले सकता है।"

लेर्मोन्तोव की पुस्तक को अपने पास से अलग करना कठिन था, ख़ास तौर से इसलिये भी कि वह मुझे आग बुझाने वालों के वृद्ध मुखिया ने भेंट की थी। लेकिन जब मैंने, कुछ विरोध-सा दिखाते हुए पैसे लेने से इंकार कर दिया तो जिख़रेव ने उन्हें चुपचाप अपने बटुवे में रख लिया और निश्चल अन्दाज़ में बोला :

"जैसी तेरी मर्जी। लेकिन यह जान रख कि मैं पुस्तक नहीं लौटाऊँगा! वह तेरे लिए नहीं है। उस तरह की पुस्तक रखकर तू किसी समय भी मुसीबत में फँस सकता है..."

"लेकिन वह तो बाज़ार में बिकती है। मैंने खुद अपनी आँखों से उसे पुस्तकों की दुकान पर देखा है!"

"इससे क्या हुआ? बाज़ार में तो पिस्तौलें भी बिकती हैं..." उसने दृढ़ता से जवाब दिया।

और उसने पुस्तक कभी नहीं लौटायी।

मालकिन से विदा लेने जब मैं ऊपर गया तो रास्ते में उसकी भतीजी से भेंट हो गयी।

"सुना है कि तू हमें छोड़कर जा रहा है?" उसने पूछा।

"हाँ, जा तो रहा हूँ।"

"जाता नहीं तो निकाल देते," कुछ उद्धत, लेकिन सच्चे हृदय से उसने कहा।

सदा नशे में धुत्त रहने वाली मेरी मालकिन बोली :

"अच्छी बात है, जा! ख़ुदा तेरा भला करे! तू बहुत बुरा और मुँहफट लड़का है हालाँकि मैंने तेरा बुरा पक्ष कभी नहीं देखा, लेकिन सब यही कहते हैं कि तू अच्छा नहीं है।"

एकाएक उसने रोना शुरू कर दिया और आँसुओं के बीच बुदबुदाते हुए कहने लगी :

"अगर मेरा पति—भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे—आज जीवित होता तो वह तेरे कान लाल करता और मार-मारकर सिर का सारा भूसा निकाल देता, लेकिन तुझे यहीं रखता और इस तरह भागने न देता! अब तो सभी कुछ बदल गया है। जरा-सी बात हुई कि बिस्तरा गोल करके चल दिया! दइया रे! इस ढंग से तो पता नहीं तू कहाँ-कहाँ की धूल छानेगा!"

16

मेले के मैदान में वसन्त की बाढ़ का पानी भरा था। पत्थर की बनी मेले की दुकानों और इमारतों के दूसरे तल्ले तक पानी चढ़ आया था। मैं अपने मालिक के साथ नाव में बैठा था। नाव मेले की इमारतों के बीच से गुजर रही थी। मैं डाँड़ चला रहा था और मालिक, नाव के पिछले हिस्से में बैठा, बेढब-सा एक डाँड़ से पंखे का काम लेते हुए पानी काट रहा था। हमारी नाव नाक उठाये, बन्द और तरंगविहीन, उनींदे से मटमैले पानी में हिचकोले खाती इस बाज़ार से उस बाज़ार में चक्कर लगा रही थी।

"इस साल वसन्त में कितनी भारी बाढ़ आयी है, शैतान चट कर जाये इसे! यह हमें अपना काम भी वक़्त पर पूरा करने नहीं देगी!" मालिक ने बड़बड़ाते हुए अपना सिगार जलाया, जिसके धुएँ से ऊनी कपड़े के जलने जैसी गन्ध आती थी।

एकाएक वह भय से चीख उठा :

"अरे बचना, नाव रोशनी के खम्भे से टकरा रही है!"

लेकिन नाव टकराई नहीं। उसे सम्भालने के बाद बोला :

"कमबख़्तों ने नाव भी हमें छाँटकर दी है! हरामी कहीं के!.."

फिर हाथ से इशारा करते हुए उसने वे जगहें दिखायीं जहाँ से, बाढ़ का पानी कम होते ही, दुकानों की मरम्मत का काम शुरू किया जायेगा। सफाचट चेहरा, छँटी हुई मूँछें और दाँतों के बीच सिगार, कोई यह नहीं कह सकता था कि वह ठेकेदार है। उसके बदन पर चमड़े की जाकेट, पाँवों में घुटनों तक के जूते, कंधे पर शिकारियों वाला थैला और सामने पाँवों से पास लेबेल मार्का छर्रेवाली कीमती दूनाली बन्दूक रखी हुई थी। सिर पर चमड़े की टोपी थी, जिसे होंठों को भींचते हुए आगे की ओर खींचकर कभी वह आँखों पर झुका लेता और चौकन्ना-सा होकर अपने चारों ओर देखता, कभी खिसकाकर पीछे गुद्दी की ओर कर लेता। एकाएक उसके चेहरे पर युवकों जैसी चपलता झलक उठती और मूँछों में इस तरह मुस्कराता मानो कोई मजेदार कल्पना उसके दिमाग में आ गयी हो। मन की मौज और तरंगों में उसे इस तरह बहता देखकर एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं लगता कि वह काम-काज के बोझ और बाढ़ के कम न होने की चिन्ता में डूबा हुआ है।

और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध था, अचरज की निश्चल भावना का बोझ मेरे हृदय पर लदा था। मुझे बड़ा अजीब मालूम होता जब मैं जीवन की चहल-पहल से शून्य इस मेला-नगर पर नज़र डालता। चारों ओर पानी ही पानी, बन्द खिड़कियों वाली इमारतों की सीधी पाँतें और ऐसा मालूम होता मानो समूचा नगर पानी में तैरता हुआ हमारी नाव के पास से गुजर रहा हो।

आसमान में बादल छाये थे। सूरज बादलों की भूलभुलैया में उलझा था।

कभी-कभी, उड़ती हुई-सी नज़र डालकर, वह नीचे की ओर देखता और फिर बादलों में खो जाता : चाँदी के बड़े थाल की भाँति शीतल और ठण्डा।

पानी भी, आसमान की ही भाँति, मटमैला और ठण्डा था। एकदम स्थिर और गतिविहीन। ऐसा मालूम होता मानो वह वहीं एक जगह जम गया है और सूनी इमारतों तथा दुकानों की पीली पाँतों के साथ-साथ नींद ने उसे भी अपने चंगुल में दबोच लिया है। जब कभी रुपहला सूरज बादलों के पीछे से झाँककर देखता तो हर चीज़ पर एक धुँधली-सी चमक छा जाती, पानी में बादलों का अक्स उभर आता और ऐसा मालूम होता मानो हमारी नाव दो आसमानों के बीच अधर में लटकी हो। पत्थर की इमारतें भी सिर उभारतीं और बे-मालूम-से अन्दाज़ में वोल्गा तथा ओका नदी की ओर बहने लगतीं। टूटे हुए पीपे, बक्से और टोकरे-टोकरियाँ, लकड़ी के छोटे-मोटे टुकड़े और घास-फूस के तिनके पानी की सतह पर डूबते-उतराते, और कभी-कभी लकड़ी के लट्ठे और बाँस मुर्दा साँपों की भाँति तैरते हुए निकल जाते।

कहीं-कहीं इक्की-दुक्की खिड़कियाँ खुली थीं। दुकानों की बालकनी की छत पर कपड़े सूख रहे थे और नमदे के जूते रखे हुए थे। एक खिड़की में से कोई स्त्री गरदन निकाले बाहर गन्दले पानी की ओर ताक रही थी। बालकनी के लोहे के एक खम्भे के सिरे से नाव बँधी थी। उसके लाल रंग का तिरमिरेदार अक्स पानी में ऐसा मालूम होता मानो मांस का लोथड़ा तैर रहा हो।

जीवन के इन चिह्नों को देखकर मालिक सिर हिलाता और मुझे बताना शुरू करता :

"देखा तूने, यहाँ मेले का चौकीदार रहता है। खिड़की में से वह छत पर चढ़ जाता है, फिर अपनी किश्ती में बैठकर चोरों की ताक में किश्ती को इधर से उधर खेता रहता है। अगर चोर नज़र नहीं आता, तो वह खुद चोरी करने लगता है..."

वह अलस और निस्संग भाव से बोल रहा था, और उसका दिमाग कहीं और उलझा हुआ था। हर चीज़ सन्नाटे में डूबी, सूनी और सपने की तरह अवास्तविक मालूम होती थी। वोल्गा और ओका नदी के पानी ने मिलकर एक भीमाकार झील का रूप धारण कर लिया था। उधर, टेढ़े-मेढ़े पहाड़ पर नगर का रंग-बिरंगा दृश्य नज़र आता था। बाग-बगीचे उसकी शोभा बढ़ाते थे। बगीचों की कोख अभी सूनी थी,—एक भी फूल कहीं नज़र नहीं आता था। लेकिन कोंपलें फूट रही थीं और घर तथा गिरजे सब हरियाली में लिपटे मालूम होते थे। ईस्टर के घण्टों की सघन ध्वनि पानी पर से तैरती हुई आ रही थी और, इतनी दूर होने पर भी, नगर के हृदय की धड़कन का हम अनुभव कर सकते थे, लेकिन यहाँ हर चीज़ उस उजाड़ क़ब्रिस्तान की भाँति सन्नाटे में डूबी थी जिसे लोगों ने भुला दिया हो।

काले पेड़ों की दो पाँतों के बीच मुख्य रास्ते से हमारी नाव पुराने गिरजे की ओर

जा रही थी। मालिक के मुँह में लगे सिगार का धुआँ उसकी आँखों को कड़ुवा कर रहा था और नाव पेड़ों के तनों से टकराकर जब उछलती थी तो खीझकर वह चिल्ला उठता था :

"क्या वाहियात नाव है!"

"आप पानी काटना बन्द कर दीजिए।"

"यह कैसे हो सकता है?" वह भुनभुनाता, "जब नाव में दो आदमी होते हैं तो एक खेता और दूसरा पतवार सम्भालता है। वह देख, उधर चीनियों का बाज़ार है..."

मेले के मैदान के चप्पे-चप्पे से मैं परिचित था, और दुकानों की वे अटपटी पाँतें मेरी खूब जानी-पहचानी थीं जिनकी छतों के कोनों पर प्लास्तर की बनी चीनी लोगों की मूर्तियाँ पालथी मारे बैठी थीं। एक समय था जब मेरे साथी खिलाड़ियों और मैंने उन पर पत्थरों से निशानेबाज़ी की थी और मेरे कुछ निशाने इतने सधे हुए और सही बैठे थे कि उनमें से कई से सिर और हाथ गायब हो गये थे। लेकिन अब मुझे अपनी इस हरकत पर गर्व का अनुभव नहीं होता था...

"देख इन दरबों को!" इमारतों की ओर संकेत करते हुए उसने कहा। "अगर मेरे पास इनका ठेका होता..."

सीटी बजाते हुए उसने अपनी टोपी को पीछे खिसकाकर गुद्दी की ओर कर लिया।

लेकिन, न जाने क्यों, मुझे लगा कि अगर उसे इन इमारतों का ठेका मिला होता तो वह भी इन्हें बनवाने में उतनी ही बेगार काटता, और इनके लिए जगह भी यही चुनता जो नीची होने के कारण वसन्त के दिनों में दो नदियों की बाढ़ में आये साल डूब जाती थी। वह भी इसी तरह का कोई चीनियों का बाज़ार बना डालता...

अपने सिगार को उसने पानी में फेंक दिया और खीज में भरकर पानी में थूक की पिचकारी छोड़ते हुए बोला :

"अब तू ही बता, पेशकोव, इसे भी क्या जीवन कहा जा सकता है—एकदम बेरस और बेरंग! पढ़े-लिखे लोगों का यहाँ अकाल है। दो घड़ी बात करने के लिए भी कोई नहीं मिलता। कभी-कभी रोब झाड़ने के लिए मन ललक उठता है, लेकिन तू ही बता, अगर कोई रोब झाड़े भी तो किसके सामने? कोई है ऐसा? नहीं, कोई नहीं। यहाँ तो केवल बढ़ई हैं, रंगसाज़ हैं, देहातिए हैं, चोर-उच्चके हैं..."

दाहिनी ओर पानी में डूबी पहाड़ी की ढाल पर, खिलौने की भाँति सुन्दर एक सफ़ेद मस्जिद था। मालिक ने कनखियों से उसकी ओर देखा, और इस तरह बोलता रहा मानो किसी भूली हुई बात के याद कर रहा हो :

"एक जर्मन की भाँति मैं भी बीयर पीने और सिगार का धुआँ उड़ाने लगा। जर्मन पक्के व्यापारी होते हैं—एकदम कुड़क मुर्ग! बीयर पीना तो खैर एक अच्छा शगल है,

लेकिन सिगार से पटरी बैठती नहीं मालूम होती। दिन भर फूँकता हूँ और फिर बीवी जान खाने लगती है : 'आज यह चमड़े जैसी बदबू कहाँ से आ रही है?' उसे क्या पता कि जीवन को थोड़ा सरस बनाने के लिए क्या कुछ करना पड़ता है... ले, अपनी पतवार अब तू खुद सम्भाल..."

उसने डाँड़ उठाकर नाव के एक बाजू रख दिया, अपनी बन्दूक़ उठाई और छत पर पालथी मारे बैठे चीनियों में से एक को अपना निशाना बनाया। चीनी को कोई नुकसान नहीं पहुँचा, छर्रे दीवार और छत पर बिखरकर रह गये। धूल का एक बादल-सा उठा, और हवा में विलीन हो गया।

"निशाना चूक गया!" बन्दूक में फिर से छर्रे भरते हुए उसने लापरवाही से कहा।

"लड़कियों से तेरी कैसी पटती है? अभी तक तेरा रोज़ा टूटा या नहीं? नहीं? अरे, मैं तो तेरह साल से ही प्रेम की नदी में गोते लगाने लगा था..."

उसने अपनी पहली प्रेमिका के बारे में इस तरह बताना शुरू किया मानो वह किसी सपने की याद कर रहा हो। वह एक नौकरानी थी। जिस नक़्शा-नवीस के यहाँ वह खुद काम करता था, उसी के घर पर वह भी काम करती थी। वह अपने प्रथम प्रेम की कहानी सुना रहा था और उसकी आवाज़ के साथ-साथ इमारत के कोनों से गन्दले पानी के टकराने की धीमी छपछप भी सुनाई पड़ रही थी। गिरजे के उस पार, दूर-दूर तक, पानी ही पानी झिलमिला रहा था जिसमें जहाँ-तहाँ, बेद वृक्ष की काली टहनियाँ सिर उठाये थीं।

देव-प्रतिमाओं की चित्रशाला में कारीगर अक्सर सेमिनारी के छात्रों का एक गीत गाया करते थे :

नीला सागर,
तूफ़ानी सागर...

नीले रंग में डूबा वह सागर कितना बेरस और बोझिल होता होगा...

"रात को मुझे नींद न आती," मेरे मालिक ने कहा, "बिस्तर से उठकर मैं उसके दरवाज़े पर जा खड़ा होता और पिल्ले की भाँति काँपता रहता। उसका घर क्या था, पूरा बर्फ़ख़ाना था। उसका मालिक अक्सर रात को उसके पास जाता था। इस बात का पूरा अन्देशा था कि कहीं वह मुझे रंगे हाथ न पकड़ ले। लेकिन मैं उससे डरता नहीं था..."

वह कुछ सोचता हुआ सा बोल रहा था, मानो किन्हीं पुराने कपड़ों को निकालकर उनकी जाँच कर रहा हो कि इन्हें अब फिर पहना जा सकता है या नहीं।

"उसने मुझे दरवाज़े के बाहर खड़ा देखा और उसे तरस आया। दरवाज़ा खोलकर बोली, 'भीतर चला आ, पगले..."

इस तरह की इतनी कहानियाँ मैंने सुनी थीं कि मेरा मन उनसे पूरी तरह ऊब चुका था। इन सब कहानियों में, समान रूप से, अगर कोई अच्छी बात थी तो यह कि लोग अपने प्रथम प्रेम का किस्सा बयान करते समय डींग नहीं मारते थे, अश्लीलता और गन्दगी से उसे बचाते थे और एक कसक के साथ बड़े चाव से उसकी याद करते थे। साफ़ था कि अपने जीवन के श्रेष्ठतम क्षणों की वे याद कर रहे होते थे और सिवा इसके अपने जीवन में अन्य किसी अच्छी चीज़ से बहुतों का वास्ता नहीं पड़ा था।

हँसते और अपने सिर को हिलाते हुए मालिक ने अचरज में भरकर कहा :

"पर घरवाली के सामने इसका कभी ज़िक्र नहीं कर सकता। नहीं, कभी नहीं! यों मैं इसे पाप या बुरा नहीं समझता। फिर भी कह नहीं सकता! यह है बात..."

मुझसे नहीं मानो अपने आपसे वह यह सब कह रहा था। अगर वह चुप रहता तो मैं बोलता होता। उस निस्तब्धता और शून्य में बातचीत करना, गाना और एकार्डियन बजाना—कुछ न कुछ करना ज़रूरी था। नहीं तो डर था कि वह मुर्दा नगर कहीं हमें भी अपनी चिर निद्रा में न खींच ले, उस ठण्डे मटमैले पानी की समाधि में कहीं हम भी डूबकर न रह जायें।

"सबसे पहली बात तो यह कि कभी कम उम्र में ब्याह न करना!" उसने मुझे सीख देनी शुरू की। "ब्याह, मेरे भाई, बहुत ही जिम्मेदारी का काम है! रहने को तो जहाँ चाहे, जैसे चाहे वहाँ जा सकता है—जैसी तेरी मर्जी! चाहे तो फ़ारस में रह—मुसलमान बनकर, चाहे मास्को में रह—संतरी बनकर, चोरी कर, चाहे दुःखी हो—सब ठीक हो सकता है! पर घरवाली तो, भाई, मौसम जैसी है, उसे नहीं बदला जा सकता... ना! यह, भाई, जूता नहीं—उतारा और फेंक दिया..."

उसके चेहरे पर से एक छाया-सी गुजर गयी। भौंहों में बल डाले वह एकटक गन्दले पानी की ओर ताकते और अपनी कुबड़ी नाक को उँगली से खुजलाते हुए बुदबुदाता रहा :

"हाँ, भाई... चौकस रह। माना कि तू अभी हवा के थपेड़े खाकर भी फिर-फिर सीधा खड़ा हो जाता है, पर कौन जाने किस के लिए कहाँ और कैसा जाल बिछा है। ज़रा चूके नहीं कि गये..."

हमारी नाव मेश्चेर्स्की झील में उगी झाड़ियों के बीच से गुजर रही थी जिसका पानी अब वोल्गा से गले मिल रहा था।

"जरा धीरे से डाँड़ चला!" मेरे मालिक ने फुसफुसाकर कहा और बन्दूक़ उठाकर झाड़ियों की ओर निशाना साधा।

मरियल-सी दो-चार मुर्गाबियों का शिकार करने के बाद बोला :

"अब सीधे कुनाविनो चल। आज साँझ वहीं रंग रहेगा। तू घर चला जाना। मेरे

बारे में पूछें तो कहना कि मुझे ठेकेदारों से काम था सो मैं वहीं फँस गया...”

बस्ती की एक सड़क पर मैंने उसे छोड़ दिया। यहाँ भी बाढ़ का पानी भरा हुआ था। इसके बाद, मेले के मैदान को पार कर, मैं स्त्रेल्का लौट आया। नाव को एक जगह बाँधकर मैं दोनों नदियों के संगम का, नगर का, जहाज़ों और आसमान का नजारा देखने लगा। आसमान में अब सफ़ेद बादल छितरे थे और ऐसा मालूम होता था मानो वे किसी भीमाकार पक्षी के पंख हों। बादलों के बीच नीली झिर्रियों में से सुनहरा सूरज झलक रहा था जिसकी एक किरण समूची दुनिया का रंग बदलने के लिए काफ़ी थी। चारों ओर खूब चहल-पहल थी, हर चीज़ में अब गति और जीवन का स्पन्दन दिखाई देता था। बेड़ों की अन्तहीन पाँतें, तेज गति से बहाव की ओर लपक रही थीं। बेड़ों पर दाढ़ीवाले देहातिए खड़े थे और लम्बे बाँसों से डाँड़ और चप्पूओं का काम ले रहे थे। वे एक-दूसरे पर और पास से गुजरने वाले जहाज़ों पर आवाज़ें कस रहे थे। एक छोटा-सा जहाज़ चढ़ाव की ओर एक खाली बजरे को खींच रहा था। नदी का पानी उसे उछालता, पटकनी देकर गिरा देना चाहता और वह मछली की भाँति बलखाकर फिर सीधा हो जाता। उसकी साँस फूल जाती, वह हाँफता और भभकारे लेता, लेकिन पीछे न हटता, पानी को चीरता और उसके निर्मम थपेड़ों से जूझता आगे बढ़ चलता। बजरे पर कन्धे से कन्धा सटाये चार देहातिए बैठे थे और अपनी टाँगों को नीचे लटकाए थे। उनमें से एक लाल क़मीज़ पहने था और वे सब गा रहे थे। गीत के बोल पकड़ में नहीं आते थे, लेकिन उनकी अद्भुत धुन जानी-पहचानी थी।

मुझे लगा कि यहाँ, नदी के इस सजीव वातावरण में एक भी चीज़ ऐसी नहीं है जो अजनबी हो, जिससे मेरा लगाव न हो और जो मुझे अनजान तथा अनबूझ मालूम होती हो। लेकिन बाढ़ में डूबा वह नगर जिसे मैं छोड़ आया था, मानो एक दुःस्वप्न था, मेरे मालिक के दिमाग की उपज, खुद उसी की भाँति अनबूझ।

नदी के दृश्य से खूब तृप्त और भरा-पूरा होने के बाद मैं घर लौट आया। पूरी शक्ति का मैंने अनुभव किया और मुझे लगा कि कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसे मैं न कर सकूँ। रास्ते में क्रेमलिन की पहाड़ी से मैंने एक बार फिर वोल्गा का नजारा देखा। ऊँचाई से धरती का विस्तार और भी सीमाहीन मालूम हुआ, लगता था कि यह धरती सभी आशाएँ और कामनाएँ पूरी करने का वायदा कर रही है।

घर पर खूब पुस्तकें पढ़ता। रानी मार्गो वाले फ़्लैट में अब एक बड़ा परिवार रहता था। पाँच लड़कियाँ, एक से एक सुन्दर, इस परिवार की शोभा बढ़ाती थी। दो लड़के थे जो स्कूल में पढ़ते थे। ये सब मुझे खूब पुस्तकें देते थे। तुर्गेनेव को तो मैं एक साँस मैं पढ़ गया। उसके लिखने का ढंग अद्भुत था : एकदम सादगी लिये, हर बात साफ़-साफ़ समझ में आनेवाली, शरद की हवा की भाँति स्वच्छ और पारदर्शी। ऐसे ही उसके पात्र थे—निर्मल और पवित्र। उसकी हर चीज़, जिसे वह अत्यन्त विनम्र भाव

से प्रतिपादित करता, सुन्दर थी—सुन्दर और अद्भुत। मैं पढ़ता और चकित रह जाता।

मैंने पोम्यलोव्स्की कृत 'सेमिनारी' उपन्यास पढ़ा। उसके पन्नों में देव-प्रतिमाओं की चित्रशाला जैसा जीवन इतने सजीव और हू-ब-हू रूप में चित्रित था कि मैं दंग रह गया। उसकी जानलेवा ऊब और घुटन से, जो क्रूर हरकतों में फूटकर जी हल्का करती थी, मैं बुरी तरह परिचित था।

रूसी पुस्तकें बड़ी अच्छी मालूम होतीं, बड़े चाव से मैं उन्हें पढ़ता। उनमें मुझे सदा अपनत्व और एक ख़ास तरह की उदासी का अनुभव होता, मानो व्रत-उपवासों के दिनों में बजनेवाले गिरजे के घण्टों की ध्वनि उनमें बन्द हो। पन्ने खोले नहीं कि उनका धुँधला संगीत प्रवाहित होने लगा।

गोगोल कृत 'मृत आत्माएँ' मैंने पढ़ीं, लेकिन बेमन से। इसी तरह 'मृत घर के पत्र' पढ़ने में भी मेरा जी नहीं लगा। 'मृत आत्माएँ', 'मुर्दा घर', 'तीन मौतें', 'जिन्दा लाश'—ये सब पुस्तकें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मालूम होती और उनके नामों को देखकर ही मेरा मन उनकी ओर से फिर जाता। 'युग-लक्षण', 'कदम-ब-कदम', 'क्या करें', 'स्मूरिन गाँव की कहानी' तथा इसी ठप्पे की अन्य पुस्तकें भी मुझे अच्छी नहीं लगी। लेकिन डिकेन्स और वाल्टर स्काट के उपन्यास मैं बड़े चाव से पढ़ता। उनकी पुस्तकों को मैं दो-दो और तीन-तीन बार पढ़ता और हर बार खुशी से छलछला उठता। वाल्टर स्काट की पुस्तकें पढ़कर छुट्टी या उत्सव के दिन किसी शानदार गिरजे में प्रार्थना याद हो आती। प्रार्थना ज़रूर कुछ लम्बी और उकता देनेवाली मालूम होती, लेकिन गिरजे का वातावरण सदा उत्सव के उछाह में डूबा रहता। और डिकेन्स के प्रति मेरा गहरा लगाव तो आज दिन तक बना हुआ है, जब भी उसे पढ़ता हूँ, मुग्ध हो उठता हूँ। वह एक ऐसा लेखक था जो कठिनतम कला में—लोगों से प्रेम करने की कला में—अत्यन्त दक्ष था।

हम लोगों का एक बड़ा-सा दल साँझ होते ही ओसारे पर जमा हो जाता : रानी मार्गो के फ़्लैट में रहनेवाले दोनों भाई और पाँचों बहनें, व्याचेस्लाव सेमाश्को नाम का एक नाकचपटा छात्र और कई अन्य। कभी-कभी एक बड़े अफसर की लड़की भी हमारे साथ आ बैठती। इस अफ़सर का नाम प्तीत्सिन था। पुस्तकों और कविताओं के बारे में बातें करते, जो मुझे अत्यन्त प्रिय थीं और जिनमें मेरी अच्छी प्रगति थी : मैं इन सबसे ज़्यादा पुस्तकें पढ़ चुका था। लेकिन अक्सर वे स्कूल की बातें करते, अपने शिक्षकों का रोना रोते। मैं उनकी बातें सुनता और मुझे लगता कि मेरा जीवन उनसे ज़्यादा उन्मुक्त है। मुझे अचरज होता कि वे यह सब कैसे बर्दाश्त कर लेते हैं। लेकिन, यह सब होने पर भी, मैं उनसे ईर्ष्या करता : यह क्या कम बड़ी बात थी कि वे विद्यालय में पढ़ रहे थे!

मेरे संगी-साथी उम्र में मुझसे बड़े थे लेकिन मुझे लगता था कि मैं उनसे ज़्यादा

परिपक्व और अनुभवी हूँ। यह भावना मुझे भीतर ही भीतर कचोटती और उनके तथा मेरे बीच एक दीवार-सी खड़ी कर देती। इस दीवार को तोड़ने के लिए मैं बेचैन हो उठता और उनके साथ घुल-मिलकर रहना चाहता। दिन भर मैं काम करता और काफ़ी साँझ बीते, धूल और गर्द से लथपथ सर्वथा भिन्न दुनिया की गहरी और विविधतापूर्ण छाप हृदय में लिये घर लौटता। इसके प्रतिकूल मेरे संगी-साथियों के अनुभव कुल मिला कर एक-से होते। लड़कियों के बारे में खूब बातें करते, पहले एक से प्रेम चलता फिर दूसरी से। कविताएँ लिखना चाहते, और इसके लिए अक्सर मेरे पास आते। मैं बड़े चाव से तुकबन्दियों पर हाथ आजमाता। मैं तुक जोड़ने में दक्ष था, गीत और कड़ियाँ अपने आप गुँथ जाती, लेकिन जाने क्यों मेरी कविताएँ हमेशा हास्य रस की रचनाएँ बन जातीं। ज़्यादातर कविताएँ प्तीत्सिन की लड़की को लक्ष्य कर लिखी या लिखवाई जाती और मैं, अदबदाकर किसी सब्ज़ी से—आम तौर से प्याज़ से—उसकी तुलना करता।

सोमाश्को कहता :

"इन पंक्तियों को तुम कविता कहते हो? ये कीलें हैं, कीलें, जिन्हें चमार जूतों में ठोकते हैं!"

अन्य किसी से पीछे न रहने की होड़ में मैं भी प्तीत्सिन की लड़की से प्रेम करने लगा। यह तो याद नहीं पड़ता कि मैं अपने प्रेम को किस तरह से उसके सामने व्यक्त करता था, लेकिन इस प्रेम चक्र का अन्त दुःखद ढंग से हुआ। एक दिन मैंने उससे कहा कि चलो, ज़्वेज़्दिन कुण्ड चलें। कुण्ड के बन्द और गन्दे पानी पर एक तख़्ता तैर रहा था। तय किया कि उसी पर कुण्ड की सैर की जायेगी। वह इसके लिए तैयार हो गयी। तख़्ते को खींचकर मैं किनारे पर ले आया और उस पर खड़ा हो गया। मेरा बोझ तो तख़्ता सम्भाल गया, लेकिन बेल-बूटों और फीतों से सजी बिल्कुल गुड़िया बनी लड़की ने जब तख़्ते के दूसरे सिरे पर पाँव रखा और मैंने गौरव से भरकर एक डण्डे के तख़्ते को किनारे से हटाया तो कमबख़्त तख़्ता धचक खा गया और वह कुण्ड में जा गिरी। मैं भी सच्चे प्रेमी की भाँति उसके साथ ही साथ कूदा और पलक झपकते ही उसे पानी से बाहर निकाल लाया। लेकिन भय और पानी की हरी काई ने लिपटकर उसे बिल्कुल चूँ-चूँ का मुरब्बा बना दिया था, और उसके सारे सौन्दर्य को बिगाड़ डाला था!

कीचड़ में लथपथ उसने अपना छोटा-सा घूँसा ताना और चिल्लाई :

"तुमने जान-बूझकर मुझे पानी में गिरा दिया!"

मैंने बहुतेरी माफ़ी माँगी, लेकन उस पर कोई असर नहीं हुआ और वह मेरी पक्की दुश्मन बन गयी।

नगर का जीवन कुछ ज़्यादा दिलचस्प नहीं था। बूढ़ी मालकिन अभी भी मुझसे

कुढ़ती और छोटी सन्देह की नज़र से देखती। वीक्तर के चेहरे पर झाँइयाँ अब और भी घनी हो गयी थीं, जो भी उसके सामने पड़ता उसी पर फनफना उठता, मानो सभी से खार खाए बैठा हो।

मालिक के पास नक़्शे बनाने का इतना अधिक काम था कि वह और उसका भाई दोनों मिलकर भी उसे नहीं निबटा पाते थे। इसलिये उसने मेरे सौतेले पिता को भी हाथ बँटाने के लिए बुला लिया।

एक दिन मेले के मैदान से मैं जल्दी लौट आया—पांचेक बजे। भोजन के कमरे में पाँव रखा ही था कि एक ऐसे आदमी पर मेरी नज़र पड़ी जिसे मैं बहुत पहले ही अपने दिमाग से ख़ारिज कर चुका था। मेरे मालिक के साथ वह चाय की मेज़ के पास बैठा था। मुझे देखते ही उसने अपना हाथ बढ़ाया। बोला :

"कहो, कैसी तबियत है?.."

उसे देखकर मैं सन्न रह गया। मुझे सपने में भी आशा नहीं थी कि उससे कभी भेंट होगी। अतीत की याद आग की लपट की भाँति मेरे हृदय को झुलसाती हुई कौंध गयी।

"यह तो डर ही गया," मालिक ने ज़ोर से कहा।

मेरा सौतेला पिता अपने जर्जर चेहरे पर मुस्कराहट लिये मेरी ओर देख रहा था। उसकी काली आँखें अब और भी ज़्यादा बड़ी मालूम होती थीं, और वह बेहद घिसा-पिटा तथा रौंदा हुआ नज़र आता था। मैंने अपना हाथ उसकी पतली, गरम उँगलियों से मिलाया।

"तो हम दोनों फिर मिल ही गये!" उसने खाँसते हुए कहा।

मैं वहाँ से खिसक गया, कुछ इतना निढाल-सा होकर मानो मुझ पर मार पड़ी हो!

हम दोनों एक-दूसरे से चौकन्ने और खिंचे से रहते। वह मुझे मेरा पूरा नाम लेकर बुलाता और बराबर के आदमी की भाँति सम्बोधित करता।

"अगर बाज़ार जाना हो तो मेरे लिए आधा पाव लाफ़ेर्म तम्बाकू, सिगरेट बनाने के विक्टर्सन मार्का सौ कागजों का पैकट और आधा सेर सासेज लेते आना। कृतज्ञ हूँगा..."

सौदा लाने के लिए जब भी वह रेजगारी देता तो वह हमेशा गरम होती। साफ़ मालूम होता कि तपेदिक ने उसे जकड़ लिया है और ज़्यादा दिनों तक नहीं चलेगा। वह खुद भी यह जानता था और बकरेनुमा अपनी काली दाढ़ी को उमेठता हुआ शान्त तथा गहरी आवाज़ में कहता था :

"असल में मेरे इस रोग का कोई इलाज नहीं है। परन्तु अगर आदमी भरपूर मांस खाये तो सम्भल जाता है। कौन जाने, मुझे भी इससे कुछ फायदा हो जाये।"

उसका पेट क्या था, पूरा अंधा कुआँ था। इतना अधिक वह खाता था कि देखकर अचरज होता था। वह दिन भर चरता और सिगरेट पीता था। उसके मुँह से सिगरेट उसी समय अलग होती थी जब कोई चीज़ उसे अपने मुँह में डालनी होती थी। उसके लिए बाज़ार से मैं रोज सासेज, मांस और सार्डीन मछली लाता था। लेकिन नानी की बहन एक अनबूझ सन्तोष के साथ मानो उसके भाग्य का आख़िरी फैसला देते हुए कहती :

"मौत को बढ़िया माल खिलाकर फुसलाया नहीं जा सकता। मौत को नहीं भरमा सकते। कभी भी नहीं!"

मालिक लोग सौतेले पिता के चारों ओर इस हद तक मँडराते कि देखकर झुँझलाहट होती। वे हमेशा और हर वक़्त कोई न कोई नई दवा तजवीज करते रहते और पीठ पीछे उसका खूब मजाक उड़ाते।

"बड़ा आया है भद्रपुरुष!" छोटी मालकिन कहती, "कहता है कि हम मेज़ की जूठन तक साफ़ नहीं करतीं जिससे मक्खियों की फौज जमा हो जाती हैं!"

"हाँ, सचमुच नवाब है!" बड़ी मालकिन स्वर मिलाती, "देखती नहीं, कोट इतना पुराना और झिन्ना हो गया है, इस पर भी वह उसे किस तरह ब्रुश से साफ़ करता है—कहीं जरा-सी धूल न रह जाये नवाबसाहब के कोट पर!"

"थोड़ा धीरज धरो, कुड़क-मुर्ग़ियो! कुछ दिनों में वह खुद ही साफ़ हो जायेगा!..." मालिक मानो मरहम लगाता।

नगर के टुटपुँजिया निवासी जिस बुरी तरह अभिजातों की टाँग खींचते और उन्हें नाहक कोंचते थे, उसने मुझे अपने सौतले पिता का पक्ष लेने के लिए मज़बूर कर दिया। इन लोगों से तो मक्खीमार खुमियाँ ही अच्छी। ज़हरीली ज़रूर होती हैं, लेकिन कम से कम देखने में खूबसूरत तो लगती हैं!

इन लोगों की दमघोट संगत से मेरे सौतेले पिता की क़रीब-क़रीब वैसी ही हालत थी जैसी कि मुर्ग़ियों के दरबे में फँसी मछली की। कहाँ मुर्ग़ियों का दरबा और कहाँ मछली,—लेकिन यह तुलना भी उतनी ही बेजोड़ और बेढंगी थी, जितना बेजोड़ और बेढंगा जीवन हम बिता रहे थे।

मुझे लगा कि मेरे सौतेले पिता में भी वैसे ही गुण मौजूद हैं जो कि मैंने कभी 'बहुत खूब' में देखे थे, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। 'बहुत खूब' और रानी मार्गो मेरी नज़र में मानो उस समूचे सौन्दर्य के मूर्तिमान् रूप थे जो मैंने पुस्तकों से प्राप्त किया था। अपने हृदय के श्रेष्ठतम तत्वों और सुन्दरतम कल्पनाओं से मैंने उन्हें सजाया था। पुस्तकें पढ़ने पर एक से एक सुन्दर चित्र मेरे दिमाग में उभरते और सब जैसे उनके साथ सम्बद्ध हो जाते। मेरा सौतेला पिता भी 'बहुत खूब' की तरह उतना ही अकेला और उतना ही अनचाहा था। घर में हरेक के साथ वह समानता का व्यवहार

करता, अपनी ओर से कभी किसी बात में टाँग न अड़ाता और संक्षेप में तथा विनम्रता के साथ सभी सवालों के जवाब देता। जब वह मेरे मालिक को सीख देता तो उसकी बातें सुनने में बड़ा मजा आता। मेज़ के पास खड़ा हुआ वह क़रीब-क़रीब दोहरा हो जाता, दबीच कागज को उँगली के लम्बे नाखून से ठकठकाता और शान्त स्वर में समझाना शुरू करता :

"मेरे ख़याल में, इस जगह शहतीर में एक डाट डालने की ज़रूरत है, जिससे कि दीवारों पर दबाव रुक जायेगा। अगर ऐसा न किया तो शहतीर दीवारों को तोड़ देंगे।"

"हाँ, यह तो बिल्कुल ठीक कहा!" मालिक बड़बड़ाता।

जब सौतेला पिता चला जाता तो मालिक की पत्नी उसे कोंचती :

"तुम भी कैसे आदमी हो? जो भी आता है, वही कान पकड़कर सबक़ पढ़ाना शुरू कर देता है!"

साँझ के भोजन के बाद सौतेला पिता बिला नागा अपने दाँत माँजता और सिर पीछे की ओर फेंककर इस तरह गरारे करता कि उसका टेंटुवा निकल आता। मालकिन न जाने क्यों यह देखकर जल-भुनकर कलाबत्तू हो जाती। जब नहीं रहा जाता तो नाक-भौं सिकोड़कर कहती :

"मेरी समझ में इस तरह गरदन उठाकर गरारे करना तुम्हारे लिए नुक़सानदेह हो सकता है, येव्गेनी वासील्येविच!"

वह केवल मुस्कराता और विनम्र स्वर में पूछता :

"क्यों, आप ऐसा क्यों सोचती हैं?"

"इसलिये कि... बस मुझे कुछ ऐसा ही मालूम होता है..."

इसके बाद वह अपनी उँगलियों के नीले-नीले नाखून साफ़ करता और उसकी पीठ फिरते ही मालकिन चहक उठती :

"देखो न, यह अपने नाखून तक साफ़ करता है। एक पाँव क़ब्र में लटका है, लेकिन फिर भी..."

"अरी कुड़क-मुर्ग़ियों!" मालिक लम्बी साँस खींचते हुए कहता। "क्या सारी बेवकूफ़ी तुम्हारे ही हिस्से में आयी है!.."

उसकी पत्नी नाराज होती :

"ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हारी जबान गलकर नहीं गिर जाती!"

रात को बूढ़ी मालकिन ख़ुदा के कान खाती :

"मेरी छाती पर मूँग दलने के लिए अब इस मरदुए को घर में ले आये हैं, भगवान! मेरे वीक्तर को कोई नहीं पूछता..."

वीक्तर ने मेरे सौतेले पिता के रंग-ढंग अपनाना शुरू कर दिया, वैसे ही धीमे

अन्दाज़ में वह चलता, उसकी भाँति ही सुनिश्चित अन्दाज़ में हाथ को हरकत देता, उसकी भाँति अपनी टाई में गाँठ लगाता और वैसे ही चटखारे लिए और चपाचप की आवाज़ किये बिना खाना खाने की कोशिश करता। फिर, अक्खड़ अन्दाज़ में, पूछता :

"मक्सीमोव, फ़्रांसीसी भाषा में 'घुटने' को क्या कहते हैं?"

"मेरा नाम येव्गेनी वासील्येविच है," मेरा सौतेला पिता शान्त भाव से उसकी भूल सुधारता।

"कोई बात नहीं। और 'छाती' के लिए फ़्रांसीसी भाषा में क्या शब्द है?"

साँझ को जब खाने बैठता तो अपनी माँ पर उल्टे-सीधे फ़्रेंच शब्दों की झड़ी लगा देता :

"मा मेर, दोन्ने मुअजन्कोर* सुअर का गोश्त!"

बड़ी मालकिन की बाँछें खिल जातीं। कहती :

"वाह रे, फ़्रांस की दुम!"

मेरा सौतेला पिता, बिना किसी परेशानी के गूँगे और बहरे आदमी की भाँति अपना मांस चबाता रहता और किसी की ओर आँख उठाकर न देखता।

एक दिन बड़ा भाई छोटे भाई से बोला :

"वीक्तर, फ्रेंच भाषा बोलना तो तुम सीख गये, अब बस महबूबा भी रख लो..."

मेरे सौतेले पिता ने जब यह सुना तो उसके चेहरे पर शान्त मुस्कराहट खेल गयी। इससे पहले और बाद में भी, मैंने उसे मुस्कराते नहीं देखा।

लेकिन मेरे मालिक की पत्नी यह सुनकर आग-बबूला हो गयी। चम्मच को मेज़ पर पटकते हुए झुँझलाकर चिल्लाई :

"तुम तो सारी हया-शर्म घोंटकर पी गये हो! घर की औरतों के सामने इस तरह की बातें करते तुम्हें जरा भी शर्म नहीं आती न?"

पिछले दरवाज़े के पास अटारी के जीने के नीचे मैं सोता था। जीने में एक खिड़की थी जहाँ बैठकर मैं पुस्तकें पढ़ता था। कभी-कभी मेरा सौतेला पिता घूमते हुए उधर आ निकलता।

"क्यों, पढ़ रहे हो?" एक दिन उसने पूछा और इतने ज़ोरों से सिगरेट का कश खींचा कि उसके सीने के भीतर जलती हुई लकड़ी के चटखने की आवाज़ सुनाई दी। फिर बोला, "कौन-सी पुस्तक है?"

मैंने उसे पुस्तक दिखा दी।

"ओह!" उसने पुस्तक के शीर्षक पर नज़र डाली और बोला, "इसे तो शायद मैं भी पढ़ चुका हूँ। सिगरेट पियोगे?"

---

* माँ, मुझे थोड़ा और दीजिये।—सं.

हम दोनों सिगरेट का धुआँ उड़ाते और खिड़की में से गन्दे अहाते की ओर देखते रहे।

"कितने अफसोस की बात है कि तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का कोई डौल नहीं है," उसने कहा, "मुझे तो तुम काफ़ी होशियार मालूम होते हो..."

"लेकिन पढ़ता तो हूँ! देखिए न..."

"यह काफ़ी नहीं है। तुम्हें स्कूली शिक्षा की ज़रूरत है, जिसका एक ढंग और कायदा होता है..."

मेरे मन में हुआ कि उससे कहूँ :

"आपने तो बाकायदा स्कूली शिक्षा पाई थी, श्रीमान जी; पर उससे हुआ क्या?"

उसने मानो मेरे मन की बात भाँप ली। बोला :

"अगर हृदय में किसी अच्छे लक्ष्य और उद्देश्य का बल हो तो स्कूली शिक्षा बड़ी मदद देती है। केवल पढ़े-लिखे लोग ही इस जीवन का चोला बदल सकते हैं..."

वह अक्सर सलाह देता :

"अच्छा हो कि तुम यह जगह छोड़ दो। यहाँ पड़े रहने में कोई तुक नहीं है..."

"लेकिन मज़दूर मुझे अच्छे लगते हैं।"

"किस मानी में?"

"वे दिलचस्प होते हैं।"

"हो सकता है..."

एक दिन कहने लगा :

"जो हो, हमारे ये मालिक दरिन्दे हैं, पूरे दरिन्दे..."

मुझे उन क्षणों और परिस्थितियों की याद हो आयी जब कि मेरी माँ ने ठीक इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया था। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसा मेरा पाँव अँगारे पर पड़ गया हो।

"क्यों, क्या तुम ऐसा नहीं सोचते?" मुस्कराते हुए उसने पूछा।

"हाँ, ऐसा ही सोचता हूँ।"

"ठीक ही है... मैं देख ही रहा हूँ।"

"लेकिन मुझे अपना मालिक फिर भी पसन्द है..."

"यों तो मुझे भी वह अच्छे हृदय का आदमी मालूम होता है... लेकिन कुछ अजीब-सा है।"

मैं उससे पुस्तकों के बारे में बातें करना चाहता था, लेकिन इस ओर उसमें कोई ख़ास लगाव नहीं दिखाई दिया।

"पुस्तकों में इतना ज़्यादा दिमाग खपाने की ज़रूरत नहीं," वह अक्सर कहता, "तिल का ताड़ बनाना पुस्तकों की विशेषता है। कोई चीज़ों को लम्बाई के रुख

खींचतान करता है, और कोई चौड़ाई के रुख। लेखक भी ज़्यादातर हमारे इन मालिकों की भाँति हैं... ओछे लोग।"

जब वह इस तरह की बातें करता तो मुझे लगता कि वह बहुत ही साहसी कार्य कर रहा है, और मुँह बाए मैं उसकी ओर देखता रहता।

"क्या तुमने गोंचारोव के उपन्यास पढ़े हैं?" एक दिन उसने पूछा।

"'युद्धपोत पल्लादा' पढ़ा है," मैंने जवाब दिया।

"'पल्लादा' तो उबा देनेवाला उपन्यास है। लेकिन मोटे तौर से गोंचारोव रूस के अत्यन्त समझदार लेखकों में से है। तुम उसका 'ओब्लोमोव' उपन्यास ज़रूर पढ़ना। यह एक अत्यन्त साहसपूर्ण और सच्चाई से भरा उपन्यास है। और कुल मिलाकर रूसी साहित्य में इसका श्रेष्ठतम स्थान है..."

डिकेन्स के बारे में उसका कहना था :

"एकदम कुड़ा... मेरी यह राय सोलहों आने सही है। लेकिन आजकल 'नया जमाना' के परिशिष्ट में एक बहुत ही दिलचस्प चीज़ छप रही है। नाम है : 'सन्त एन्थोनी का प्रलोभन'। ज़रूर पढ़ना! गिरजे और दीन-धर्म की बातों में तुम्हारी दिलचस्पी तो काफ़ी मालूम होती है। 'प्रलोभन' से तुम्हें काफ़ी लाभ पहुँचेगा।"

परिशिष्टों का एक अच्छा-ख़ासा ढेर खुद उसने लाकर मेरे सामने रख दिया और फ़्लाबर्ट की इस मजेदार कृति को मैं पढ़ गया। उसे देखकर मुझे उन अनगिनत सन्तों की जीवनियाँ याद हो आईं जिन्हें मैं पढ़ चुका था। पारखी के मुँह से भी उस तरह के अनेक किस्से और कहानियाँ सुन चुका था। जो भी हो, उसका मेरे हृदय पर कोई गहरा असर नहीं पड़ा। उससे ज़्यादा आनन्द तो मुझे 'उपिलियों फैमाली नामक एक जानवर साधनेवाले के संस्मरण' पढ़ने में आया जो इन्हीं परिशिष्टों में छपे थे।

अपने सौतेले पिता के सामने जब मैंने यह बात स्वीकार की तो शान्त स्वर में उसने कहा :

"इसका मतलब यह है कि अभी तुम्हारी उम्र इस तरह की पुस्तकें पढ़ने लायक नहीं है। जो हो, उस पुस्तक को भूलना नहीं..."

कभी-कभी वह मेरे पास घण्टों बैठा रहता, मुँह से एक शब्द न कहता, केवल जब-तब खाँसता, और सिगरेट के धुएँ के बादल उड़ाता रहता। उसकी सुन्दर आँखों में कुछ ऐसी चमक थी कि देखकर डर लगता। चुपचाप बैठा हुआ मैं उसकी ओर देखता रहता, और इस बात का मुझे जरा भी ध्यान न रहता कि यह आदमी जो इतनी ईमानदारी और खामोशी के साथ तिल-तिल करके गल रहा है और जिसके मुँह से शिकायत का एक शब्द भी नहीं निकलता, किसी ज़माने में मेरी माँ के तन-मन का स्वामी था, और माँ के साथ क्रूरता से पेश आता था। मैं जानता था कि आजकल किसी दरजिन से उसकी आशनाई है, और जब कभी उस दरजिन का मुझे ख़याल आता तो

तरस और अचरज की भावना से मेरा हृदय भर जाता था। मैं यह सोचकर स्तब्ध रह जाता कि उसकी लम्बी हड्डियों के आलिंगन में बँधना और उसका मुँह चूमना जिसमें से हर घड़ी सड़ांध निकलती थी, वह कैसे बदराश्त करती होगी? 'बहुत खूब' की भाँति मेरा सौतेला पिता भी एकाएक ऐसी टिप्पणियाँ करता जो अपनी मौलिकता में बेजोड़ होतीं।

"शिकारी कुत्ते मुझे बेहद पसन्द हैं; वे बेवकूफ होते हैं, लेकिन फिर भी मुझे अच्छे लगते हैं। वे बहुत ही सुन्दर होते हैं। सुन्दर स्त्रियाँ भी अक्सर बेवकूफ़ होती हैं..."

कुछ गर्व का अनुभव करते हुए मैंने मन ही मन सोचता :

"रानी मार्गो को अगर तुमने देखा होता तो कभी इस तरह की बात न करते!"

एक दिन उसने कहा :

"जो लम्बे अर्से तक एक साथ रहते हैं, धीरे-धीरे शक्ल में भी एक से हो जाते हैं।" उसका यह कथन मुझे इतना अच्छा लगा कि मैंने उसे अपनी कापी में दर्ज कर लिया।

मैं उसकी ओर ताकता और उसके मुँह से निकलने वाले शब्दों और वाक्यों की इस तरह प्रतीक्षा करता मानो शीघ्र ही सौन्दर्य की कोई मूर्तिमान प्रतिमा प्रकट होनेवाली हो। इस घर में जहाँ लोग एक सिरे से बेरंग और बेरस, घिसी-पिटी और जंग खाई भाषा में बातें करते थे, उसके मुँह से मौलिक शब्दों और वाक्यों को सुनकर हृदय खुशी से नाच उठता।

मेरा सौतेला पिता माँ के बारे में मुझसे कभी बात नहीं करता। बात करना तो दूर, मेरे सामने उसने माँ का एक बार भी नाम तक नहीं लिया। यह मुझे अच्छा लगता और एक तरह से आदर का भाव मैं उसके प्रति अनुभव करता।

एक दिन, यह तो याद नहीं पड़ता कि किस सिलसिले में, मैंने उससे भगवान के बारे में सवाल किया। उसने एक नज़र मुझे देखा और फिर बहुत ही निश्चल अन्दाज़ में बोला :

"मुझे नहीं मालूम। मैं भगवान में विश्वास नहीं करता।"

मुझे सितानोव का ध्यान हो आया। अपने सौतेले पिता से मैंने उसका ज़िक्र किया। जब मैं अपनी बात पूरी कर चुका तो सौतेले पिता ने वैसे ही निश्चल अन्दाज़ में कहा :

"वह हर चीज़ को बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसना और समझना चाहता है और जो लोग ऐसा करते हैं वे हमेशा किसी न किसी चीज़ में विश्वास करते हैं... लेकिन मैं किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता!"

"लेकिन यह तो एक असम्भव बात है!"

"क्यों, असम्भव क्यों है? मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूँ, तुम अपनी आँखों से देख

सकते हो कि मैं किसी चीज़ में विश्वास नहीं करता...”

लेकिन मुझे केवल एक ही चीज़ दिखाई देती थी : यह कि वह तिल-तिल करके मौत का निवाला बन रहा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि मेरे हृदय में उसके प्रति तरस की भावना थी, लेकिन पहली बार मौत के मुँह में जा रहे इंसान और खुद मौत के रहस्य में मेरी तीव्र और गहरी रुचि जागी।

वह मेरे पास एकदम बराबर में ही बैठा था। उसका घुटना मेरे घुटने को स्पर्श कर रहा था। संवेदनशील और बुद्धिमान, लोगों को वह उस नाते की नज़र से देखता जिससे कि वह उनके साथ बँधा या नहीं बँधा था, हर चीज़ के बारे में वह इस विश्वास से बातें करता मानो उसे राय देने और नतीजे निकालने का अधिकार हो। मुझे ऐसा अनुभव होता मानो वह उन तत्वों को अपने भीतर छिपाए हो जो मेरे लिए आवश्यक थे या जो कम से कम अनावश्यक चीज़ों को मुझसे दूर रखते थे। वह एक ऐसा जीव था जो शब्दों द्वारा व्यक्त न की जा सकने वाली पेचीदगी से भरा था, सही अर्थों में विचारों का ज्वालामुखी। उन तमाम भावों और विचारों के बावजूद जो मेरे हृदय में उसके लिए मौजूद थे, वह जैसे मेरा ही अंश था, एक ऐसा जीव जो मेरे अन्तर के किसी कोने में निवास करता था, मेरे चिन्तन का केन्द्र, मेरी आत्मा का सहज साथी। कल वह विलीन हो जायेगा... पूर्णतया विलीन हो जायेगा, मय उन सब बातों और भावनाओं के जो उसके हृदय और मस्तिष्क में छाई थीं और जिनकी एक झलक मुझे उसकी सुन्दर आँखों में दिखाई देती थी। जब वह विलीन हो जायेगा, कुछ भी उसका शेष नहीं रहेगा, तो जीवन के उन सूत्रों में से एक सूत्र खण्डित हो जायेगा जो मुझे इस दुनिया से बाँधे हुए है; उसकी केवल एक स्मृति भर रह जायेगी, लेकिन यह स्मृति पूर्णतया मेरे ही अन्तर में रहेगी, परिवर्तनहीन और सीमित, जब कि जीवित और परिवर्तनशील का कुछ भी शेष नहीं रहेगा...

लेकिन यह विचार मात्र हैं, इनसे भी परे वह अनबूझ चीज़ है जिसके गर्भ में विचार जन्म लेते, बढ़ते और पलते हैं, एक ऐसी चीज़ जिसका आदेश टाला नहीं जा सकता और जो हमें जीवन के घटनाक्रम पर सोचने के लिए बाध्य करती है, और इस सवाल का जवाब माँगती है कि क्यों, ऐसा क्यों है?

“ऐसा लगता है कि शीघ्र ही मुझे बिस्तर की शरण लेनी पड़ेगी,” एक दिन जब कि बूँदा-बाँदी हो रही थी मेरे सौतेले पिता ने कहा, “और मेरी इस कमज़ोरी की लाटसाहबी तो देखो, कोई काम करने को जी ही नहीं चाहता...”

अगले दिन शाम की चाय के समय उसने मेज़ और अपने घुटनों पर से जूठन के कण साफ़ करने में कमाल कर दिया, और देर तक इस तरह हाथों को हरकत देता रहा मानो किसी अदृश्य गन्दगी को भगाने और झाड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। बूढ़ी मालकिन ने पलकों के नीचे से उसकी ओर देखा, और अपनी बहू से फुसफुसाकर

बोली :

"देख तो, किस तरह अपने परों और बालों को नोच और झाड़-पोंछकर सँवार रहा है..."

इसके दो दिन बाद वह काम पर नहीं आया, और एक दिन बूढ़ी मालकिन ने मुझे एक बड़ा-सा सफ़ेद लिफाफा देते हुए कहा :

"यह ले, कल दोपहर के क़रीब एक औरत इसे लेकर आयी थी, पर मैं देना भूल गयी। जवान, सुन्दर-सी औरत थी, जाने कौन लगती है तेरी!"

लिफ़ाफ़े के भीतर, बड़े-बड़े अक्षरों में, अस्पताली कागज पर निम्न सन्देश लिखा था :

"एकाध घण्टे का समय मिल सके तो आना। मैं मरतीनोव्स्काया अस्पताल में हूँ।—ये. म."

अगले दिन सवेरे ही मैं अस्पताल पहुँच गया और एक वार्ड में अपने सौतेले पिता के पायताने जाकर बैठ गया। वह बिस्तर से भी ज़्यादा लम्बा था, और उसके पाँव जिनमें वह भूरे रंग के मोजे पहने था, पलंग के पायताने से बाहर निकले हुए थे। उसकी खूबसूरत आँखें पीली दीवारों का चक्कर लगातीं और मेरे चेहरे तथा उस लड़की के छोटे-छोटे नाजुक हाथों पर आकर टिक जातीं जो उसके सिरहाने एक स्टूल पर बैठी थी। लड़की ने उसके तकिये पर अपने हाथ रख दिये और मेरा सौतेला पिता मुँह बाये अपने गाल से उन्हें सहलाने लगा। लड़की गदराये बदन की थी, और गहरे रंग की सादी पोशाक पहने थी। उसके अण्डाकार चेहरे पर आँसुओं की झड़ी लगी थी और उसकी नीली आँखें सौतेले पिता के चेहरे पर, उसके गालों की बुरी तरह उभरी हड्डियों पर, पिचकी हुई नाक और बेरंग, मुर्दनी छाए मुँह पर जमी थीं।

"अगर इस आख़िरी वक़्त भगवान का नाम इनके कानों में पड़ जाता," वह फुसफुसा रही थी, "लेकिन यह हैं कि पादरी का मुँह तक नहीं देखना चाहते। इन्हें कोई कैसे समझाये..."

उसने तकिये से अपने हाथ उठा लिये और उन्हें इस तरह अपनी छातियों पर रखा मानो भगवान की याद कर रही हो।

एक क्षण के लिए मेरे सौतेले पिता में कुछ चेतना का संचार हुआ। भौंहे चढ़ाकर उसने छत की ओर ताका मानो किसी चीज़ की याद कर रहा हो। इसके बाद उसने अपना क्षयग्रस्त हाथ मेरी ओर फैला दिया।

"ओह तुम?... तुम आ गये... बहुत, बहुत शुक्रिया। देखो न... क्या बेवकूफ़ी की हालत है यह भी..."

यह कहते-कहते वह थक गया और उसने अपनी आँखें मूँछ लीं। नीले नाखूनवाली उसकी लम्बी और सर्द उँगलियों को मैंने सहलाया और लड़की ने धीमे

स्वर में फिर अनुरोध किया :

"येव्गेनी वासील्येविच, मेरी ख़ातिर मान जाओ! पादरी को..."

सौतेले पिता ने आँखें खोलीं और उसकी ओर इशारा करते हुए मुझसे बोला :

"इसे जानते हो? यह बहुत प्यारी..."

उसकी जबान रुक गयी, मुँह और भी ज़्यादा खुल गया, और एकाएक भरभराई-सी आवाज़ में कौवे की भाँति चीख उठा। वह बुरी तरह से छटपटाया, कम्बल उतरकर अलग हो गया और पलंग पर बिछे गद्दे को उसने अपने हाथों में दबोच लिया। लड़की के हृदय से भी एक चीख निकली और कुचले हुए तकिये में सिर गड़ाकर वह सुबकियाँ भरने लगी।

सौतेले पिता को मरने में जरा भी देर नहीं लगी। बदन के ठण्डा पड़ते ही उसके चेहरे पर एक अद्‌भुत शान्ति छा गयी और उसकी आकृति का समूचा सौन्दर्य लौट आया।

लड़की को अपनी बाँह का सहारा दिए मैं अस्पताल से चल दिया। वह रो रही थी और उसके पाँव इस तरह लड़खड़ा रहे थे मानो बहुत दिनों की बीमार हो। उसके हाथ में एक रुमाल था जिसे दबा-सिकोड़कर उसने गेंद बना लिया था, और रह-रहकर उससे पहले एक आँख के आँसू सोखती थी और फिर दूसरी के। रुमाल के इस गेंद को उसका हाथ बराबर कस और दबोच रहा था, और इस तरह वह उसे सम्भाले थी मानो वह उसकी आख़िरी और जान से भी ज़्यादा प्रिय निधि हो।

एकाएक वह ठिठककर खड़ी हो गयी और निढाल-सी होकर उसने मेरा सहारा लिया। फिर वेदना और शिकायत के डूबे स्वर में बोली :

"जाड़ों तक भी तो नहीं रहे... आह मेरे भगवान, तूने यह क्या किया?"

इसके बाद आँसुओं में भीगा अपना हाथ उसने मेरी ओर बढ़ाया और बोली :

"अच्छा तो मैं अब चलती हूँ। वे हमेशा तुम्हारी तारीफ़ करते थे। कल उनकी मिट्टी..."

"चलिये, आपको घर तक छोड़ आऊँ?"

उसने एक नज़र इधर-उधर देखा। फिर बोली :

"क्या ज़रूरत है? अभी काफ़ी उजाला है।"

नुक्कड़ पर रुककर मैंने उसे देखा। उसके डग बहुत ही अनमने भाव से सड़क पर पड़ रहे थे, ऐसे इंसान की तरह जिसे कहीं जाने की जल्दी न हो।

अगस्त का महीना था। पेड़ों से पत्ते झड़ रहे थे।

अपने सौतेले पिता के आख़िरी क्रिया-कर्म में मैं शामिल नहीं हो सका, और न ही उस लड़की से फिर कभी मेरी भेंट हुई...

16

हर रोज़ सुबह छह बजे ही मैं मेले के मैदान की ओर रवाना हो जाता, जहाँ मैं काम करता था। वहाँ काफ़ी दिलचस्प लोगों से मेरी मुलाक़ात होती। सफ़ेद बालोंवाला बढ़ई ओसिप जिसकी जुबान छुरी की धार की भाँति तेज थी। वह बहुत ही होशियार कारीगर था और देखने में बिल्कुल सन्त निकोलाई मालूम होता था। कुबड़ा येफ़ीमुश्का जो छत छाने का काम करता था; राजगीर प्योत्र जो पक्का भगत था, हमेशा कुछ सोचता रहता था और देखने में भी किसी सन्त की भाँति मालूम होता था। प्लस्तरकार ग्रिगोरी शिशलिन खूबसूरत था : सुनहरी दाढ़ी, नीली आँखें, और चेहरे पर शान्त तथ भले स्वभाव की चमक।

नक़्शानवीस के यहाँ अपनी नौकरी के दूसरे दौर में ही मैं इन लोगों से परिचित हो गया था। हर इतवार को वे आते और बहुत ही रोबीले तथा ठाठदार अन्दाज़ में रसोईघर में प्रवेश करते। बहुत ही बढ़िया ढंग से वे बातें करते और रसीले तथा लच्छेदार शब्दों की झड़ी लगा देते। उनकी बातों में मुझे नयापन और अजीब ताजगी दिखाई देती। भारी-भरकम डील-डौलवाले ये देहातिये मुझे सिर से पाँव तक भले मालूम होते। वे सभी अपने-अपने ढंग से दिलचस्प थे और कुनाविनो के कमीने, नशेबाज़ तथा चोर टुटपुँजियों से लाख दर्जे अच्छे थे।

उन दिनों प्लस्तरकार शिशलिन मुझे सबसे अच्छा लगता था। एक दिन तो मैंने उससे यह तक कहा कि काम सिखाने के लिए मुझे अपना शागिर्द बना ले। लेकिन उसने मंजूर नहीं किया। गोरी-चिट्टी उँगली से अपनी सुनहरी भौंह को खुजलाते हुए नर्मी से बोला :

"अभी तेरी उम्र बहुत कम है। हमारा धंधा आसान नहीं है, अभी एक-दो साल और ठहर जा..."

इसके बाद अपने खूबसूरत सिर को जरा पीछे की ओर फेंकते हुए बोला :

"क्यों, जीवन बहुत कठोर मालूम होता है, क्या? लेकिन कोई बात नहीं। बस डटा रह, अपने पर जरा काबू रख, सब ठीक हो जायेगा!"

यह तो नहीं कह सकता कि उसकी इस भली सीख से क्या कुछ लाभ मैंने उठाया, लेकिन मुझे अब तक सीख याद है और उसके प्रति कृतज्ञता से मेरा हृदय भरा है।

ये लोग हर रविवार की सुबह अब भी मेरे मालिक के घर जमा होते, रसोईघर में मेज़ के चारों ओर बेंच पर बैठ जाते और दिलचस्प बातें करते हुए मालिक के आने का इन्तज़ार करते। मालिक आता, बहुत खुश होकर उनका अभिवादन करता, उनके मज़बूत हाथों को अपने हाथ में लेकर हिलाता और देव-प्रतिमाओं वाले कोने में बेंच पर बैठ जाता। इसके बाद सप्ताह भर का हिसाब-क़िताब शुरू हो जाता, नोटों की

गड्डियाँ आतीं, देहातिये अपने बिलों और फटी-पुरानी बहियों को निकालकर मेज़ पर फैला लेते।

हँसते और चुटकियाँ लेते हुए मालिक उन्हें और वे मालिक को धोखा देने की कोशिश करते। कभी-कभी खूब झिकझिक होती, लेकिन आम तौर से हँसी-खुशी और एक-दूसरे के साथ छेड़छाड़ के वातावरण में ही वे सारा हिसाब निबटा लेते।

"भई वाह, लगता है किसी बहुत ही चालाक दाई ने तुम्हें घुट्टी पिलाई थी!" वे मालिक से कहते।

झेंपती-सी हँसी हँसते हुए जवाब देता :

"तुम्हीं कौन कम हो—जरा आँख बची कि माल यारों का! क्यों, ठीक कहता हूँ न, कुड़क-मुर्ग़ो!"

येफ़ीमुश्का मान लेता, "और हो भी क्या सकता है, दोस्त?"

गम्भीर प्योत्र कहता :

"चोरी से कमाए-बचाए माल पर ही तो आजकल गुजारा है। ईमानदारी की सारी आमदनी ख़ुदा और जार के चढ़ावे में चली जाती है..."

"तब तो तुम्हारी थोड़ी-बहुत हजामत बना लेना कोई पाप नहीं है!" मालिक हँसते हुए कहता।

वे भी मजाक में ही जवाब देते :

"इसका मतलब कि हमको उल्लू बनाना चाहते हो?"

"हमसे चार सौ बीसी!"

ग्रिगोरी शिशलिन अपनी झाड़दार दाढ़ी छाती से लगाते हुए गुनगुनाकर अनुरोध करता :

"क्यों भाइयो, अगर हम एक-दूसरे को धोखा दिए बिना अपना कारोबार करें तो कैसा हो? एकदम ईमानदारी से। न कोई झँझट, न झगड़ा। सारा काम इतनी सहूलियत से हो कि पता तक न चले। बोलो, भले लोगो, तुम्हारी क्या राय है?"

यह कहते-कहते उसकी नीली आँखें तरल और गहरी हो उठतीं। इस समय उसके चेहरे की चमक देखते ही बनती थी। उसका सुझाव सभी को मानो उलझन में डाल देता और एक-दूसरे से आँखें बचाते वे इधर-उधर देखने लगते।

सलोना-सा ओसिप साँस खींचते हुए और तरस-सा खाते हुए देहातियों की वकालत में बुदबुदाता, "देहातियों की बात छोड़ो, वे अगर चाहें तो भी भले लोगों को ज़्यादा धोखा नहीं दे सकते।"

काला और आगे को झुके कन्धोंवाला राज मेज़ पर दोहरा होते कहता :

"पाप तो गहरी दलदल है, उसमें पाँव रख नहीं कि आदमी धँसता ही जाता है!"

मालिक भी उनके ही अन्दाज़ को अपनाते हुए जवाब देता :

"मैं तो अपनी सारंगी के सुर तुम्हीं लोगों के सुर से मिलाता हूँ।"

कुछ देर तक वे इसी तरह फ़लसफ़ा झाड़ते रहते और इसके बाद फिर एक-दूसरे को चकमा देने पर उतर आते। हिसाब-क़िताब निबट जाने पर वे उठते, थके हुए से और पसीने में सराबोर, और चाय के लिए ढाबे की ओर चल देते। साथ में मालिक को भी खींच ले जाते।

मेले में मेरा काम इस बात की निगरानी रखना था कि ये लोग कील-काँटे, ईंटें और इमारती लकड़ी चुराकर न ले जायें। कारण कि मेरे मालिक के साथ काम करने के अलावा इन लोगों ने खुद भी ठेके ले रखे थे और जब भी उन्हें मौका मिलता आँखों में धूल झोंककर माल तिड़ी कर देते थे।

मेरे साथ वे बड़े प्यार से पेश आये। पर शिशलिन ने कहा :

"क्यों तुझे याद है, तू काम सीखने के लिए मेरा शागिर्द बनना चाहता था? अब देख, तू कहाँ पहुँच गया, मेरा साहब बनेगा, हैं?"

"ठीक है, ठीक है," ओसिप ने चुटकी ली, "कर जी भरकर चौकसी।"

प्योत्र के स्वर में तीखापन था। बोला :

"सवाल यह है कि इस जवान सारस को बूढ़े चूहों की निगरानी पर क्यों रखा गया?..."

मेरी जिम्मेदारियों से मुझे बुरी तरह उलझन होती। इन लोगों के सामने मुझे शर्म मालूम होती। मैं इनको अपने से बड़ा और किसी ऐसे रहस्य और ज्ञान का धनी समझता था जो मेरे लिए दुर्लभ था। फिर भी मुझे उनकी इस तरह चौकसी करनी पड़ती मानो वे चोर और उचक्के हों। शुरू-शुरू में तो यह काम मुझे एक बहुत बड़ा बवाल मालूम हुआ। मेरी समझ में न आता कि कैसे क्या करूँ। लेकिन शीघ्र ही ओसिप ने मेरी उलझन का अन्दाज़ा लगा लिया और एक दिन मुझसे अकेले में बोला :

"सुन, छोकरे, तू मुँह-वुँह मत फुला, इससे कुछ होने का नहीं, समझा?"

मेरी समझ में कुछ नहीं आया, सिवा इसके कि वृद्ध की दक्ष आँखें मेरी स्थिति के बेढंगेपन को समझती हैं। नतीजा इसका यह कि देखते न देखते हम एक-दूसरे से खूब खुलकर बातें करने लगे।

वह मुझे अलग किसी कोने में सीख दिया करता :

"अगर तू जानना चाहता है तो सुन, राज प्योत्र हम सब से बड़ा चोर है। एक तो वह लालची है, दूसरे उसके कन्धों पर काफ़ी बड़े परिवार का बोझ है। उस पर कड़ी निगाह रखना। हर चीज़ पर वह हाथ साफ़ करता है—और कुछ न होगा तो मुट्ठी भर कीलें जेब में डाल लेगा, दस-पाँच ईंटें खिसका देगा, पोटली में बाँधकर चूना-मिट्टी तिड़ी कर देगा। कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसे वह छोड़ता हो! वैसे आदमी बहुत भला है, भगतों जैसा उसका स्वभाव है, पढ़ना-लिखना जानता है, लेकिन चोरी का ऐसा चस्का पड़ा

है कि पीछा नहीं छोड़ता! अब येफ़ीमुश्का को ही देख—उसके लिए औरतों में ही सब कुछ है। और है गऊ-सा सीधा, तुझे उससे कोई खतरा नहीं। दिमाग भी उसका तेज है। कुबड़े वैसे सभी दिमाग के तेज और खूब चतुर होते हैं! और ग्रिगोरी शिशलिन—वह कुछ सनकी दिमाग का है। दूसरों की चीज़ें लेना दूर, वह उन चीज़ों को भी अपने कब्जे में नहीं रख पाता जो उसकी अपनी हैं! उसे सब बेवकूफ़ बना सकते हैं, लेकिन वह किसी को बेवकूफ़ नहीं बना सकता! उसका हर काम बेतुका होता है...”

“क्या वह भला आदमी है?”

ओसिप ने आँखें सिकोड़कर इस तरह मुझे देखा मानो बहुत दूर से देख रहा हो, और इसके बाद उसने ऐसे शब्द कहे जो कभी नहीं भूले जा सकते :

“हाँ, वह भला आदमी है! काहिल लोगों के लिए भला बनना सबसे आसान काम है। समझे बचुआ, दिमागी पूँजी का जब दिवाला निकल जाता है, तभी आदमी भला बनता है!...”

“और अपने बारे में तुम क्या कहते हो?” मैंने उससे पूछा।

हल्की-सी हँसी के साथ उसने जवाब दिया :

“अपने बारे में तो मैं एक लड़की की भाँति कहता हूँ : सफ़ेद बाल और एकाध दरजन नाती-पोते हो जाने के बाद जब मैं नाना बन जाऊँगा, तब तुझे बताऊँगा कि मैं कैसा था! तब तक तुझे इन्तज़ार करना होगा। या फिर अपने दिमाग से काम ले और पता लगा कि मैं कैसा हूँ। मेरी ओर से तुझे पूरी छूट है!”

उसने मेरे उन तमाम अन्दाज़ों को उलट-पुलट कर दिया जो मैंने उसके और दूसरों के बारे में लगा रखे थे। उसने जो कुछ बताया था, उसमें सन्देह करने की गुंजाइश नहीं थी। मैं नित्य देखता कि येफ़ीमुश्का, प्योत्र और ग्रिगोरी भी इस खूबसूरत बूढ़े को अपने से ज़्यादा चतुर और दुनियावी मामलों का जानकार समझते हैं। वे हर बात और हर मामले में उससे सलाह लेते। उसकी बातों को ध्यान से सुनते और हर तरह से उसका मान करते।

“जरा बताओ तो सही कि इस मामले में हम क्या करें,” वे उससे अक्सर कहते और वह अपनी सलाह देता। लेकिन ऐसे ही एक दिन अपनी सलाह देने के बाद जब ओसिप चला गया तो राजगीर ने ग्रिगोरी से दबे स्वर में कहा :

“नास्तिक है, नास्तिक!”

और ग्रिगोरी ने हँसते हुए जोड़ दिया :

“मसखरा है, पूरा मसखरा!”

प्लस्तरकार ने दोस्ती का भाव जताते हुए मुझे चेताया :

“मक्सीमिच, कहीं इस बूढ़े के चक्कर में न फँस जाना। उससे बहुत होशियार रहने की ज़रूरत है। पलक झपकते ही वह तुझे चकमा दे जायेगा! इन खूसट बूढ़ों

से भगवान ही बचाए!”

मेरी समझ में कुछ न आता।

मुझे ऐसा मालूम होता कि राज इनमें सबसे अधिक ईमानदार और नेक है। वह हमेशा थोड़े में बात करता और उसके शब्द सीधे हृदय में पैठ जाते। उसके विचार बहुतकर भगवान, मौत और नरक के चारों ओर मँडराते रहते।

“आह भाइयो, आदमी चाहे जितने हाथ-पाँव मारे और चाहे जितने मनसूबे बाँधे, आख़िर डेढ़ हाथ कफ़न और इस धरती की मिट्टी की उसे शरण लेनी पड़ती है!”

वह पेट के किसी रोग का शिकार था। कभी-कभी तो ऐसा होता कि कई-कई दिन बीत जाते और वह मुँह में एक दाना तक न डालता, अगर जरा-सा कण भी उसके पेट में चला जाता तो दर्द के दौरों और मतलियों के मारे उसका बुरा हाल हो जाता।

कुबड़ा येफ़ीमुश्का भी भला और ईमानदार मालूम होता था, लेकिन था कुछ बौड़म ही, और कभी-कभी अपने आप को एकदम अल्लाह मियाँ पर छोड़कर इस तरह घूमता मानो उसने होश-हवाश खो दिए हों। वह हमेशा किसी न किसी स्त्री के प्रेम में पागल रहता और स्त्रियों में से हरेक का समान शब्दों में वर्णन करता :

“मैं झूठ नहीं बोलता, औरत नहीं, एकदम मलाई का फूल है, चिकनी और मुलायम!”

जब कुनाविनो की मुँहज़ोर स्त्रियाँ दुकानों के फ़र्श धोने आतीं तो येफ़ीमुश्का छत से नीचे उतर आता और किसी कोने में खड़ा होकर अपनी चमकदार आँखों को वह कसकर सिकोड़ लेता और उसका मुँह प्रसन्नता में, इस कान से उस कान तक फैल जाता। मगन भाव से वह बुदबुदाता :

“आह, कितने रसीले निवाले भगवान ने मेरे मार्ग में छितरा दिए हैं। जीवन का सुख अपने आप उमड़ता हुआ मेरी ओर चला आ रहा है। जरा उसे देखो, एकदम मलाई का फूल है! समझ में नहीं आता कि किन शब्दों में मैं अपने इस भाग्य की सराहना करूँ जिसने इतना बढ़िया उपहार मुझे भेंट किया है! इसका सौन्दर्य क्या है चिंगारी है जो जल्दी ही मुझे भस्म कर डालेगी!”

यह सुन स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँसतीं और एक-दूसरी को टहोका मारते हुए कहतीं :

“हाय राम, इस कुबड़े को तो देखो, क्या गलगल हुआ जा रहा है!”

उनके इन मजाकों का उस पर कोई असर न होता। उभरे हुए गालोंवाला उसका चेहरा धीरे-धीरे उनींदा-सा हो जाता, अपनी आवाज़ पर जैसे उसका कुछ काबू न रहता और रसीले शब्दों की मदमत्त धारा उसके मुँह से प्रवाहित होने लगती। स्त्रियों पर एक नशा-सा छा जाता और अन्त में बड़ी आयु की कोई स्त्री अचरज में भरकर कह उठती :

"अरी देखो तो छबीला कैसे तड़प रहा है!"

"वाह, क्या चहक रहा है..."

पर कोई अड़ियल अड़ी रहती :

"या कोई भिखारी गिरजे के दरवाज़े पर भीख माँग रहा है।"

लेकिन येफ़ीमुश्का भिखारी जरा भी न मालूम होता। मज़बूत तने की भाँति उसके पाँव दृढ़ता से धरती पर जमे होते, उसकी आवाज़ का जादू हर घड़ी फैलता और बढ़ता जाता और उसके शब्दों का मोहिनी मन्त्र अपना पूरा ज़ोर दिखाता। स्त्रियों का बोलना बन्द हो जाता और वे ध्यान से सुनतीं। ऐसा मालूम होता मानो शहद में लिपटे अपने शब्दों से वह कोई मोहक जाल बुन रहा है।

और परिणाम होता कि रात के भोजन के समय या जब सब काम खत्म कर चुके होते, तब अपना भारी चौकोर सिर हिलाते हुए और अचरज में भरकर अपने साथियों से कहता :

"आह कितनी प्यारी, कितनी मीठी औरत... एकदम शहद! जीवन में पहली बार इतनी मिठास देखी!"

स्त्रियों को अपने वश में करने के किस्से जब वह सुनाता तो अन्य लोगों की भाँति न तो वह शेखी बघारता और न उन स्त्रियों का मज़ाक उड़ाता। केवल उसकी आँखें प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्ण अचरज के भाव से खुली की खुली रह जातीं।

सिर हिलाते हुए ओसिप कहता :

"वाह, आदम की औलाद, ज़रा बता तो तेरी उम्र कितनी हो गयी?"

"चार ऊपर चालीस। लेकिन उम्र से क्या होता है? आज तो मेरी उम्र पाँच साल घट गयी। आज मैंने वैतरणी में गोता लगाया है और जीता-जागता तुम्हारे सामने मौजूद हूँ। मेरा हृदय फूल की भाँति खिला है। भगवान ने औरत को भी खूब बनाया है!"

राज ने कड़े स्वर में कहा :

"मेरी बात गाँठ बाँध ले,—अभी भले ही तुझे हरियाली दिखाई दे, लेकिन पचास पार करते ही तेरी यह हरकतें तुझे खून के आँसू रुलायेंगी!"

ग्रिगोरी शिशलिन ने भी लम्बी साँस खींची :

"तूने तो बेशर्मी की हद कर दी, येफ़ीमुश्का!"

मुझे लगा कि अपने मुकाबले में कुबड़े को बाज़ी मारते देख खूबसूरत शिशलिन अब अपने जी की जलन मिटा रहा था।

ओसिप ने अपनी मुड़ी हुई रुपहली भौंहों के नीचे से झाँककर सब पर एक नज़र डाली। हँसते हुए बोला :

"हर छोरी की अपनी कमज़ोरी, एक माँगे चम्मच-प्याला, दूसरी कहे कपड़ा-लत्ता ला, कोई चाहे ज़ेवर-गहना, बुढ़िया सबको होकर रहना।"

शिशलिन विवाहित था। लेकिन उसकी पत्नी देहात में रहती थी। फ़र्श साफ़ करने वाली स्त्रियों को देखकर उसका मन भी ललक उठता। उन्हें पाना कुछ मुश्किल न था। कारण कि उनमें से प्रत्येक कुछ फालतू आय की खातिर खिलौना बनने के लिए तैयार थी। भूख की मारी इस बस्ती में आमदनी का यह तरीका भी उसी तरह चालू था जैसे कि अन्य। लेकिन वह खूबसूरत देहाती स्त्रियों को हाथ नहीं लगाता था, चेहरे पर एक अजीब भाव लिये वह उन्हें दूर से ही यों देखता रहता था, मानो उसे उन पर या अपने पर तरस आ रहा हो। और जब वे खुद उससे छेड़छाड़ करतीं या उसे उकसाना शुरू करतीं तो वह झेंप जाता और हँसकर टालता हुआ चला जाता :

"अरे यह क्या, देखो न..."

येफ़ीमुश्का को उसकी इस हरकत पर एकाएक विश्वास न होता। उसे कोंचता हुआ कहता :

"तू आदमी है या घनचक्कर? इतना अच्छा मौका भी भला कोई अपने हाथ से जाने देता है?"

ग्रिगोरी अपनी सफाई देता, "भाई मेरे, मैं शादीशुदा आदमी हूँ।"

"तो इससे क्या हुआ? उसे सपने में भी इसका पता नहीं चलेगा।"

"घरवाली को धोखा नहीं दिया जा सकता, भाई! अगर मर्द इधर-उधर मुँह मारता है तो घरवाली इसका हमेशा पता लगा लेती है!"

"सो कैसे?"

"यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन अगर खुद उसके आँचल में कोई दाग़ नहीं लगा है तो वह ज़रूर पता लगा लेगी। इसी तरह अगर मैं पाक-साफ़ रहता हूँ और मेरी घरवाली बदकारी पर उतर आती है, तो मुझे इसका पता लग जायेगा..."

"सो कैसे?" येफ़ीमुश्का फिर चिल्लाकर पूछता।

ग्रिगोरी शान्त स्वर में बोलता :

"यह मैं नहीं जानता..."

येफ़ीमुश्का झुँझला उठता। हाथ हिलाते हुए कहता :

"भला यह भी कोई बात हुई... पाक-साफ़... नहीं जानता... तू आदमी है या घनचक्कर?"

शिशलिन की देख-रेख में कुल मिलाकर सात मज़दूर काम करते थे। उसके साथ उनके सम्बन्ध मालिक-नौकर के से नहीं, बल्कि अधिक सरल थे। पीठ पीछे वे उसे बछिया का ताऊ कहते। जब वह आता और देखता कि उसके आदमी काम में ढील कर रहे हैं तो वह करनी उठाता और ऐसी लगन से काम में जुट जाता कि देखते ही बनता। साथ ही मुलायम आवाज़ में कहता जाता :

"लगा दो तेज हाथ, प्यारो, तेज-तेज हो जाओ!"

एक दिन अपने मालिक के उतावलेपन और कोंचने से मज़बूर होकर मैंने ग्रिगोरी से कहा :

"तुम्हारे ये मजदूर बिल्कुल निठल्ले हैं!.."

यह सुन वह मानो कुछ अचरज में पड़ गया। आँखें फाड़कर बोला :

"क्या सचमुच?"

"हाँ, यह काम कल दोपहर तक खत्म हो जाना चाहिए था, लेकिन मालूम होता है कि आज भी पूरा नहीं होगा..."

"यह बात तो ठीक है। वे इसे आज भी पूरा नहीं कर सकेंगे," उसने सहमति प्रकट की और फिर कुछ रुककर हिचकिचाते हुए बोला :

"मेरे क्या आँखें नहीं हैं? मैं भी सब देखता और जानता हूँ। लेकिन मैं उन्हें डण्डे से नहीं हाँक पाता। मुझे शर्म मालूम होती है। ये सब अपने ही तो लड़के हैं और अपने ही गाँव के। प्रभु ने आदम से कहा था : जा, अपनी एड़ी-चोटी का पसीना बहा और अपना पेट भर! हम सब के लिए प्रभु ने यह आदेश दिया था। क्यों ठीक है न? कोई भी इस आदेश से बरी नहीं है, न मैं, न तू। लेकिन तू और मैं उनके मुक़ाबले कम मेहनत करते हैं। इसीलिये मुझे शर्म मालूम होती है। मैं उन्हें डण्डे से नहीं हाँक सकता..."

वह हर घड़ी कुछ न कुछ सोचता रहता। कभी-कभी ऐसा होता कि उसे पता तक न चलता और मेले के मैदान की सूनी सड़कों में से किसी एक को पार करता हुआ वह ओब्वोदनी नहर के पुल पर पहुँच जाता और वहाँ रेलिंग पर झुका हुआ घण्टों पानी की ओर ताकता, आकाश अथवा ओका नदी के पार खेत-खलिहानों पर नज़र डालता रहता। उसके पास आकर अगर पूछा जाता :

"यहाँ क्या कर रहे हो?"

तो वह चौंक उठता और सकपकाकर मुस्करा देता, "अरे, कोई ख़ास बात नहीं... यों ही जरा सुस्ताने और इधर-उधर का नज़ारा देखने के लिए खड़ा हो गया था..."

वह अक्सर कहता :

"भगवान ने भी हर चीज़ क्या ठीक-ठिकाने से बनाई है। आसमान और यह धरती जिस पर नदियाँ बहती हैं और नदियों में डोंगे, नाव और बजरे तैरते हैं। उनमें बैठकर चाहे जहाँ चले जाओ—रियाज़ान, रीबिन्स्क, पेर्म या आस्त्रख़ान। एक बार मैं रियाज़ान गया था। नगर बुरा नहीं है, लेकिन उदासी में डूबा हुआ,—नीज़्नी नोव्गोराद से भी ज़्यादा उदास। हमारा नीज़्नी तो फिर भी मजे की जगह है। और आस्त्रख़ान? वह और भी मनहूस है। कल्मीक जाति के लोग वहाँ बहुत हैं। मुझे वे जरा भी अच्छे नहीं लगते। कल्मीक हों, चाहे मोर्दोविआई, तुर्क हों चाहे जर्मन, ग़ैर देशों में जन्मे सभी लोग मुझे बेकार की बला मालूम होते हैं।..."

वह बहुत धीरे-धीरे बोलता। उसके शब्द मानो सावधानी से डग रखते किसी ऐसे आदमी को ढूँढ़ रहे हों जो उससे सहमत हो सके। राज प्योत्र ऐसा ही आदमी था जो आम तौर से उसी के स्वर में स्वर मिलाता था।

"ग़ैर देशों में जन्मे नहीं, बैरी देश में जन्मे कहो," प्योत्र गुस्से में विश्वासपूर्वक कहता, "ईसा के बैरी, बैरी धर्म के..."

ग्रिगोरी का चेहरा खिल उठता :

"कुछ भी कहो, मुझे तो भाई, ख़ालिस रूसी खून पसन्द है, सीधा और सच्चा, मिलावट का जिसमें नाम नहीं। यहूदी भी मुझे बेकार लगते हैं। मैंने तो बहुतेरा सिर मारा, लेकिन मेरी समझ में नहीं आया कि भगवान ने इन गैर जातियों को क्यों पैदा किया? ज़रूर इसमें कोई गहरा राज़ है..."

राज भुनभुनाता :

"हो सकता है कि इसमें कोई गहरा राज हो, लेकिन फ़िज़ूल चीज़ों की भी कमी नहीं है!.."

ओसिप से नहीं रहा जाता। तीखे शब्दों में धज्जियाँ बिखेरता हुआ बोलता :

"फालतू चीज़ें तो बहुत हैं। तुम्हारी ये बातें ही फालतू है। वाह रे, पन्थियों। तुम्हारा यह पंथपना कोड़े मारमारकर निकालना चाहिए!"

ओसिप सबसे अलग रहता, और कभी यह ज़ाहिर न होने देता कि उसका किससे विरोध है और किससे सहमति। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता कि वह उदासीनतापूर्वक हर बात और हर आदमी से सहमत है। लेकिन अक्सर सभी लोगों से तंग और उकताया हुआ नज़र आता और सभी को एक सिरे से मूर्ख समझता।

"तुम... अरे तुम... तुम सुअर की औलाद हो!" वह प्योत्र, ग्रिगोरी और येफ़ीमुश्का, सभी को एक ही पेटे में लपेटता।

सुनकर वे एक लघु हँसी हँसते, न तो बहुत प्रसन्नता से और न बहुत उछाह से, लेकिन हँसते ज़रूर।

मालिक खुराक के लिए मुझे पाँच कोपेक रोज देता था। इसमें पूरा न पड़ता और मैं अक्सर भूखा रह जाता। यह देखकर कारीगर दोपहर और साँझ का भोजन करते समय मुझे भी बुला लेते और कभी-कभी ठेकेदार चाय पीने के लिए मुझे अपने साथ भटियारख़ाने ले जाते। मैं उनके बुलावों को खुशी से मंजूर कर लेता और उनके बीच बैठकर उनकी अलस बातों और अनोखे किस्सों को मजे से सुनता। धार्मिक पुस्तकों की मेरी जानकारी सुनकर वे बहुत खुश होते।

"पुस्तकों से तेरा पेट गले तक अटा है और अब फटा ही चाहता है!" अपनी नीली आँखों से मुझे बींधते हुए ओसिप कहता। उसकी आँखों का भाव पकड़ में नहीं आता था। ऐसा मालूम होता मानो उसकी पुतलियाँ पिघलकर आँखों की सफ़ेदी के

साथ एकाकार होती जा रही हों।

"जो हो, अपने ज्ञान को बटोर और संजोकर रखना, उसे ज़ाया न होने देना। वक़्त पर काम आयेगा। बड़ा होने पर तू सन्यासी बन सकता है। लोगों को सान्त्वना देना और उनके दुःखते हृदयों पर मधुर शब्दों से मरहम लगाना। या फिर तू धनपति बन जाना..."

"धनपति नहीं, धर्मपति!" राज ने, न जाने क्यों, चोट खाई हुई-सी आवाज़ में कहा।

"क्या?" ओसिप ने पूछा।

"धनपति नहीं, उन्हें धर्मपति कहते हैं। जानता तो है तू और बहरा भी नहीं..."

"अच्छी बात है, धर्मपति बनकर नास्तिकों और धर्म-द्रोहियों की दुम उखाड़ना। या फिर खुद धर्म-द्रोहियों की पाँत में शामिल हो जाना। यह भी बुरा नहीं रहेगा। असल चीज़ तो दिमाग है! अगर तू उससे काम लेगा तो धर्म-द्रोह से भी बहुत कुछ पैदा कर लेगा और मजे से जीवन बिता सकेगा..."

ग्रिगोरी अचकचाकर खिसियानी-सी हँसी हँसता और प्योत्र अपनी दाढ़ी में बुदबुदाता :

"झाड़-झूँक करने वाले भी तो मजे में रहते हैं और दूसरे धर्म-द्रोही भी..."

"लेकिन ओझा पढ़े-लिखे नहीं होते, ज्ञान से उनका भला क्या वास्ता?" ओसिप जवाब देता और फिर मेरी ओर मुँह करते हुए कहता :

"सुन, मैं तुझे एक किस्सा सुनाता हूँ। किसी जमाने में हमारे गाँव में एक अकेला आदमी रहता था। तुश्निकोव उसका नाम था। यों ही बेकार-सा आदमी था, जिधर हवा ले जाती, सूखे पत्ते-सा उधर ही उड़कर जा गिरता। न तो वह मज़दूर था, और न आवारा! एक दिन जब और कुछ नहीं सूझा तो तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा। पूरे दो साल तक उसकी शक्ल नहीं दिखाई दी। इसके बाद एकाएक जब वह लौटा तो उसका हुलिया ही एकदम बदला हुआ था—कन्धों तक लटके बाल, पादरियों जैसी गोल टोपी चिन्दियों से चिपकी हुई, बदन पर झूल-सा लटकता हुआ दोसूती का गेरुआ लबादा। चिंगारियाँ छोड़ती नज़र से वह लोगों को बींधता और चीखकर बार-बार कहता—'अपने पाप कबूल करो लोगो, कबूल करो!' और कबूल करने वाले लोगों, ख़ास तौर से स्त्रियों की बाढ़ उमड़ पड़ती। इस बाढ़ को भला कौन रोकता? उसने दोनों हाथों से चाँदी बटोरी। तुश्निकोव को खाना मिला। तुश्निकोव को शराब मिली। तुश्निकोव को लुगाइयाँ मिलीं, जिस पर नज़र डालता, वही उसके सामने बिछ जाती..."

"भोजन और शराब से कुछ नहीं आता-जाता," राज ने बीच में ही झुँझलाकर टोका।

"तो फिर किस चीज़ से आता-जाता है?"

"असल चीज़ है शब्द—वाणी!"

"उसके शब्दों को तो मैंने उलट-पुलटकर नहीं देखा। यों शब्द तो मेरे दिमाग की पिटारी में भरे पड़े हैं।"

"उस द्मीत्री वासील्येविच तुश्निकोव को हम अच्छी तरह जानते हैं," आहत स्वर में प्योत्र ने कहा और ग्रिगोरी ने चुपचाप अपनी आँखें झुका लीं और चाय के गिलास की ओर देखता रहा। ओसिप समझौते के स्वर में बोला :

"बहस में पड़ने का मेरा इरादा नहीं है। मैं तो एक मिसाल देकर मक्सीमिच को केवल रोजी-रोटी कमाने के रास्ते बता रहा था..."

"जिनमें से कुछ सीधे जेल की हवा खिलाते हैं!"

"कुछ क्यों, बल्कि ज़्यादातर," ओसिप ने सहमति प्रकट की। "सभी रास्ते सन्तपन की ओर नहीं ले जाते, यह भी पता होना चाहिए कि कहाँ मुड़ना है..."

प्लस्तरकार या राज जैसे भगत लोगों के प्रति उसके व्यवहार में व्यंग्य का कुछ पुट मिला रहता। शायद वह उन्हें पसन्द नहीं करता था, लेकिन वह इतना चौकस था कि अपने भावों को प्रकट नहीं होने देता था। मोटे तौर से यह कि लोगों के प्रति उसके रवैये का पता लगाना कठिन था।

येफ़ीमुश्का के साथ वह ज़्यादा नर्मी और मुलामियत से पेश आता जो अपने अन्य साथियों की भाँति मानव जीवन के अभिशापों, पाप-पुण्य, भगवान और विभिन्न पंथों से सम्बन्धित बहसों में हिस्सा नहीं लेता था। वह कुर्सी की पीठ मेज़ की ओर आड़ी करके बैठ जाता ताकि उसका कूबड़ कुर्सी की पीठ से रगड़ न खाये, और एक के बाद एक चाय के गिलास खाली करता रहता। फिर, एकाएक चेतन और चौकन्ना होकर वह अपनी आँखें उठाता और सिगरेट का धुआँ भरे कमरे में इधर-उधर देखकर कुछ खोजता हुआ-सा नज़र आता। उसके कान खड़े हो जाते और भाँति-भाँति की आवाज़ों के बीच वह कुछ सुनने का प्रयत्न करता। अन्त में वह उछलकर खड़ा होता और तेजी से गायब हो जाता। यह इस बात का सूचक था कि भटियारख़ाने में किसी ऐसे आदमी का आगमन हो गया है जिससे येफ़ीमुश्का ने क़र्ज ले रखा था। ऐसे कोई दर्जन-एक लोग थे, उनमें कुछ तो ऐसे थे जो मारपीट के ज़रिए अपना कर्ज़ वसूल करने के आदी थे। इसलिये वह हमेशा भागता नज़र आता था।

"हैं नहीं घनचक्कर, नाराज होते हैं," वह अचरज में भरकर कहता, "इतना भी नहीं समझते कि अगर मेरे पास पैसा होता तो मैं अपने आप ख़ुशी से अदा कर देता!"

"ओह, कुत्ते की दुम!" ओसिप ढेला-सा मारता।

कभी-कभी येफ़ीमुश्का विचारों में खोया बैठा रहता। न वह कुछ देखता, न सुनता। उसका उभरे हुए गालोंवाला चेहरा ढीला पड़ जाता और उसकी भली आँखें और

भी भली हो उठतीं।

"किस सोच में पड़े हो मित्र?" वे उससे पूछते।

"मैं सोच रहा हूँ कि अगर मैं धनी होता तो असली, सचमुच में भली किसी कर्नल की लड़की या ऊँचे कुल की ऐसी ही किसी औरत से शादी करता और सच, मैं उससे इतना प्रेम करता कि तुम सोच तक नहीं सकते! भगवान जाने, उसका स्पर्श पाकर उसके प्रेम की आग में मैं वैसे ही जलता जैसे कि मोमबत्ती जलती है। यकीन न हो तो सुनो। एक बार देहात में किसी कर्नल ने घर बनवाया और इस घर पर नई छत डालने का काम उसने मुझे सौंपा। इस कर्नल की एक..."

"बस-बस रहने दे!" प्योत्र ने झुँझलाकर बीच में ही टोका। "इस कर्नल और उसकी विधवा लड़की का सारा किस्सा हमें मालूम है। उसे सुनते-सुनते कान पक गये।"

लेकिन येफ़ीमुश्का पर इसका कोई असर न पड़ता। हथेलियों से अपने घुटनों को सहलाते और बदन को आगे-पीछे की ओर झकोले देते समय हवा को अपने कूबड़ से छितराते हुए वह कर्नल की लड़की का किस्सा सुनता :

"वह अक्सर बगीचे में निकल आती, एकदम गोरी, गुदगुदी और मुलायम। मैं छत पर से उसे देखता और मन ही मन सोचता : यह सूरज और यह सारी दुनिया, सब इसके सामने हेय हैं। अगर मैं कबूतर होता तो उड़कर उसके पास पहुँच जाता! वह फूल थी, मलाई के कुण्ड में उगनेवाला प्यारा और मीठा कमल! आह, भाइया, ऐसी स्त्री मिले तो समूचा जीवन एक लम्बी सुहाग रात बन जाये!"

"ठीक है। फिर खाने-पीने की भी कुछ ज़रूरत नहीं रहेगी?" प्योत्र रूखे स्वर में कहता। लेकिन प्योत्र का यह वार भी खाली जाता। येफ़ीमुश्का अपनी ही धुन में कहता :

"हे भगवान, लोग कुछ नहीं समझते। पेट भरने के लिए हमें क्या रोटियों के पहाड़ की ज़रूरत होगी? फिर, बड़े घर की लड़की के लिए धन की क्या कमी?.."

ओसिप हँसकर कहता :

"अरे रसिक येफीमश्का! तेरी इन्द्रियाँ कब जवाब देंगी?"

येफ़ीमुश्का स्त्रियों के सिवा अन्य किसी चीज़ के बारे में बात नहीं करता था, और जमकर काम करना उसके बस का रोग नहीं था। कभी वह फुर्ती से और अच्छा काम करता और कभी एकदम बेगार काटता। उसके हाथ ढीले पड़ जाते और अपनी लकड़ी की पटिया के इतने उलटे-सीधे ढंग से चलाता कि छत में दराज़ें छूट जातीं। वह हमेशा ब्लबर-तेल से गन्धाता, लेकिन उसकी एक अपनी प्रकृत गन्ध भी थी, सुहावनी और स्वस्थ गन्ध, बहुत कुछ वैसी ही जैसी कि ताजे कटे हुए पेड़ से आती है।

ओसिप हर चीज़ और विषय पर बातें करता और उसकी बातें सुनने में बड़ा मजा आता। उसकी बातें मज़ेदार होतीं, लेकिन भली नहीं। उसके शब्द हमेशा कोई कुरेद पैदा करते और यह समझना कठिन हो जाता कि वह अपनी बात मजाक में कह रहा है अथवा गम्भीर होकर।

ग्रिगोरी भगवान के बारे में बड़े चाव से बातें करता। यह उसका प्रिय विषय था। भगवान से वह प्रेम करता था और उसमें उसका गहरा विश्वास था। एक दिन मैंने उससे पूछा :

"ग्रिगोरी, क्या तुम जानते हो कि इस दुनिया में ऐसे लोग भी हैं जो भगवान में विश्वास नहीं करते?"

वह लघु हँसी हँसा :

"सो कैसे?"

"वे कहते हैं कि भगवान जैसी कोई चीज़ नहीं है।"

"ठीक, मैं जानता हूँ।"

उसने अपना हाथ इस तरह हिलाया मानो किसी अदृश्य मक्खी को उड़ा रहा हो। फिर बोला :

"राजा दाऊद का वह कथन याद है? उन्होंने कहा था : 'मूर्ख हैं वे जो अपने मन में कहते हैं कि ख़ुदा नहीं है।' देखा तूने, इस तरह के जाहिल और पथ से भटके लोग यह बातें कितने साल पहले करते थे। भगवान के बिना तुम एक डग भी आगे नहीं रख सकते!.."

और ओसिप ने मानो उससे सहमति प्रकट करते हुए टिप्पणी जड़ी :

"ज़रा प्योत्र को उसके भगवान से अलग करो तो, फिर देखना क्या हुलिया बनता है!"

शिशलिन का सुन्दर चेहरा गम्भीर हो गया, अपनी दाढ़ी में उँगलियाँ फेरने लगा जिनके नाखूनों पर चूना सूखा हुआ था। फिर रहस्यमय अन्दाज़ में बोला :

"हाड़-मांस के हर पुतले में भगवान मौजूद है। आत्मा और अन्तर्मन भगवान की देन है!"

"और पाप?.."

"पाप का सम्बन्ध सिर्फ हाड़-मांस से है। वह भगवान की नहीं, शैतान की देन है! वह केवल ऊपरी, बाहर की चीज़ है, जैसे चेहरे पर चेचक के दाग़! बस, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। वही सबसे ज़्यादा पाप करता है जो पाप के बारे में सबसे ज़्यादा सोचता है। अगर दिमाग में पाप का ख़याल न हो तो पाप करने की कभी नौबत न आये! शैतान जो हाड़-मांस के हमारे बदन पर हावी होता है, हमारे दिमागों में पाप के बीज बोता है..."

राज के मन में बात कुछ जमी नहीं। दुविधा प्रकट करते हुए बोला :

"बात कुछ ऐसी नहीं..."

"बिल्कुल ऐसी है, इसमें जरा भी सन्देह की गुंजाइश नहीं। भगवान पापों से मुक्त है, उसने इंसान को अपनी छवि में ढाला और उसे अपनी सादृश्यता प्रदान की है। हाड़-मांस से बनी यह छवि ही पाप करती है, सादृश्यता पापों से मुक्त और अछूती है। सादृश्यता ही वह चीज़ है जिसे हम रूह या आत्मा कहते हैं..."

वह इस तरह मुस्कराता मानो उसने बाज़ी जीत ली हो। लेकिन प्योत्र फिर बुदबुदा उठता :

"मुझे लगता है कि बात कुछ ऐसी नहीं है..."

अब ओसिप ज़बान खोलता। कहता :

"तुम्हारे हिसाब से अगर पाप नहीं तो कबूल करने की भी ज़रूरत नहीं, और जब कबूल नहीं तो मुक्ति का पचड़ा भी नहीं। क्यों, ठीक है न?"

"हाँ, ठीक है। एक पुरानी कहावत : शैतान नहीं तो ख़ुदा भी नहीं..."

शिशलिन पीने का आदी नहीं था। दो घूँट ही उस पर अपना रंग चढ़ा देते। उसके चेहरे पर गुलाबी दमक छा जाती, आँखों में बचपन का भोलापन उभर आता और आवाज़ हिलोरें लेने लगते :

"ओह मेरे भाइयो, कितना अद्भुत जीवन है हमारा! हमसे जो बनता है, थोड़ा-बहुत काम कर लेते हैं और इतना भोजन मिल जाता है कि भूखों मरने की नौबत नहीं आती। ओह शुक्र है उस भगवान का जिसकी बदौलत हम इतना अद्भुत जीवन बिताते हैं!"

और वह रोना शुरू कर देता। उसकी आँखों से आँसू निकलते और गालों पर से होते हुए उसकी रेशमी दाढ़ी में अटक जाते और काँच के मनकों की भाँति चमकते।

उसके इन काँच के आँसुओं से, और जिस ढंग से वह इस जीवन की भडैती करता उससे मेरा हृदय भन्ना जाता और मुझे बड़ी घिन मालूम होती। मेरी नानी भी इस जीवन के लिए ख़ुदा के दरबार में शुक्राना भेजती थी और इस जीवन की तारीफ के गीत गाती थी, लेकिन उसके गीत और प्रशंसा कहीं अधिक विश्वसनीय और सीधे-सादे होते थे। उनमें इतना दुराग्रह नहीं होता था।

उनकी ये बातें मेरे हृदय में बराबर खलबली मचाए रहतीं, कभी न खत्म होनेवाले तनाव का मैं अनुभव करता, और धुँधली तथा अज्ञात आशंकाएँ मुझे घेर लेतीं। देहातियों के बारे में अनेक कहानियाँ और किस्से मैं पढ़ चुका था और क़िताबों के देहातियों तथा सचमुच के देहातियों में भारी अन्तर मुझे दिखाई देता था। क़िताबों के देहातिये सब के सब दुःख और मुसीबतों में फँसे अभागे जीव थे जिनमें—वे भले हों चाहे बुरे—विचारों और वाणी की समृद्धता एक सिरे से गायब थी जो सचमुच के

जीवित देहातियों की एक ख़ास विशेषता थी। क़िताबों के देहातिए भगवान, विभिन्न पंथों और गिरजे के बारे में कम बातें करते थे और अपने से ऊँचों, ज़मीन, जीवन के अन्याय और मुसीबतों के बारे में ज़्यादा। क़िताबों के देहातिये स्त्रियों के बारे में भी कम बातें करते थे, और अगर उन्हें बात करते दिखाया भी जाता था तो इस तरह मानो उनके हृदय में स्त्रियों के प्रति अधिक इज्ज़त हो, और उनके लिए वे कभी भी गन्दे या औघड़ शब्दों का इस्तेमाल न करते हों। सचमुच के देहातियों के लिए स्त्री मन बहलाने का एक साधन थी, लेकिन एक ख़तरनाक साधन जिसके साथ काफ़ी चालाकी और चतुराई बरतने की ज़रूरत थी, अन्यथा वह उन पर हावी होकर उनका सारा जीवन उलझा सकती थी। क़िताबों के देहातिए या तो बुरे होते या भले, और इन दोनों ही सूरतों में उन्हें काफ़ी सिधाई के साथ क़िताबों में पेश किया जाता, लेकिन सचमुच के देहातिये न भले होते और न बुरे, बल्कि दिलचस्प होते। उनकी तमाम बातें सुनने के बाद भी यह भावना बनी रहती कि कुछ है जो अनकहा रह गया है, जिसे उन्होंने अपने हृदय में छिपाकर रख छोड़ा है, और कौन जाने कि ठीक वह अंश ही, जो अनकहा रह गया है, उनके व्यक्तित्व का असली तत्व हो!

क़िताबों के देहातियों में मुझे प्योत्र नाम का बढ़ई सबसे ज़्यादा पसन्द था। 'बढ़ई दल' नामक पुस्तक में उसका किस्सा दिया हुआ था। मैं उसे अपने साथियों को पढ़कर सुनाने के लिए बेचैन हो उठा। एक दिन मेले में काम पर जाते समय उस पुस्तक को भी मैं अपने साथ लेता गया। अक्सर ऐसा होता कि दिन भर काम करते-करते मैं बुरी तरह थक जाता और घर लौटने की हिम्मत न रहती या बारिश के कारण न लौट पाता। ऐसी हालत में मैं कारीगरों के किसी एक बाड़े में चला जाता और रात उनके साथ बिताता।

मैंने जब उन्हें यह बताया कि मेरे पास बढ़ई लोगों के बारे में एक क़िताब है तो उनकी और ख़ास तौर से ओसिप की दिलचस्पी का पारवार न रहा। उसने मेरे हाथ से क़िताब ले ली और अपने सन्तनुमा सिर को हिलाते हुए इस तरह उसके पन्ने पलटने लगा, मानो उसे यकीन न आ रहा हो। बोला :

"लगता है कि सचमुच ही हमारे बारे में लिखी गयी है! किसने लिखा है इसे! क्या कहा, किसी रईसज़ादे ने? ठीक, मैं भी ऐसा ही समझता था। रईसज़ादे और सरकारी अफसरों के कदम जहाँ न पहुँचें, थोड़ा है! भगवान से जो कसर रह जाती है, उसे यही लोग पूरा करते हैं। भगवान ने मानो इसीलिये इन्हें इस दुनिया में भेजा है..."

"भगवान की बातें तू सोच-समझकर नहीं करता," प्योत्र ने टोका।

"ठीक है, ठीक है। मेरे शब्दों से भगवान का उतनी ही दूर का नाता है जितना कि मेरा बर्फ़ के उस कण से या वर्षा की उस बूँद से जो आसमान से गिरकर मेरी गंजी चाँद पर आ विराजती है। घबरा नहीं, हम-तुम जैसे लोगों की भगवान तक कोई

रसाई नहीं है...”

सहसा वह अधीर हो उठा और उसके मुँह से शब्दों के तीखे वाण चकमक में से चिंगारियों की तरह निकल-निकलकर जो कुछ भी उसके विपरीत था उसे बींधने लगे। दिन में कई बार उसने मुझसे पूछा :

“क्यों, मक्सीमिच, कुछ पढ़कर सुनायेगा न? ठीक, बहुत ठीक। तूने बहुत ही अच्छा सोचा है।”

जब काम समाप्त हो गया तो साँझ का खाना उसी के बाड़े में हुआ। खाने के बाद प्योत्र भी आ गया। उसके साथ एक कारीगर और आया जिसका नाम अरदाल्योन था। फ़ोमा नामक एक लड़के को साथ लिये शिशलिन भी आ गया। सायबान में जहाँ कारीगर सोते थे, एक लैम्प जलाकर रख दिया गया और मैंने पढ़ना शुरू किया। बिना हिले-डुले या मुँह से एक शब्द कहे वे सुनते रहे। लेकिन शीघ्र ही अरदाल्योन खीजकर बोला :

“मैं तो चलता हूँ। सुनते-सुनते ऊब गया!”

वह चला गया। ग्रिगोरी सबसे पहले चित्त हो गया। वह मुँह बाये सो रहा था, और ऐसा मालूम होता था मानो उसका मुँह अचरज के मारे खुला रह गया हो। उसके बाद अन्य बढ़ई भी चित्त हो गये। लेकिन प्योत्र, ओसिप और फ़ोमा मेरे और निकट खिसक आये तथा बड़े ध्यान और उत्सुकता से सुनते रहे।

जब मैं खत्म कर चुका तो ओसिप ने तुरन्त लैम्प बुझा दिया—तारे आधी रात बीत जाने की सूचना दे रहे थे।

प्योत्र ने अँधेरे में पूछा :

“इस क़िताब में नुक़्ते की बात क्या है? यह किनके खिलाफ़ लिखी गयी है?”

ओसिप जूते उतार रहा था। बोला, “बातें मत कर। अब सो जा।”

फ़ोमा चुपचाप खिसककर एक ओर लेट गया।

“मेरी बात का जवाब दे न,—यह किनके खिलाफ़ लिखी गयी है?” प्योत्र ने फिर बल देकर पूछा।

माची पर अपना बिस्तरा लगाते हुए ओसिप ने कहा :

“यह लिखनेवाले जानें। हमें माथापच्ची करने से क्या फायदा?”

“क्या यह सौतेली माँओं के खिलाफ़ लिखी गयी है? तब तो इसमें कोई तुक नहीं। इस तरह की क़िताब सौतेली माँओं का सुधार नहीं कर सकती,” राज ने ज़ोर देते हुए कहा। “या फिर यह प्योत्र के खिलाफ़ लिखी गयी है जो इसका हीरो है,—प्योत्र बढ़ई। लेकिन यह उसे भी अधर में ही लटका रहने देती है। आख़िर उसका हश्र क्या होता है? वह हत्या करता है, और उसे काले पानी की सजा देकर साइबेरिया भेज दिया जाता है। बस, किस्सा खत्म! यह क़िताब उसे भी कोई मदद नहीं देती—दे भी नहीं सकती, नहीं,

बिल्कुल नहीं! इसीलिये तो मैं पूछता हूँ, यह किसके लिए लिखी गयी है?"

ओसिप चुप रहा। तब राज ने अपनी बात खत्म करते हुए कहा :

"इन लेखकों के पास अपना कुछ काम तो है नहीं, सो दूसरों की आँख में उँगली डालते फिरते हैं, बैठकबाज़ निठल्ली औरतों की तरह! अच्छा तो अब सोओ, काफ़ी देर हो गयी..."

दरवाज़े के नीले चौखटे में एक क्षण के लिए वह ठिठककर खड़ा हो गया और बोला :

"क्यों, ओसिप तेरा क्या ख़याल है?"

"ऐं?" ओसिप अधसोया-सा कुनमुनाकर रह गया।

"अच्छा सो..."

शिशलिन जिस जगह बैठा था, वहीं फ़र्श पर पसर गया। फ़ोमा मेरे पास ही पुआल पर लेट गया। समूची बस्ती पर सन्नाटा छाया था। कहीं दूर से इंजनों की सीटियों के बजने, लोहे के भारी पहियों के गड़गड़ाने और गाड़ियों को जोड़नेवाले काँटों के खड़खड़ाने की आवाज़ें आ रही थीं। सायबान सभी प्रकार के खर्राटों की आवाज़ से गूँज रहा था। मेरा हृदय बड़ा सूना-सा हो रहा था। मैं आशा करता था कि पुस्तक खत्म होने के बाद कोई दिलचस्प बहस होगी। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ...

एकाएक ओसिप ने धीमी किन्तु साफ़ सुन पड़नेवाली आवाज़ में कहा :

"उसकी बातों को मन में बैठाने की ज़रूरत नहीं। तुम लोग अभी कम उम्र हो, और सारा जीवन तुम्हें पार करना है। दिमाग का कोठा खुद अपने विचारों से भरते जाओ! उधार लिये सौ विचारों से अपना एक विचार कहीं ज़्यादा कीमती होता है! क्यों, फ़ोमा, सो गया, क्या?"

"नहीं," फ़ोमा ने तत्परता से कहा।

"तुम दोनों पढ़ना जानते हो, सो बराबर पढ़ते रहना। लेकिन हर बात पर भरोसा न करना। आज उनका बोलबाला है, ताकत उनके हाथ में है, सो जो मन में आता है, छाप डालते हैं!"

उसने माची पर से अपनी टाँगें नीचे लटका लीं और दोनों हाथ किनारे पर टिकाकर हमारी ओर झुकते हुए बोला :

"आख़िर क़िताब होती क्या है? भेदिये की भाँति वह सबका भेद खोलती है! सच, क़िताब भेदिए का काम करती है। आदमी मामूली हो चाहे बड़ा, वह सभी का भेद बताती है। वह कहती है—देखो, बढ़ई ऐसा होता है। या फिर वह किसी रईसज़ादे को सामने खड़ा कर कहती है—देखो, रईसज़ादा ऐसा होता है। मानो ये अन्य सबसे भिन्न, अनोखे और निराले हों! और क़िताबें यों ही बेमतलब, नहीं लिखी जातीं। हर क़िताब किसी न किसी की हिमायत करती है..."

"प्योत्र ने ठीक किया जो उस ठेकेदार को मार डाला!" फ़ोमा ने भारी आवाज़ में कहा।

"ऐसी बात मुँह से नहीं निकालते। आदमी की हत्या करना क्या कभी ठीक कहा जा सकता है? मैं जानता हूँ कि ग्रिगोरी से तेरी नहीं बनती, तू उससे नफरत करता है। लेकिन यह ठीक नहीं। हममें से कोई भी धन्नासेठ नहीं है। आज मैं मुखिया कारीगर हूँ, लेकिन कल मुझे दूसरे सभी मजदूरों की भाँति काम करना पड़ सकता है..."

"मैं तुम्हारे बारे में थोड़े ही कह रहा था, ओसिप चचा..."

"इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बात तो वही है..."

"तुम तो सच्चे आदमी हो।"

"ठहर, मैं तुझे बताता हूँ कि यह क़िताब किसके लिए लिखी गयी है," ओसिप ने फ़ोमा के क्षोभ भरे शब्दों को अनसुना करते हुए कहा। "इस में पूरी चालाकी भरी है! देख—एक है जमींदार, बिना किसान के और एक किसान बिना जमींदार के। अब देख : ज़मींदार की भी हालत खराब है और किसान भी अच्छा नहीं। ज़मींदार कमज़ोर, सिरफिरा हो गया है, और किसान शराबिया, रोगी, डींगमार हो गया है, झींखता रहता है—समझा, यह दिखाया है! और कहने का मतलब यह है कि भई, जमींदारों की गुलामी अच्छी थी : ज़मींदार को किसान का भरोसा और किसान को जमींदार का आसरा और बस दोनों खाते-पीते चैन की बंसी बजाते थे। ...हाँ, मैं इस बात से इंकार नहीं करता कि जमींदारों की गुलामी के ज़माने में इतना खटराग नहीं था। ज़मींदारों को ग़रीब किसानों की ज़रूरत नहीं, उन्हें तो ऐसे किसान चाहिए जिनके पास पैसा हो, अकल नहीं, यह उनके फ़ायदे की बात है। अपनी आँखों-देखी, खुद-भुगती बात मैं कहता हूँ। चालीस साल तक मैं ज़मींदारों की गुलामी में रहा हूँ। कोड़ों की मार ने मेरी चमड़ी पर जो लिखावट लिखी है, वह क्या किसी क़िताब से कम है?"

मुझे उस बूढ़े गाड़ीवान की याद हो आयी जिसका नाम प्योत्र था और जिसने अपना गला काट डाला था। खानदानी रईसों और कुलीनों के बारे में वह भी इसी तरह की बातें करता था। ओसिप तथा उस कुत्सित बूढ़े की बातों में यह सादृश्य मुझे बड़ा अटपटा मालूम हुआ।

ओसिप ने हाथ से मेरे घुटने को छुआ और कहता गया :

"क़िताबों और दूसरी लिखावटों के आर-पार देखना और उनका भीतरी मतलब समझना ज़रूरी है! बिना मतलब कोई कुछ नहीं करता। चाहे कोई कितना ही छिपाए, लेकिन मतलब सब के पीछे होता है और क़िताबें लिखने का मतलब होता है। दिमाग़ को चक्कर में डालना, उसे गड़बड़ाना। और दिमाग एक ऐसी चीज़ है जो लकड़ी के काटने से लेकर जूते बनाने तक, हर जगह काम देता है..."

वह बहुत देर तक बातें करता रहा। कभी वह बिस्तर पर लेट जाता और कभी उछलकर बैठ जाता, और रात की निस्तब्धता तथा अँधेरे में अपने साफ़-सुथरे शब्दों को मुलामियत से बिखेरता जाता।

"कहते हैं कि ज़मींदार और किसान में भारी अन्तर और भेद है। लेकिन यह बात सच नहीं है। हम दोनों एक हैं, सिवा इसके कि वह ऊँचाई पर है। यह सही है कि वह अपनी क़िताबों से सीखता है, और मैं अपनी कमर पर पड़े नीले निशानों से। उसकी कमर पर कोई निशान नहीं होते—सारा अन्तर बस यही है। ज़रूरत इस बात की है, छोकरो, कि नये सांचे में इस दुनिया को ढाला जाये। क़िताबों को गोली मारो, उन्हें दूर फेंको, और अपने से पूछो : आख़िर मैं क्या हूँ?—एक इंसान। और ज़मींदार क्या है?—वह भी एक इंसान है। फिर दोनों में भेद क्या है? क्या भगवान ने यह कहकर उसे दुनिया में भेजा है कि मैं तुमसे पाँच कोपेक ज़्यादा वसूल करूँगा? लेकिन नहीं, भगवान के दरबार में सब एक हैं, सब को एक-सा भुगतान करना पड़ता है..."

अन्त में जब रात का अँधेरा छँट चला, और तारों की रोशनी मद्धिम पड़ गयी तो ओसिप ने मुझसे कहा :

"देखा, मैं कैसी बातें बना सकता हूँ। न जाने क्या-क्या कह गया, कभी सोचा तक न था। लेकिन तुम छोकरे मेरी बातों पर ज़्यादा ध्यान न देना। नींद नहीं आ रही थी, सो जो मन में आया, उलटा-सीधा कहता गया। जब आँख नहीं लगती तो अज़ीब-अज़ीब बातें सूझती हैं और दिमाग बातों का कारख़ाना बन जाता है, और मनमानी बातें गढ़ता रहता है : बहुत पहले की बात है। एक कौवा था। मैदानों से उड़कर वह पहाड़ों की खबर लाता, कभी इस खेत का चक्कर लगाता तो कभी उस खेत पर जा बैठता। इसी तरह उड़ते-उड़ते उसके सारे पर झड़ गये, शरीर सूख चला, और एक दिन वह खत्म हो गया। बता, भला कौवे की इस कहानी में क्या तुक है? है न, बिल्कुल बेमानी और बेतुकी कहानी?... हाँ तो अब सो जाओ। जल्दी उठकर काम पर भी तो जाना है..."

18

बीते दिनों में जिस तरह जहाज़ी याकोव मेरे हृदय पर छा गया था, उसी तरह ओसिप भी मेरी आँखों में समाता, फैलता और बढ़ता गया और अन्य सभी को उसने ओझल कर दिया। उसमें और जहाज़ी याकोव में बहुत कुछ समानता थी, इसके अलावा उसे देखकर मुझे अपने नाना, पारखी प्योत्र वासील्येविच और बावर्ची स्मूरी की भी याद हो आती थी जो सब मेरी स्मृति में अत्यन्त गहराई से अंकित थे। लेकिन ओसिप की

अलग गहरी छाप रही। जिस तर ज़ंग घण्टे के ताँबे को खाता जाता है, वैसे ही वह भी मेरे अन्तर्मन की गहराइयों में प्रवेश करता और मेरे रोम-रोम में समाता जा रहा था। ओसिप के दो रूप साफ़ नज़र आते थे। दिन का ओसिप रात के ओसिप से भिन्न होता था। दिन में काम करते समय उसके दिमाग में फुर्ती आ जाती, दो टूक और अधिक व्यावहारिक ढंग से वह सोचता और उसकी बात समझने में अधिक दिक्कत न होती। लेकिन रात को जब उसे नींद न आती या साँझ को मुझे साथ लेकर जब वह मालपूवे बेचनेवाली अपनी रिश्तेदार से मुलाक़ात करने नगर जाता, तो वह दूसरा ही रूप धारण कर लेता। रात को वह विशेष ढंग से सोचता और उसके विचार लालटेन की रोशनी की भाँति अँधेरे में खूब उज्ज्वल तथा चारों ओर से खूब चमकते दिखाई देते, और यह पता लगाना कठिन हो जाता कि उनका सीधा पक्ष कौन-सा है और उलटा कौन-सा, या यह कि उनमें से किसे वह पसन्द करता है और किसे नहीं।

अब तक जितने भी लोगों से मिला था, मुझे वह उन सब से ज़्यादा चतुर मालूम होता। उसे पकड़ने और समझने की व्यग्रता हृदय में लिये मैं उसके चारों ओर भी उसी तरह मँडराता जैसे कि जहाज़ी याकोव के चारों ओर, लेकिन वह सपक सुई की भाँति बल खाकर निकल भागता और पकड़ में न आता। अपने असली और सच्चे रूप को वह कहाँ छिपाये है? उसका वह पहलू कौन-सा है जिसे सच्चा समझकर ग्रहण किया जा सके?

मुझे उसका यह कथन रह-रहकर याद आता :

“या फिर अपने दिमाग से काम ले और पता लगा कि मैं कैसा हूँ। मेरी ओर से तुझे पूरी छूट है!”

यह मेरे अहं पर चोट थी। मुझे ऐसा मालूम होता कि इस बूढ़े आदमी के रहस्य का उद्घाटन किये बिना मैं जीवन में एक डग भी आगे नहीं बढ़ सकूँगा। उसे समझना मेरे लिए जीवन का आधारभूत प्रश्न बन गया।

पकड़ में न आनेवाले अपने स्वभाव के बावजूद, वह एक स्थिर व्यक्तित्व का आदमी था। मुझे ऐसा मालूम होता कि अगर वह सौ साल और जीवित रहे तो भी उसका रंग-रूप ऐसा ही बना रहेगा, अत्यन्त अस्थिर लोगों के बीच रहते हुए भी अडिग और अपरिवर्तनशील। पारखी प्योत्र वासील्येविच ने भी मेरे हृदय में कुछ ऐसे ही भावों का संचार किया था, लेकिन उसकी यह स्थिरता मुझे अच्छी नहीं मालूम होती थी। ओसिप की स्थिरता दूसरे प्रकार की थी, अधिक सुहावनापन लिये हुए।

लोग इतनी आसानी और आकस्मिकता से चोला बदलते और मेंढक की भाँति उछलकर इस बाजू से उस बाजू पहुँच जाते कि देखकर बड़ा अटपटा मालूम होता। उनका यह समझ में न आनेवाला चोला-बदलौवल, जिसे मैं पहले कौतुक और अचरज से देखता और दंग रह जाता था, अब ऊब और झुँझलाहट पैदा करता था। नतीजा

इसका यह कि पहले जिस उछाह से मैं लोगों में दिलचस्पी लेता था, धीरे-धीरे उसे पाला मार गया, लोगों के प्रति मेरा प्रेम एक अजीब उलझन में पड़ गया।

जुलाई के शुरू में एक दिन एक घोड़ागाड़ी जिसके अंजर-पंजर ढीले हो चुके थे, खड़खड़ करती आयी और जहाँ हम काम कर रहे थे, वहाँ आकर रुक गयी। बक्स पर नशे में धुत्त एक दाढ़ीवाला कोचवान बैठा था। वह उदासी से हिचकियाँ भर रहा था। उसका सिर नंगा था, होंठों से खून बह रहा था, पीछे की सीट पर नशे में मदहोश ग्रिगोरी शिशलिन पसरा हुआ था, और डबलरोटी-सी मोटी, लाल कल्लों वाली एक लड़की उसकी बाँह में बाँह डाले उसे थामे थी। वह सींकों का हैट पहने थी और हाथ में छतरी पकड़े थी। हैट लाल सुर्ख रिबन और काँच की लाल-लाल चैरियों से सजा था। पाँवों में जुराबें नहीं थीं, वह खाली रबड़ के जूते पहने थी। डोलते और छतरी हिलाते हुए वह हँस-हँसकर चिल्ला रही थी :

"ओह, शैतानो! मेला तो अभी खुला नहीं, मेला शुरू नहीं हुआ और ये मुझे खींच लाए!"

ग्रिगोरी की बुरी हालत थी। वह उस लत्ते की भाँति मालूम होता था जिसे खूब झँझोड़ा और नोचा-खरोंचा गया हो। रेंगकर वह गाड़ी से बाहर निकला और ज़मीन पर पसरकर बैठ गया। फिर आँखों में आँसू भरे बोला :

"यह देखो, मैं तुम्हारे सामने घुटनों के बल पड़ा हूँ। मुझे माफ़ करना, मैंने गुनाह किया है, सोच-समझकर और पूरी तैयारी के साथ! येफ़ीमुश्का ने मुझे उकसाया; ग्रिगोरी, ग्रिगोरी... और उसका उकसाना भी ग़लत नहीं था। कहने लगा... लेकिन मुझे माफ करना!.. तुम सबकी दावत मेरे जिम्मे... येफ़ीमुश्का की बात ग़लत नहीं थी। उसने ठीक ही कहा था, हम केवल एक बार जीते हैं... केवल एक ही बार, अधिक नहीं, केवल एक ही बार..."

लड़की हँसते-हँसते दोहरी हो गयी और पैर पटकने लगी। उसके रबड़ के जूते पाँव से निकल जाते और वह उनमें पैर वापस न डाल पाती। कोचवान ने भी शोर मचाना शुरू किया :

"चलो, जल्दी करो! आओ, जल्दी आओ! देखते नहीं, घोड़ा रास तुड़ाकर भागना चाहता है!"

बूढ़ा और मरियल घोड़ा, जिसका सारा बदन झाग से ढका हुआ था, रास तुड़ाकर भागना तो दूर अड़ियल टट्टू की भाँति वहीं अड़ गया था और टस से मस नहीं होना चाहता था। समूचा दृश्य कुछ इतना बेढंगा और औघड़ था कि हँसी रोके न रुकती थी। अपने मालिक, उसकी छैल-छबीली प्रेमिका तथा हक्के-बक्के-से कोचवान को देखकर ग्रिगोरी के मज़दूरों के पेट में बल पड़ गये।

लेकिन फ़ोमा इस हँसी में शामिल नहीं हुआ। वही एक ऐसा था जो हँस नहीं

रहा था, और दुकान के दरवाज़े पर मेरे पास खड़ा बड़बड़ा रहा था :

"कम्बख़्त उलटाँग हो गया... और घर पर बीवी मौजूद है,—इतनी सुन्दर कि लाखों में एक!"

कोचवान जल्दी मचाता रहा। अन्त में लड़की नीचे उतरी और ग्रिगोरी को खींचकर उसने गाड़ी में डाल दिया जहाँ वह सीट के नीचे से उसके पाँवों के पास ही ढह गया। फिर अपना छाता फहराते हुए बोली :

"अच्छा, हम तो चले!"

फ़ोमा ने कारीगरों को ज़ोर से झिड़का। मालिक को खुद अपने हाथों सबके सामने इस तरह उल्लू बनते देख वह आहत हो उठा था। सकपकाकर और अपने मालिक पर दो-चार भले से छींटे कसते हुए कारीगर फिर अपने काम में जुट गये। साफ़ मालूम होता था कि अपने मालिक के प्रति उनके हृदय में घृणा से अधिक ईर्ष्या के भाव थे।

"मालिक क्या ऐसे होते हैं?" फ़ोमा बड़बड़ाया। "पन्द्रह-बीस दिन की ही तो बात थी। अपना काम खत्म कर हम सब गाँव पहुँच जाते। लेकिन कम्बख्त से इतने दिन भी न रुका गया..."

झुँझलाहट तो मुझे भी कुछ कम नहीं आ रही थी। कहाँ ग्रिगोरी और कहाँ काँच की चैरियोंवाली वह लड़की!

मैं अक्सर सोचता और उलझन में पड़ जाता कि ग्रिगोरी शिशलिन में ऐसी क्या बात है जो वह तो मालिक है, और फ़ोमा तुचकोव एक साधारण मज़दूर?

फ़ोमा घुँघराले बालोंवाला हट्टा-कट्टा युवक था। चाँदी जैसा उसका रंग था, हुकदार नाक, कंजी आँखें और गोल चेहरा। उसकी आँखों में बुद्धिमत्ता की चमक थी। उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह देहातिया है। यदि उसके कपड़े अच्छे होते तो वह किसी बड़े कुल के व्यापारी का लड़का मालूम होता। गम्भीर और चुप्पा स्वभाव, केवल मतलब की बात करता। पढ़ना-लिखना जानता था, इसलिये ठेकेदार ने हिसाब-क़िताब रखने और तखमीने बनाने का काम उसे सौंप रखा था। वह अपने साथी मज़दूरों से काम लेने में दक्ष था, हालाँकि खुद काम से जी चुराता था।

"एक जीवन में सब काम नहीं किये जा सकते," वह शान्त भाव से कहता। पुस्तकों से उसे चिढ़ थी। वह अपनी खीज प्रकट करता :

"हर अलाय-बलाय छापे में आ जाती है। मैं तुझे अभी हाथ के हाथ एक कहानी गढ़कर सुना सकता हूँ। यह जरा भी मुश्किल काम नहीं है..."

लेकिन वह हर बात बड़े ध्यान से सुनता और अगर किसी बात में उसकी रुचि जागती, तो वह टटोल-टटोलकर सारी बात पूछता और साथ ही मन ही मन कुछ सोचता रहता, हर बात को अपने दिमाग से परखता रहता।

एक बार मैंने फ़ोमा से कहा कि तुम्हें तो ठेकेदार होना चाहिए था। उसने अलस भाव से जवाब दिया :

"अगर शुरू से ही हजारों का व्यापार हो तो यह सौदा कुछ बुरा नहीं... लेकिन दो-चार ठीकरों के लिए ढेर सारे कारीगरों को डण्डे से हाँकने की जहमत कौन उठाये? मुझे तो इसमें कोई तुक नहीं दिखाई देता। नहीं, भाई, मैं तो बस थोड़ा और देखता हूँ और फिर ओरान्स्की मठ का रास्ता नापूँगा। इतना हट्टा-कट्टा मेरा शरीर है, देखने में भी खूबसूरत हूँ। अगर किसी धनी सौदागर की विधवा मुझ पर लट्टू हो गयी तो सारे पाप कट जायेंगे! ऐसा अक्सर होता है। सेरगात्सी के एक जवान के मठ में भर्ती हुए मुश्किल से दो साल ही बीते होंगे कि उसकी जोड़ बैठ गयी। और सोने में सुहागा यह कि वह शहर की लड़की थी। वह उस दल में था जो मरियम की प्रतिमा को घर-घर ले जाता है। तभी दोनों की नज़रें एक-दूसरे से मिलीं और वह उस पर लट्टू हो गयी..."

उसने ऐसा ही मनसूबा बाँध रखा था। इस तरह की अनेक कहानियाँ वह सुन चुका था जिनमें लोग नव-दीक्षित साधु के रूप में मठ में भर्ती होने के बाद किसी धनी स्त्री के नज़र-हिंडोले पर चढ़कर मजे का जीवन बिताते थे। मुझे ऐसी कहानियों से चिढ़ थी और फ़ोमा के दृष्टिकोण से भी। लेकिन यह बात मेरे मन में जम गयी कि फ़ोमा एक दिन निश्चय ही किसी मठ का रास्ता पकड़ेगा।

और जब मेला शुरू हुआ तो फ़ोमा ने सभी को चकित कर दिया—भटियारख़ाने में वेटर का काम उसने शुरू कर दिया। उसकी इस कलाबाज़ी ने उसके साथियों को भी चकित किया यह कहना तो कठिन है, लेकिन वे उसका खूब मजाक बनाने लगे। रविवार या छुट्टी के दिन जब कभी चाय का प्रोग्राम बनता तो वे आपस में हँसते हुए कहते :

"चलो, अपने वेटर के यहाँ चाय पीने चलें!"

और भटियारख़ाने में पाँव रखते ही रोब के साथ आवाज़ लगाते :

"ऐ वेटर, क्या सुनता नहीं, ओ घुँघराले बाल वाले, लपककर इधर आ!"

ठोड़ी को ऊपर उठाए वह निकट आता और पूछता :

"कहिये, क्या लेंगे?"

"तू क्या पुराने साथियों को नहीं पहचानता?"

"नहीं, मुझे इतनी फुरसत नहीं है..."

उससे यह छिपा नहीं था कि उसके साथी उसे नीची नज़र से देखते हैं और उनका एकमात्र लक्ष्य उसे चिढ़ाना है। इसलिये वह उन्हें पथराई-सी आँखों से देखता और उसका चेहरा एक ख़ास मुद्रा में जाम हो जाता। वह जैसे कहता प्रतीत होता :

"जल्दी करो, उड़ा लो मजाक जो उड़ाना है..."

"अरे, तुझे बख़्शीश देना तो भूल ही गये!" वे कहते और अपने बटुवे से निकालकर देर तक उन्हें टटोलते, ओने-कोने दाबकर देखते और अन्त में बिना कुछ दिए ही चले जाते।

एक दिन मैंने फ़ोमा से पूछा कि तुम तो मठ में भर्ती होकर साधु बनना चाहते थे, वेटर कैसे बन गये।

"ग़लत बात है। मैं कभी साधु बनना नहीं चाहता था," उसने जवाब दिया, "और यह वेटरी भी कुछ दिनों की मेहमान है..."

इसके कोई चार साल बाद, त्सरीत्सिन में जब मेरी उससे मुलाकात हुई तो उस समय भी वह वेटर का ही काम कर रहा था, और अन्त में समाचारपत्र में मैंने यह खबर पढ़ी कि फ़ोमा तुचकोव किसी घर में सेंध लगाते पकड़ा गया।

राज अरदाल्योन ने मुझे ख़ास तौर से प्रभावित किया। प्योत्र के कारीगरों में वह सबसे पुराना और सबसे अच्छा मजदूर था। हँसमुख और काली दाढ़ीवाले चालीस वर्षीय इस देहातिए को देखकर भी मैं उसी उलझन में पड़ जाता कि मालिक उसे होना चाहिए था, न कि प्योत्र को। वह बिरले ही शराब पीता था, और जब पीता तो कभी मदहोश नहीं होता था। अपने धंधे का वह उस्ताद था, और लगन के साथ काम करता था। उसके हाथों का स्पर्श पाते ही ईंटों में जैसे जान पड़ जाती थी और कबूतर की भाँति सर्र से उड़कर ठीक-ठिकाने पर जा बैठती थीं। उसके सामने मरियल और सदा रोगी प्योत्र की कोई गिनती नहीं थी। प्योत्र बड़े चाव से कहता :

"मैं दूसरों के लिए ईंटों के घर बनाता हूँ जिससे अपने लिए एक लकड़ी का घर—ताबूत—बना सकूँ..."

अरदाल्योन आह्लादपूर्ण उत्साह से ईंटें चुनता जाता और चिल्लाकर कहता :

"आओ साथियो, आओ! भगवान की इस दुनिया को सुन्दर बनाने में हाथ बँटाओ!"

और वह अपने साथी कारीगरों को बताता कि अगले वसन्त में उसका इरादा तोम्स्क जाने का है। वहाँ उसके बहनोई ने एक गिरजा बनाने का ठेका लिया है और उसे न्योता दिया है कि तोम्स्क आकर राजों के मुखिया का काम सम्भाले।

"सब कुछ तय हो चुका है। गिरजे बनाना तो बस मेरा प्यारा काम है," वह कहता और इसके बाद मुझे सम्बोधित करता, "चल, तू भी मेरे साथ चल। साइबेरिया अच्छी जगह है, ख़ास तौर से उनके लिए जो पढ़ना-लिखना जानते हैं। मजे से कटेगी। पढ़े-लिखे लोगों की दर वहाँ काफ़ी ऊँची है!"

मैं उसके साथ चलने को राज़ी हो गया। अरदाल्योन खुशी से उछल पड़ा। बोला :

"यह हुई ना बात! हम कोई मजाक थोड़े ही करते हैं..."

ग्रिगोरी और प्योत्र के साथ उसके रवैये में एक तरह की सहनशील उपेक्षा का

भाव रहता, कुछ-कुछ वैसा ही जैसा कि बड़े लोगों में बच्चों की तरफ होता है। ओसिप से वह कहता :

“बातों के शेर! अपनी अक्ल को ताश के पत्तों की तरह एक-दूसरे के सामने फटकारते हैं। एक कहता है : देख, कितने बढ़िया पत्ते हैं! दूसरा कहता है : लेकिन मेरा रंग देखकर तो कलाबाज़ी खा जायेगा!”

“मुझे तो इसमें कोई बुराई नहीं मालूम होती,” ओसिप ढुलमुल जवाब देता, “शेखी बघारना इंसान का स्वभाव है। कौन लड़की ऐसी है जो अपना सीना उभारकर नहीं चलना चाहती?..”

लेकिन अरदाल्योन इतने पर ही बस न करता। हृदय की खुजली मिटाते हुए कहता :

“उठते-बैठते, खाते-पीते, भगवान की रट लगाते हैं, लेकिन एक-एक कौड़ी दाँत से पकड़ने और माया जोड़ने में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।”

“ग्रिगोरी के पास तो मुझे कभी फूटी कौड़ी भी नज़र नहीं आती। माया वह कहाँ से जोड़ेगा?”

“मैं अपने मालिक की बात कर रहा हूँ। माया-मोह छोड़कर वह जंगल की शरण क्यों नहीं लेता? सच कहता हूँ, मैं तो यहाँ की हर चीज़ से उकता गया हूँ... वसन्त आते ही साइबेरिया के लिए चल दूँगा!..”

अन्य कारीगर ईर्ष्या की नज़र से अरदाल्योन की ओर देखते। फिर कहते :

“तेरे बहनोई जैसा हमारा भी वहाँ कोई खूँटा होता तो साइबेरिया क्या, हम जहन्नुम में भी पहुँच जाते!...”

एकाएक अरदाल्योन गायब हो गया। रविवार के दिन वह चला गया और तीन दिन तक कुछ पता नहीं चला कि वह कहाँ लोप हो गया या उसका क्या हुआ।

कारीगरों ने भय और आशंका से भरी अटकलें लगानी शुरू कीं :

“कहीं किसी ने मार तो नहीं डाला...”

“हो सकता है कि नदी में तैरते-तैरते डूब गया हो?”

अन्त में येफ़ीमुश्का आया और कुछ सकपकाता-सा बोला :

“अरदाल्योन नशे में गड़गच्च पड़ा है!”

“यह झूठ है!” प्योत्र अविश्वास से चिल्लाया।

“नशे में गड़गच्च, बेसुध और बेखबर, भुस में आग लगने पर जिस तेजी से चिंगारियाँ ऊपर उठती हैं, ठीक वैसे ही फुर्र हो गया। आँखें बन्द कर शराब के प्याले में ऐसा कूदा, मानो उसकी बीवी मर गयी हो...”

“उसे रंडुवा हुए तो एक मुद्दत हो गयी! लेकिन वह है कहाँ...”

प्योत्र झुँझलाकर उठा, अरदाल्योन को उबारने के लिए चल दिया और उसके

हाथों पिटकर लौटा।

इसके बाद ओसिप ने होंठ भींचे, अपनी जेबों में हाथ डाले और बोला :

"मैं जाता हूँ, देखता हूँ आख़िर मामला क्या है। आदमी बड़ा अच्छा है..."

मैं भी उसके साथ हो लिया।

"देखा तूने, आदमी भी कितना अजीब जीव है," उसने रास्ते में कहा, "अभी कल तक इतना भला था कि बिल्कुल देवता जैसा। लेकिन एकाएक जाने क्या बुख़ार चढ़ा कि दुम उठाकर कूड़े के ढेर में मुँह मारने लगा। अपनी आँखें खुली रख, मक्सीमिच, और जीवन से सबक ले..."

कुनाविनों की 'इन्द्रपुरी' में—टकियल वेश्याओं के काठ-बाज़ार में—हम पहुँचे। वहाँ एक खूसट औरत हमारे सामने आ खड़ी हुई जो देखने में चोट्टी मालूम होती थी। ओसिप ने उसके कान में फुसफुसाकर कुछ कहा और वह हमें एक छोटी-सी खाली कोठरी में ले गयी। कोठरी में अँधेरा था और खूब गन्दगी फैली थी। लगता था जैसे यहाँ जानवर बँधते हों। कोने में खटिया पड़ी थी जिस पर मोटी औरत नींद में ऐंड़ रही थी। बूढ़ी उसे झँझोड़ते को कोहनियाते हुए बोली :

"निकल यहाँ से,—सुनती नहीं, निकल यहाँ से!"

औरत घबराकर उछल खड़ी हुई और हथेलियों से चेहरे को मलते हुए मिमियाई :

"हाय भगवान, ये कौन हैं? क्या हुआ?"

"खुफिया पुलिस का धावा!" ओसिप ने गम्भीरता से कहा।

औरत मुँह बाए नौ-दो ग्यारह हो गयी। ओसिप ने उसके पीछे घृणा से थूक की पिचकारी छोड़ी। फिर बोला :

"ये लोग शैतान का मुक़ाबला कर सकती हैं, लेकिन खुफ़िया पुलिस का नहीं..."

दीवार पर एक छोटा-सा आयीना लटका हुआ था। बुढ़िया ने उसे उतारा और दीवार पर लगे कागज को उठाते हुए बोली :

"इधर देखो। क्या यही तो नहीं है?"

ओसिप ने सूराख़ में से देखा।

"हाँ, यह है। पहले उस रण्डी को दफ़ा करो..."

मैंने झाँककर देखा। यह कोठरी भी उतनी ही अँधेरी और गन्दी थी जितनी कि वह जिसमें हम खड़े थे। खिड़की के पल्ले कसकर बन्द थे और उसकी चौखट पर एक लैम्प जल रहा था। लैम्प के पास एक ऐंचीतानी नंगी तातार लड़की खड़ी थी। वह अपनी फटी हुई चोली में टाँके लगा रही थी। उसके पीछे दो तकियों पर अरदाल्योन का सूजा हुआ चेहरा नज़र आ रहा था। उसकी काली और कड़े बालोंवाली दाढ़ी बेतरतीबी से चौगिर्द बिखरी हुई थी। आहट पाकर तातार लड़की चौकन्नी हो गयी, बदन पर चोली डाली और बिस्तर के पास से गुज़रते हुए एकाएक उस कोठरी में आ

गयी जहाँ हम खड़े थे।

ओसिप ने एक नज़र उसकी ओर देखा और फिर थूक की पिचकारी छोड़ी।

"थू, बेशर्म कुतिया!"

"और खुद अहमक़!" खिलखिल करते हुए उसने जवाब दिया।

ओसिप भी कुछ हँसा और उँगली हिलाकर उसे कोंचा।

हमने तातार लड़की के दरबे में प्रवेश किया। बूढ़ा ओसिप अरदाल्योन के पावों के पास जम गया और उसे जगाने के लिए देर तक उससे जूझता रहा। अरदाल्योन रह-रहकर बड़बड़ाता :

"ओह क्या मुसीबत है... एक मिनट ठहरो, बस एक मिनट... अभी चलता हूँ..."

आख़िर वह उठा, वहशियाना आँखों से उसने ओसिप और मेरी ओर देखा और इसके बाद अपनी लाल अँगारा-सी आँखों को बन्द करते हुए बुदबुदाया :

"हाँ तो..."

"तुम्हीं सुनाओ, तुम्हारे साथ क्या गुज़री?" ओसिप ने शान्त और रूखे, लेकिन डाँट-डपट के भाव से मुक्त स्वर में पूछा।

"दीन-दुनिया सब भूल गया," अरदाल्योन ने बैठे हुए गले से खखारकर कहा।

"सो कैसे?"

"खुद देख तो रहे हो..."

"तुम्हारा हुलिया तो काफ़ी बिगड़ा हुआ मालूम होता है..."

"मैं जानता हूँ..."

अरदाल्योन ने मेज़ से वोद्का की एक पहले से खुली बोतल मुँह में लगा ली। फिर ओसिप की ओर बोतल बढ़ाते हुए बोला :

"लो, पियोगे? और देखो, पेट में डालने के लिए भी उस रकाबी में कुछ होगा..."

बूढ़े ओसिप ने एक चुस्की ली, मुँह बिचकाते हुए तीखी वोद्का को गले के नीचे उतारा और पाव रोटी का एक टुकड़ा लेकर उसे बड़े ध्यान से चबाने लगा। अरदाल्योन अलस भाव से कहे जा रहा था :

"यों हुआ... एक तातार लड़की के साथ उल्लू बन गया। यह सारी येफ़ीमुश्का की कारिस्तानी है। बोला, जवान लड़की है—कासीमोव की रहनेवाली—न उसके माँ है, न बाप, मेला देखने आयी है।"

दीवार के सूराख में से टूटी-फूटी रूसी जबान में मुँहफट शब्द सुनाई दिए :

"तातार मज़ेदार है, इकदम चूज़ी है! यह बूढ़ा तेरा बाप है जो यहाँ बैठा है? इसे निकाल बाहर कर!"

"यही वह लड़की है," चुँधी-सी आँखों से दीवार की ओर ताकते हुए अरदाल्योन

ने कहा।

"मैंने देखा है," ओसिप बोला।

फिर अरदाल्योन मेरी ओर मुड़ा :

"देखा भाई, मैंने अपनी क्या दुर्गत कर डाली है..."

मेरा ख़याल था कि ओसिप अरदाल्योन को खूब झिड़केगा या उसे लैक्चर पिलाएगा और वह अपने किये पर पछताएगा। लेकिन उसने ऐसी कोई हरकत नहीं की। दोनों कन्धे से कन्धा सटाये लगे-बँधे अन्दाज़ में बातें करते रहे। उन्हें अँधेरे और गन्दगी भरे दड़बे में इस तरह बैठा देख मेरा जी भारी हो गया और मैं उदासी में डूबने-उतराने लगा। तातार लड़की अभी भी टूटी-फूटी रूसी ज़बान में दीवार के पीछे से बक-झक रही थी। लेकिन उसकी आवाज़ का उन पर कोई असर नहीं हो रहा था। ओसिप ने मेज़ पर से एक सूखी हुई मछली उठाई, अपने जूते से टकराकर उसके अंजर-पंजर ढीले किये और फिर उसके छिलके उतारने लगा।

"गाँठ में अब कुछ बचा कि नहीं?" उसने पूछा।

"प्योत्र से कुछ मिलने हैं..."

"सम्भल जा सही। अब तो तोम्स्क चला जाना चाहिए तुझे..."

"क्या तोम्स्क-वोम्स्क..."

"इरादा बदल लिया, क्या?"

"बात यह है कि वे मेरे रिश्तेदार..."

"तो फिर क्या?"

"बहन, बहनोई..."

"तो इससे क्या हुआ?"

"नहीं, अपने रिश्तेदारों की चाकरी बजाने में कोई मजा नहीं है..."

"मालिक सब एक-से, चाहे रिश्तेदार हों या ग़ैर रिश्तेदार।"

"फिर भी..."

वे इस हद तक घुल-मिलकर और गम्भीर भाव से बतिया रहे थे कि चिड़चिड़ाने और उन्हें चिढ़ाने में तातार लड़की को अब कोई तुक नहीं दिखाई दी और वह चुप हो गयी। दबे पाँव वह कमरे में आयी, खूँटी पर से चुपचाप उसने अपने कपड़े उतारे और फिर गायब हो गयी।

"लड़की जवान मालूम होती है," ओसिप ने कहा।

अरदाल्योन ने उसकी ओर देखा और फिर सहज भाव से बोला :

"यह सब येफ़ीमुश्का ही है, शरारत की जड़। लुगाइयाँ ही उसका ओढ़ना और बिछौना हैं... वैसे यह तातार लड़की है मज़ेदार, खूब हँसमुख और बेतुकी बातों की पिटारी!"

"लेकिन जरा होशियार रहना, कहीं ऐसा न हो कि वह तुम्हें अपनी इस पिटारी में ही बन्द करके न रख ले!" ओसिप ने उसे चेताया और मच्छी का आख़िरी निवाला निगलकर वहाँ से चल दिया।

लौटते समय मैंने उससे पूछा :

"आख़िर तुम आये किसलिये थे?"

"हाल-चाल देखने। वह मेरा पुराना साथी है। एक-दो नहीं, इस तरह की अनेक घटनाएँ मैं देख चुका हूँ। आदमी भला-चंगा जीवन बिताता है और फिर, एकाएक, इस तरह हवा हो जाता है मानो जेल के सीखचे तोड़कर भागा हो।" उसने अपनी पहलेवाली बात को दोहराया और इसके बाद बोला, "वोद्का से दूर रहना चाहिए!"

कुछ क्षण बाद उसकी आवाज़ फिर सुनाई दी :

"लेकिन इसके बिना जीवन सूना हो जायेगा!"

"वोद्का के बिना?"

"हाँ, एक चुस्की लेते ही ऐसा मालूम होता है जैसे हम दूसरी दुनिया में पहुँच गये..."

और अरदाल्योन पर वोद्का और उस तातार लड़की का कुछ ऐसा रंग चढ़ा कि वह उबरता न दिखा। कई दिन बाद वह काम पर लौटा, लेकिन जल्दी ही वह फिर गायब हो गया और उसका कुछ पता नहीं चला। वसन्त में एकाएक उससे मेरी भेंट हो गयी। कुछ अन्य आवारा लोगों के साथ वह बजरों के चौगिर्द जमा बर्फ़ काट रहा था। बड़े तपाक से हम मिले, एक-दूसरे को देखकर हमारे चेहरे खिल गये और चाय पीने के लिए एक भटियारख़ाने में हम पहुँचे।

"तुझे तो याद होगा कि मैं कितना बढ़िया कारीगर था," चाय की चुस्कियों के साथ उसने शेखी बघारना शुरू किया। "इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि मुझे अपने काम में कमाल हासिल था। अगर मैं चाहता तो वारे-न्यारे कर देता..."

"लेकिन तुम तो कोरे ही रहे।"

"हाँ, मैं कोरा ही रहा!" उसने गर्व से कहा। "और यह इसलिये कि मैं किसी से बंधकर नहीं रह सकता—नहीं, अपने धन्धे से भी नहीं!"

वह कुछ ऐसे ठाठ से बोल रहा था कि भटियारख़ाने में बैठे कितने ही लोग उसकी ओर देखने लगे।

"चुप्पे चोर प्योत्र की बात तो तुझे याद है न? काम के बारे में वह कहा करता था, 'दूसरों के लिए ईंटों के पक्के घर, और अपने लिए फकत लकड़ी की एक ताबूत!' ऐसे धन्धे के पीछे कोई क्यों जान दे!"

"प्योत्र तो रोगी आदमी है," मैंने कहा, "मौत की बात सोचकर हर घड़ी काँपता रहता है।"

"रोगी तो मैं भी हूँ," वह चिल्लाकर बोला, "कौन जाने मेरी आत्मा में घुन लगा हो!"

रविवार के दिन शहरी चहल-पहल से दूर मैं 'लखपति बाज़ार' पहुँच जाता जहाँ भिखमँगे और आवारा लोग रहते थे। मैंने देखा कि अरदाल्योन तेज गति से नगर की इस तलछट का अंग बनता जा रहा है। एक साल पहले की ही तो बात है जब कि वह उछाह और उमंग से भरा एक समझदार कारीगर था। लेकिन अब उसने छिछले तौर-तरीके अपना लिये थे, झूमता और सबसे टकराता हुआ चलता था, उसकी आँखों में हर किसी को ठेंगे मारने तथा हर किसी से गुत्मगुत्था होने का भाव खेलता रहता था।

"देखा, यहाँ कैसे लोग मेरा मान करते हैं—मैं बस एक तरह से इनका सरदार हूँ," वह शेखी बघारता।

जो भी वह कमाता उसे अपने आवारा साथियों को खिलाने-पिलाने में उड़ा देता। लड़ाई-झगड़े में हमेशा कमज़ोर की तरफ़ लेता, अक्सर चिल्लाकर कहता :

"यह धोखा-धड़ी ठीक नहीं, दोस्तो, ईमानदारी से काम लेना चाहिए!"

ईमानदारी की उसकी इस गुहार से उसके सभी संगी-साथी परिचित थे, यहाँ तक कि उन्होंने उसका नाम 'ईमानदार' रख छोड़ा था। वह इस नाम को सुनकर बहुत खुश होता।

मैं इन लोगों को समझने की कोशिश करता जो ईंट-पत्थरों की इस खत्ती में—जर्जर और गन्दे "लखपति बाज़ार" में—अटे पड़े थे। यहाँ जीवन की मुख्य धारा से छिटके हुए लोग बसते थे, और ऐसा मालूम होता मानो उन्होंने अपने जीवन की एक अलग धारा का निर्माण कर लिया था, एक ऐसी धारा का जो मालिकों से स्वतन्त्र थी और मौज-मजे में छलछलाती हुई बहती थी। इन लोगों में साहस था और स्वच्छन्दता थी। उन्हें देखकर मुझे नाना से सुनी वोल्गा के मल्लाहों की याद हो आती जिन्हें डाकू या साधु बनते देर नहीं लगती थी। जब उनके पास कोई काम-धन्धा न होता तो वे बजरों और जहाज़ों पर हाथ साफ़ करते और जो भी छोटी-मोटी चीज़ हाथ लगती उसे उड़ाने से न चूकते। उनकी यह हरकत मुझे जरा भी अटपटी या बुरी न मालूम होती। नित्य ही मैं देखता कि जीवन का सारा ताना-बाना ही चोरी के धागों से बुना हुआ है। लेकिन इसी के साथ-साथ मैं यह भी देखता कि कभी-कभी—जैसे आग लगने या नदी पर जमी बर्फ़ तोड़ने या लदाई का कोई फ़ौरी काम आ पड़ने पर—ये लोग भारी उत्साह से काम करते, अपनी जान तक की परवाह न कर अपनी शक्ति का एक अणु भर भी बचाकर न रखते। वैसे भी अन्य लोगों के मुक़ाबले में ये कहीं ज़्यादा ज़िन्दादिल और मौजी जीव थे।

लेकिन जब ओसिप ने यह देखा कि मैं अरदाल्योन से बहुत मिलता-जुलता हूँ

तो उसने पिता की भाँति मुझे चेताया :

"सुन, लल्ला, क्या यह सच है कि आजकल तू उन 'लखपतियों' के पास ज़रूरत से कुछ ज़्यादा ही आता-जाता है? मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि जरा अपने को बचाये रखना, ऐसा न हो कि तू चौपट हो जाये।"

मैंने उसे जितना भी मुझसे हो सका, बताया कि ये लोग मुझे अच्छे लगते हैं—एकदम स्वच्छन्द और काम-धन्धे की चिन्ता से मुक्त।

"हाँ, एकदम पक्षियों की भाँति स्वच्छन्द!" उसने हँसते हुए बीच में ही टोका। "इसलिये कि वे काहिल और निठल्ले हैं। उनके लिए काम करना मानो एक सजा है!"

"सजा नहीं तो क्या आनन्द की चीज़ है? पुरानी कहावत है : पसीने की कमाई से महल नहीं खड़े होते!"

इस कहावत को मैं इतनी बार सुन चुका था और इसमें मुझे कुछ इतनी सचाई मालूम होती थी कि बड़े चाव से मैं इसे दोहरा गया। लेकिन ओसिप इसे सुनकर भभक उठा और चिल्लाया :

"इस तरह की बातें किसकी मुँह से निकलती हैं? मूर्खों और कामचोरों के मुँह से। और तू है कि पिल्ले की भाँति दुम हिलाते हुए इस तरह की बातें रट लेता है! इस तरह की बेतुकी बातें वही करते हैं जिनके दिल में ईर्ष्या होती है या जिन्हें जीवन में सफलता नहीं मिलती। उड़ने की कोशिश करने से पहले कुछ पर तो उग आने दे! और जहाँ तक 'लखपतियों' से तेरी दोस्ती की बात है, उसके बारे में मैं मालिक से ज़रूर ही कहूँगा, तू बुरा मत मानना!"

और उसने सचमुच मालिक से शिकायत की। मालिक ने—ओसिप भी उस समय मौजूद था—मुझसे कहा :

"'लखपति बाज़ार' के चक्कर लगाना बन्द कर, पेशकोव! वहाँ सब ऐसे ही लोग रहते बसते हैं—चोर-उच्चके और वेश्यायें और वहाँ जाने के बाद सीधे जेल या अस्पताल की हवा खानी पड़ती है। उनका पीछा छोड़ दे!"

"लखपति बाज़ार" तो मैं अब भी जाता, लेकिन लुक-छिपकर। इसके कुछ ही समय बाद एक ऐसी घटना घटी जिससे मेरा वहाँ जाना बन्द हो गया।

"लखपति बाज़ार" में एक रैन-बसेरा था जिसके अहाते में एक भुसौरा था। एक दिन अरदाल्योन, उसका साथी 'बच्चा' और मैं इस भुसौरे की छत पर चढ़े थे और 'बच्चा' दोन नदी के किनारे स्थित रोस्तोव नगर से मास्को तक की अपनी पैदल यात्रा का मनोरंजक हाल सुना रहा था। वह भूतपूर्व सैनिक था और सैपरमेनों की टुकड़ी में नियुक्त था। सन्त जार्ज क्रास से वह विभूषित था और तुर्की के साथ युद्ध में उसका घुटना घायल हो गया था। इस चोट ने उसे जन्म भर के लिए पंगु बना दिया था।

नाटा और गठा हुआ उसका बदन था। उसके हाथ बहुत ही मजबूत और शक्तिशाली थे, लेकिन उसका पंगु होना आड़े आता था और अपने हाथों की इस शक्ति का वह कोई उपयोग न कर पाता था। किसी रोग की वजह से उसके सिर और दाढ़ी के बाल झड़ गये थे, और उसका सिर सचमुच नवजात बच्चे के सिर की भाँति साफ़ और चिकना बन गया था।

अपनी लाल आँखों को चमकाते हुए वह कह रहा था :

"इस तरह मैं सरपुख़ोव पहुँचा। वहाँ एक पादरी पर मेरी नज़र पड़ी जो अपने घर के आँगन में बैठा था। मैं उस के पास पहुँचा और बोला, 'तुर्की युद्ध के इस वीर की कुछ मदद करो, बाबा...'"

अरदाल्योन ने सिर हिलाया और बोला :

"ओह, झूठों के सरदार..."

"क्यों, इसमें क्या झूठ है?" 'बच्चा' ने बुरा न मानते हुए सहज भाव से पूछा। लेकिन अरदाल्योन ने उसकी बात नहीं सुनी और अलस भाव से सीख-सी देता हुआ बोला :

"नहीं, तू ईमानदारी से नहीं रहता! तुझे तो चौकीदारी-दरबानी करनी चाहिए, सभी लँगड़े यही करते हैं। और तू झक मारता है, बेकार की बातें बनाता फिरता है..."

"यह सब तो मैं यों ही मजे में आकर करता हूँ—लोगों को हँसाने के लिए..."

"तुझे अपने पर हँसना चाहिए..."

तभी अहाते में, जिसमें रुपहला मौसम होने के बावजूद अँधेरा था और खूब कूड़ा-कचरा फैला था, एक स्त्री आयी और सिर से ऊपर अपना हाथ उठाकर कोई चीज़ हिलाते हुए चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी :

"घाघरा बेचू हूँ, घाघरा। अरी लेगी कोई..."

स्त्रियाँ अपने-अपने दड़बे में से रेंगकर बाहर निकल आईं और घाघरा बेचनेवाली के चारों ओर जमा हो गईं। मैंने उसे तुरन्त पहचान लिया। यह धोबिन नताल्या थी। छत से कूदकर मैं अभी नीचे पहुँचा ही था कि पहली बोली बोलनेवाली स्त्री के हाथ घाघरा बेचकर वह चुपचाप आँगन से बाहर निकलती दिखाई दी।

फाटक के बाहर उसके निकट पहुँचकर खुशी-खुशी मैंने कहा :

"अरे, जरा सुनो तो!"

"क्यों क्या है?" कनखियों से देखते हुए वह बोली। फिर एकाएक ठिठककर खड़ी हो गयी और नाराजगी में भरकर चीख उठी :

"हाय भगवान, तू यहाँ कैसे?.."

उसके इस तरह चौंककर चीख उठने ने मुझे बड़ा प्रभावित किया, और साथ ही एक अज़ीब परेशानी का भी मैंने अनुभव किया। समझदारी से भरे उसके चेहरे पर भय

और अचरज के भाव साफ़ दिखाई देते थे। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि मुझे यहाँ, इस जगह देखकर, वह आशंकित हो उठी है। मैंने तुरन्त सफाई देनी शुरू की कि मैं यहाँ नहीं रहता, यों ही कभी-कभी इधर चला आता हूँ।

"कभी-कभी चला आता हूँ!" उसने व्यंग्य से मेरी बात दोहराई और तीखे स्वर में बोली, "आख़िर किसलिये?.. बोल, राह-चलतों की जेब साफ़ करने के लिए या लड़कियों के जम्पर में हाथ डालकर उनकी टोहें लेने के लिए?"

उसका चेहरा मुरझा गया था, होंठों की ताजगी विदा हो चुकी थी, और आँखों के नीचे काले घेरे पड़े हुए थे।

भटियारख़ाने के दरवाज़े पर वह रुकी और बोली :

"चल, एक-एक गिलास चाय पी ली जाये! कपड़े तो तू साफ़-सुथरे पहने हैं, इस जगह में रहनेवाले लोगों जैसे नहीं, फिर भी जाने क्यों तेरी बात मानने को जी नहीं चाहता..."

भटियारख़ाने के भीतर पाँव रखते न रखते सन्देह और अविश्वास की वह दीवार मुझे ढहती मालूम हुई जो उसके हृदय में अनायास ही मेरे प्रति खड़ी हो गयी थी। गिलास में चाय उंड़ेलने के बाद उसने कुछ बेरस और अनमने भाव से बताना शुरू किया कि मुश्किल से एक घण्टा पहले ही वह सोकर उठी थी, और यह कि उसके पेट में अभी तक कुछ नहीं पड़ा है।

"पिछली रात जब मैं सोने के लिए अपने बिस्तर पर गयी तो पूरी मधुवा बनी हुई थी। लेकिन यह याद नहीं पड़ता कि मैंने कहाँ और किसके साथ पी।"

उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ, और उसकी मौजूदगी में एक तरह की बेचैनी का मैं अनुभव करने लगा। उसकी लड़की का हाल जानने के लिए मैं बेहद उत्सुक था। चाय और वोद्का से कुछ गरमाने के बाद उसने अपनी उसी सहज चपलता और अक्खड़ ढंग से बोलना शुरू किया जो इस जगह में रहनेवाली सभी स्त्रियों की खासियत थी। लेकिन जब मैंने उसकी लड़की के बारे में पूछा तो वह तुरन्त गम्भीर हो गयी और बोली :

"तुझे उससे मतलब? यह मैं बताए देती हूँ कि चाहे तू ज़िन्दगी भर एड़ियाँ रगड़, मेरी लड़की पर कभी डोरे नहीं डाल सकेगा, समझा बचुआ?"

उसने एक और चुस्की ली और फिर बोली :

"मेरी लड़की का अब मुझसे कोई वास्ता नहीं है, मेरी ओर आँख तक उठाकर नहीं देखती। और मेरी औक़ात भी क्या है? कपड़े धोनेवाली, एक नीच धोबिन उस जैसी लड़की के लिए मैं भला कैसे माँ बन सकती हूँ? वह पढ़ी-लिखी और विद्वान है। यह बात है, भइया। सो उसने मुझे धता बताया और अपनी सहेली के पास चली गयी। उसकी सहेली किसी बड़े घर की लड़की है, खूब पैसेवाली। मेरी लड़की उसके

घर मास्टरनी बनकर रहेगी...”

कुछ रुककर उसने फिर धीमे स्वर में कहा :

“कपड़े धोनेवाली धोबिन को कोई नहीं पूछता। हाँ, चलती-फिरती वेश्या की लोगों को ज़्यादा तलाश रहती मालूम होती है।”

उसने ऐसी वेश्या का धन्धा अपना लिया है, यह मैं उसे देखते ही भाँप गया था। इस गली की सभी स्त्रियाँ यही धन्धा करती थीं। लेकिन जब उसने खुद अपने मुँह से यह बात कही तो मेरे हृदय पर गहरा आघात लगा और मेरी आँखों में लज्ज़ा तथा तरस के आँसू उमड़ आये। नताल्या के मुँह से, उस नताल्या के मुँह से जो अभी पिछले दिनों तक एक साहसी, चतुर और अपने में आज़ाद स्त्री थी, यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया!

“मेरे नन्हे सैलानी,” उसने एक लम्बी साँस भरी और एक नज़र मुझे देखते हुए बोली। “यह गली तेरे लायक नहीं है। मेरी सलाह है,—मैं तुझसे विनती करती हूँ—भूलकर भी इस गली में पाँव न रखना! नहीं तो यह तुझे चट कर जायेगी!”

इसके बाद मेज़ पर दोहरी होकर और अपनी उँगली से ट्रे में रेखाएं खींचते हुए, धीमे और असम्बद्ध स्वर में, मानो अपने आप से ही वह कहने लगी :

“लेकिन मैं कौन होती हूँ तुझे सलाह देनेवाली? जिस लड़की को मैंने अपनी छाती का दूध पिलाया, उसी ने जब मेरी एक नहीं सुनी तो तू ही क्यों मानने लगा. .. मैं उससे कहती, ‘अपनी सगी माँ को तू धता नहीं बता सकती, नहीं, तू मुझे छोड़कर नहीं जा सकती।’ लेकिन वह जवाब देती, ‘मैं गले में फँदा डालकर जाऊँगी।’ वह नहीं मानी, और कज़ान चली गयी। उसे नर्स बनने की धुन थी। वह तो ख़ैर कज़ान चली गयी, लेकिन मैं कहाँ जाती? ..मैं किसका सहारा लूँ? .. राह-चलते लोगों का? उनके सिवा मेरा और कौन सहारा है?..”

वह अब चुप बैठी थी, विचारों में खोई-सी। उसके होंठ हिल रहे थे, लेकिन कोई आवाज़ नहीं कर रहे थे। उसे किसी बात की सुध नहीं थी, मेरी भी नहीं जो उसके सामने बैठा था। उसके होंठों के कोने झुक आये थे, और उसके मुँह की रेखा दूज के चाँद की भाँति फैली थी, हंसिये जैसी गोलाई लिये। उसके होंठों में बल पड़ रहे थे, और उसके गालों की झुर्रियाँ थरथरा रही थीं। ऐसा मालूम होता था मानो वे मूक भाषा में कुछ कह रही हों। देखकर मेरा हृदय कसमसा उठा। उसका चेहरा आहत और बच्चों जैसा भोलापन लिये था। बालों की एक लट शाल के नीचे से निकलकर गाल पर उतर आयी थी, और छल्ला-सा बनाती उसके नन्हे-मुन्ने कान के पीछे लौट गयी थी। तभी आँख की कोर से ढुलककर आँसू की एक बूँद ठण्डी चाय के गिलास में आ गिरी। यह देख उसने गिलास दूर खिसका दिया, अपनी आँखों को कसकर भींचा और आँसू की बाकी दो बूँदें और निचोड़ते हुए शाल के छोर से चेहरे को पोंछ लिया।

मेरा हृदय बुरी तरह उमड़-घुमड़ रहा था। मैं वहाँ और अधिक नहीं बैठ रह सका। चुपचाप उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा तो मैं अब..."

"क्या? जा, जा, जहन्नुम में जा!" उसने कहा, और सिर उठाए बिना हाथ हिला-हिलाकर मुझे दफ़ा करने लगी। शायद उसे अब यह भी सुध नहीं थी कि मैं कौन हूँ।

अरदाल्योन की खोज में मैं फिर अहाते में लौट आया। उसके साथ तय हुआ था कि दोनों झींगा-मछली का शिकार करने चलेंगे। फिर मैं उसे नताल्या के बारे में भी बताना चाहता था। लेकिन वह और 'बच्चा' दोनों छत पर नहीं थे। भूलभुलैयावाले अहाते में मैं उन्हें खोज ही रहा था कि तभी कुछ हल्ला-गुल्ला सुनाई दिया। यहाँ के लोगों में, नित्य की भाँति, कोई झगड़ा उठ खड़ा हुआ था।

मैं लपककर भागता हुआ फाटक के बारह पहुँचा, और नताल्या से टकराते-टकराते बचा जो अंधों की भाँति लुढ़कती-पुढ़कती पटरी पर चली आ रही थी और उसका चेहरा बुरी तरह नोचा-खरोंचा हुआ था। एक हाथ में शाल का छोर थामे वह अपना चेहरा पोंछ रही थी, और दूसरे हाथ से अपने उलझे हुए बालों को पीछे की ओर खिसका रही थी। उसके पीछे-पीछे अरदाल्योन और 'बच्चा' चले आ रहे थे।

"अभी कसर रह गयी," 'बच्चा' चिल्लाकर कह रहा था, "आ, इसे थोड़ा मज़ा और चखा दें!"

अरदाल्योन ने घूँसा ताना, और वह घूम गयी। उसका चेहरा बल खा रहा था, और आँखों से घृणा की चिंगारियाँ निकल रही थीं। चिल्लाकर बोली :

"आओ, मारो मुझे!"

मैंने अरदाल्योन का हाथ दबोच लिया। चकित नज़र से उसने मुझे देखा। बोला :

"क्यों, तेरे सिर पर क्या भूत सवार हुआ?"

"इसे हाथ मत लगाना," बड़ी मुश्किल से मैं इतना ही कह पाया।

वह खिखिलाकर हँसा। बोला :

"तू क्या इस पर लट्टू हो गया है? ओह नताल्या, ख़ुदा बचाए तेरे हरजाईपन से, तूने इस बाल-ब्रह्मचारी को भी अपने जाल में फँसा लिया!"

'बच्चा' भी अपने कूल्हों पर हाथ मारते हुए लोट-पोट हो रहा था। दोनों ने मिलकर मुझे कोंचना और मुझ पर कीचड़ उछालना शुरू किया। नताल्या को मौका मिला और वह खिसक गयी। कुछ देर तक तो मैं उनकी बकवास सुनता रहा। लेकिन जब बरदाश्त से बाहर हो गया तो 'बच्चा' की छाती में मैंने इतने ज़ोर से सिर मारा कि वह गिर पड़ा। उसके गिरते ही मैं नौ-दो ग्यारह हो गया।

इसके बाद एक लम्बे अर्से तक मैंने "लखपति बाज़ार" का रुख नहीं किया।

लेकिन अरदाल्योन से मेरी एक बार फिर भेंट हो गयी, इस बार एक बेड़े पर।

"क्या हाल है," उसने प्रसन्नता से चिल्लाकर कहा। "इतने दिनों तक कहाँ गायब रहा?"

मैंने उसे बताया कि जिस तरह उसने नताल्या को पीटा और मेरा अपमान किया, वह मुझे बड़ा बुरा मालूम हुआ और मेरा मन उससे फिर गया। यह सुनकर वह सहज प्रसन्नता से हँसा और बोला :

"तू समझता है कि हम सचमुच में तेरा अपमान करना चाह रहे थे? अरे नहीं, हम तो केवल तुझे चिढ़ा रहे थे। और जहाँ तक उसका सम्बन्ध है, उसे मारना क्या गुनाह है? एक टकियल औरत के लिए इतना दर्द क्यों? अगर इंसान अपनी बीवी को पीट सकता है तो फिर उस जैसी छिनाल किस खेत की मूली है! लेकिन छोड़ो यह सब। हम तो केवल मज़ाक कर रहे थे! मार-पीट से कोई नहीं सुधरता, यह मैं भी खूब जानता हूँ।"

"लेकिन यह तो बताओ कि तुम उसका सुधार क्या करते? तुम खुद भी उससे अच्छे नहीं हो!"

उसने अपनी बाँह मेरे गले में डाल दी और प्यार से मुझे झँझोड़ा।

"यही तो मुसीबत है," उसने उपहास के स्वर में कहा, "इस दुनिया में कोई किसी से अच्छा नहीं है... मेरे भी आँखें हैं, भाई, सभी कुछ मैं देखता हूँ। मुझे भीतर का भी सब हाल मालूम है, और बाहर का भी। मैं निरा कोल्हू का बैल नहीं हूँ..."

वह नशे की तरंग में था और प्यार भरे तरस के साथ देख रहा था। उसकी आँखों में कुछ वैसा ही भाव था जैसा कि किसी सहृदय शिक्षक की आँखों में अपने कूढ़-दिमाग शिष्य को पढ़ाते समय तैरता रहता है।

...पावेल ओदिन्त्सोव से कभी-कभी मेरी मुलाकात हो जाती थी। हमेशा से ज़्यादा उछाह उसमें नज़र आता था, वह छैला बना घूमता था और बड़े-बूढ़े की तरह मेरे साथ पेश आता और मुझे धिक्कारता :

"मेरी समझ में नहीं आता तूने यह धन्धा कैसे पसन्द किया? मेरी बात गाँठ बाँध ले कि उन देहातियों के साथ काम करके तेरे पल्ले कभी कुछ नहीं पड़ेगा..."

इसके बाद उदास भाव से उसने चित्रशाला के समाचार सुनाए :

"जिख़रेव अब भी उस घुड़मुँही के चक्कर में फँसा है। सितानोव के हृदय में भी कोई घुन लग गया है,—वह अब ज़रूरत से ज़्यादा नशे में धुत्त रहता है। गोगोलेव को भेड़िए चट कर गये। छुट्टियों में वह घर गया था। वहाँ नशे में इतना उल्टाँग हो गया कि भेड़िए उसकी बोटी-बोटी चबा गये!"

खूब खिलखिलाकर हँसते हुए पावेल गढ़ने लगा :

"सच भेड़िए उसकी बोटी-बोटी चबा गये। लेकिन उसने इतनी पी रखी थी कि

खून की जगह उसकी नसों में शराब दौड़ रही थी! सो भेड़ियों को भी नशा हो गया और अपनी पिछली टाँगों पर खड़े होकर सरकस के कुत्तों की भाँति जंगल में नाचने तथा कुहराम मचाने लगे। वे इतने चीखे-चिल्लाये कि बेदम होकर गिर पड़े और अगले दिन मरे हुए पाए गये!..”

यह सुनकर मुझसे भी हँसे बिना न रहा गया, लेकिन मेरी यह हँसी उदासी में डूबी थी। उसकी बातों से साफ़ मालूम होता था और मुझे यह अनुभव करते देर नहीं लगी कि चित्रशाला और उससे सम्बद्ध मेरी सभी स्मृतियों पर अतीत का आवरण पड़ गया है, सदा के लिए वे मुझसे विदा हो गयी हैं। और यह, निश्चय ही, उदासी का संचार करने वाली बात थी।

19

जाड़ों के दिन थे। मेले का काम क़रीब-क़रीब खत्म हो चुका था। मैं अब घर पर ही रहता था और काम का वही पुराना चक्कर फिर शुरू हो गया था। दिन भर मैं उसी में फँसा रहता, लेकिन साँझ तक काम से छुट्टी मिल जाती। तब सारा घर जमा होकर बैठता और मैं उन्हें पहले की भाँति हृदय पर पत्थर रख, “नीवा” और “मोस्कोव्स्की लीस्तोक” में छपे टकियल उपन्यास पढ़कर सुनाता। रात को मैं अच्छी पुस्तकें पढ़ता, और तुकबन्दियाँ जोड़ने की कोशिश करता।

एक दिन मेरी मालकिनें गिरजे गयी हुई थीं। मालिक की तबियत ठीक नहीं थी इसलिये वह घर पर ही था। मुझे देखकर बोला :

“वीक्तर अक्सर मजाक उड़ाया करता है कि तू कविताएँ लिखता है,—क्या यह सच है, पेशकोव? कुछ सुना न? देखें तूने क्या लिखा है!”

मुझसे इंकार करते न बना, और मैंने उसे अपनी कुछ कविताएँ सुनायीं। ऐसा मालूम होता था कि उसे कविताएँ पसन्द नहीं आयीं। लेकिन उसने कहा :

“ठीक है, ठीक है, लिखे जा। कौन जाने लिखते-लिखते एक दिन तू भी दूसरा पुश्किन बन जाये। कभी पढ़ी हैं पुश्किन की कविताएं?

भुतने को दफना रहे
या रचते डायन का ब्याह?

उसके जमाने में लोग डायनों और भुतनों में विश्वास करते थे। लेकिन वह खुद भी विश्वास करता था, यह मैं नहीं मानता,—उसने तो ऐसे ही मजाक में ये पंक्तियाँ लिखी होंगी!” इसके बाद कुछ गुनगुनाती-सी मुद्रा में उसने कहना शुरू किया, “सच कहता हूँ, भाई तेरी शिक्षा का कोई बाकायदा प्रबन्ध होना चाहिए था। लेकिन अब

तो बहुत देर हो गयी। शैतान ही जानता है कि इस दुनिया में तेरा क्या बनेगा?... अपनी इस कापी को औरतों से छिपाकर रखना। अगर उनकी नज़र पड़ गयी तो तुझे चिढ़ाना और कोंचना शुरू कर देंगी... औरतों को इसमें मज़ा मिलता है,—सच भाई, वे रस ले-लेकर मर्म-स्थल को कुरेदती हैं..."

इधर कुछ दिनों से मालिक का बोलना कम हो गया था और वह सोच में डूबा रहता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद नज़र बचाकर वह इधर-उधर देखता, और दरवाज़े की घण्टी की आवाज़ सुनकर हर बार चौंक उठता। कभी-कभी चिड़चिड़ेपन का एक भूत-सा उसके दिमाग पर सवार हो जाता, ज़रा-ज़रा सी बात पर वह बौखला उठता, हर किसी पर चिल्लाता, अन्त में घर से गायब हो जाता और गयी रात नशे में धुत्त होकर लौटता... साफ़ मालूम होता था कि उसके हृदय पर कोई भारी बोझ रखा है, किसी ऐसी चीज़ से वह त्रस्त है जिसे सिवा उसके और कोई नहीं जानता, और जिसने उसकी आत्मा को इस हद तक खण्डित कर दिया है कि उसका अपने में विश्वास नहीं रहा है, जीवन में उसकी दिलचस्पी खत्म हो गयी है लेकिन फिर भी निरे अभ्यासवश जिए जा रहा है।

रविवार के दिन दोपहर के खाने के बाद मैं घूमने के लिए निकल जाता। रात के नौ बजे तक घूमता और इसके बाद याम्स्काया सड़क के भटियारख़ाने में पहुँच जाता। भटियारख़ाने का मालिक एक मोटा आदमी था जिसके बदन से हर घड़ी पसीना चूता रहता था। गानों का उसे बेहद शौक था। नतीजा इसका यह कि वोद्का, बीयर और चाय के लालच में आस-पास के सभी गिरजों के गायकों का यहाँ जमघट लगा रहता। वे गाने सुनाते और बदले में वह उनके गलों को तर कर देता। गिरजों के ये गायक बहुत ही बेमजा और नशे पर जान देनेवाले जीव थे। वे गाते क्या थे, मानो बेगार काटते थे, सो भी उस समय जब उन्हें वोद्का का लालच दिया जाता था। तिस पर मजा यह कि वे हमेशा गिरजे के गीत ही गाते, यों अपवाद की बात दूसरी है। भगत किस्म के पियक्कड़ इसका विरोध करते। कहते कि कहाँ भटियारख़ाना और कहाँ गिरजे के गीत। नहीं, ये यहाँ नहीं चलेंगे! इसलिये मालिक उन्हें अपने निजी कमरे में बुला लेता और वहाँ बैठकर उनका गाना सुनता। दरवाज़े में से गीत के स्वर मुझे सुनाई देते। लेकिन अक्सर कारीगरों और देहातियों के भी गाने होते। भटियारख़ाने का मालिक उनकी खोज में रहता, और सारे नगर को छान डालता। बाज़ार के दिन देहातों से जो किसान आते, उनमें अगर कोई गायक होते तो वह उनका पता लगाता और भटियारख़ाने में उन्हें बुलाता।

गायक को वह हमेशा बार के काउण्टर के पास बैठाता। ठीक वोद्का के गोल पीपे के सामने एक स्टूल पर गायक का आसन जमता। पीपे का तला गोल चौखटे का काम देता और ऐसा मालूम होता मानो गायक का सिर उसमें जड़ा हो।

क्लेश्चेव नाम का नाटा जीनसाज़ गायकों में सबसे अच्छा था। उसे एक से एक बढ़िया गाने याद थे। उसके बदन में मांस नहीं था, चमड़ी ही चमड़ी थी, सिर पर लाल बालों की झाड़ियाँ उगी हुई थीं। सिकुड़े और रौंदे हुए से चुरमुरे चेहरे पर लाश की भाँति पथराई हुई चिकनी नाक थी और छोटी-छोटी नींद से भारी आँखें मानो उसके कोटरों में स्थिर जड़ी हुई थीं।

गाते समय वह प्रायः अपनी आँखों को मूँछ लेता, सिर वोद्का के गोल पीपे के तले पर टिका लेता, लम्बी साँस खींचकर अपनी धौंकनी में हवा भरता और धीमी, लेकिन जादू भरी आवाज़ में गाना शुरू करता :

अरे, खुले मैदानों पर जब घिरकर
गहन कुहासा छाया,
दूर-दूर की राहों को फट, उसने निगला उन्हें छिपाया

इस जगह वह खड़ा हो जाता, काउण्टर पर अपनी पीठ टिका लेता और छत की ओर देखता हुआ भावोन्मत्त हो गाता :

कहाँ, कहाँ, रे, मैं जाऊँगा,
कहाँ राह चौड़ी पाऊँगा?

उसकी आवाज़ ऊँची नहीं बल्कि कभी न थकने वाली थी। एक रुपहला तार प्रवाहित होता और भटियारख़ाने की अस्पष्ट तथा धुँधली भनभनाहट को बींधता हुआ चारों ओर फैल जाता, और गीत के उदास शब्दों तथा सुबकियाँ भरे स्वरों के जादू से कोई भी अछूता न बचता। वे लोग भी जो नशे में होते एकाएक इतने गम्भीर हो जाते कि देखकर अचरज होता। वे एकटक बिना पलक झपकाए सामने मेज़ की ओर देखते रहते। मैं भी उमड़ता-घुमड़ता, मेरे हृदय की गहराइयों से भावों का एक सशक्त बगूला-सा उठता और ऐसा मालूम होता कि बाँध तोड़कर मुझे भी वह अपने साथ खींच ले जायेगा। उत्कृष्ट संगीत के स्वर आत्मा की गहराइयों को छूते हैं, तब हृदय इसी तरह शक्तिशाली भावों से छलछलाने और उमड़ने-घुमड़ने लगता है।

भटियारख़ाने में गिरजे जैसी निस्तब्धता छा जाती और गायक नेक हृदय पादरी की भाँति मालूम होता। वह किसी धर्मग्रन्थ का अंश पढ़कर नहीं सुनाता, बल्कि अपने रोम-रोम से ईमानदारी के साथ समूची मानवजाति के लिए प्रार्थना करता, निरीह मानव जीवन की समूची वेदना को वाणी प्रदान करता। और हर ओर से, हर कोने से बड़ी-बड़ी दाढ़ीवाले लोग उसे देखते रहते, जंगली जन्तुओं जैसे उनके चेहरों पर बच्चों जैसी आँखें सोच में पड़कर टिमटिमाती रहतीं। बीच-बीच में किसी के गहरी साँस भरने की आवाज़ आती और गीत के प्रभावशाली स्वरों के साथ घुल-मिलकर एकाकार हो जाती। उन

क्षणों में मुझे ऐसा अनुभव होता मानो सभी लोग झूठे और कृत्रिम जीवन के जंजाल में फँसे हैं जबकि सच्चा जीवन यहाँ, इस भटियारख़ाने के भीतर हिलोरें ले रहा है।

कोने में कचौरी-सा मुँह लिये बेलगाम और बेशर्मी की हद तक मनमौजी फेरीवाली लिसूखा बैठी थी। मांसल कन्धों के बीच अपना सिर दुबकाये वह रो रही थी और चुपचाप लज्ज़ाहीन आँखों से ढुलक रहे आँसुओं को पोंछे जा रही थी। उससे कुछ ही दूर एक मेज़ पर गिरजे का गम्भीर गायक मित्रोपोल्स्की पसरा हुआ सा बैठा था जो पदच्युत पादरी लगता था। भारी-भरकम डील-डौल, झबरीले बाल, गहरी और गूँजदार आवाज़, जिसकी थाह का कोई पता नहीं चलता था, सूजे हुए चेहरे में भट्टी-सी बड़ी-बड़ी आँखें। उसके सामने मेज़ पर वोद्का का गिलास रखा था। गिलास पर वह एक नज़र डालता, हाथ बढ़ाकर उसे उठाता, होंठों तक ले जाता और फिर सावधानी से बिना कोई आवाज़ किये जाने किस आवेश में अछूता ही उसे मेज़ पर रख देता।

और भटियारख़ाने में जितने भी लोग थे, सबके सब निश्चल बैठे रहते। ऐसा मालूम होता मानो सुदूर अतीत में खोई उनकी सबसे प्रिय और सबसे घनिष्ठ स्मृतियाँ लौट रही हों।

गीत खत्म करने के बाद क्लेश्चोव निरीह भाव से अपने स्टूल पर ढह जाता और भटियारख़ाने का मालिक वोद्का से छलछलाता हुआ गिलास उसकी ओर बढ़ाते हुए संतोषभरी मुस्कराहट के साथ कहता :

"भाई वाह, कमाल कर दिया, हालाँकि तुम्हारा गीत, गीत न होकर एक अच्छी-ख़ासी गाथा था लेकिन हो तुम पूरे उस्ताद, इससे इंकार नहीं किया जा सकता!..."

बिना किसी उतावली के सहज भाव से क्लेश्चोव वोद्का का गिलास ख़ाली कर देता, खखारकर अपना गला साफ़ करता और कहता :

"गाने को तो वे सभी गा सकते हैं जिनके पास गला है, लेकिन गीत की आत्मा निकालकर दिखाने की कला बस मैं ही जानता हूँ।"

"बस-बस, अब इतनी शेखी न बघारो!"

"अपने मुँह पर मोहर वह लगाए जिसके पास शेखी बघारने के लिए कुछ न हो!" उसी धीमे स्वर में और ठेठपन का भाव लिये गायक कहता।

भटियारख़ाने का मालिक खीझ उठता। झुँझलाकर कहता :

"क्यों, अपने को तुम बहुत ऊँचा समझते हो, क्लेश्चोव?"

"जितनी ऊँची मेरी आत्मा है, बस उतना ही। उससे ज़्यादा ऊँचा मैं नहीं जा सकता..."

तभी कोने में बैठा मित्रोपोल्स्की गरज उठता :

"क्या समझते हो तुम, ओ कुलबुलाते कीड़ो, इस कुरूप फ़रिश्ते के गीतों में?"

वह हमेशा अपने सींग ताने रहता, हर किसी से टकराता, सभी के दोष निकालता और लड़ता-झगड़ता। नतीजा इसका यह कि वह हर रविवार को क़रीब-क़रीब बिला नागा गायकों या अन्य किसी से मार खाता। जिसका भी हाथ चलता या जो भी ऐसा करना चाहता, सहज ही उसकी मरम्मत कर देता।

भटियारख़ाने का मालिक क्लेश्चोव के गीतों पर तो जान देता था, लेकिन खुद क्लेश्चोव से नफ़रत करता था। वह हर किसी से उसकी शिकायत करता और प्रत्यक्ष उसे नीचा दिखाने या उसका मजाक उड़ाने के तौर-तरीकों की टोह में रहता। भटियारख़ाने में आनेवाले सभी लोग जिनमें खुद क्लेश्चोव भी शामिल था, उसकी हर हरकत से परिचित थे।

"माना कि वह अच्छा गवैया है लेकिन उसका दिमाग सातवें आसमान में रहता है। उसे थोड़ी मिट्टी की खुशबू सूँघानी चाहिए!" भटियारख़ाने का मालिक अपनी राय जाहिर करता।

कुछ लोग उसकी हाँ में हाँ मिलाते :

"सच कहते हो! नकचढ़ा आदमी है!"

भटियारख़ाने का मालिक और भी बल देता :

"समझ में नहीं आता कि इतना घमण्ड किस बात पर करता है। उसकी आवाज़ अच्छी है, लेकिन वह तो ख़ुदा की देन है, उसकी अपनी घरेलू ईजाद नहीं। और सच पूछो तो उसकी आवाज़ कुछ इतनी बढ़िया भी नहीं है!"

"ठीक बात है। उसकी आवाज़ में इतना दम नहीं है जितना कि उसे इस्तेमाल करने के उसके ढंग में!" स्वर में स्वर मिलानेवाले कहते।

एक दिन अपना गीत खत्म करने के बाद जब गायक भटियारख़ाने से चला गया तो मालिक ने लिसूखा पर ज़ोर डालना शुरू किया :

"क्लेश्चोव पर तू ही अपना हाथ आजमाकर देख, मारिया येव्दोकीमोव्ना, बस, थोड़ी देर के लिए उसको उल्लू बना दे। क्यों, बनाएगी न? तेरे लिए तो यह बायें हाथ का खेल है!"

"सो तो ठीक है। लेकिन इसके लिए किसी जवान औरत को पकड़ो तो अच्छा हो। मैं तो अब बुढ़ा चली!" उसने हँसते हुए कहा।

"जवान औरतों की बात छोड़!" उसने ज़ोर दिया। "यह काम सिवा तेरे और कोई नहीं कर सकता। सच, बड़ा मजा आयेगा जब वह तेरे तलुवे चाटता दिखाई देगा। बस, एक बार डोरे डालने की ज़रूरत है। फिर देखना तेरे प्यार में पगकर वह कितने बढ़िया गीत गाता है! एक बार ज़रूर कोशिश कर, येव्दोकीमोव्ना! मैं तुझे खुश कर दूँगा!"

लेकिन उसने इंकार कर दिया। वह बैठ रही—अपने बेहिसाब मोटापे में फूली,

पलकों को झुकाये और अपनी शाल के फुन्दनों से खेलती उचाट मन से बोली :

"तुम्हें अब किसी जवान लड़की को यहाँ रखना चाहिए। अगर मैं जवान होती तो चाहे जिसकी नाक पकड़कर घुमा देती!.."

भटियारख़ाने के मालिक ने वारहा इस बात की कोशिश की कि क्लेश्चोव नशे में उलटा हो जाये, लेकिन वह था कि दो-तीन गीत गाने और हर गीत के बाद वोद्का की परत चढ़ाने के बाद जतन से अपने गले में बुना हुआ रुमाल बाँधता, उलझे बालों पर अपनी टोपी जमाता और भटियारख़ाने से चल देता।

भटियारख़ाने का मालिक क्लेश्चोव को पछाड़ने के लिए बहुधा किसी न किसी गायक का पता लगाता और मुक़ाबला जमाने का मौका खोजता। ठीक उस समय जब क्लेश्चोव अपना गाना खत्म कर चुका होता और वह उसकी सराहना करके उत्तेजना से भरा क्लेश्चोव से कहता :

"सुनो भाई, आज रात एक और गवैया यहाँ मौजूद है! जरा उसे भी सुनें!"

कभी-कभी नए गायक की आवाज़ अच्छी होती, लेकिन जिस सादगी और तन्मयता से क्लेश्चोव गाता था, वह अन्य किसी में न दिखाई देती।

भटियारख़ाने के मालिक को भी हारकर यह बात स्वीकार करनी पड़ती। हृदय को मसोसते हुए वह नए गायक से कहता :

"इसमें शक नहीं कि तुमने अच्छा गाया, तुम्हारी आवाज़ भी अच्छी है, लेकिन दिल की धड़कन का जहाँ तक सवाल..."

लोग हँसकर कहते :

"लगता है कि यह जीनसाज़ किसी से मात नहीं खाएगा!"

क्लेश्चोव की लाल भौंहें थिरकती रहती। वह उनके नीचे से सब पर एक नज़र डालता और भटियारख़ाने के मालिक से अविचलित, किन्तु नम्र स्वर में कहता :

"चाहे तुम कितनी कोशिश करो, मेरे जोड़ का गायक नहीं पा सकते, कारण कि मेरी प्रतिभा भगवान की देन है..."

"लेकिन इससे क्या, हम सब भी तो भगवान की देन हैं!"

"कह दिया मैंने, वोद्का पिला-पिलाकर तुम्हारा दिवाला निकल जायेगा, पर मेरी जोड़ का गायक तुम कभी नहीं पा सकोगे..."

भटियारख़ाने के मालिक का चेहरा लाल हो जाता। मन ही मन बुदबुदाता :

"कौन जाने, कौन जाने..."

क्लेश्चोव उसी निश्चल अन्दाज़ में कहता जाता :

"गाना मुर्ग़ों का दंगल नहीं है, यह तुम्हें मालूम होना चाहिए!..."

"हाँ, हाँ, खुद जानता हूँ। तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गये?"

"मैं पीछे नहीं पड़ रहा, मैं सिर्फ यह साबित कर रहा हूँ, निरा हँसी-खेल का गाना

शैतान का गाना है!"

"छोड़ो यह सब! इससे कहीं अच्छा है कि कोई गीत सुनाओ!"

"गाने के लिए मैं कभी मना नहीं करता, सपने तक में तैयार रहता हूँ," क्लेश्चोव सहमति प्रकट करता और हल्की-सी खखार लेकर गाना शुरू कर देता।

भटियारख़ाने का समूचा ओछापन, शब्दों और इरादों की समूची काई, वह सब कुछ जो छिछला और गन्दगी में डूबा था, धुएँ की भाँति अद्‌भुत ढंग से गायब हो जाता और एक सर्वथा भिन्न प्रकार के जीवन की ताज़गी भटियारख़ाने में छा जाती। ऐसा मालूम होता मानो हम सब एक नए जीवन में—अधिक निर्मल, अधिक विचारशील और प्रेम तथा संवेदन से पूर्ण जीवन में साँस ले रहे हों।

मैं उस पर रश्क करता। मेरा रोम-रोम उसकी प्रतिभा और लोगों को अपने साथ बहा ले जानेवाली उसकी शक्ति को ललचाई हुई नज़रों से देखता और कुड़मुड़ाता! और अपनी इस शक्ति से कितने अद्‌भुत ढंग से वह काम लेता था! इस जीनसाज़ के निकट पहुँचने और खूब घुल-मिलकर देर तक उससे बातें करने के लिए मेरा जी बुरी तरह ललक उठता। लेकिन उसकी पीली-सी आँखों में कुछ ऐसा अजनबीपन था कि मैं उसके निकट जाने का साहस न बटोर पाता। उसकी नज़र से ऐसा मालूम होता मानो वह किसी को नहीं देखती। इसके सिवा उसके समूचे अन्दाज़ में कुछ ऐसा घिनौनापन था कि मैं अचकचाकर रह जाता, हालाँकि मैं उसे केवल गाने के समय ही नहीं बल्कि बाद में भी पसन्द करना चाहता था। बहुत ही भोंड़े ढंग से, बूढ़े आदमी की भाँति, वह अपनी टोपी को आगे की ओर खींच लेता और गले के चारों ओर बड़े ही औघड़ ढंग से लाल रंग का बुना मफ़लर लपेटते हुए कहता :

"यह मफ़लर मेरी गुलाब ने मेरे लिए बुना है..."

जब वह गाता न होता तो गर्व से अपने को फुला लेता, पाला-काटी अपनी नाक को रगड़ता और बेमन से, इक्के-दुक्के शब्दों में सवालों के जवाब देकर कन्नी-सी काटता। एक दिन मैं उसके पास जा बैठा। मैंने उससे कुछ पूछा। उसने मेरी ओर देखा तक नहीं और बोला :

"कान न खाओ लड़के!"

मित्रोपोल्स्की मुझे ज़्यादा अच्छा लगता। वह भटियारख़ाने में आता और सिर पर भारी बोझा लादे आदमी की भाँति आड़े-तिरछे डग रखता कोने में पहुँच जाता। ठोकर मारकर वह कुर्सी को एक ओर करता और धम्म से उस पर बैठ जाता। अपनी कोहनियों को वह मेज़ पर टिका लेता, और उसका बड़ा-सा झबरीला सिर हथेलियों पर टिक जाता। वह मुँह से एक शब्द न निकालता और वोद्‌का के दो या तीन गिलास चढ़ाकर इतने ज़ोरों से चटखारे लेता कि सब चौंककर उसकी ओर देखने लगते। पलटकर वह भी उद्धत नज़र से उन्हें घूरता—ठोड़ी हथेलियों पर टिकी हुई, तमतमाए

हुए गाल, और सिर की उलझी लटें, घने अयाल की भाँति, निहायत बेतरतीब से चेहरे पर छाई हुईं।

एकाएक वह चीख उठता :

"इस तरह क्यों मेरी ओर घूर रहे हो? क्या दिखाई दे रहा है तुम्हें?"

"हमें एक भुतना दिखायी दे रहा है!" कभी-कभी कोई जवाब देता।

कई बार ऐसा होता कि वह गुमसुम वोद्का का गिलास खाली करता और अपने भारी पाँवों को घसीटते हुए गुमसुम ही चला जाता। लेकिन अनेक बार उसकी आवाज़ से भटियारख़ाना गूँज उठता और वह, पैगम्बर के अन्दाज़ में, लोगों पर कहर बरपा करता :

"मैं प्रभु का सेवक हूँ—सच्चा और कभी न भ्रष्ट होने वाला सेवक, और इस नाते यशायाह की भाँति मैं तुम्हें शाप देता हूँ। नाश हो इस अरिईल नगरी का जिसमें चोर-उच्चके और कुटिल लोग घिनौनी लालसा के कीचड़ में किलबिलाते हैं। नाश हो इस धरती रूपी पोत का जो गुनाह और पाप का बोझ लादे ब्रह्माण्ड-सागर में तैर रहा है! क्या है वह गुनाह और पाप? वह गुनाह और पाप तुम हो, जो नशे में रहते हो, खाने की चीज़ों पर कुत्तों की भाँति टूटते हो—हाँ तुम, इस धरती की तलछट और मोरी के कीड़ों तुम! अन्तहीन संख्या है तुम्हारी, अरे अभिशप्तों, यह धरती तुम्हारे अवशेषों को ठुकराती है!"

उसकी आवाज़ इतने ज़ोरों से गूँजती कि खिड़कियों के शीशे तक झनझनाने लगते। यह देखकर उसके श्रोता खूब खुश होते और उसकी तारीफ के खूब पुल बाँधते।

"बूढ़े शैतान के दम-खम तो देखो!"

उससे जान-पहचान करना आसान था। बस, उसके गले को तर करने की ज़रूरत थी। बैठते ही वह एक मीना वोद्का और लाल मिर्च के साथ कलेजी का आर्डर देता। ये चीज़ें उसे पसन्द थी और गला फाड़ने तथा पेट की आँते उलट-पुलट करने का मेहनताना इन्हीं चीज़ों के रूप में वह वसूल करता था। जब मैंने उससे पूछा कि कौन-सी पुस्तकें मुझे पढ़नी चाहिए तो उसने चाबुक-सा फटकारता हुए तुरन्त उत्तर दिया :

"पढ़ने की क्या ज़रूरत है?"

यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। उसने जब यह देखा तो कुछ मुलायम पड़ा और बुदबुदाते हुए बोला :

"कभी धर्मग्रंथ पढ़े हैं?"

"हाँ।"

"बस उन्हें ही पढ़ो। उनके बाद और कुछ पढ़ने की ज़रूरत नहीं। दुनिया का

समूचा ज्ञान उनमें भरा है केवल बछड़े के ताऊ उन्हें नहीं समझते—अर्थात कोई उन्हें नहीं समझता... लेकिन तुम हो कौन—गायक हो?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं? गाना चाहिए। इससे बढ़कर चुगद धन्धा दूसरा नहीं मिलेगा।"

बराबर की मेज़ से किसी ने कहा :

"तब तुम क्या हुए,—तुम भी तो गायक हो न?"

"मैं?—मैं लोफर हूँ। लेकिन तुमसे मतलब?"

"कुछ नहीं।"

"वही तो। हर कोई जानता है कि तुम्हारे भेजे में कुछ नहीं है,—और न कभी कुछ होगा ही। आमीन!"

वह हर एक से—और निश्चय ही मुझसे भी—इसी अन्दाज़ में बातें करता, यह बात दूसरी है कि दो-तीन बार खिलाने-पिलाने के बाद मेरे प्रति उसका रवैया कुछ मुलायम पड़ गया था, यहाँ तक कि एक दिन कुछ अचरज में भरकर कहने लगा :

"जब भी मैं तुम्हें देखता हूँ तो यह जानने की तबीयत होती है कि तुम कौन हो, क्या हो, और क्यों हो? यों चाहे तुम जहन्नुम में जाओ, मेरी बला से!"

क्लेश्चोव के प्रति उसका रवैया अज़ीब था। उसका गाना वह मुग्ध भाव से सुनता था। उसकी यह प्रसन्नता छिपी न रहती, और कभी-कभी तो मुग्ध मुस्कराहट उसके चेहरे पर खेलने लगती। लेकिन उसके रब्त-ज़ब्त बढ़ाने की वह कभी कोशिश न करता और भद्दे तथा घृणा से भरे अन्दाज़ में उसका ज़िक्र करता :

"वह निरा गधा है। माना कि वह अपने गीतों में जान डालना जानता है और जो कुछ गाता है उसे समझता है, लेकिन इससे उसके गधा होने में कोई फर्क नहीं पड़ता!"

"क्यों?"

"इसलिये कि उसने जन्म ही इसी रूप में लिया है।"

मेरा मन करता कि उससे उस समय बातें की जायें जबकि वह नशे में न हो। लेकिन ऐसे क्षणों में वह केवल काँख-कूँख कर रह जाता, और धुँध छाई अपनी निरीह आँखों से इधर-उधर देखता रहता। किसी ने मुझे बताया था कि यह आदमी जो अब अपने जीवन के शेष दिनों को नशे में डुबोये था, कभी कज़ान अकादमी में पढ़ता था और मुमकिन था कि बिशप बन जाता। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और इसे एक मनगढ़न्त कहानी समझकर ठुकरा दिया। लेकिन एक दिन उससे बातें करते समय मैंने कहीं बिशप क्रिसन्फ़ का ज़िक्र कर दिया। सुनते ही मित्रोपोल्स्की ने अपना सिर हिलाया और बोला :

"क्रिसन्फ़?—अरे, उसे तो मैं जानता हूँ। वह मेरा शिक्षक और संरक्षक था। उन

दिनों मैं कज़ान में था, अकादमी में। मुझे अच्छी तरह याद है। क्रिसन्फ़ का अर्थ है 'सुनहरा फूल'। पामवा बेरीन्दा ने झूठ नहीं लिखा था। वह क्रिसन्फ़ सचमुच एक सुनहरा था!"

"और यह पामवा बेरीन्दा कौन था?" मैंने उससे पूछा।

लेकिन मित्रोपोल्स्की ने बात टाली। बोला :

"यह सब तुम्हें जानने की ज़रूरत नहीं।"

घर लौटने पर मैंने अपनी कापी निकाली और उस पर लिखा, "पामवा बेरीन्दा—उसे ज़रूर पढ़ना है।" जाने क्यों, मेरे मन में यह बात समा गयी थी कि पामवा बेरीन्दा में मुझे उन सब सवालों के जवाब मिल जायेंगे जो मेरे हृदय को मथ रहे थे।

अफ़लातूनी नामों का प्रयोग करने तथा असाधारण शब्दों का जोड़-तोड़ बैठाने का मित्रोपोल्स्की को चस्का था। मैं सुनता और उलझकर रह जाता।

"जीवन अनीसिया नहीं है," वह कहता।

"यह अनीसिया क्या बला है?" मैं पूछता।

"लाभदायक," वह जवाब देता और मुझे उलझन में पड़ा देख मन ही मन प्रसन्न होता।

उसके इस तरह के शब्दों को जब मैं सुनता और उसके साथ-साथ जब मैं यह सोचता कि वह अकादमी में अध्ययन कर चुका है, तो मुझ पर उसका पूरा रोब छा जाता और ऐसा मालूम होता कि उसके पास ज्ञान का खज़ाना भरा है। मैं इस खज़ाने की कुंजी पाना चाहता, लेकिन वह इतने अनमने और रहस्यमय ढंग से बातें करता कि मैं खीज उठता। शायद मैं कच्चा था और यह नहीं जानता था कि किस तरह उस तक पहुँचना चाहिए।

जो भी हो, मेरा हृदय उसकी छाप से अछूता नहीं बचा। नशे के अद्भुत जोश और पैगम्बर यशायाह के अन्दाज़ में जब वह मानवजाति को फटकारता और दबंग स्वर में अभिशाप देता तो मैं उसे देखता ही रह जाता।

"ओह, इस धरती की गन्दगी और सड़ाँध!" वह दहाड़ना शुरू करता।

"जहाँ कुटिल मौज करते हैं और नेक धूल चाटते हैं! जल्दी ही कयामत का दिन आयेगा और तब तुम पश्चाताप करोगे, परन्तु तब समय निकल चुका होगा!"

उसका गर्जन सुनते हुए मेरी आँखों के सामने 'बहुत खूब' और धोबिन नताल्या का चित्र मूर्त हो उठता, जिसका सहज ही इतना दुःखद अन्त हो गया था। साथ ही मुझे रानी मार्गो की भी याद आती जिसके चारों ओर बदगोई के बगूले उड़ते थे। इस उम्र में ही मेरे पास याद करने को बहुत कुछ था...

इस आदमी के साथ मेरी संक्षिप्त जान-पहचान का अन्त भी कुछ अज़ीब ढंग से हुआ।

वसन्त के दिन थे। सैनिकों की छावनी के पास खेतों की ओर मैं निकल गया था। वहीं उससे मेरी भेंट हो गयी। अपने आप में खूब भरमाया और फूला हुआ ऊँट की भाँति गर्दन हिलाता हुआ वह अकेला चला आ रहा था।

"क्या टहलने निकले हो!" उसने बैठे हुए गले से पूछा। "चलो, एक से दो तो हुए। मैं भी घूमने निकला हूँ। सच कहता हूँ भाई, मैं रोगी हूँ..."

कुछ देर तक हम चुपचाप चलते रहे। सहसा एक गढ़े के तले में एक आदमी पर नज़र पड़ी। वह गढ़े की दीवार से टिका दोहरा हो गया था, और उसके कोट का कालर ऊँचा उठकर उसके एक कान को ढँके था। ऐसा मालूम होता था मानो उसने अपना कोट उतारने की कोशिश की हो और उतार न सका हो।

"यह तो नशे में बेसुध मालूम होता है," गायक ने उसे देखने के लिए ठिठकते हुए कहा।

लेकिन कुछ ही दूर नई उगी घास पर एक रिवाल्वर, उस आदमी की टोपी, और वोद्का की एक खुली बोतल पड़ी थी जिसकी गर्दन घास में दबी हुई थी। आदमी का चेहरा कोट के कालर में इस तरह छिपा था मानो वह शर्म से गड़ा जा रहा हो।

कुछ क्षण तक हम चुपचाप खड़े रहे। फिर, अपनी टाँगों को चौड़ा करके धरती पर जमाते हुए मित्रोपोल्स्की ने कहा :

"गोली मार ली है!"

मैंने तुरन्त ही यह भाँप लिया था कि यह आदमी नशे में बेसुध न होकर मरा हुआ है। लेकिन यह इतना अप्रत्याशित था कि अपने इस विचार को मैंने टिकने नहीं दिया। उसकी खोपड़ी काफ़ी बड़ी और चिकनी थी और उसका एक कान जो नीला पड़ गया था, कोट के कालर के भीतर से झाँक रहा था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उसे देखते समय मैंने न तो किसी तरह के भय का अनुभव किया, और न तरस का। मेरे लिए यह कल्पना तक करना कठिन था कि कोई ऐसा आदमी भी हो सकता है जो वसन्त के दिन के इन सुहावने क्षणों में अपनी जान लेना चाहे।

मित्रोपोल्स्की ने अपने बालबढ़े गालों को इस तरह तेजी से रगड़ा मानो वे ठण्डा गये हों। फिर फुँकार-सी छोड़ते हुए बोला :

"सठिया गया है। ज़रूर इसकी बीवी इसे छोड़कर भाग गयी होगी, या फिर पराये धन पर हाथ साफ़ किया होगा..."

पुलिस को सूचना देने के लिए उसने मुझे तो नगर भेज दिया, और खुद गढ़े के किनारे बैठ गया। उसने अपनी टाँगे नीचे गढ़े में लटका लीं और अपने झिनझिने कोट को कन्धों के इर्द-गिर्द कसकर खींच लिया। पुलिस को आत्महत्या की सूचना देने के बाद मैं लपककर वापस आ गया। तब तक गायक उस मरे हुए आदमी की बाकी बची हुई वोद्का खत्म कर चुका था। मुझे देखते ही उसने वोद्का की खाली

बोतल हवा में हिलायी।

"इस कमबख़्त ने ही इसकी जान ली!" उसने चिल्लाकर कहा और बोतल को इतने ज़ोर से ज़मीन पर पटका कि वह चूर-चूर हो गयी।

मेरे साथ ही साथ एक पुलिसमैन भी लपकता-झपकता आ गया। उसने गढ़े में झाँककर देखा, अपने सिर से टोपी उतारकर मृतक के प्रति सम्मान प्रकट किया और अचकचाते हुए सलीब का चिह्न बनाया। फिर गायक की ओर मुड़कर बोला :

"कौन है तू?"

"मैं कोई भी हूँ, तुझसे क्या मतलब?.."

पुलिसमैन ने रुककर कुछ सोचा और फिर जरा विनम्र स्वर में बोला :

"जरा सोचो तो, यहाँ आदमी मरा हुआ पड़ा है और तुम नशे में धुत्त हो!"

"मैं बीस साल से नशे में धुत्त हूँ!" सीने पर हाथ मारते हुए मित्रोपोल्स्की ने गर्व से कहा।

ऐसा मालूम होता था कि वोद्का पीने के अपराध में वे निश्चय ही उसके हाथों में हथकड़ी डाल देंगे। नगर से कुछ और लोग भी वहाँ लपक आये थे। एक घोड़ागाड़ी में पुलिस अफ़सर भी आ गया। वह गढ़े में उतरा और मृत आदमी का कोट हटाकर उसका चेहरा देखने लगा।

"इसे सबसे पहले किसने देखा था?"

"मैंने," मित्रोपोल्स्की ने जवाब दिया।

पुलिस अफ़सर ने उसकी ओर देखा और फिर एकाएक कँपा देनेवाले अन्दाज़ में बोला :

"अच्छा, यह आप हैं जनाब!"

तमाशा देखने वाले भी घिर आये। बीस-पच्चीस से कम न होंगे। वे हाँफ रहे थे और उनके हृदय में उथल-पुथल मची थी। किनारे पर घेरा बनाये गढ़े में झाँक रहे थे। तभी किसी ने चिल्लाकर कहा :

"अरे, यह तो हमारे ही मोहल्ले का क्लर्क है। मैं इसे जानता हूँ।"

मित्रोपोल्स्की टोपी उतारकर अफसर के सामने खड़ा उचक रहा था, तू-तड़ाक में उलझा था और भर्रायी हुई आवाज़ में चिल्ला रहा था। अफसर ने उसके सीने पर ऐसा आघात किया कि वह लहराकर ज़मीन पर बैठ गया। पुलिसमैन ने, बिना किसी उतावली के एक रस्सा निकाला और गायक के हाथ बाँध दिये जिन्हें उसने बिना किसी विरोध के कमर के पीछे कर लिया था। अफसर ने अब भीड़ की ओर रुख किया और चिल्लाकर बोला :

"भागो यहाँ से, लुच्चो!"

इसी बीच पानी चूती लाल आँखोंवाला एक और बूढ़ा पुलिसमैन हाँफता और

साँस लेने के लिए मुँह बाए भागता हुआ आया। उसने रस्से के छोरों को, जिससे गायक के हाथ कमर के पीछे बँधे थे, पकड़ा और उसे चुपचाप नगर की ओर ले चला।

पूर्णतया त्रस्त और खिन्न मैं भी वहाँ से चल दिया। मेरा बुरा हाल था और मेरे दिमाग में, हृदय को झनझना देनेवाली कौवे की कड़ी चीख की भाँति ये शब्द रह-रहकर गूँज रहे थे :

"नाश हो इस अरिईल नगरी का!..."

और उदासी से भरा वह चित्र भी मेरी कल्पना में जमकर बैठ गया जब कि पुलिसमैन ने, बिना किसी उतावली के अपनी जेब से रस्सा निकाला और कहर बरसा देने वाले पैगम्बर ने अपने बालदार लाल हाथों को बिना किसी विरोध के चुपचाप इस तरह कमर के पीछे कर लिया मानो यह उसके लिए कोई बड़ी बात न हो, मानो इस क्रिया को वह हज़ारवीं बार वह दोहरा रहा हो...

शीघ्र ही मुझे पता चला कि पैगम्बर को जलावतन कर दिया गया, और इसके बाद ज़्यादा दिन न बीते न होंगे कि क्लेश्चोव भी गायब हो गया। कोई पैसेवाली स्त्री उसके हाथ लग गयी, उससे उसने शादी की और देहात में जाकर रहने लगा जहाँ उसने जीनसाज़ी की अपनी एक दुकान खोल ली।

...लेकिन उसके जाने से पहले मेरे मालिक ने जिसके सामने जीनसाज के गाने की मैं अक्सर तारीफ किया करता था, एक बार मुझसे कहा :

"चलकर सुनेंगे कभी..."

और एक दिन हम दोनों भटियारख़ाने पहुँचे। वह मेज़ के दूसरी ओर ठीक मेरे सामने बैठा था। उसकी आँखें बरबट्टा-सी खुली थी और भौंहे अचरज में कमान बनी थी।

भटियारख़ाने आते समय रास्ते भर वह मुझे चिढ़ाता और कोंचता रहा, और भटियारख़ाने में पाँव रखने के बाद भी वह मेरा, वहाँ मौजूद दूसरे लोगों का और दमघोंट गन्ध का मजाक उड़ाता रहा। जीनसाज़ के गाना शुरू करते ही उसके चेहरे पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट खेल गयी और वह अपने गिलास में बीयर उड़ेलने लगा। अभी गिलास आधा भरा होगा कि वह बीच में ही रुक गया और बोला :

"ऊँह... कमबख़्त जादूगर मालूम होता है!"

हौले से, और काँपते हाथ से उसने बोतल मेज़ पर वापस रख दी और गाना सुनने में रम गया।

जब क्लेश्चोव गाना खत्म कर चुका तो मालिक बोला :

"सच कहता था, भई। क्या गाता है, पट्ठा, गर्मी ही चढ़ गयी..."

जीनसाज़ ने एक बार फिर अपना सिर पीछे की ओर फेंका, आँखें उठाकर छत पर टिका दीं और गाना शुरू कर दिया :

धनी गाँव से पगडण्डी पर
चली जा रही युवती सुन्दर...

"सच, यह गाने में जान डालना जानता है," मालिक लघु हँसी हँसते और अपना सिर हिलाते हुए बुदबुदाया।

और क्लेश्चोव बाँसुरी बना हुआ गा रहा था :

मैं यतीम, फट बोली वह तो
कौन भला चाहेगा मुझको...
कोई हेल, न मेल दिखाये
नहीं नाच में मुझे बुलाये,
नहीं युवक का हृदय लुभाऊँ
निर्धन, वस्त्र कहाँ से लाऊँ?
दासी कोई विधुर बनाये
ऐसा भाग्य न मुझे सुहाये।

"गाता क्या है, जादू बिखेरता है," अपनी लाल बनी आँखों को मिचमिचाते हुए मालिक फुसफुसाया, "सच कहता हूँ, कम्बख़्त जादूगर है, जादूगर!"

मेरी आँखें उस पर टिकी थीं और मेरा हृदय खुशी से छलछला रहा था। गीत के उदास बोल गूँज और विजयी अन्दाज़ में सभी पर छा रहे थे। उनके सामने भटियारख़ाने की अन्य सभी आवाज़ें मुरझा गयी थीं और उनका आवेग हर घड़ी अधिक सशक्त, अधिक सुन्दर, अधिक जानदार बनता जा रहा था।

इस पूरी बस्ती में मेरा
कोई न संगी-साथी,
सभी मनायें हँसी-खुशी,
मैं अपने पर पछताती,
भला किसी को कैसे मेरा
रूप खींचकर लायेगा,
फटे पुराने चिथड़े मेरे
कौन मुझे अपनायेगा!
कोई अधबूढ़ा रंडुवा ही
मुझे ब्याह ले जायेगा
लेकिन यह दिन इस जीवन
में कभी न आने पायेगा!

मेरा मालिक, बिना किसी झिझक या लाज के, रो रहा था। उसका सिर झुका हुआ था, हुकदार नाक ज़ोरों से सुड़क रही थी और आँसू टपाटप आँखों से ढुरककर घुटनों पर गिर रहे थे।

तीसरे गीत के खत्म होते न होते मालिक का हृदय बुरी तरह उमड़ने-घुमड़ने लगा। बोला :

"नहीं भाई, मैं अब यहाँ नहीं बैठ सकता। मेरा तो दम घुटता है... यहाँ की यह कम्बख़्त गन्ध, चल, घर चलें!..."

लेकिन बाहर सड़क पर आते ही बोला :

"शैतान उठा ले जाये इन सबको! चल पेशकोव, किसी होटल में चलकर कुछ पेट में डाल लें। घर जाने को जी नहीं चाहता!..."

किराए के लिए कोई हील-हुज्जत किये बिना ही वह एक घोड़ागाड़ी में बैठ गया और जब तक होटल न आ गया उसी तरह गुम-सुम बैठा रहा। होटल में कोने की एक मेज़ उसने चुनी और कुर्सी पर बैठते ही धीमे स्वर में उसने तुरन्त बोलना शुरू कर दिया। रह-रहकर वह अपने चारों ओर देखता जाता था और ऐसा मालूम होता था मानो कोई गहरा घाव फिर से हरा हो गया हो।

"उस बूढ़े बकरे ने मुझे बुरी तरह पंक्चर कर दिया... सारी हवा निकाल दी और मुझे मनहूसियत के गढ़े में डाल दिया... सुन, तू दुनिया भर की चीज़ें पढ़ता है और ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिलाता है। तू ही बता कि यह कैसे हुआ? कितना लम्बा जीवन बिताया है मैंने,—पूरे चालीस साल मैंने पार किये हैं। बीवी है, बच्चे हैं, फिर भी इस दुनिया में ऐसा एक भी जीव नहीं है जिससे मैं खुलकर बातें कर सकूँ! कहाँ, कौन है जिसके सामने हृदय उड़ेला जाये, मन की एक-एक बात कही जाये? बीवी के कुछ पल्ले नहीं पड़ता, उसकी कुछ समझ में नहीं आता। और उसे समझने की गरज़ भी क्या है? उसके अपने बच्चे हैं... घर है, दुनिया भर का खटराग है। मेरी आत्मा से उसकी पटरी नहीं बैठती। बीवी तभी तक मित्र होती है जब तक पहला बच्चा जन्म नहीं लेता... समझा भाई, जीवन का कुछ ऐसा ही मामला है। तिस पर मेरी पत्नी,—अब तुझसे क्या कहूँ—तू खुद अपनी आँखों से देखता है... न ओढ़ने के काम आये न बिछाने के... मांस का अच्छा-ख़ासा ढूह है कम्बख़्त! ओह भाई रे, यह मेरा ही गुर्दा है जो उसका बोझ सम्भाले हूँ..."

उसने गिलास उठाया और ठण्डी तथा कड़वी बीयर चुपचाप गले के नीचे उतार गया। कुछ देर वह अपने बालों को इधर-उधर करता रहा और अन्त में बोला :

"समझा भाई, मैं तो लोगों को—कुल मिलाकर—हरामी कुत्ता समझता हूँ! मैं जानता हूँ कि तू उन देहातियों से खूब बातें करता है—कभी इस चीज़ के बारे में और कभी उस चीज़ के बारे में... मैं मानता हूँ जीवन में बहुत-सी चीज़ें हैं जो सही नहीं

हैं जो कुत्सित हैं—यह भाई बिल्कुल सही बात है... लोग सब के सब चोर हैं। और तू क्या समझता है कि तेरी बातों का उन पर कोई असर होता होगा? बिल्कुल नहीं। प्योत्र और ओसिप को लो,—एकदम कमीने और गये-बीते! वे तेरी एक-एक बात मुझे बताते हैं,—वे सब बातें भी जो तू मेरे बारे में कहता है... अब तू ही बता, ऐसे लोगों के बारे में तू क्या कहेगा?"

उसकी यह बात सुनकर मैं इतना सकपका गया कि मुझसे कोई जवाब देते न बना।

"देखा तूने!" मालिक ने हल्की हँसी के साथ कहा। "तेरा फ़ारस जाने का वह इरादा कुछ बुरा नहीं था। कम से कम इतना तो होता ही कि लोग क्या कहते हैं, इसका तुझे पता न चलता। उनकी ज़बान दूसरी है जो तेरी समझ में न आती। अपनी ज़बान में तो सिवाय गन्दगी और कुत्सा के और कुछ सुनाई नहीं देता!"

"क्या ओसिप मेरी सभी बातें आपको बता देता है," मैंने पूछा।

"बिल्कुल। क्या तुझे अचरज होता है? वह सबसे बढ़-चढ़कर बातें बनाता है। समझा भाई, वह तो पूरी पहेली है... तेरी बातों का, पेशकोव, कोई असर नहीं होता। तू सत्य की दुहाई देता है। लेकिन सत्य सुनता कौन है? उनके समने सत्य का राग अलापना ऐसा ही है जैसे शरद में बर्फ़,—जो कीचड़ में गिरती और पिघलती रहती है। सिवा इसके कि वह कीचड़ बढ़ाए, उससे कोई लाभ नहीं होता। तू भाई चुप ही रहा कर..."

बीयर का एक गिलास खत्म होता कि वह दूसरा उंड़ेलता, फिर तीसरा और फिर चौथा। गिलासों के साथ-साथ उसके शब्दों की रफ़्तार और तीखापन बढ़ता जाता लेकिन नशे का कोई चिह्न न दिखाई देता।

"शब्द तराशने का काम नहीं कर सकते, चुप्पी साधे रहना बेहतर है। सच भाई, यह जीवन भी कितना सूना और उदास है... उसका वह गाना कितनी सच्चाई से भरा था : 'इस पूरी बस्ती में मेरा कोई न संगी-साथी...'"

चौकन्ना-सा होकर उसने अपने इधर-उधर देखा और फिर आवाज़ को धीमी करते हुए बोला :

"सच भाई, अधिक दिन नहीं हुए जब मुझे एक मनचीती चिड़िया दिखायी दी थी... एक विधवा थी, मतलब यह कि उसके पति को जालसाज़ी के अपराध में साइबेरिया जलावतन करने की सजा मिली है। अभी वह यहाँ की जेल में बन्द है। हाँ, तो उसकी पत्नी से मेरी जान-पहचान हो गयी... पैसे के नाम उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी। सो उसने निश्चय किया... बस—अपने आप समझ जाओ. .. जोड़े मिलाने वाली एक बुढ़िया मुझे उसके पास ले गयी। मैंने उसे एक नज़र देखा,—बहुत ही प्यारी चीज़ थी, जवान और खूबसूरत,—उसके रोम-रोम से सच्चा

सौन्दर्य फूट पड़ता था! सो मैंने उसके यहाँ के चक्कर लगाने शुरू किये,—एक बार, दो बार, तीन बार,—और उसके बाद एक दिन मैंने उससे बात की। तुम अजब पहेली हो,—मैं बोला,—तुम्हारा पति जेल में पड़ा है और तुम सीधा और काँटों भरा रास्ता न अपनाकर गुलछर्रे उड़ा रही हो। और अगर तुम्हें यही करना है तो फिर उसके साथ साइबेरिया जाने की तुम्हारी धुन के क्या मानी हैं?—देखा तूने, अपने पति के साथ वह खुद साइबेरिया जाने का भी जोड़-तोड़ बैठा रही थी... आख़िर उसने मुँह खोला। जैसा भी वह है, उसने कहा, मेरे लिए बहुत है, क्योंकि मैं उससे प्यार करती हूँ! कौन जाने मेरे लिए ही यह मुसीबत मोल ली हो, और उसके लिए ही मैं तुम्हारे साथ इस तरह चटख-मटक रही हूँ। वह कुछ रुकी और फिर बोली : उसे पैसों की ज़रूरत है। वह भला आदमी है, ऊँचे कुल में उसने जन्म लिया है और वैसा ही जीवन बिताने का वह आदी है। अगर मैं अकेली होती, वह बोली, तो कभी अपने दामन में दाग़ न लगाती। तुम भी भले आदमी हो और मुझे अच्छे भी लगते हो, लेकिन इस बात का कभी आगे ज़िक्र न करना... ओह, शैतान उठा ले जाये उसे!.. मेरे पास जो कुछ था, उसके हवाले कर दिया। अस्सी से भी कुछ ऊपर रूबल रहे होंगे। मैंने सब उसके सामने रख दिए। मुझे माफ़ करना, मेरे मुँह से निकला, अब तक जो हुआ सो हुआ, आगे मैं तुम्हारे पास नहीं आ सकूँगा और अगर मैं आया भी तो मेरी आत्मा मुझे चैन नहीं लेने देगी! यह कहकर मैं चला आया, और बस...”

उसके बाद वह कुछ देर रुक गया और इतनी ही देर में नशा उस पर हावी हो गया। ऐसा मालूम होता था मानो वह एकबारगी ही ढह जायेगा। उसने बुदबुदाना शुरू किया :

“मैं कोई छह बार उसके पास गया... तू नहीं समझ सकता, इसका क्या मतलब है! इसके बाद शायद मैंने उसके घर के छह चक्कर और लगाए होंगे... लेकिन भीतर पाँव रखने का साहस नहीं कर सका! अब वह यहाँ नहीं है।...”

उसने मेज़ पर अपने हाथ रख लिये और उँगलियों को हिलाते हुए फुसफुसाकर बोला :

“सच, भगवान से मेरी अब यही विनती है कि फिर कभी उसका सामना न करना पड़े! भगवान न करें कि कभी फिर उससे सामना हो जाये, हे भगवान... फिर तो बेड़ा ग़र्क़ हो जायेगा... अच्छा, चल, अब घर चलें!...”

हम बाहर निकल आये। उसके पाँव डगमगा रहे थे और वह बुदबुदा रहा था :

“देखा भाई तूने...”

उसने जो कुछ बताया, उससे मुझे अचरज नहीं हुआ। इधर कुछ दिनों से मैं खुद यह अनुभव कर रहा था कि उसके साथ ज़रूर कोई असाधारण घटना घटी है।

लेकिन जीवन के बारे में उसके विचारों, और ख़ास तौर पर ओसिप के बारे में उसने

जो बताया था, उससे मेरा जी भारी हो गया और गहरी उदासी ने मुझे घेर लिया।

20

मुर्दा नगर में, खाली इमारतों और दुकानों की पाँतों के बीच, तीन गर्मियाँ बीत गयीं और मैं मजदूरों की निगरानी, उनकी ओवरसीयरी का काम करता रहा। प्रत्येक शरद में वे बदनुमा पक्की दुकानों को ढहा देते और प्रत्येक वसन्त में ऐसी ही बदनुमा दुकानों को खड़ा करते।

मालिक मुझे पाँच रूबल महीना देता उनके बदले में मेरी जान तक निचोड़ने की ताक में रहता। जब किसी दुकान में नया फ़र्श बिछाना होता तो मुझे फ़र्श की क़रीब दो फुट गहरी मोटी तह खोदनी और मलबे की ढुलाई-सफ़ाई करनी पड़ती। आवारा लोग इस काम के लिए एक रूबल वसूल करते, लेकिन मुझे वह फूटी कौड़ी न देता। इसके सिवा फ़र्श की ख़ुदाई-ढुवाई में फँसा रहने के कारण मैं मज़दूरों की निगरानी न कर पाता और वे इस मौके को गनीमत समझ दरवाज़ों के तालों और मूठों के पेच खोल उन्हें तिड़ी कर देते, और भी जो छोटी-मोटी चीज़ उनके हाथ में लगती उड़ा ले जाते।

मज़दूर-कारीगर हों चाहे ठेकेदार, जब भी और जिस तरह भी मौका मिलता, मुझे धोखा देने से बाज न आते और क़रीब-क़रीब खुले आम चोरी करते, मानो चोरी करना उन पर लादा गया फर्ज़ हो और पकड़े जाने पर वे कभी गुस्सा न होते, बल्कि अचरज में भरकर कहते :

"अरे बाप रे, पाँच रूबल के पीछे तू इतना हलकान होता है मानो तुझे बीस रूबल मिलते हों। देखकर हँसी आती है!"

मैं मालिक से कहता कि ख़ुदाई-ढुवाई के काम में मुझे फँसाने से बचत तो केवल एकाध रूबल की होती है, लेकिन इससे कहीं ज़्यादा का माल चोरी चला जाता है। लेकिन वह आँख मारकर बोलता :

"ठीक है, ठीक है, बने जा!"

यह ताड़ना कुछ कठिन नहीं था कि वह मुझे भी चोरों का ही मौसेरा भाई समझता है। इससे उसके प्रति मेरी घृणा और भी बढ़ गयी लेकिन मैंने अपमानित अनुभव नहीं किया : सारा आवाँ ही ऐसा था। हर कोई चोरी करता, और खुद मेरा मालिक भी दूसरों की सम्पत्ति हड़पने में जरा आना-कानी न करता।

मेला उठ जाने पर वह मरम्मत के लिए ली दुकानों का चक्कर लगाता। दुकानदार अक्सर अपनी चीज़ें भूल जाते और समोवार, तश्तरियाँ, कालीन, कैंचियाँ और सामान की पेटी या सामान का एकाध टुकड़ा छोड़ जाते। वह इन चीज़ों को देखता

और लघु हँसी हँसते हुए कहता :

"इन चीज़ों की सूची तैयार करके इन्हें गोदाम में पहुँचा देना!"

गोदाम में से कितनी ही चीज़ें उठवाकर वह अपने घर ले जाता और मुझसे कई बार नई सूची बनवाता।

चीज़ें जमा करने और उन्हें अपनी मिल्कियत बनाने का मेरे मन में न कोई चाव था, न मोह। पुस्तकें तक मुझे बोझ मालूम होती थीं। मेरे पास केवल दो ही थीं—एक बेरांजे की कविताओं का छोटा-सा संग्रह, और दूसरा हाइने की कविताओं का संग्रह। पुश्किन की कविताओं का संग्रह भी मैं ख़रीदना चाहता था, लेकिन नगर में पुरानी क़िताबों की एक मात्र दुकान का चिड़चिड़ा मालिक उसके बहुत ज़्यादा दाम माँगता था। मेज़-कुर्सियों, कालीनों, आयीनों और ऐसी ही दूसरी चीज़ों से, जिनसे मालिक का घर अटा पड़ा था, मुझे घृणा थी। उनके भारी-भरकम आकार-प्रकार तथा रंगों और वार्निश की गन्ध से मेरा जी भन्ना जाता। मालिक के कमरे मुझे आम तौर पर अच्छे न लगते, उन्हें देखकर मुझे दुनिया भर के कूड़ा-कबाड़ तथा लोहा-लंगड़ से भरे बक्सों की यादा हो आती। लेकिन मेरा मालिक था कि उसका मन न भरता और दूसरों की चीज़ें ला-लाकर अपने चारों ओर अच्छा ख़ासा कबाड़ जमा करता रहता। यह मुझे और भी ज़्यादा घिनौना मालूम होता। यों तो रानी मार्गो के कमरे में भी फर्नीचर की भरमार थी, लेकिन वह कम से कम देखने में सुन्दर तो था।

खुद जीवन भी मुझे ऐसा ही मालूम होता—असम्बद्ध, बेडौल, बेतुकी और बेमानी चीज़ों से बुरी तरह अटा हुआ। दूर जाने की ज़रूरत नहीं। यहीं देखिये। दुकानों की मरम्मत हो रही है, उनकी तोड़-फोड़ ठीक की जा रही है। वसन्त में बाढ़ आयेगी और सारी मेहनत पर पानी फेर देगी। फ़र्श उचक आयेंगे, बाहर के दरवाज़े खराब हो जायेंगे। बाढ़ उतरने के बाद शहतीर गल-सड़ जायेंगे। वर्ष प्रति वर्ष बीसियों साल से यही सिलसिला चला आ रहा है। मेले का मैदान बाढ़ के पानी से भर जाता है, इमारतों और दुकानों को चौपट कर देता है, पटरियाँ और रास्ते सब एकाकार हो जाते हैं। इन वार्षिक बाढ़ों से लाखों का नुकसान होता है और सभी जानते हैं कि ये बाढ़ें अपने आप कभी बन्द नहीं होंगी।

आये साल नदी का पानी जाड़ों में जमकर बर्फ़ हो जाता, वसन्त में यह बर्फ़ तड़कती और बजरों तथा बीसियों डोंगियों को चकनाचूर कर अपने साथ बहा ले जाती। लोग यह सब देखते, आहें भरते और कराहते, नई डोंगियाँ बनाते जिन्हें अगले साल फिर इसी प्रकार नष्ट होना पड़ता। यह एक ऐसा कुत्सित चक्र था जो खत्म होने में न आता था, जिसे खत्म करने की बात तक कोई नहीं सोचता था!

जब ओसिप से मैंने इसका ज़िक्र किया तो उसने अचरज से मेरी ओर देखा, फिर खिल्ली-सी उड़ाते हुए बोला :

"वाह रे चूज़े, क्या चोंच मारी है! तुझे इस सब से क्या लेना-देना है? तुझे इससे क्या मतलब?"

इसके बाद उसका स्वर कुछ गम्भीर हो गया, लेकिन उसकी आँखों में खिल्ली की चमक फिर भी बनी रही। उसकी आँखें नीली थीं, और इस उम्र में भी उनमें कुछ इतना निखार था कि देखकर अचरज होता था।

"लेकिन है तू होशियार!" उसने कहा, "हो सकता है कि यह तेरी एक बेकार की आदत सिद्ध हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि आगे चलकर वह तेरे काम आये। तू एक बात और देख..."

और उसने, रूखे और तटस्थ अन्दाज़ में, छोटे-छोटे शब्दों, टकसाली मुहावरों और कहावतों, चकित कर देनेवाली उपमाओं और चुटकियों की झड़ी लगा दी :

"लोग रोते-झींकते और तोबा-तिल्ला मचाते हैं कि हमारे पास ज़मीन नहीं है, वोल्गा है कि हर साल वसंत में फनफनाती और तटों को काटकर मनों मिट्टी बीच धारा में बहा ले जाती है। यह मिट्टी नीचे तलहटी में जम जाती है। तब दूसरी जगह के लोग चिल्लाते हैं कि वोल्गा छिछली हो गयी। फिर वसन्त में बर्फ़ पिघलने से आनेवाली बाढ़ और ग्रीष्म की बारिशें ज़मीन में खाइयाँ बनाती और नालियाँ काटती हैं, और वोल्गा उसे फिर हड़प जाती है!"

वह एकदम निस्संग होकर बातें कर रहा था। उसके स्वर में न विक्षोभ का भाव था, न किसी प्रकार की शिकायत का। मानो उसका रोम-रोम जीवन के खिलाफ़ शिकवा-शिकायतों के बारे में अपनी जानकारी पर गर्व और सन्तोष से छलछला रहा हो। उसके शब्दों में सचाई थी, मेरे विचारों से वे मेल खाते थे, फिर भी उन्हें सुनना मुझे अप्रिय लगता था।

"या फिर एक दूसरी चीज़ को लो—आग लगने को..."

मैं जानता था कि एक भी गर्मी ऐसी नहीं बीतती जब वोल्गा पार के जंगलों में आग न लगती हो। आये साल बिला नागा हर जुलाई में आसमान मटमैले पीले धुएँ से ढक जाता और नीचे झुका हुआ किरणविहीन सूरज दुखती हुई आँख की भाँति धरती की ओर देखता रहता।

"जंगल... उनकी बात छोड़!" ओसिप कहता। "जंगलों पर या तो ज़ार का अधिकार होता है या कुलीनों का, देहातिये जंगलों के मालिक नहीं होते। जब नगर जलकर राख हो जाते हैं तो यह भी कोई बड़ी मुसीबत नहीं है—नगर में अमीर रहते हैं, और अमीरों पर तरस खाने में कोई तुक नहीं दिखाई देती! असल मुसीबत तो तब होती है जब कस्बों और गाँवों में आग लगती है। हर साल, और कुछ नहीं तो सौ-एक गाँव जल जाते हैं, यही असल मुसीबत है!"

वह दबी-सी हँसी हँसता और कहता :

"माल है, पर सम्भाल नहीं है! एक तू और मैं देख पाते हैं कि इंसान की मेहनत का लाभ न उसे मिलता है, धरती को, पानी और आग उसे चट कर जाते हैं!"

"लेकिन इसमें हँसने की क्या बात है?"

"क्यों नहीं?" वह कहता। "आँसुओं से आग नहीं बुझाई जा सकती, केवल बाढ़ बढ़ेगी!"

मेरे मन में यह बात जमकर बैठ गयी कि अब तक जितने भी लोगों से मैं मिला हूँ, उनमें यह सलोना बूढ़ा सबसे ज़्यादा समझदार और बुद्धि का धनी है। लेकिन, बहुत कोशिश करने पर भी, मैं यह नहीं पकड़ सका कि क्या उसे पसन्द है, और क्या नहीं।

मैं इसी उधेड़बुन में फँसा रहता और उसके शब्द, जलती आग में सूखी खपचियों की भाँति, आ-आकर गिरते रहते :

"देख न, लोग किस तरह शक्ति बरबाद करते हैं,—अपनी भी, और दूसरों की भी। खुद अपने मालिक को ही ले जो घुन की भाँति तेरी शक्ति बरबाद करने में जुटा है। या फिर वोद्का को ले। एक अकेली वोद्का इतनी शक्ति बरबाद करती है कि बड़े से बड़े दिमागदार भी उसका हिसाब नहीं लगा सकते! अगर कोई झोंपड़ा जल जाये तो उसकी जगह दूसरा बना सकते हैं। लेकिन जब इंसान धूल में मिलता है तो यह नुकसान पूरा नहीं हो सकता! मिसाल के लिए अपने अरदाल्योन या ग्रिगोरी को ही ले। कोई कल्पना तक नहीं कर सकता था कि यह देहातिया इस तरह धुआँ बनकर उड़ जायेगा! माना कि वह ग्रिगोरी कोई ज़्यादा अक्लमन्द देहातिया नहीं था, लेकिन उसके पास हृदय था! वह एक ही लपक में उड़ गया, मानो हाड़-मांस का पुतला न होकर घास-फूस का ढेर हो,—चिंगारी पड़ी नहीं कि यह जा, वह जा। औरतें उसे इस तरह चट कर गयीं जैसे कीड़े लाश को चट कर जाते हैं।"

"लेकिन यह तो बताओ," बिना किसी कठोर भावना के, केवल कौतुकवश मैंने उससे पूछा, "कि मेरी सारी बातें तुम मालिक के सामने जाकर क्यों उगल देते हो?"

और उसने बहुत ही सादगी से, बल्कि कहना चाहिए कि हार्दिकता से, जवाब दिया :

"वह तेरा मालिक है। उसे सब मालूम होना चाहिए कि तेरे दिमाग में क्या-क्या फ़तूर भरे हैं। अगर वह तुझे ठीक नहीं कर सकता तो और कौन करेगा? किसी बुरी नीयत से नहीं, तेरे भले के लिए ही मैं सारी बातें उसे बताता था। वैसे तू समझदार है, लेकिन तेरी खोपड़ी में शैतान बैठा है। वह तेरे दिमाग में दुनिया भर की उलटी-सीधी बातें फूँकता रहता है। अगर तूने चोरी की होती तो मैं एक शब्द भी उसके बारे में न कहता, अगर तू लड़कियों के पीछे भागता, तब भी मैं न बोलता। और अगर तू कहीं से नशे में धुत्त होकर आये, तब भी निश्चय जान मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन तेरे दिमाग़ी फ़तूरों को मैं नहीं बख़्श सकता। उनके बारे में मैं ज़रूर कहूँगा।

यह बात आज मैं तुझे भी खोलकर कहे देता हूँ...”

“मैं तुमसे कभी बातें नहीं करूँगा!”

कुछ क्षण वह चुप रहा और अपनी हथेली में चिपके कोलतार को खुरचकर छुड़ाता रहा। इसके बाद चाव भरी नज़र से मेरी ओर देखते हुए बोला :

“यह निरी बकवास है। तू मुझसे बातें करेगा, और ज़रूर करेगा। नहीं तो और कौन है जिससे तू यहाँ बातें कर सकता है? कोई नहीं!...”

खूब साफ़-सुथरा होने पर भी इस समय ओसिप जहाज़ी याकोव की भाँति मालूम होता था—हर चीज़ और हर व्यक्ति से उतना ही अलग और बेपरवाह।

कभी उसे देखकर मुझे पारखी प्योत्र वासील्येविच की याद हो आती, और कभी कोचवान प्योत्र की, और कभी-कभी मुझे उसमें अपने नाना की हुलिया दिखायी देती,—किसी न किसी रूप में उसमें उन सभी वृद्ध लोगों का कोई न कोई अंश मालूम होता जिससे कि अब तक मेरा वास्ता पड़ चुका था। ये वृद्ध लोग, सब के सब बहुत ही दिलचस्प थे, परन्तु मैं यह भी देख रहा था कि उनके साथ जीना नामुमकिन है—ऐसी ज़िन्दगी घिनौनी और कठिन होती। वे मानो आत्मा और हृदय में घुन की भाँति प्रवेश करते जाते हों। क्या ओसिप भला आदमी था?—नहीं। क्या वह बुरा आदमी था—नहीं। लेकिन वह चतुर था, यह साफ़ मालूम होता था। उसकी गहरी सूझ-बूझ चकित कर देनेवाली थी, लेकिन उसके सोचने का ढंग मुझे सुन्न और निर्जीव बनाता था, और अन्ततः मुझे यह अनुभव होने लगा कि मेरा जो अपना सोचने का ढंग है, उसकी जड़ पर वह कुठाराघात करता है।

निराशा के अन्धे कुएँ में डाल देनेवाले विचार, सँपोलियों की भाँति, मेरे हृदय में रेंगने लगते :

“सभी लोग एक-दूसरे के दुश्मन हैं, एक-दूसरे को देखकर उनका मुस्कराना झूठ है, मीठे शब्दों की बौछार करना झूठ है। यह सब ऊपरी दिखावा है, लेकिन सच पूछो तो उनमें एक भी ऐसा नहीं है जो प्रेम के दृढ़ नाते से जीवन के साथ बँधा हो, जो सचमुच में जीवन से प्रेम करता हो। नानी को छोड़ अन्य कोई सच्चे मानी में जीवन तथा लोगों से प्रेम नहीं करता। नानी, और रानी मार्गो—विधाता की वह अद्‍भुत रचना!”

कभी-कभी ये और इसी तरह के अन्य विचारवाले बादलों का रूप धारण कर हृदय और मस्तिष्क पर छा जाते, जीवन को आह्लादविहीन और दमघोंट बना देते। परन्तु और कैसे जिया जाये, कहाँ जाया जाये? यहाँ तक कि, ओसिप को छोड़, ऐसा अन्य कोई नहीं था जिससे मैं बातें कर सकता। और घूम-फिरकर मैं उसी से बातें करता।

मैं उसके सामने अपना हृदय उड़ेल देता। मेरी व्यग्र बातों को वह मन लगाकर

सुनता, बीच-बीच में सवाल पूछता और खोद-खोदकर सभी कुछ मालूम कर लेता। अन्त में शान्त भाव से कहता :

"कठफोड़वा भी अपनी लगन का पक्का होता है,—एकदम ज़िद्दी और ढीठ। लेकिन उसे देखकर किसी को डर नहीं लगता! अगर मेरी सच्ची सलाह माने तो किसी मठ में भर्ती हो जा। वहीं रहकर अपने बाल पकाना और मीठे शब्दों से भक्तों के हृदयों पर मरहम लगाना। इससे तेरे दिमाग को शान्ति मिलेगी, पादरियों तथा इसाई साधुओं की जेब गर्म होगी! सच, अपने समूचे हृदय से मैं तुझे यह सलाह देता हूँ, दुनियादारी के काम तो तेरे बस के नहीं लगते..."

मठ में प्रवेश करने का मेरा कोई इरादा नहीं था, लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता मानो मैं समझ में न आनेवाली बातों की किसी अन्धी भूल-भुलैया में फँस गया हूँ। मेरा हृदय इससे छुटकारा पाने के लिए छटपटाता। जीवन मानो शरद ऋतु में खुमियों से विहीन जंगल के समान था, एक ऐसा शून्य जिसका हर मोड़ और कोना मेरा खूब जाना-पहचाना था और जिसमें कोई काम नज़र नहीं आता था।

मैं न तो वोद्का पीता था, न लड़कियों पर डोरे डालता था। आत्मा और हृदय को मगन रखने के इन दो साधनों का स्थान पुस्तक ने ले लिया था। लेकिन जितना ही अधिक मैं पढ़ता, उतना ही अधिक ऐसा सूना और बेमतलब का जीवन जीना कठिन होता जाता, जैसा मुझे लगता था कि अधिकतर लोग जी रहे हैं।

अभी सोलहवें वर्ष में ही मैंने पाँव रखा था, लेकिन कभी-कभी मालूम ऐसा होता मानो मैं काफ़ी बूढ़ा हो गया हूँ। जीवन में इतना कुछ मैंने देखा और भुगता था और इतना कुछ मैंने पढ़ा और बेचैनी के साथ सोचा-विचारा था कि मुझे अपना अन्तर भारी हो गया मालूम होता था। मेरे दिमाग का कोठा उस अन्धे गोदाम की भाँति था जिसमें दुनिया भर की चीज़ें भरी थीं जिन्हें छाँटने और करीने से रखने की न तो मुझमें सकत थी और न योग्यता ही।

छाप अपने बोझ और बहुलता से स्थिरता प्रदान करने के बजाय मुझे और भी विचलित कर देती और मैं उसी प्रकार डोलने तथा छपाके खाने लगता जैसे कि धचके लगने पर पात्र में पानी हिलता और छपछपाता है।

रोने-झींकने और शिकवा-शिकायत से, दुःख-दर्द और बीमारी-चकारी से मुझे नफ़रत थी और बर्बरता के—खून-ख़राबे, मार-पीट, यहाँ तक कि ज़बानी गाली-गलौंच के भी—दृश्य सहज ही मुझे भन्ना देते, हृदय में ठण्डे गुस्से की एक आग भड़क उठती, जंगली जन्तु की भाँति मरने-मारने के लिए मैं तैयार हो जाता और बाद में अदबदाकर अपने किये पर बुरी तरह पछताता।

अनेक बार ऐसा ही होता कि जुल्म करने वाले की चमड़ी उधेड़ने की अदम्य इच्छा भूत की भाँति मेरे सिर पर सवार हो जाती, आँखें बन्द कर मैं बीच मझधार में

कूद पड़ता और अच्छी-ख़ासी लड़ाई में फँस जाता। गहरी और पंगु निराशा तथा खींझ और झुँझलाहट से उपजे अपने उन विस्फोटों की आज दिन भी जब मैं याद करता हूँ तो मेरा हृदय शर्म और शोक की भावना में डूबने-उतरने लगता है।

ऐसा मालूम होता था मानो मेरे भीतर दो जीव निवास करते हों : एक वह जो ज़रूरत से ज़्यादा गन्दगी और घिनौनेपन में से गुजरने के बाद अब कुछ दब्बू हो गया था। जीवन की भयानक घिस-घिस ने उसे संदेहशील और अविश्वासी बना दिया था और सभी लोगों को—खुद अपने आप को भी—असहाय तरस की नज़र से वह देखता था। नगरों और लोगों से दूर वह एक शान्त और अवकाश-प्राप्त जीवन बिताना चाहता था। कभी वह फ़ारस जाने के सपने देखता, कभी मठ में शरण लेने की बात सोचता, कभी वह जंगलों के चौकीदार या रेलवे के संतरी की झोपड़ी में जाकर रहने अथवा नगर से बाहर किसी उपबस्ती में जाकर रात का पहरेदार बनना चाहता। लोगों से कम से कम मिलना और उनसे अधिक दूर रहना जैसे उसके जीवन का लक्ष्य था।

दूसरा जीव जो मुझमें निवास करता था, वह इससे भिन्न था। समझ और सचाई से भरी पुस्तकों की पवित्र भावना उसके रोम-रोम में बसी थी। वह जानता और हर क्षण अनुभव करता था कि जीवन की यह भयानक घिसघिस पूरी निर्ममता से या तो उसका सिर धड़ से अलग कर देगी या अपने भयानक पाँवों से उसे कुचलकर रख देगी। इससे बचने के लिए वह अपनी समूची शक्ति बटोरता, दाँतों को भींचकर और मुट्ठियों को कसकर घूँसों या बातों की लड़ाई में कूदने के लिए सदा तैयार रहता। अपने प्रेम और तरस की भावना को वह अमल में व्यक्त करता और फ़्रांसीसी उपन्यासों के वीर नायकों की भाँति, जरा-सा भी उकसावा मिलने पर अपनी तलवार म्यान से बाहर निकालता और टूट पड़ने की मुद्रा में तनकर खड़ा हो जाता।

उन दिनों एक आदमी से मेरी कट्टर दुश्मनी थी। वह मालाया पोक्रोव्स्काया सड़क के एक वेश्याघर का जमादार था। एकदिन अनायास ही पहली बार मेरी उससे मुठभेड़ हो गयी। सुबह का वक़्त था। मैं मेले की ओर अपने काम पर जा रहा था और वह नशे में बेहाल एक लड़की को गाड़ी में से खींचकर बाहर निकाल रहा था। वह उसकी टाँगें पकड़े था और बहुत ही गन्दे ढंग से झटके दे रहा था। झटकों से लड़की की टाँगों के मोज़े खिसक आये थे, घाघरा उलट गया था और वह कमर तक नंगी दिखाई दे रही थी। हर झटके के साथ वह मुँह से बेहूदा आवाज़ करता था, हँसता था और उसके बदन पर थूकता जाता था। बेसुध और लस्तपस्त लड़की, जिसका मुँह खुला हुआ था, हर झटके के साथ नीचे खिसकती आती थी। उसकी ढीली और बेजान बाँहें, जो अपने कोटरों से बाहर निकल आयी मालूम होती थी, सिर के ऊपर सीधी फैली थी और बदन के साथ-साथ नीचे खिसकती जाती थी। उसकी पीठ, सिर, उसका नीला चेहरा पहले गाड़ी की सीट, इसके बाद पायदान से टकराये, आख़िर में उसका सिर पत्थर से जा

टकराया और वह सड़क पर आ गिरी।

कोचवान ने अपना हण्टर फटकारा और उसका घोड़ा गाड़ी को लेकर हवा हो गया। जमादार ने लड़की की टाँगों को उठाया और उलटे कदम चलते हुए लाश की तरह उसे पटरी की ओर खींचता ले चला। गुस्से में पागल हो मैं उसपर झपटा। गनीमत यही थी कि सात-फुटी साधनी, जिसे मैं अपने हाथ में लिये था, या संयोगवश छूटकर गिर पड़ी थी या सुध न रहने के कारण खुद मैंने ही उसे फेंक दिया था। नहीं तो वह शायद जीवित न बचता और बाद में मैं भी फँसा-फँसा फिरता। खाली हाथों ही मैं तेजी से लपका और टक्कर मारकर मैंने उसे गिरा दिया। इसके बाद उछलकर मैं ओसारे पर चढ़ गया और घबराहट में खूब ज़ोरों से मैंने घण्टी बजायी। घण्टी की आवाज़ सुन जंगली शक्ल-सूरत वाले कुछ लोग भागे हुए बाहर आये। मैं उन्हें कुछ समझा नहीं सका, जैसे-तैसे मैंने अपनी साधनी उठाई और नौ-दो ग्यारह हो गया।

नदी की ढलान पर जब मैं पहुँचा तो वह कोचवान मुझे दिखाई दिया जिसकी गाड़ी में लड़की पड़ी हुई थी। कोचवान की अपनी ऊँची सीट से उसने मेरी ओर देखा और सराहना के भाव में गरदन हिलाते हुए बोला :

“खूब मरम्मत की!”

झुँझलाहट में भरकर मैंने उससे पूछा :

“लेकिन तुम अपनी कहो। लड़की तुम्हारी गाड़ी में सवार थी। लड़की के साथ इतनी बेशर्मी का सलूक करने पर तुमने जमादार को रोका क्यों नहीं?”

“लड़की के साथ चाहे जैसा सलूक हो, मेरी बला से!” उसने अविचलित उपेक्षा से कहा, “शरीफ़ज़ादों ने लड़की को गाड़ी में डालकर मुझे किराया दे दिया था। कौन किसको पीटता है, इससे मेरा क्या मतलब!”

“अगर वह उसे मार डालता तो?”

“नहीं, उस जैसी लड़कियों की जान इतनी कच्ची नहीं होती!” उसने यों कहा मानो कई बार नशे में धुत्त लड़कियों को मारने की कोशिश कर चुका हो।

इसके बाद क़रीब-क़रीब रोज़ ही सुबह के वक़्त जमादार से मेरी मुठभेड़ होती। जब मैं बाज़ार में से गुज़रता तो वह सड़क पर झाड़ू देता या ओसारे की सीढ़ियों पर इस तरह बैठा हुआ दिखाई देता मानो मेरा ही इन्तज़ार कर रहा हो। मुझे निकट आता देख वह अपनी आस्तीनें चढ़ा लेता और घूँसा दिखाते हुए कहता :

“अगर तेरा थोबड़ा सीधा न कर दिया तो मेरा नाम नहीं!”

उसकी उम्र चालीस से कुछ ऊपर थी। नाटा कद, टाँगें कमान की भाँति बाहर की ओर निकली हुई और गर्भवती स्त्रियों की भाँति मटका-सा पेट। हल्की हँसी हँसते हुए वह अपनी चमकती आँखों से मेरी ओर देखता, और मुझे यह देखकर अचरज होता, बल्कि डर-सा लगने लगता कि उसकी आँखों में मस्ती और हार्दिकता भरी है। लड़ने

में वह तेज नहीं था, और उसकी बाँहें मेरे मुकाबले में काफ़ी छोटी थीं। दो या तीन धौल के बाद ही उसके छक्के छूट जाते, फाटक से वह सट जाता और अचरज में मुँह बाए हाँफता हुआ कहता :

"ज़रा ठहर, अभी तुझे ठिकाने लगाता हूँ!..."

उसके साथ लड़ने में कोई मजा नहीं था। जल्दी ही मैं उकता गया, और एक दिन मैंने उससे कहा :

"सुन, भोंदू महाराज, भगवान के वास्ते मेरा पीछा छोड़!"

"तू क्यों लड़ता है?" उसने शिकायत भरे स्वर में पूछा।

मैंने लड़की के साथ उसकी बदसलूकी का ज़िक्र किया। सुनकर बोला :

"तो इससे क्या? तुझे क्या उस पर तरस आता है?"

"बेशक!"

एक क्षण के लिए वह खामोश रहा, अपने होंठों को उसने साफ़ किया और बोला :

"क्या तुझे बिल्ली पर भी तरस आता है?"

"हाँ..."

"तब तो तू निरा बुद्धू है, और साथ ही झूठा भी। कोई बात नहीं, मैं तुझे मज़ा चखाऊँगा..."

लम्बे चक्कर से बचने के लिए मैं इस बाज़ार में से होकर अपने काम पर जाता था। जमादार से मुठभेड़ न हो, इसलिये मैं अब जल्दी उठता और अपने काम पर चल देता। लेकिन, मेरी इन कोशिशों के बावजूद, कुछ दिन बाद ही वह मुझे फिर दिखाई दे गया। वह सीढ़ियों पर बैठा था और अपनी गोद में एक बिल्ली लिये उसे थपथपा रहा था। जब मैं उससे तीन डग दूर रह गया तो वह उछलकर खड़ा हो गया, पिछली टाँगों से पकड़कर बिल्ली को उसने उठाया, और पत्थर के पीढ़े पर इतने ज़ोरों से उसका सिर दे मारा कि उसके गर्म खून के छींटों से मैं लथपथ हो गया। इसके बाद चिथड़ा हुई बिल्ली को उसने मेरे पाँवों पर पटक दिया और फिर फाटक पर खड़ा होकर कहने लगा :

"अब बोल, क्या कहता है?"

मैं क्या कहता! कुत्तों की भाँति हम दोनों एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो गये और अहाते में लुढ़कने-पुढ़कने लगे। बाद में, दुःख और वेदना से सन्न हो, सड़क के किनारे उगे झाड़-झँखाड़ में बैठकर मैं अपने होंठ काटने लगा ताकि मेरी रुलाई न फूट पड़े, मैं चिल्ला न उठूँ। इस घटना की याद करते हुए मेरा हृदय आज भी दर्दनाक घृणा से काँप उठता है और अचरज होता है कि मैं पागल क्यों नहीं हो गया, या मैंने किसी की हत्या क्यों नहीं कर डाली।

क्या यह ज़रूरी है कि इस हद तक घिनौनी बातों का वर्णन किया जाये? हाँ, यह ज़रूरी है! यह इसलिये ज़रूरी है श्रीमान, कि आप धोखे में न रहें, कहीं यह न समझने लगें कि इस तरह की बातें केवल बीते जमाने में हुआ करती थीं! आज दिन भी आप मनगढ़न्त और काल्पनिक भयानकताओं में रस लेते हैं, सुन्दर ढंग से लिखी भयानक कहानियाँ और किस्से पढ़ने में आपको आनन्द आता है। रोंगटे खड़े कर देने वाली कल्पनाओं से अपने हृदय को सनसनाते और गुदगुदाने से आप जरा भी परहेज नहीं करते। लेकिन मैं सच्ची भयानकताओं से परिचित हूँ, आये दिन के जीवन की भयानकताओं से, और यह मेरा अवंचनीय अधिकार है कि इनका वर्णन करके आपके हृदयों को मैं कुरेदूँ, उनमें चुभन पैदा करूँ ताकि आपको ठीक-ठीक पता चल जाये कि किस दुनिया में और किस तरह का आप जीवन बिताते हैं।

कमीना और गन्दगी से भरा घिनौना जीवन है यह जो हम सब बिताते हैं। यही सारी बात है!

मैं मानव-जाति से प्रेम करता हूँ और चाहता हूँ कि उसे किसी भी तरह से दुःख न पहुँचाऊँ, परन्तु इसके लिए न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिए और न ही चमकीले शब्द-जाल और खूबसूरत झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिए! ज़रूरी है कि हम जीवन की ओर मुँह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उंड़ेल दें।

...स्त्रियों के साथ जिस तरह का व्यवहार लोग करते थे, उसे देखकर मैं ख़ास तौर से विक्षुब्ध हो उठता और मेरा हृदय तिलमिलाने लगता। पुस्तकों ने मुझे सिखाया था कि जीवन की सबसे सुन्दर या अर्थपूर्ण देन अगर कोई है तो स्त्री। माँ मरियम और बुद्धि की देवी वसिलीसा की जो कहानियाँ मैंने नानी से सुनी थीं, वे भी इसकी पुष्टि करती थीं। अभागी धोबिन नताल्या का जीवन उसकी एक सजीव मिसाल था। इसके अलावा उन सैंकड़ों और हज़ारों मुस्कराहटों तथा कनखियों में भी एक इसी सत्य की झाँकी मिलती थी जिनसे कि स्त्रियाँ, जीवन को जन्म देनेवाली माताएँ आह्लाल और प्रेम से बुरी तरह शून्य इस धरती पर आये दिन स्वर्ग और सौन्दर्य की अवतारणा करती हैं।

तुर्गेनेव की पुस्तकों के पन्ने स्त्रियों के गौरव की लालिमा से रंगे थे, और स्त्रियों के बारे में जो कुछ भी अच्छा मैं जानता था, उससे मैं अपने मन में बसी रानी मार्गो की प्रतिमा को सजाता; तुर्गेनेव और हाइने ने इसके लिए मुझे अनेक बहुमूल्य रत्न दिए।

मेले से घर लौटते समय मैं पहाड़ी क्रेमलिन की दीवार के पास अक्सर खड़ा हो जाता और साँझ के सूरज को आकाश से नीचे उतरकर वोल्गा की गोद में लीन होते देखता। ऐसा मालूम होता मानो आकाश में तरल अग्नि की नदियाँ फूट निकली हों।

इस धरती की प्यारी नदी वोल्गा का पानी गहरी गुलाबी आभा से दमकता जिसपर छाया की परतें चढ़ती जातीं। ऐसे क्षणों में कभी-कभी मुझे लगता मानो यह धरती एक भीमाकार बजरा है जो जलावतनी की सजा पाए बन्दियों को लिए किसी अज्ञात दिशा में जा रहा है, वह कोई भीमाकार सुअर जैसी लगती है जिसे अदृश्य जहाज़ अलस भाव से कहीं खींचे लिये जा रहा है।

लेकिन अधिक अक्सर मेरी कल्पना में धरती की व्यापकता का चित्र मूर्त्त हो उठता, उन दूसरे नगरों और शहरों का मुझे ख़्याल आता जिनके बारे में मैं पुस्तकों में पढ़ चुका था, और इन अजनबी देशों के बारे में मैं सोचता जिनके निवासी भिन्न प्रकार का जीवन बिताते थे। विदेशी लेखकों की पुस्तकों में जीवन का जो चित्र मैं देखता था वह कहीं ज़्यादा साफ़-सुथरा और रमणीय तथा उस जीवन से कहीं कम बोझिल और कम दमघोंट था जिसे मैं अपने चारों ओर अलस और एक-रस गति से उबलता देखता था। इससे मेरी आकांक्षाओं को अपने पंजे फैलाने का मौका न मिलता और रह-रहकर यह अदम्य आकांक्षा मेरे हृदय में सिर उभारती कि जीवन का इससे अच्छा ढंग और ढब हो सकता है।

और मैं नित्य यह सोचता कि एक दिन किसी ऐसे बुद्धिमान और सीधे-सादे व्यक्ति का मेरे जीवन में प्रवेश होगा जो मुझे इस दलदल से उबारकर प्रशस्त और उज्ज्वल राजपथ की राह दिखाएगा।

एक दिन क्रेमलिन की दीवार के पास मैं एक बेंच पर बैठा था। तभी मामा याकोव भी वहाँ आ निकला। मैं कुछ अपने ही ध्यान में मगन था। न मैंने उसे आते देखा, और न ही मैं उसे तुरन्त पहचान ही सका। हालाँकि एक ही नगर में हम कई साल से रह रहे थे, लेकिन हम बिरले ही मिलते थे, सो भी थोड़ी देर के लिए, यों ही भूले-भटके, निरे संयोगवश।

“अरे, तेरे तो खूब बाल-पर निकल आये हैं!” उसने हँसी में मुझे कोहनियाते हुए कहा और दोनों इस तरह घुल-मिलकर बातें करने लगे मानो हम मामा-भांजा न होकर पुराने जान-पहचानी हों।

नानी से मुझे पता चला था कि मामा याकोव ने अपनी सारी पूँजी फूँक-फाँककर बर्बाद कर दी है। कुछ दिनों तक उसने जलावतनी कैदियों के पड़ाव में वार्डर के नायब की जगह पर काम किया, लेकिन यह नौकरी चली नहीं और एक दुःखद घटना के साथ उसका अन्त हो गया। हुआ यह कि वार्डर बीमार पड़ गया और उसकी ग़ैरहाज़िरी में मामा याकोव को खुलकर खेलने का मौका मिला। अपने घर पर वह बन्दियों को जमा करते, पीते-पिलाते और खूब हुड़दंग मचाते। जब इसका पता चला तो उन्हें बरख़ास्त कर दिया गया, इसके साथ ही उनके खिलाफ़ यह अभियोग भी लगाया गया कि वह बन्दियों को रात के समय छुट्टा छोड़ देते थे। बन्दियों में से भागा तो कोई

नहीं, लेकिन उनमें से एक किसी पादरी का गला दबोचते समय पकड़ा गया था। एक लम्बे अर्से तक मामले की जाँच-पड़ताल चलती रही, लेकिन अदालत तक पहुँचने की नौबत नहीं आयी। बन्दियों और पहरेदारों ने नेक हृदय मामा को इस अपमान में फँसने से बचा लिया। अब वह बेकार था और अपने बेटे के टुकड़ों पर जीवन बिताता था। उसका बेटा उन दिनों रुकाविश्निकोव के प्रसिद्ध गिरजा-सहगान-दल में गायक का काम करता था। अपने बेटे के बारे में उसकी राय विचित्र थी। कहने लगा :

"इधर वह बहुत बड़ा और गम्भीर आदमी बन गया है! गिरजे में गाता है—एकल गायक है। अगर समोवार गर्म करने या उसके कपड़ों को झाड़ने में मुझे कुछ देर हो जाती है तो भौंहें चढ़ा लेता है! बहुत ही साफ़-सुथरा लड़का है!... आदतें भी अच्छी हैं!..."

खुद मामा याकोव जो अब बूढ़ा हो गया था, गन्दा था और आँखों को अखरता था। उसके छैल-छबीले घुँघराले बाल अब पतले पड़ गये थे, कान छाज से निकल आये थे, आँखों की सफ़ेदी और उसके दाढ़ी विहीन गालों की रेशमी खाल में लाल शिराओं का जाल-सा बिछा था। वह हँसकर, मजाक का पुट मिलाते हुए बातें करता था, लेकिन ऐसा मालूम होता था मानो उसके मुँह में कोई चीज़ अटकी हो जो उसकी आवाज़ को साफ़-साफ़ नहीं निकलने देती हालाँकि उसके सभी दाँत अच्छी हालत में थे।

मुझे इस बात की खुशी थी कि उससे—एक ऐसे आदमी से जो प्रसन्न रहना जानता था, जिसने बहुत कुछ देखा था और जिसे बहुत-सी बातें मालूम थीं—मिलने और बातें करने का मौका मिला। उसके दबंग और हास्यपूर्ण गीत मैं भूला नहीं था और मेरे नाना ने उसके बारे में जो कुछ कहा था, वह भी मुझे याद था। नाना ने कहा था :

"गाने राजा दाऊद के और काम अबूस के!"

नगर के बड़े और अधिक शरीफ लोग—अफसर और पदाधिकारी, और रंगी-चुनी स्त्रियाँ—छायादार पटरी पर हमारे सामने से गुजर रहे थे। मामा याकोव एक भद्दा-सा कोट पहने था, उसकी टोपी भी मुड़ी-तुड़ी थी और लाल-खाकी रंग के ऊँचे बूट अपनी अलग धज दिखा रहे थे। बेंच पर वह कुछ इस तरह सिकुड़ा-सिमटा-सा बैठा था मानो उसे अपने इस रूप पर शर्म आ रही हो। अन्त में हम यहाँ से चले गये और पोचाइन्स्की गली वाले एक भटियारख़ाने में खिड़की के पास मेज़ के पास बैठ गये। खिड़की बाज़ार की ओर खुलती थी।

"याद है वह गीत जो तुम गाया करते थे :

> भिखारी ने लटकाए सुखाने को चीथड़े,
> दूसरे भिखारी ने चीथड़े लिये उड़ा..."

गीत के इन शब्दों के व्यंग्य और चुभन का, मैंने पहली बार अनुभव किया और मुझे लगा कि प्रसन्नता के आवरण में लिपटा मामा याकोव का अन्तर असल में काफ़ी तीखा और काँटों से भरा है।

लेकिन गिलास में वोद्का उंड़ेलते हुए उसने विचारमग्न-सा होकर कहा :

"हाँ भाई, मेरे दिन पूरे हुए और मौज भी मैंने की, लेकिन काफ़ी नहीं! वह गीत मेरा नहीं था। सेमिनारी के एक शिक्षक ने उसे बनाया था,—भला, क्या नाम था उसका? ओह, याद से उतर गया। हम दोनों, वह और मैं, गहरे मित्र थे। वह शादीशुदा नहीं था। वोद्का ने उसकी जान ले ली—पीकर एक दिन बाहर निकला और वहीं बर्फ़ में जाम हो गया। एक वही क्यों, न जाने कितने लोगों को मैंने वोद्का के पीछे जान गँवाते देखा है। उनकी गिनती तक करना मुश्किल है! तू पीता है? ठीक, इसे मुँह न लगाना ही अच्छा। फिर तेरी उम्र भी क्या है? अपने नाना से तो अक्सर मिलता रहता है न? बूढ़े को देखकर जी भारी हो जाता है। लगता है जैसे उसका दिमाग कमज़ोर हो गया है।"

वोद्का के एक या दो दौर के बाद वह कुछ चेतन हो गया, अपने कन्धों को उसने सीधा किया, जवानी की एक हिलोर-सी उसके चेहरे पर दौड़ गयी और उसने अधिक ज़िन्दादिली से बोलना शुरू किया।

मैंने उससे पूछा कि जेल क़ैदियोंवाले मामले का ऊँट फिर किस करवट बैठा।

"सो तुझे भी उस मामले की खबर है?" उसने पूछा और फिर अपनी आवाज़ को धीमा करते तथा चौकन्नी नज़र से इधर-उधर देखते हुए बोला :

"वे बन्दी थे तो इससे क्या? मैं कोई उनका मुन्सिफ़ तो था नहीं। मुझे तो वे वैसे ही इंसान दिखाई देते थे जैसे कि और सब। मैंने उनसे कहा : आओ भाइयो, हम सब साथ मिल-जुलकर रहें, दो घड़ी जी बहलायें, जैसा कि किसी ने गीत में कहा है :

रंगीनियों का किस्मत से क्या वास्ता!
तोड़ने दो उसे कमर हमारी,
है हँसी-खुशी से हमारा वास्ता,
न माने गधा ही बात हमारी!..."

हँसते हुए उसने खिड़की से बाहर झाँककर देखा। निचान में अँधेरा-सा छा रहा था, उसकी तलहटी में दुकानों की पंक्ति दिखाई दे रही थी।

"जेल में सिवा उदासी के और क्या था? दो घड़ी मन बहलाने की बात सुन वे निश्चय ही खुश हुए," अपनी मूँछों को सहलाते हुए उसने कहा। "सो रात की हाज़िरी होते ही वे मेरे यहाँ चले आते। खूब खाते और पीते। कभी मैं उन्हें खिलाता-पिलाता और कभी वे, और हम स्वच्छन्द और उन्मुक्त हो जाते! गीत और नाच का मैं प्रेमी हूँ,

और उनमें से कई बहुत बढ़िया गाते और नाचते थे! सच, बहुत ही बढ़िया। इतने कि कोई यक़ायक़ यक़ीन नहीं करेगा। उनमें कुछ तो ऐसे थे जिनके पाँवों में बेड़ियाँ पड़ी थीं। अब तू ही सोच, बेड़ियाँ पहनकर क्या कोई नाच सकता है? सो मैं कहता : बेड़ियाँ उतार लो। यह बात सच है। इसके लिए उन्हें लोहार की ज़रूरत नहीं थी। वे खुद ही यह काम कर लेते। ऐसे-वैसे नहीं, वे होशियार लोग थे। सच, बहुत ही होशियार। लेकिन यह सब बकवास है कि मैं उन्हें मुक्त करके नगर में चोरियाँ करने भेजता था, इसे कोई साबित नहीं कर सका..."

वह चुप हो गया और खिड़की में से पुराना माल बेचने वाले कबाड़ियों को देखने लगा जो अपनी दुकाने बन्द कर रहे थे। साँकल तथा कुण्डी की खड़खड़, ज़ंग लगे क़ब्ज़ों की चीं-चीं और कुछ तख़्तों के गिरने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। कुछ देर तक वह यही सब देखता रहा और सुनता रहा। फिर खुशी से आँख मारकर कहने लगा :

"अगर सच पूछे तो उनमें एक ऐसा था जो रात को नगर जाया करता था। लेकिन उसके पाँव में बेड़ियां नहीं थी,—वह नीज़्नी नोवगोरोद का एक मामूली-सा चोर था। पास ही पेचोर्का गली में उसकी प्रेमिका रहती थी और वह पादरी तो यूँ ही भूल से लपेट में आ गया। ग़लती से उसने पादरी को सौदागर समझ लिया। जाड़ों की रात थी। बर्फीली आँधी चल रही थी। सभी बड़े, भारी कोट पहने थे। ऐसे में क्या पता चलता कि पादरी कौन है और सौदागर कौन?"

यह सुनकर मुझे हँसी आ गयी। वह भी हँसा। कहने लगा :

"सच, शैतान जाने कि कौन क्या है?.."

इसके बाद, एकाएक, मामा याकोव के दिमाग ने कुछ इतनी आसानी से पलटा खाया कि मैं स्तब्ध रह गया। वह अनायास ही झुँझला उठा। मेज़ पर रखी रकाबी को उसने सामने से हटा दिया, अरुचि से होंठों और भौंहों में बल डाला और सिगरेट जलाकर गुस्से में बुदबुदाया :

"कम्बख़्त एक-दूसरे को लूटते हैं, फिर एक-दूसरे को पकड़ते और जेल, काले पानी, साईबेरिया में एक-दूसरे को जहन्नुम रसीद करते हैं। लेकिन मुझे बीच में घसीटने में क्या तुक है? गोली मारो उन्हें... मेरी अपनी आत्मा है!"

उसकी बातें सुनकर मेरी कल्पना में बेडौल जहाज़ी का चित्र मूर्त हो उठा। उसे भी, बात-बात में, 'गोली मारो' कहने का शौक था और उसका नाम भी याकोव ही था।

"क्यों, तू क्या सोचने लगा?" मामा याकोव ने कोमल स्वर में पूछा।

"क्या तुम्हें उन बन्दियों पर तरस आता था?"

"तरस न आता तो और क्या होता? बहुत बढ़िया आदमी थे वे—सच, बहुत ही बढ़िया! कभी-कभी उन्हें देखकर मैं मन में सोचता : मैं तुम लोगों के पाँव की धूल

भी नहीं हूँ, तिस पर तुम्हारा रखवारा हूँ! सच, वे शैतान बहुत ही चुस्त और चतुर थे...”

वोद्‌का और पुरानी यादों ने उसमें जैसे जान डाल दी और उसकी ज़िन्दादिली फिर से चेतन हो उठी। उसने अपनी कोहनी को खिड़की की सिल पर टिका दिया और उँगलियों में सिगरेट थामे अपने पीले हाथ को हिलाते हुए उमंग भरे स्वर में कहने लगा :

“एक काना था, ठप्पे और घड़िया बनाने का काम करता था। वह नकली सिक्के ढालने के अपराध में पकड़कर आया था। एक बार उसने जेल से भागने की कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हो सका। आदमी क्या था, पूरा फितना था। बात-बात में मशाल की भाँति भड़क उठता! बोलता क्या था मानो गाना गाता था! एक दिन बोला : अब तुम्हीं बताओं कि ऐसा क्यों है? टकसाल को तो सिक्के ढालने की छूट है, लेकिन मुझे नहीं—आख़िर क्यों? बताओ, तुम्हीं बताओ कि ऐसा क्यों है? लेकिन कोई भी यह नहीं बता सका,—यहाँ तक कि मैं भी नहीं बता सका। तिस पर मजा यह है कि मैं उसका निगहबान था! इसी तरह मास्को का एक मशहूर चोर था—ऐसा साफ़-सुथरा, शान्त और बाँका छैला। कहता : लोग काम करते-करते मर जाते हैं, लेकिन बेकार। मुझे इस तरह एड़ियाँ रगड़ना पसन्द नहीं था। एक बार मैंने भी कोशिश की। काम करते-करते मैंने अपनी उँगलियाँ घिस डालीं, लेकिन मिला क्या? समझ लो कि न के बराबर। गिनती के दो-चार घूँट पी लो, एक-दो हाथ ताश में गँवा दो और दो घड़ी किसी लड़की से खेल कर लो,—बस इतने में ही सब खत्म, और फिर वही भिखारी के भिखारी। नहीं बाबा, मुझे यह चक्कर पसन्द नहीं...”

मामा याकोव मेज़ के ऊपर झुक गया। उसका चेहरा तमतमा रहा था, उसके बालों की जड़ें तक लाल हो गयी थीं, और उसकी विह्वलता का यह हाल था कि उसके कान भी थिरक रहे थे। वह कह रहा था :

“सच कहता हूँ भाई, वे मूर्ख नहीं थे! दीन-दुनिया को वे जानते थे। और बहुत पते की बात करते थे। ओह, गोली मारो, यह जीवन भी कम्बख़्त एक जंजाल है। मिसाल के लिए मुझे ही ले। बोल, क्या कहता है मेरे जीवन के बारे में। उस पर नज़र डालते भी शर्म मालूम होती है! रंज और दुःख की कमाई की ख़ुशी भी पाई—लेकिन चोरी से, लुक-छिपकर। बाप चिल्लाता—यह न कर, और बीवी चिल्लाती—वह न करो, और मैं खुद था कि एक-एक कौड़ी के लिए जान खपाता और इसी घिसघिस से सारा जीवन हाथ से निकल गया। और यह तू देख ही रहा है कि अब मैं क्या हूँ—एक बूढ़ा और जर्जर आदमी, अपने ही बेटे का चाकर। जो सच है, उसे छिपाने से क्या फायदा? मैं अपने बेटे का चाकर हूँ। भाई, नाक रगड़ता हूँ और दुम दबाकर उसकी चाकरी करता हूँ। और असली नवाब की भाँति वह मुझ पर चीखता-चिल्लाता है। कहने को वह मुझे अब भी ‘पिता’ कहता है, लेकिन आवाज़ कुछ ऐसी आती है मानो वह कह

रहा हो—'टुकड़खोर'! क्या इसीलिये मैंने जन्म लिया था? क्या इसीलिये मैं इतने दिनों तक मरता-खपता रहा? जीवन का क्या यही फल मुझे मिलना था कि जाओ, अपने बेटे के टुकड़े तोड़ो, और उसके सामने दुम हिलाओ? लेकिन अगर ऐसा न होता, तब भी क्या मेरे जीवन में चार चाँद लग जाते? तू ही बता, इतने बड़े इस जीवन का मैंने क्या किया—कितना और क्या सुख मैंने पाया?"

मेरा ध्यान बँट गया था और उसकी सभी बातें मेरे कानों में नहीं पड़ रही थीं। अचकचाकर और जवाब पाने की कोई आशा किये बिना मैंने कह दिया :

"जीने का ढंग और ढब मैं भी नहीं जानता..."

हल्की हँसी हँसकर वह बोला :

"एक तू ही क्या, कोई भी नहीं जानता। मैंने तो आज दिन तक भी ऐसा आदमी नहीं देखा जो यह जानता हो! बस, लोग ऐसे ही जीते रहते हैं, जिसको जैसे आदत हो..."

झुँझलाहट और गुस्से का एक बार फिर झोंका आया और चोट खाई-सी आवाज़ में वह बोला :

"बन्दियों में एक आदमी था,—आर्योल का रहने वाला। वह बलात्कार के अपराध में जेल आया था। किसी कुलीन घर में उसने जन्म लिया था। वह बेहद अच्छा नाचता था। वान्का के बारे में उसे एक गीत याद था जिसे सुनकर सब हँसते और खूब खुश होते थे :

मुँह लटकाये वान्का घूमे,
मरघट के चहुँ ओर;
वान्का, वान्का, वहाँ धरा क्या?
और से अच्छे ठौर?

लेकिन सच पूछो तो इस गीत में हँसने लायक कोई बात नहीं थी। गीत क्या था, जीवित सत्य था! चाहे जितना बल खाओ, निकल भागने की चाहे जितनी कोशिश करो, लेकिन क़ब्रिस्तान से छुटकारा नहीं मिलता। और अगर बात ऐसी है तो मेरे लिए कोई फर्क नहीं—मैं इस दुनिया में बन्दी बनकर जीऊँ या बन्दियों का निगहबान बनकर..."

बोलते-बोलते वह थक गया। गिलास उठाकर उसने अपना गला तर किया। फिर पक्षी की भाँति खाली गिलास में एक आँख से देखा और चुपचाप सिगरेट से धुआँ छोड़ने लगा।

राज प्योत्र जो मामा याकोव से जरा भी नहीं मिलता था, बड़े चाव से कहता था : "चाहे आदमी कितने ही हाथ-पाँव मारे और चाहे कितने ही वह मंसूबे बाँधें, लेकिन

अन्त में पल्ले क्या पड़ता है—वही डेढ़ गज कफ़न और मुट्ठी भर मिट्टी!" इस तरह का भाव व्यक्त करने वाली कहावतों और मुहावरों का एक अच्छा-ख़ासा अम्बार मेरे पास लग चुका था!

मामा याकोव से और कुछ पूछने के लिए मेरा मन नहीं चाहा। उसे देखकर मुझे उसपर तरस आया, मेरा जी भारी हो गया और उसके साथ बैठे रहना मुझे मुश्किल मालूम होने लगा। निराशा के ताने-बाने में आह्लाद का रंग भरनेवाले उसके रसीले गीतों और गिटार की ध्वनि बरबस मेरे दिमाग में गूँजने लगी। त्सिगानोक का खुशी से छलछलाता चेहरा भी अपनी आँखों की ओट करना आसान नहीं था। मामा याकोव के रौंदे-मसले चेहरे की ओर देखते समय बरबस मुझे उसकी भी याद हो आयी और यह सोचकर मैं अचरज करने लगा कि, कौन जाने मामा याकोव को त्सिगानोक की याद है या नहीं जिसे उसने क्रॉस के नीचे कुचलकर मार डाला था।

लेकिन उससे पूछने का मन नहीं हुआ।

मैंने खिड़की में से सड़क की ओर देखा। अगस्त का महीना था और धुँध घनी होती जा रही थी। धुँध की गहराइयों में से सेबों और ख़रबूज़ों की महक आ रही थी। नगर की ओर जानेवाले सँकरे सड़क के किनारे लालटेनें टिमटिमा रही थीं। चारों ओर की हर चीज़ किसी रूप में खूब परिचित थी : यह रीबीन्स्क जाने वाले जहाज़ के सीटी की आवाज़ थी, और वह पेर्म जानेवाले...

"अच्छा तो मैं अब चलता हूँ," मामा याकोव ने उठते हुए कहा। भटियारख़ाने के बाहर आकर उसने मुझसे हाथ मिलाया और हँसते हुए कहने लगा :

"तूने अपनी थूथनी क्यों लटका रखी है? मैं कहता हूँ, उदासी का यह छींका अपनी थूथनी पर से उतार डाल! तेरी उम्र ही क्या है, हँस-खेल और मगन रह। वह गीत याद रखना : 'रंगीनियों का किस्मत से क्या वास्ता!' अच्छा तो अब विदा। मैं उधर, उसपेन्स्की गिरजे के पासवाले रास्ते से जाऊँगा!"

मौजी मामा याकोव चला गया और अपनी बातों से मुझे और भी अस्त-व्यस्त कर गया।

मैं ऊपर नगर से होता हुआ खेतों की ओर चल दिया। आकाश में पूरा चाँद तैर रहा था और बादल, खूब नीचे, झुके हुए, हवा के साथ बह रहे थे। उनकी परछाई में रह-रहकर मेरी परछाई खो जाती थी। खेतों ही खेतों में नगर का चक्कर लगाता हुआ मैं ओत्कोस के निकट वोल्गा के किनारे पहुँच गया और धूल भरी घास पर लेटकर देर तक नदी-चरागाहों और निश्चल धरती की ओर देखता रहा। बादलों की परछाइयाँ धीमी गति से वोल्गा को पार करती, चरागाहों में पहुँचने पर वे और उजली दिखाई देती—ऐसा मालूम होता मानो वोल्गा के पानी में स्नान करके वे निखर उठीं हों। चारों ओर की हर चीज़ दबी हुई, उनींदी और ऊँघती-सी मालूम होती, हर चीज़ इस तरह हरकत करती

मानों उसमें चलने की सकत न हो, फिर भी उसे चलना पड़ रहा हो—उस गहरी उमंग और गति से सर्वथा शून्य जिसमें जीवन और जीवित रहने की अदम्य आकांक्षा हिलोरे लेती है।

और मेरे मन में यह भावना ज़ोरों से उमड़ने-घुमड़ने लगी कि इस धरती को और खुद अपने आपको भी ऐसी ठोकर दूँ कि जिससे हर चीज़—जिसमें मैं भी शामिल था—बगूले की भाँति खुशी से झूम उठे और सभी लोग, आपस में एक-दूसरे के प्रति और जीवन के प्रेम में पगे अद्भुत नृत्य की रचना करें और वह जीवन जिसका उदय होना है, अधिक खरा, अधिक साहसपूर्ण और अधिक सुन्दर हो उठे...

मन में रह-रहकर विचार उठता :

"ज़रूर मुझे अब कुछ न कुछ करना चाहिए, नहीं तो सारी ज़िन्दगी बेकार हो जायेगी..."

शरद के उदास दिनों में, जब सूरज केवल दिखाई ही नहीं देता, बल्कि उसके अस्तित्व का भी भास नहीं होता—ऐसे शरद के दिनों में कई बार मैं जंगल में भटका हूँ। रास्ता भूल जाता, सभी पगडण्डियाँ खो जातीं, उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक जाता और अन्ततः दाँत भींचकर सीधे जंगल में जाने लगता। सड़ी-गली झाड़ियों, टहनियों पर कदम रखता, दलदलों को पार करता चलता जाता और अन्त में रास्ते पर पहुँच ही जाता!

अब भी मैंने ऐसा ही करने का निश्चय किया।

उसी साल शरद के दिनों में मैं कज़ान के लिए रवाना हो गया,—हृदय में यह गुप्त आशा लिये कि वहाँ पहुँचकर अध्ययन करने का कोई न कोई साधन निकल ही आयेगा।

1914

• • •

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ
ISBN:81-87425-88-1

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता
बेहतर किताबों से होकर जाता है!

जनचेतना

सम्पूर्ण सूचीपत्र

हम हैं सपनों के हरकारे
हम हैं विचारों के डाकिये

आम लोगों के लिए
ज़रूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुँचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर–घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज़ हवा का झोंका बन जाना होगा
ज़िन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन–जन तक पहुँचाना होगा।

दो दशक पहले प्रगतिशील, जनपक्षधर साहित्य को जन–जन तक पहुँचाने की मुहिम की एक छोटी–सी शुरुआत हुई, बड़े मंसूबे के साथ। एक छोटी–सी दुकान और फ़ुटपाथों पर, मुहल्लों में और दफ़्तरों के सामने छोटी–छोटी प्रदर्शनियाँ लगाने वाले तथा साइकिलों पर, ठेलों पर, झोलों में भरकर घर–घर किताबें पहुँचाने वाले समर्पित अवैतनिक वालण्टियरों की टीम – शुरुआत बस यहीं से हुई। आज यह वैचारिक अभियान उत्तर भारत के दर्जनों शहरों और गाँवों तक फैल चुका है। एक बड़े और एक छोटे प्रदर्शनी वाहन के माध्यम से जनचेतना हिन्दी और पंजाबी क्षेत्र के सुदूर कोनों तक हिन्दी, पंजाबी और अंग्रेज़ी साहित्य एवं कला–सामग्री के साथ सपने और विचार लेकर जा रही है, जीवन–संघर्ष–सृजन–प्रगति का नारा लेकर जा रही है।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ़ के बिना, समर्पित वालण्टियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

आइये, आप सभी इस मुहिम में हमारे सहयात्री बनिये।

सम्पूर्ण सूचीपत्र

परिकल्पना प्रकाशन

उपन्यास

1. **तरुणाई का तराना**/याङ मो ...
2. **तीन टके का उपन्यास**/बेर्टोल्ट ब्रेष्ट ...
3. **माँ**/मक्सिम गोर्की ...
4. **वे तीन**/मक्सिम गोर्की 75.00
5. **मेरा बचपन**/मक्सिम गोर्की ...
6. **जीवन की राहों पर**/मक्सिम गोर्की ...
7. **मेरे विश्वविद्यालय**/मक्सिम गोर्की ...
8. **फ़ोमा गोर्देयेव**/मक्सिम गोर्की 55.00
9. **अभागा**/मक्सिम गोर्की 40.00
10. **बेकरी का मालिक**/मक्सिम गोर्की 25.00
11. **असली इन्सान**/बोरिस पोलेवोई ...
12. **तरुण गार्ड**/अलेक्सान्द्र फ़देयेव (दो खण्डों में) 160.00
13. **गोदान**/प्रेमचन्द ...
14. **निर्मला**/प्रेमचन्द ...
15. **पथ के दावेदार**/शरत्चन्द्र ...
16. **चरित्रहीन**/शरत्चन्द्र ...
17. **गृहदाह**/शरत्चन्द्र ...
18. **शेषप्रश्न**/शरत्चन्द्र ...
19. **इन्द्रधनुष**/वान्दा वैसील्युस्का 65.00
20. **इकतालीसवाँ**/बोरीस लव्रेन्योव ...
21. **दास्तान चलती है** (एक नौजवान की डायरी से)/अनातोली कुज़्नेत्सोव 70.00

22.	**वे सदा युवा रहेंगे**/ग्रीगोरी बकलानोव	60.00
23.	**मुर्दों को क्या लाज-शर्म**/ग्रीगोरी बकलानोव	40.00
24.	**बख़्तरबन्द रेल 14-69**/व्सेवोलोद इवानोव	30.00
25.	**अश्वसेना**/इसाक बाबेल	40.00
26.	**लाल झण्डे के नीचे**/लाओ श	50.00
27.	**रिक्शावाला**/लाओ श	65.00
28.	**चिरस्मरणीय** (प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास)/निरंजन	55.00
29.	**एक तयशुदा मौत** (एनजीओ की पृष्ठभूमि पर)/मोहित राय	...
30.	**Mother**/*Maxim Gorky*	250.00
31.	**The Song of Youth**/*Yang Mo*	...

कहानियाँ

1.	**श्रेष्ठ सोवियत कहानियाँ** (3 खण्डों का सेट)	450.00
2.	**वह शख़्स जिसने हैडलेबर्ग को भ्रष्ट कर दिया** (मार्क ट्वेन की दो कहानियाँ)	60.00
	मक्सिम गोर्की	
3.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
4.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
5.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 3)	...
6.	**हिम्मत न हारना मेरे बच्चो**	15.00
7.	**कामो : एक जाँबाज़ इन्क़लाबी मज़दूर की कहानी**	10.00
	अन्तोन चेख़व	
8.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 1)	...
9.	**चुनी हुई कहानियाँ** (खण्ड 2)	...
10.	**दो अमर कहानियाँ**/लू शुन	...
11.	**श्रेष्ठ कहानियाँ**/प्रेमचन्द	80.00
12.	**पाँच कहानियाँ**/पुश्किन	...
13.	**तीन कहानियाँ**/गोगोल	30.00
14.	**तूफ़ान**/अलेक्सान्द्र सेराफ़ीमोविच	60.00
15.	**वसन्त**/सेर्गेई अन्तोनोव	60.00
16.	**वसन्तागम**/रओ शि	50.00

17. **सूरज का ख़ज़ाना**/मिख़ाईल प्रीश्विन 40.00

18. **स्नेगोवेत्स का होटल**/मत्वेई तेवेल्योव 35.00

19. **वसन्त के रेशम के कीड़े**/माओ तुन 50.00

20. **क्रान्ति झंझा की अनुगूँजें** (अक्टूबर क्रान्ति की कहानियाँ) 75.00

21. **चुनी हुई कहानियाँ**/श्याओ हुङ 50.00

22. **समय के पंख**/कोन्स्तान्तीन पाउस्तोव्सकी ...

23. **श्रेष्ठ रूसी कहानियाँ** (संकलन) ...

24. **अनजान फूल**/आन्द्रेई प्लातोनोव ...

25. **कुत्ते का दिल**/मिख़ाईल बुल्गाकोव 70.00

26. **दोन की कहानियाँ**/मिख़ाईल शोलोख़ोव 35.00

27. **अब इन्साफ़ होने वाला है** ...
(भारत और पाकिस्तान की प्रगतिशील उर्दू कहानियों का प्रतिनिधि संकलन)
(ग्यारह नयी कहानियों सहित परिवर्द्धित संस्करण)/स. **शकील सिद्दीक़ी**

28. **लाल कुरता**/हरिशंकर श्रीवास्तव ...

29. **चम्पा और अन्य कहानियाँ**/मदन मोहन 35.00

कविताएँ

1. **पानी है तो फूटेगा**/राजेश सकलानी नयी 100.00

2. **वाचाल दायरों से दूर**/मलय नयी 125.00

3. **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ) नयी 100.00

4. **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा 60.00

5. **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्सटन ह्यूज 60.00

6. **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी) ...

7. **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत) 20.00

8. **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ - बेर्टोल्ट ब्रेष्ट**
(मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
(ब्रेष्ट के दुर्लभ चित्रों और स्केचों से सज्जित) 130.00

9. **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन) 65.00

8.	**मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर	30.00
9.	**जेल डायरी**/हो ची मिन्ह	40.00
10.	**ओस की बूँदें और लाल ग़ुलाब**/होसे मारिया सिसों	25.00
11.	**इन्तिफ़ादा :** फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय	...
12.	**लहू है कि तब भी गाता है**/पाश	...
13.	**लोहू और इस्पात से फूटता ग़ुलाब :** फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन) **A Rose Breaking Out of Steel and Blood** (Palestinian Poems)	...
14.	**पाठान्तर**/विष्णु खरे	50.00
15.	**लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे	60.00
16.	**ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ	60.00
17.	**बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी	...
18.	**सामान की तलाश**/असद ज़ैदी	...
19.	**कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश	50.00
20.	**पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश	75.00
21.	**सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी (पेपरबैक)	...
	(हार्डबाउंड)	125.00
22.	**इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी	...
23.	**जादू नहीं कविता**/कात्यायनी (पेपरबैक)	...
	(हार्डबाउंड)	200.00
24.	**फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी	80.00
25.	**राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी	15.00
26.	**यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार	50.00
27.	**यह जो वक्त है**/कपिलेश भोज	60.00
28.	**देश एक राग है**/भगवत रावत	...
29.	**बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर	60.00
30.	**दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय	120.00
31.	**देखते न देखते**/मलय	65.00
32.	**असम्भव की आँच**/मलय	100.00
33.	**इच्छा की दूब**/मलय	90.00
34.	**इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार	90.00
35.	**तो**/शैलेय	75.00

नाटक

1. **करवट**/मक्सिम गोर्की 40.00
2. **दुश्मन**/मक्सिम गोर्की 35.00
3. **तलछट**/मक्सिम गोर्की ...
4. **तीन बहनें** (दो नाटक)/अन्तोन चेख़व 45.00
5. **चेरी की बग़िया** (दो नाटक)/अ. चेख़व 45.00
6. **बलिदान जो व्यर्थ न गया**/व्सेवोलोद विश्नेव्स्की 30.00
7. **क्रेमलिन की घण्टियाँ**/निकोलाई पोगोदिन 30.00

संस्मरण

1. **लेव तोल्स्तोय : शब्द-चित्र**/मक्सिम गोर्की 20.00

स्त्री-विमर्श

1. **दुर्ग द्वार पर दस्तक** (स्त्री प्रश्न पर लेख)/कात्यायनी 130.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त**/कात्यायनी 90.00
2. **षड्यन्त्ररत मृतात्माओं के बीच**
   (साम्प्रदायिकता पर लेख)/कात्यायनी 25.00
3. **इस रात्रि श्यामला बेला में** (लेख और टिप्पणियाँ)/सत्यव्रत 30.00

व्यंग्य

1. **कहें मनबहकी खरी-खरी**/मनबहकी लाल 25.00

नौजवानों के लिए विशेष

1. **जय जीवन!** (लेख, भाषण और पत्र)/निकोलाई ओस्त्रोव्स्की ...

वैचारिकी

1. **माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य**/रेमण्ड लोट्टा 25.00

साहित्य-विमर्श

1. **उपन्यास और जनसमुदाय**/रैल्फ़ फ़ॉक्स 75.00
2. **लेखनकला और रचनाकौशल**/गोर्की, फ़ेदिन, मयाकोव्स्की, अ. तोल्सतोय ...
3. **दर्शन, साहित्य और आलोचना**/
   बेलिंस्की, हर्ज़ेन, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव 65.00

4. **सृजन-प्रक्रिया और शिल्प के बारे में**/मक्सिम गोर्की 40.00

5. **मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएँ**/स्तालिन 20.00

नयी पीढ़ी के निर्माण के लिए

1. **एक पुस्तक माता-पिता के लिए**/अन्तोन मकारेंको ...

2. **मेरा हृदय बच्चों के लिए**/वसीली सुख़ोम्लीन्स्की ...

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **प्रेम, परम्परा और विद्रोह**/कात्यायनी 50.00

सृजन परिप्रेक्ष्य पुस्तिका शृंखला

1. **एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के वैचारिक-सांस्कृतिक कार्यभार**/कात्यायनी, सत्यम 25.00

दो महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ

दिशासन्धान

मार्क्सवादी सैद्धान्तिक शोध और विमर्श का मंच

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 100 रुपये, आजीवन: 5000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 400 रुपये (100 रु. रजि. बुकपोस्ट व्यय अतिरिक्त)

नान्दीपाठ

मीडिया, संस्कृति और समाज पर केन्द्रित

सम्पादक: कात्यायनी / सत्यम

एक प्रति : 40 रुपये आजीवन: 3000 रुपये

वार्षिक (4 अंक) : 160 रुपये (100 रु. रजि. बुक पोस्ट व्यय अतिरिक्त)

सम्पादकीय कार्यालय :

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

फोन: 9936650658, 8853093555

वेबसाइट : http://dishasandhaan.in ईमेल: dishasandhaan@gmail.com

वेबसाइट : http://naandipath.in ईमेल: naandipath@gmail.com

राहुल फ़ाउण्डेशन

नौजवानों के लिए विशेष

1. **नौजवानों से दो बातें**/पीटर क्रोपोटकिन 15.00
2. **क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसविदा**/भगतसिंह 15.00
3. **मैं नास्तिक क्यों हूँ और 'ड्रीमलैण्ड' की भूमिका**/भगतसिंह 15.00
4. **बम का दर्शन और अदालत में बयान**/भगतसिंह 15.00
5. **जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो**/भगतसिंह 15.00
6. **भगतसिंह ने कहा...**(चुने हुए उद्धरण)/भगतसिंह 15.00

क्रान्तिकारियों के दस्तावेज़

1. **भगतसिंह और उनके साथियों के सम्पूर्ण उपलब्ध दस्तावेज़**/स. सत्यम 350.00
2. **शहीदेआज़म की जेल नोटबुक**/भगतसिंह 100.00
3. **विचारों की सान पर**/भगतसिंह 50.00

क्रान्तिकारियों के विचारों और जीवन पर

1. **बहरों को सुनाने के लिए**/एस. इरफ़ान हबीब
   (भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और कार्यक्रम) ...
2. **क्रान्तिकारी आन्दोलन का वैचारिक विकास**/शिव वर्मा 25.00
3. **भगतसिंह और उनके साथियों की विचारधारा और राजनीति**/बिपन चन्द्र 20.00
4. **यश की धरोहर**/
   भगवानदास माहौर, शिव वर्मा, सदाशिवराव मलकापुरकर 50.00
5. **संस्मृतियाँ**/शिव वर्मा 80.00
6. **शहीद सुखदेव : नौघरा से फाँसी तक**/स. डॉ. हरदीप सिंह 40.00

महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक संकलन

1. **उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है**
   ('दायित्वबोध' के महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन) 75.00
2. **एनजीओ : एक ख़तरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र** 60.00
3. **डब्ल्यूएसएफ़ : साम्राज्यवाद का नया ट्रोजन हॉर्स** 50.00

ज्वलन्त प्रश्न

1. **'जाति' प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध काफ़ी नहीं, अम्बेडकर भी काफ़ी नहीं, मार्क्स ज़रूरी हैं** / रंगनायकम्मा ...
2. **जाति और वर्ग : एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण** / रंगनायकम्मा 60.00

दायित्वबोध पुस्तिका शृंखला

1. **अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ**/दीपायन बोस 30.00
2. **समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति**/शशिप्रकाश 30.00
3. **क्यों माओवाद?**/शशिप्रकाश 20.00
4. **बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में**/चाङ चुन-चियाओ 5.00
5. **भारतीय कृषि में पूँजीवादी विकास**/सुखविन्दर 35.00

आह्वान पुस्तिका शृंखला

1. **छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहाँ से करें?** 20.00
2. **आरक्षण : पक्ष, विपक्ष और तीसरा पक्ष** 20.00
3. **आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ** 20.00
4. **क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन** 25.00
5. **भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल सोचने के लिए कुछ मुद्दे** 50.00

बिगुल पुस्तिका शृंखला

1. **कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा**/लेनिन 20.00
2. **मकड़ा और मक्खी**/विल्हेल्म लीब्नेख़्त 5.00
3. **ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीक़े**/सेर्गेई रोस्तोवस्की ...
4. **मई दिवस का इतिहास**/अलेक्ज़ैण्डर ट्रैक्टनबर्ग 10.00
5. **पेरिस कम्यून की अमर कहानी** 20.00

6. **अक्टूबर क्रान्ति की मशाल** 25.00
7. **जंगलनामा : एक राजनीतिक समीक्षा**/डॉ. दर्शन खेड़ी 10.00
8. **लाभकारी मूल्य, लागत मूल्य, मध्यम किसान और छोटे पैमाने के माल उत्पादन के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण : एक बहस** ...
9. **संशोधनवाद के बारे में** 10.00
10. **शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की कहानी**/हावर्ड फ़ास्ट 20.00
11. **मज़दूर आन्दोलन में नयी शुरुआत के लिए** 20.00
12. **मज़दूर नायक, क्रान्तिकारी योद्धा** 15.00
13. **चोर, भ्रष्ट और विलासी नेताशाही** 15.00
14. **बोलते आँकड़े, चीख़ती सच्चाइयाँ** 15.00
15. **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन**/अभिनव 30.00
16. **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?**/अभिनव 125.00
17. **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार**/आलोक रंजन 55.00
18. **कैसा है यह लोकतंत्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है**
आलोक रंजन/आनन्द सिंह ...

मार्क्सवाद

1. **धर्म के बारे में**/मार्क्स-एंगेल्स ...
2. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/मार्क्स-एंगेल्स 50.00
3. **साहित्य और कला**/मार्क्स-एंगेल्स 150.00
4. **फ़्रांस में वर्ग-संघर्ष**/कार्ल मार्क्स 40.00
5. **फ़्रांस में गृहयुद्ध**/कार्ल मार्क्स 20.00
6. **लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर**/कार्ल मार्क्स 35.00
7. **उजरती श्रम और पूँजी**/कार्ल मार्क्स 15.00
8. **मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा**/कार्ल मार्क्स 20.00
9. **गोथा कार्यक्रम की आलोचना**/कार्ल मार्क्स 40.00
10. **लुडविग फ़ायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त**/
फ़्रेडरिक एंगेल्स 20.00
11. **जर्मनी में क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति**/फ़्रेडरिक एंगेल्स 30.00
12. **समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**/फ़्रेडरिक एंगेल्स ...
13. **पार्टी कार्य के बारे में**/लेनिन 15.00
14. **एक क़दम आगे, दो क़दम पीछे**/लेनिन 60.00

15. **जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद के दो रणकौशल**/लेनिन 25.00
16. **समाजवाद और युद्ध**/लेनिन 20.00
17. **साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की चरम अवस्था**/लेनिन 30.00
18. **राज्य और क्रान्ति**/लेनिन 80.00
19. **सर्वहारा क्रान्ति और ग़द्दार काउत्स्की**/लेनिन ...
20. **दूसरे इण्टरनेशनल का पतन**/लेनिन 15.00
21. **गाँव के ग़रीबों से**/लेनिन 50.00
22. **मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद**/लेनिन 20.00
23. **कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा**/लेनिन 20.00
24. **क्या करें?**/लेनिन ...
25. **"वामपन्थी" कम्युनिज़्म - एक बचकाना मर्ज़**/लेनिन ...
26. **पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन**/लेनिन 15.00
27. **जनता के बीच पार्टी का काम**/लेनिन 70.00
28. **धर्म के बारे में**/लेनिन 50.00
29. **तोल्स्तोय के बारे में**/लेनिन 10.00
30. **मार्क्सवाद की मूल समस्याएँ**/जी. प्लेख़ानोव 30.00
31. **जुझारू भौतिकवाद**/प्लेख़ानोव 35.00
32. **लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त**/स्तालिन 50.00
33. **सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास** 90.00
34. **माओ त्से-तुङ की रचनाएँ : प्रतिनिधि चयन** (एक खण्ड में) ...
35. **कम्युनिस्ट जीवनशैली और कार्यशैली के बारे में**/माओ त्से-तुङ ...
36. **सोवियत अर्थशास्त्र की आलोचना**/माओ त्से-तुङ ...
37. **दर्शन विषयक पाँच निबन्ध**/माओ त्से-तुङ 70.00
38. **कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पाँच दस्तावेज़** / माओ त्से-तुङ 15.00
39. **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण** 50.00

अन्य मार्क्सवादी साहित्य

1. **राजनीतिक अर्थशास्त्र, मार्क्सवादी अध्ययन पाठ्यक्रम** 300.00
2. **ख्रुश्चेव झूठा था**/ग्रोवर फ़र 300.00
3. **राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त** (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी) 160.00
4. **पेरिस कम्यून की शिक्षाएँ** (सचित्र)/एलेक्ज़ेण्डर ट्रैक्टनबर्ग ...

5. **कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र**/डी. रियाज़ानोव 100.00
(विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियों सहित)
6. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/डेविड गेस्ट ...
7. **इतिहास ने जब करवट बदली**/विलियम हिण्टन 25.00
8. **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद**/वी. अदोरात्स्की 50.00
9. **अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन**/अल्बर्ट रीस विलियम्स 90.00
(महत्त्वपूर्ण नयी सामग्री और अनेक नये दुर्लभ चित्रों से सज्जित परिवर्द्धित संस्करण)
10. **सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना**/मार्टिन निकोलस 50.00

राहुल साहित्य

1. **तुम्हारी क्षय**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
2. **दिमाग़ी ग़ुलामी**/राहुल सांकृत्यायन 40.00
3. **वैज्ञानिक भौतिकवाद**/राहुल सांकृत्यायन 65.00
4. **राहुल निबन्धावली**/राहुल सांकृत्यायन 50.00
5. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

परम्परा का स्मरण

1. **चुनी हुई रचनाएँ**/गणेशशंकर विद्यार्थी 100.00
2. **सलाखों के पीछे से**/गणेशशंकर विद्यार्थी ...
3. **ईश्वर का बहिष्कार**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
4. **लौकिक मार्ग**/राधामोहन गोकुलजी 20.00
5. **धर्म का ढकोसला**/राधामोहन गोकुलजी 30.00
6. **स्त्रियों की स्वाधीनता**/राधामोहन गोकुलजी 30.00

जीवनी और संस्मरण

1. **कार्ल मार्क्स जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 25.00
2. **फ़्रेडरिक एंगेल्स : जीवन और शिक्षाएँ**/ज़ेल्डा कोट्स 80.00
3. **कार्ल मार्क्स : संस्मरण और लेख** ...
4. **अदम्य बोल्शेविक नताशा**
(एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी)/एल. काताशेवा 30.00
5. **लेनिन कथा**/मरीया प्रिलेज़ायेवा 70.00
6. **लेनिन विषयक कहानियाँ** 75.00

7. **लेनिन के जीवन के चन्द पन्ने**/लीदिया फ़ोतियेवा ...

8. **स्तालिन : एक जीवनी**/राहुल सांकृत्यायन 150.00

इतिहास

1. **विस्मृत विद्रोह :** 1946 के नौसैनिक विद्रोह की प्रेरक गाथा/ नयी
सं. सुरेन्द्र कुमार 50.00

विविध

1. **फाँसी के तख़्ते से**/जूलियस फ़्यूचिक ...
2. **पाप और विज्ञान**/डायसन कार्टर 100.00
3. **सापेक्षिकता सिद्धान्त क्या है?**/लेव लन्दाऊ, यूरी रूमेर ...

मज़दूरों का इन्क़लाबी मासिक अख़बार

मजदूर बिगुल

एक प्रति : 5 रुपये
वार्षिक : 70 रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-4108495
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
वेबसाइट : mazdoorbigul.net
फ़ेसबुक : facebook.com/mazdoorbigul

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का

आह्वान

सम्पादकीय कार्यालय
बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर
दिल्ली-110094
ईमेल : ahwan@ahwanmag.com,
ahwan.editor@gmail.com
वेबसाइट : ahwanmag.com
फ़ेसबुक : facebook.com/muktikamiahwan

एक प्रति : 25 रुपये • वार्षिक : 160 रुपये (डाकव्यय सहित)

Rahul Foundation

MARXIST CLASSICS

KARL MARX

1.	**A Contribution to the Critique of Political Economy**	...
2.	**The Civil War in France**	...
3.	**The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte**	...
4.	**Critique of the Gotha Programme**	50.00
5.	**Preface and Introduction to A Contribution to the Critique of Political Economy**	25.00
6.	**The Poverty of Philosophy**	80.00
7.	**Wages, Price and Profit**	50.00
8.	**Class Struggles in France**	50.00

FREDERICK ENGELS

9.	**The Peasant War in Germany**	70.00
10.	**Ludwig Feuerbach and the End of Classical German Philosophy**	65.00
11.	**On Capital**	55.00
12.	**The Origin of the Family, Private Property and the State**	100.00
13.	**Socialism: Utopian and Scientific**	60.00
14.	**On Marx**	30.00
15.	**Principles of Communism**	5.00

MARX and ENGELS

16.	**Historical Writings** (Set of 2 Vols.)	700.00
17.	**Manifesto of the Communist Party**	50.00
18.	**Selected Letters**	...

V. I. LENIN

19.	**Theory of Agrarian Question**	160.00
20.	**The Collapse of the Second International**	25.00
21.	**Imperialism, the Highest Stage of Capitalism**	80.00
22.	**Materialism and Empirio-Criticism**	150.00

23.	**Two Tactics of Social-Democracy in the Democratic Revolution**	55.00
24.	**Capitalism and Agriculture**	50.00
25.	**A Characterisation of Economic Romanticism**	...
26.	**On Marx and Engels**	35.00
27.	**"Left-Wing" Communism, An Infantile Disorder**	...
28.	**Party Work in the Masses**	55.00
29.	**The Proletarian Revolution and the Renegade Kautsky**	75.00
30.	**One Step Forward, Two Steps Back**	...
31.	**The State and Revolution**	80.00

MARX, ENGELS and LENIN

32.	**On the Dictatorship of Proletariat,** ***Questions and Answers***	50.00
33.	**On the Dictatorship of the Proletariat:** ***Selected Expositions***	10.00

PLEKHANOV

34.	**Fundamental Problems of Marxism**	...

J. STALIN

35.	**Marxism and Problems of Linguistics**	25.00
36.	**Anarchism or Socialism?**	25.00
37.	**Economic Problems of Socialism in the USSR**	...
38.	**On Organisation**	15.00
39.	**The Foundations of Leninism**	70.00
40.	**The Essential Stalin** *Major Theoretical Writings 1905–52* (Edited and with an Introduction by Bruce Franklin)	175.00

LENIN and STALIN

41.	**On the Party**	30.00

MAO TSE-TUNG

42.	**Five Essays on Philosophy**	80.00
43.	**A Critique of Soviet Economics**	70.00
44.	**On Literature and Art**	80.00

45. **Selected Readings from the Works of Mao Tse-tung** ...

46. **Quotations from the Writings of Mao Tse-tung** ...

OTHER MARXISM

1. **Political Economy,** ***Marxist Study Courses*** (Prepared by the British Communist Party in the 1930s) 275.00
2. **Fundamentals of Political Economy** (The Shanghai Textbook) 150.00
3. **Reader in Marxist Philosophy/** *Howard Selsam & Harry Martel* ...
4. **Socialism and Ethics/***Howard Selsam* ...
5. **What Is Philosophy?** (A Marxist Introduction)**/** *Howard Selsam* 100.00
6. **Reader's Guide to Marxist Classics/***Maurice Cornforth* 70.00
7. **From Marx to Mao Tse-tung** /George Thomson 120.00
8. **Capitalism and After/**George Thomson 100.00
9. **The Human Essence/**George Thomson 80.00
10. **Mao Tse-tung's Immortal Contributions/***Bob Avakian* ...
11. **A Basic Understanding of the Communist Party** (Written during the GPCR in China) 150.00
12. **The Lessons of the Paris Commune/** *Alexander Trachtenberg (Illustrated)* 15.00

BIOGRAPHIES & REMINISCENCES

1. **Reminiscences of Marx and Engels** (Collection) ...
2. **Karl Marx And Frederick Engels:** An Introduction to their Lives and Work/David Riazanov 150.00
3. **Joseph Stalin: A Political Biography** *by The Marx-Engels-Lenin Institute* 80.00

PROBLEMS OF SOCIALISM

1. **How Capitalism was Restored in the Soviet Union, And What This Means for the World Struggle (Red Papers 7)** 175.00

2. **Preface of Class Struggles in the USSR** / *Charles Bettelheim* 30.00
3. **Nepalese Revolution: History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead** / *Alok Ranjan* 75.00
4. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00

ON THE CULTURAL REVOLUTION

1. **Hundred Day War:** The Cultural Revolution At Tsinghua University / *William Hinton* ...
2. **The Cultural Revolution at Peking University** / *Victor Nee* with *Don Layman* ...
3. **Mao Tse-tung's Last Great Battle** / *Raymond Lotta* 25.00
4. **Turning Point in China** / *William Hinton* ...
5. **Cultural Revolution and Industrial Organization in China** / *Charles Bettelheim* 55.00
6. **They Made Revolution Within the Revolution** / *Iris Hunter* ...

ON SOCIALIST CONSTRUCTION

1. **Away With All Pests:** An English Surgeon in People's China: 1954–1969 / *Joshua S. Horn* ...
2. **Serve The People:** Observations on Medicine in the People's Republic of China /*Victor W. Sidel* and *Ruth Sidel* ...
3. **Philosophy is No Mystery** (Peasants Put Their Study to Work) ...

CONTEMPORARY ISSUES

1. *New* **Subversive Interventions** (An Anthology) / *Abhinav Sinha* 500.00
2. *New* **On the Caste Question: Towards a Marxist Understanding /** *Abhinav Sinha* 200.00
3. **Caste and Class: A Marxist Viewpoint /** *Ranganayakamma* 60.00

DAYITVABODH REPRINT SERIES

1. **Immortal are the Flames of Proletarian Struggles /** *Deepayan Bose* 30.00
2. **Problems of Socialism, Capitalist Restoration and the Great Proletarian Cultural Revolution** / *Shashi Prakash* 40.00
3. **Why Maoism? /** *Shashi Prakash* 25.00

AHWAN REPRINT SERIES

1. **Where Should Students and Youth Make a New Beginning?** 20.00
2. **Reservation: Support, Opposition and Our Position** 20.00
3. **On Terrorism : Illusion and Reality /** *Alok Ranjan* 20.00

BIGUL REPRINT SERIES

1. **Still Ablaze is the Torch of October Revolution** 30.00
2. **Nepalese Revolution History, Present Situation and Some Points, Some Thoughts on the Road Ahead /** *Alok Ranjan* 75.00

WOMEN QUESTION

1. **The Emancipation of Women** / *V. I. Lenin* ...
2. **Breaking All Tradition's Chains: Revolutionary Communism and Women's Liberation /** *Mary Lou Greenberg* ...

MISCELLANEOUS

1. **Probabilities of the Quantum World /** *Daniel Danin* ...
2. **An Appeal to the Young /** *Peter Kropotkin* 20.00

"The books that help you most are those which make you think the most. The hardest way of learning is that of easy reading; but a great book that comes from a great thinker is a ship of thought, deep freighted with truth and beauty."

– Pablo Neruda

अरविन्द स्मृति न्यास के प्रकाशन

1. **इक्कीसवीं सदी में भारत का मज़दूर आन्दोलनः निरन्तरता और परिवर्तन, दिशा और सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (दूसरी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 40.00
2. **भारत में जनवादी अधिकार आन्दोलनः दिशा, समस्याएँ और चुनौतियाँ** (तीसरी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 80.00
3. **जाति प्रश्न और मार्क्सवाद** (चौथी अरविन्द स्मृति संगोष्ठी के आलेख) 150.00

PUBLICATIONS FROM ARVIND MEMORIAL TRUST

1. **Working Class Movement in the Twenty-First Century: Continuity and Change, Orientation and Possibilities, Problems and Challenges** (Papers presented in the Second Arvind Memorial Seminar) 40.00
2. **Democratic Rights Movement in India: Orientation, Problems and Challenges** (Papers presented in the Third Arvind Memorial Seminar) 80.00
3. **Caste Question and Marxism** (Papers presented in the Fourth Arvind Memorial Seminar) 200.00

जनचेतना इन पुस्तकों की भी मुख्य वितरक है

1. **बच्चों के लिए अर्थशास्त्र (मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ)**/रंगनायकम्मा 120.00
2. **For the Solution of the 'Caste' Question, Buddha is not enough, Ambedkar is not enough either, Marx is a must**/*Ranganayakamma* 80.00
3. **Economics for Children [Lessons based on Marx's 'Capital']**/*Ranganayakamma* 150.00

अनुराग ट्रस्ट

1.	**बच्चों के लेनिन**	35.00
2	**Stories About Lenin**	35.00
3.	**सच से बड़ा सच**/रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
4.	**औज़ारों की कहानियाँ**	20.00
5.	**गुड़ की डली**/कात्यायनी	20.00
6.	**फूल कुंडलाकार क्यों होते हैं**/सनी	20.00
7.	**धरती और आकाश**/अ. वोल्कोव	...
8.	**कजाकी**/प्रेमचन्द	35.00
9.	**नीला प्याला**/अरकादी गैदार	40.00
10.	**गड़रिये की कहानियाँ**/क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
11.	**चींटा और अन्तरिक्ष यात्री**/अ. मित्यायेव	35.00
12.	**अन्धविश्वासी शेकी टेल**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
13.	**चलता-फिरता हैट**/एन. नोसोव, होल्कर पुक्क	20.00
14.	**चालाक लोमड़ी** (लोककथा)	20.00
15.	**दियांका-टॉमचिक**	20.00
16.	**गधा और ऊदबिलाव**/मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
17.	**गुफा मानवों की कहानियाँ**/मैरी मार्स	...
18.	**हम सूरज को देख सकते हैं**/मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
19.	**मुसीबत का साथी**/सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
20.	**नन्हे आर्थर का सूरज**/हद्याक ग्युलनज़रयान, गेलीना लेबेदेवा	20.00
22.	**आकाश में मौज-मस्ती**/चिनुआ अचेबे	20.00
23.	**ज़िन्दगी से प्यार** (दो रोमांचक कहानियाँ)/जैक लण्डन	40.00
24.	**एक छोटे लड़के और एक छोटी लड़की की कहानी**/मक्सिम गोर्की	20.00
25.	**बहादुर**/अमरकान्त	15.00
26.	**बुन्नू की परीक्षा** (सचित्र रंगीन)/शस्या हर्ष	...

27.	**दान्को का जलता हुआ हृदय**/मक्सिम गोर्की	15.00
28.	**नन्हा राजकुमार**/आतुआन द सैंतेक्ज़ूपेरी	40.00
29.	**दादा आर्खिप और ल्योंका**/मक्सिम गोर्की	30.00
30.	**सेमागा कैसे पकड़ा गया**/मक्सिम गोर्की	15.00
31.	**बाज़ का गीत**/मक्सिम गोर्की	15.00
32.	**वांका**/अन्तोन चेख़व	15.00
33.	**तोता**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	15.00
34.	**पोस्टमास्टर**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	...
35.	**काबुलीवाला**/रवीन्द्रनाथ टैगोर	20.00
36.	**अपना-अपना भाग्य**/जैनेन्द्र	15.00
37.	**दिमाग़ कैसे काम करता है**/किशोर	25.00
38.	**रामलीला**/प्रेमचन्द	15.00
39.	**दो बैलों की कथा**/प्रेमचन्द	25.00
40.	**ईदगाह**/प्रेमचन्द	...
41.	**लॉटरी**/प्रेमचन्द	20.00
42.	**गुल्ली-डण्डा**/प्रेमचन्द	...
43.	**बड़े भाई साहब**/प्रेमचन्द	20.00
44.	**मोटेराम शास्त्री**/प्रेमचन्द	...
45.	**हार की जीत**/सुदर्शन	...
46.	**इवान**/व्लादीमिर बोगोमोलोव	40.00
47.	**चमकता लाल सितारा**/ली शिन-थ्येन	55.00
48.	**उल्टा दरख़्त**/कृश्नचन्दर	35.00
49.	**हरामी**/मिखाईल शोलोख़ोव	25.00
50.	**दोन किहोते** /सर्वान्तेस (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	...
51.	**आश्चर्यलोक में एलिस** /लुइस कैरोल (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	30.00
52.	**झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई**/वृन्दावनलाल वर्मा (नाट्य रूपान्तर - नीलेश रघुवंशी)	35.00
53.	**नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे**/सुन यओच्युन	...
54.	**लाखी**/अन्तोन चेख़व	25.00
55.	**बेझिन चरागाह**/इवान तुर्गनेव	12.00

56.	**हिरनौटा**/द्मीत्री मामिन सिबिर्याक	25.00
57.	**घर की ललक**/निकोलाई तेलेशोव	20.00
58.	**बस एक याद**/लेओनीद अन्द्रेयेव	20.00
59.	**मदारी**/अलेक्सान्द्र कुप्रिन	35.00
60.	**पराये घोंसले में**/फ्योदोर दोस्तोयेव्स्की	20.00
61.	**कोहकाफ़ का बन्दी**/तोल्सतोय	30.00
62.	**मनमानी के मज़े**/सेर्गेई मिखाल्कोव	30.00
63.	**सदानन्द की छोटी दुनिया**/सत्यजीत राय	15.00
64.	**छत पर फँस गया बिल्ला**/विताउते जिलिन्सकाइते	35.00
65.	**गोलू के कारनामे**/रामबाबू	25.00
66.	**दो साहसिक कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	15.00
67.	**आम ज़िन्दगी की मज़ेदार कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
68.	**कंगूरे वाले मकान का रहस्यमय मामला**/होल्गर पुक्क	20.00
69.	**रोज़मर्रे की कहानियाँ**/होल्गर पुक्क	20.00
70.	**अजीबोग़रीब क़िस्से**/होल्गर पुक्क	...
71.	**नये ज़माने की परीकथाएँ**/होल्गर पुक्क	25.00
72.	**किस्सा यह कि एक देहाती ने दो अफ़सरों का कैसे पेट भरा**/मिखाइल सल्तिकोव-श्चेद्रिन	15.00
73.	**पश्चदृष्टि-भविष्यदृष्टि** (लेख संकलन)/ कमला पाण्डेय	30.00
74.	**यादों के घेरे में अतीत** (संस्मरण)/ कमला पाण्डेय	100.00
75.	**हमारे आसपास का अँधेरा** (कहानियाँ)/ कमला पाण्डेय	60.00
76.	**कालमन्थन** (उपन्यास)/ कमला पाण्डेय	60.00

कोंपल

बच्चों के समग्र वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास के लिए समर्पित अनुराग ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका

डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

एक प्रति : 20 रुपये, वार्षिक : 100 रुपये (डाकव्यय सहित)

फ़ोन: 0522-4108495, **ईमेल :** editor.kompal@gmail.com

वेबसाइट : anuragtrust.in

फ़ेसबुक : facebook.com/kompal.childrensmagazine

पंजाबी भाषा में

शहीद भगतसिंह यादगारी प्रकाशन

और **दस्तक प्रकाशन** द्वारा प्रकाशित

मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य मँगाने के लिए
इस पते पर सम्पर्क करें:

जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन,
लुधियाना- 141109 (पंजाब)
फोन : 09815587807 **ईमेल** : janchetnapb@gmail.com

नवें समाजवादी इन्क़लाब दा बुलारा

प्रतिबद्ध
(तिमाही पंजाबी पत्रिका)

सम्पादकीय कार्यालय : शहीद भगतसिंह भवन
सीलोआनी रोड, रायकोट, लुधियाना-141109
(पंजाब) **फोन** : 09815587807
ईमेल : pratibadh08@rediffmail.com
ब्लॉग : http://pratibaddh.wordpress.com

एक अंक : 50 रुपये *वार्षिक सदस्यता :*
डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 150 रुपये विदेश : 50 अमेरिकी डॉलर या 35 पौण्ड

तब्दीली पसन्द विद्यार्थियाँ-नौजवानाँ दी

ललकार
(पाक्षिक पंजाबी अखबार)

सम्पादकीय कार्यालय : *लखविन्दर* सुपुत्र मनजीत सिंह
मुहल्ला - जस्सडाँ, शहर और पोस्ट ऑफ़िस - सरहिन्द शहर,
जिला - फ़तेहगढ़ साहिब-140406 (पंजाब) फोन : 096461 50249 **ईमेल** :
lalkaar08@rediffmail.com **ब्लॉग** : http://lalkaar.wordpress.com

एक अंक : 5 रुपये *वार्षिक सदस्यता :* डाकसहित : 170 रुपये, दस्ती : 120 रुपये

The Anvil

A Journal of Marxist Theory

Editor: Shashi Prakash

Editorial Office

69 A-1, Baba ka Purwa
Paper Mill Road, Nishatgunj, Lucknow 226 006, India
Phone: 9560130890, Email: editor.anvil@gmail.com

Website: http://anvilmag.in

FB: facebook.com/anvilmag

मराठी में मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशक

ऐरण प्रकाशन

***मुम्बई :* शहीद भगतसिंह पुस्तकालय**, रूम 204, हिरानन्दानी बिल्डिंग, लल्लूभाई कम्पाउण्ड, मानखुर्द (प), मुम्बई, फ़ोन : 9619039793, 9145332849

***अहमदनगर :* शहीद भगतसिंह पुस्तकालय**, सिद्धार्थनगर, गुगळे क्लिनिक के पीछे , अहमदनगर. फ़ोन : 9156323976, 7385242011

पुणे : 9422308125

अब तक प्रकाशित पुस्तकें

1. क्रांतिकारी कार्यक्रमाचा मसुदा – भगतसिंह / रु. 10
2. मी नास्तिक का आहे – भगतसिंह / रु. 10
3. जाति-धार्माचे झगडे सोडा – भगतसिंह / रु. 10
4. बॉम्बचे तत्त्वज्ञान – भगतसिंह / रु. 10
5. भगतसिंह म्हणाले... निवडक उद्धरणे – भगतसिंह / रु. 10
6. दहशतवाद : संभ्रम आणि वास्तव – आलोक रंजन / रु. 15
7. आरक्षण : समर्थन, विरोध आणि आमचा पक्ष – संपादक मंडळ, आह्वान कैम्पस टाइम्स / रु. 15
8. कोळी आणि माशी – विल्हेल्म लिब्कनेख्त / रु. 5
9. तरुणांना आवाहन – पीटर क्रोपोतकिन / रु. 15
10. मे दिवसाचा इतिहास – अलेक्झांडर ट्रॅक्टनबर्ग / रु. 15

हमारे पास आपको मिलेंगे

- विश्व क्लासिक्स
- स्तरीय प्रगतिशील साहित्य
- भगतसिंह और उनके साथियों का सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य
- मक्सिम गोर्की की पुस्तकों का सबसे बड़ा संग्रह
- भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी दस्तावेज़
- मार्क्सवादी साहित्य
- जीवन और समाज की समझ तथा विचारोत्तेजना देने वाला साहित्य
- प्रगतिशील क्रान्तिकारी पत्र-पत्रिकाएँ
- दिमाग़ की खिड़कियाँ खोलने और कल्पना की उड़ानों को पंख देने वाला बाल-साहित्य
- सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, प्रेरक पोस्टर और कार्ड
- क्रान्तिकारी गीतों के कैसेट
- साहित्यिक व क्रान्तिकारी उद्धरणों-चित्रों वाली टीशर्ट, कैलेण्डर, बुकमार्क, डायरी आदि ...

ऐसा साहित्य जो सपने देखने और भविष्य-निर्माण के लिए प्रेरित करता है!

(हिन्दी, अंग्रेज़ी, पंजाबी और मराठी में)

किताबें नहीं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं
किताबें नहीं,
हम असली इन्सान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं

जनचेतना

मुख्य केन्द्र : डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

फ़ोन : 0522-4108495

अन्य केन्द्र :

- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001, फ़ोन : 7398783835
- दिल्ली : 9999750940
- नियमित स्टॉल : कॉफ़ी हाउस के पास, हज़रतगंज, लखनऊ शाम 5 से 8 बजे तक

सहयोगी केन्द्र

- जनचेतना पुस्तक विक्रय केन्द्र, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाना (पंजाब) फ़ोन : 09815587807

ईमेल : info@janchetnabooks.org

वेबसाइट : www.janchetnabooks.org

हमारी बुकशॉप और प्रदर्शनियों से पुस्तकें लेने के अलावा आप हमसे डाक से भी किताबें मँगा सकते हैं। हमारी वेबसाइट पर जाकर पुस्तक सूची से पुस्तकें चुनें और ईमेल या फोन से हमें ऑर्डर भेज दें। आप मनीऑर्डर या चेक से या सीधे हमारे बैंक खाते में भुगतान कर सकते हैं। आप वेबसाइट पर दिये Instamojo के लिंक से भी भुगतान कर सकते हैं। हमारी किताबें आप Amazon और Flipkart से भी ऑनलाइन मँगा सकते हैं।

बैंक खाते का विवरण:

ACC. NAME: JANCHETNA PUSTAK PRATISHTHAN SAMITI

Acc. No. 0762002109003796

Bank: Punjab National Bank

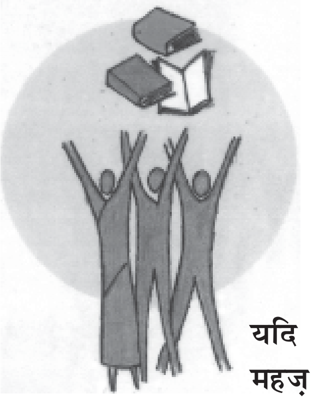

यदि आपको महज़ मनोरंजन चाहिए,
महज़ नशे की एक ख़ुराक,
दिल को बहलाने के लिए एक ख़याल
तो नहीं हैं ऐसी किताबें हमारे पास।
हम ऐसी किताबें लेकर आये हैं
जो आपकी मोहनिद्रा झकझोरकर तोड़ दें,
जो आज के हालात पर
आपको सोचने के लिए मजबूर कर दें।
हम किताबें नहीं
लड़ने की ज़िद
और हालात की बेहतरी की उम्मीदें
लेकर आये हैं,
हम आने वाले कल के सपने लेकर आये हैं।
हम लेकर आये हैं
एक सार्थक, स्वाभिमानी, मुक्त जीवन की तड़प।
किताबें नहीं
हम असली इंसान की तरह
जीने का संकल्प लेकर आये हैं।

जनचेतना

एक सांस्कृतिक मुहिम
एक वैचारिक प्रोजेक्ट
वैकल्पिक मीडिया का एक मॉडल